ऋग्वेद

(द्वितीय खण्ड)

सम्पादक—
श्रीराम शर्मा आचार्य,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

प्रथम संस्करण] १९६० [मूल्य-७ रुपया

प्रकाशक—

गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

मुद्रक—

रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।

१४ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः । देवता– अग्निर्लिंगोक्ता वा । छन्दः–पंक्ति त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥ १
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥ २
आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु षा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥ ४
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया का ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति
नाकम् ॥ ५ १४

जैसे तेजवंत सूर्य स्वयं प्रकाशित हुआ उषा को प्रकाशमान् करता है, वैसे ही धनैश्वर्य के अधिपति अग्नि महान् सम्पत्तियों से प्रकाशित होने वाली अपनी किरणों को प्रकाशित करते हैं। अश्विद्वय ! तुम गमनशील हो। रथ पर चढ़कर तुम दोनों इस यज्ञ को आकर प्राप्त होओ ॥ १ ॥ प्रकाशमान सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करके किरणों के आश्रय पर चलते हैं। सबके द्रष्टा सूर्य ने अपनी रश्मियों द्वारा आकाश, पृथिवी और अंतरिक्ष को पूर्ण किया है ॥ २ ॥ धनों का धारण करने वाली, महती, ज्योतिर्मती, अरुण वर्ण वाली उषा रश्मियों के द्वारा रूप वाली हुई प्रकट होती है। वह उषा जीवमात्र को चैतन्य करती हुई अपने सुशोभित रथ द्वारा कल्याण के निमित्त गमनशील होती है ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! उषा के उदय होने पर वहन करने की अत्यन्त क्षमता वाले गमनशील घोड़े तुमको इस यज्ञ-स्थान में पहुँचावें। तुम दोनों ही कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। यह सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत हैं, अतः इस यज्ञ में सोम पीकर पुष्टि को प्राप्त

अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ । १७

सोम के स्वामी, सत्य से युक्त इन्द्र हमारे पास आवें। इनके घोड़े हमारे पास आवें। हम यजमान इन्द्र के निमित्त ही अन्न के सार रूप सोम को सिद्ध करेंगे। वे इन्द्र हमारे द्वारा पूजित होकर हमारी कामना को सिद्ध करें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को डराने वाले हो। दिन के इस मध्य सवन में, जैसे, अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर अश्वों को विमुक्त किया जाता है, वैसे ही तुम हमको निमुक्त करो, जिससे इस सवन में हम तुम्हें पुष्ट कर सकें। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले एवं सर्वज्ञाता हो। उशना के समान, यजमानगण तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्र को कहते हैं ॥ २ ॥ गूढ़ अर्थों का सम्पादन करने वाले कवियों के समान, कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र कार्यों का सम्पादन करते हैं। जब सेचन के योग्य सोम को अधिक परिमाण में पीकर इन्द्र पुष्टि को प्राप्त करते हैं तब आकाश से सप्त रश्मियाँ मनुष्यों के लिए ज्ञानदात्री होती हैं ॥ ३ ॥ जब प्रकाश स्वरूप आकाश रश्मियों के द्वारा उत्तम प्रकार से दर्शनीय होता है, तब देवतागण तेज से दमकते हुए, उस स्वर्ग में निवास करते हैं। सब का नेतृत्व करने वाले सवितादेव ने प्रकट होकर मनुष्यों के देखने के लिए गंभीर अँधेरे का नाश कर डाला ॥ ४ ॥ सोमवान् इन्द्र अत्यन्त महिमावान् हो जाते हैं। वे अपनी महिमा से आकाश और पृथिवी दोनों को सम्पन्न करते हैं। इन्द्र ने सब लोकों को व्याप्त किया है क्योंकि वे सब लोकों से महान् हैं ॥५॥ [१७]

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ।८
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।

ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूती नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥ १० । १८

वे इन्द्र मनुष्यों के लिए हितकारक सभी कार्यों को जानते हुए जल वर्षा आदि करते हैं। उन्होंने कामनायुक्त मित्र भाव वाले मरुद्गण के लिए जल-वर्षा की थी। जिन मरुद्गण ने वाणी की ध्वनि से ही पर्वतों को चीर डाला, उन्होंने इन्द्र की कामना करते हुए गौओं से पूर्ण गोष्ठ को खोल दिया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र लोकों की रक्षा करने वाला है। उसने जलों के आवरण रूप मेघ को गतिमान किया। यह चैतन्य पृथिवी तुमसे पूर्ण हुई है। तुम अत्यन्त वीर एवं वर्षणशील हो। हे इंद्र ! तुम अपनी ही शक्ति, से लोकों का पालन करते हुए सामुद्रिक और आकाशस्थ जल को प्रेरित करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। जब तुमने वर्षा वाले जल को देख कर मेघ को चीरा था, तब तुम्हारे निमित्त "सरमा" ने पणियों द्वारा चुराई गई गौओं का रहस्योद्‌घाटन किया था। तुम अङ्गिराओं द्वारा स्तुत्य होकर हमको अन्न देते और हमारा कल्याण करते हो ॥ ८ ॥ हे धनैश्वर्य युक्त इन्द्र ! मनुष्य तुम्हारा आदर करते हैं। धन देने के निमित्त "कुत्स" के सामने गए थे। पुकारने पर तुमने शत्रुओं के उपद्रवों से उनको बचाकर आश्रय दिया था। अपनी सुमति से कपटी ऋत्विकों के कार्यों को तुमने जान लिया और "कुत्स" के धन की इच्छा करने वाले शत्रु को नष्ट कर डाला ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने शत्रुओं को मारने का निश्चय कर लिया और "कुत्स" के घर में जा पहुँचे। "कुत्स" भी तुम्हारी मित्रता के लिए आतुर था। तब तुम दोनों अपने स्थान पर अवस्थित हुए। सत्य को देखने वाली तुम्हारी पत्नी शची तुम दोनों का एक रूप देख कर अत्यन्त संशय में पड़ गई ॥ १० ॥ [१८]

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥ ११
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।

सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥ १३
सूर उपाके तन्वं दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥ १४
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥ १५ । १६

जब ज्ञानी "कुत्स" ग्रहण करने योग्य अश्व के समान शीघ्रगामी दोनों घोड़ों को अपने रथ में जोड़ कर संकटावस्था से छुटकारा पाने में समर्थ हुए, तब हे इन्द्र! तुमने उसके रथ पर उसकी रक्षा करने के लिए एक साथ गमन किया। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले, वायु के समान गति वाले अश्वों के स्वामी हो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र! तुमने कुत्स के कारण शुष्ण को मार डाला। दिन के आरम्भ में तुमने कुयव नामक दैत्य का वध किया। उसी समय तुमने अपने वज्र द्वारा बहुत से शत्रुओं का संहार किया। युद्ध में तुमने सूर्य के चक्र को भी तोड़ दिया ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुमने "पिप्रु" और "प्रवृद्ध मृगय" नामक असुरों का वध किया। तुमने "विदीथ" के पुत्र "ऋजिश्वा" को वन्दी बनाया और पचास सहस्र काले रङ्ग वाले दैत्यों को मार डाला। जैसे बुढ़ापा रूप का नाश कर देता है, वैसे ही तुमने शम्बर के नगरों का नाश कर डाला ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुम अविनाशी हो। तुम जब सूर्य के समीप प्रकट होते हो तब तुम्हारा रूप अत्यन्त दीप्तिमान होता है। सूर्य के सामने सभी फीके पड़ जाते हैं, परन्तु इन्द्र का रूप अधिक तेजोमय हो जाता है। हे इन्द्र तुम मृगया के समान शत्रु को जलाते और शस्त्र धारण करते हो तथा उस समय सिंह के समान विकराल हो जाते हो ॥ १४ ॥ दैत्यों द्वारा उत्पन्न भय को निवारण करने के निमित्त इन्द्र की आश्रय-कामना वाले एवं धन की अभिलाषा करने वाले, युद्ध के समान यज्ञ में इन्द्र से अन्न माँगते हैं। वे स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करते हुए उनके समीप जाते हैं। उस समय वे

-इन्द्र उनके लिए आश्रयस्थान के समान रक्षक और रमणीय एवं दर्शनीय धन के समान ऐश्वर्य सम्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ [१६]

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥ १६
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥ १७
भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥ १८
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥ २०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ । २०

इन्द्र ने मनुष्यों के कल्याण के निमित्त अनेकों प्रसिद्ध कार्य किये हैं। वे इन्द्र धनैश्वर्य से युक्त एवं कामना के योग्य हैं। वे हमारे समान साधक के ग्रहण करने योग्य अन्न को शीघ्र ले आते हैं। हे मनुष्यो! तुम्हारे निमित्त हम साधकगण उन इन्द्र का सुन्दर आह्वान करते हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र! तुम वीर हो। मनुष्यों द्वारा होने वाले युद्ध में यदि हमारे बीच तीक्ष्ण वज्र-पात हो अथवा शत्रुओं से हमारा अत्यन्त घोर संग्राम हो, तब तुम हमारे शरीरों को अपने नियन्त्रण में रखते हुए हर प्रकार से हमारी रक्षा करना ॥१७॥ हे इन्द्र! तुम वामदेव द्वारा किये जाने वाले यज्ञ-कार्य की रक्षा करो। तुम किसी के द्वारा हिंसित नहीं किए जा सकते। तुम संग्राम में हमारे प्रति सुहृदयता का व्यवहार करो। तुम अत्यन्त सुन्दर मति वाले हो। तुम हमारे समीप आओ। हे इन्द्र! तुम सदा स्तोताओं की प्रशंसा करने वाले बनो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्य संपन्न हो। हम अपने शत्रुओं पर विजय

प्राप्त करने के लिए सभी संग्रामों में तुम्हारी कामना करते हैं। जैसे धनवान् अपने धन से दमकता है, वैसे ही हम भी धन एवं पुत्र-पौत्रादि कुटुम्बियों के साथ दीप्तियुक्त हों। हम अपने शत्रुओं को हरा कर रातों और वर्षों में प्रसन्नता से तुम्हारा स्तवन करते रहें॥ १९ ॥ हम वही कार्य करेंगे जिससे इन्द्र के साथ हुई हमारी मैत्री का विच्छेद न हो और शरीरों की रक्षा करने वाले तेजस्वी इन्द्र हमारा पालन करते रहें। अनुभवी रथ निर्माता जैसे सुन्दर रथ बनाता है, वैसे ही हम भी कामनाओं की वर्षा करने वाले, नित्य युवा इन्द्र के निमित्त सुन्दर स्तोत्रों को रचते हैं॥ २० ॥ हे इन्द्र! तुम पुरातनकाल में ऋषियों द्वारा पूजित होकर और अब हमारे द्वारा नमस्कृत होकर, जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न-धन की वृद्धि करते हो। हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र बनाते हैं, जिनमें हम रथादि से युक्त हुए स्तुति वचनों द्वारा तुम्हें सदा प्रसन्न करते रहें॥ २१ ॥ [२०]

१७ सूक्त

(ऋषि—वामदेव। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान्॥ १
तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः॥ २
भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः॥ ३
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम॥ ४
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः॥ ५। २१

हे इन्द्र ! तुम महान् हो । महती पृथिवी ने तुम्हारी शक्ति का समर्थन किया और आकाश ने तुम्हारे बल का अनुमोदन किया । तुमने अपने बल से लोकों को ढक लेने वाले वृत्रासुर को मारा । वृत्र ने जिन नदियों को वशीभूत किया, तुमने उनको मुक्त कर दिया ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । तुम्हारे प्राकट्य पर आकाश तुम्हारे क्रोध के भय से काँप गया । उस समय पृथिवी भी काँप गई और मेघ समूह को तुमने बाँध लिया । तुम्हारी प्रेरणा से प्राणियों को प्यास मिटाने के निमित्त उन मेघों ने मरुभूमि में जल वर्षा की ॥ २ ॥ शत्रुओं को हराने वाले इन्द्र ने अपने तेज के प्रकाश और शक्ति द्वारा वज्र को चलाकर पर्वतों को चीर डाला । सोम पीकर पुष्ट होने के पश्चात इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्र को मार दिया । उस वृत्र के नष्ट होने पर जल निरावरण हो वेग से गिरने लगा ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पूजा के योग्य, वज्र से युक्त, दिव्य स्थान के अधिपति एवं अविनाशी हो । तुम अत्यंत महिमा वाले हो । जिन तेजस्वी प्रजापति ने तुम्हें प्रकट किया था, वे अपने को सुन्दर पुत्र वाले मानते थे । इन्द्र के जनक प्रजापति का कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ और प्रशंसित था ॥ ४ ॥ मनुष्यमात्र के स्वामी, बहुतों द्वारा बुलाए गए, देवताओं में मुख्य इन्द्र शत्रु द्वारा उत्पन्न किए गए भय को मिटाते हैं । वे ऐश्वर्यवान् एवं प्रदीप्तिवान् हैं । उन सखा रूप इन्द्र के लिए सभी यजमान स्तोत्रों द्वारा नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६

त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥ ७

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ८

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९

अय शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गा ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥ १०।२२

सभी सोम इन्द्र के निमित्त उत्पन्न होते हैं। यह सोम शक्ति उत्पन्न करने वाले हैं और उन महान् इन्द्र को प्रसन्नता देते हैं। हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्य-वान् सभी प्रजाओं का पालन-पोषण करते हो ॥ ६ ॥ हे धनैश्वर्य सम्पन्न इन्द्र! तुमने उत्पन्न होते ही वृत्र के भय से बचाने के लिए प्रजाओं का रक्षण किया। तुमने सब प्रदेशों को जलयुक्त कर देने के उद्देश्य से जल के रोकने वाले वृत्र को छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ७ ॥ बहुत से शत्रुओं को मारने वाले, विकराल शत्रुओं को प्रेरणा देने वाले, महान् एवं अविनाशी इन्द्र का हम स्तवन करते हैं, वे इन्द्र अभीष्टों की वर्षा करने वाले और सुन्दर वज्र वाले हैं। उन्होंने वृत्र का संहार किया था। वे अन्न प्रदान करने वाले उज्ज्वल धनों के अधिपति हैं। वे सदा धन प्रदान करते रहते हैं। उन इन्द्र का हम स्तवन करते हैं ॥ ८ ॥ जो इन्द्र अत्यन्त धनवान् एवं युद्ध में अद्वितीय वीर सुने गए हैं, वे सुसंगत और विशाल शत्रु-सेना का संहार करने में भी समर्थ हैं। वे जिस अन्न धन को धारण करते हैं, वही यजमान को प्रदान करते हैं। इन इन्द्र के साथ हमारा सख्य भाव अटूट रहे ॥ ९ ॥ वे इन्द्र शत्रुओं के पशुओं को छीन लेते हैं। जब वे क्रोधित होते हैं तब यह स्थावर जंगम रूप अखिल विश्व इन्द्र के भय से नितांत भीत हो उठता है ॥ १० ॥ [२२]

समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥ ११
कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥ १३
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४

असिक्नयां यजमानो न होता ॥ १५ ।-२३

जिन ऐश्वर्यशाली इन्द्र ने दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी तथा शत्रुओं के महान् धन पर अधिकार किया था, जिन इन्द्र ने शत्रुओं को जीतकर उनके घोड़ों को छीन लिया था, वे सर्व समर्थ इन्द्र सब में अग्रणी और स्तुति करने वालों से पूजित होकर पशुओं को बाँटने और धनादि की रक्षा करने वाले हों ॥ ११ ॥ इन्द्र ने अपने माता पिता से कितना बल प्राप्त किया? जिन इन्द्र ने अपने पिता प्रजापति के पास से इस संसार को उत्पन्न कर संसार को शक्ति दी थी, उन इन्द्र का, गर्जना करने वाले मेघ से प्रेरित वायु के समान आह्वान किया जाता है ॥ १२ ॥ इन्द्र धनवान् हैं, वे निर्धन मनुष्य को धन से पूर्ण करते हैं। अन्तरिक्ष के समान दृढ़ वज्रयुक्त, शत्रु-संहारक इन्द्र सब पाप को मिटाते हैं और स्तुति करने वाले को धन देते हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र ने सूर्य के शस्त्र को प्रेरणा दी तथा संग्रामोद्यत एतश को निवारण किया। टेढ़ी गति और काले रङ्ग वाले मेघ ने तेज के आश्रयरूप और जलपूर्ण अन्तरिक्ष में वास करने वाले इन्द्र का अभिषेक किया था ॥ १४ ॥ जैसे यजमान् अंधेरी रात में भी इन्द्र का आह्वान करता है, वैसे ही इन्द्र प्रजाओं को रात्रि में भी ऐश्वर्यादि प्रदान करता है ॥ १५ ॥ [२३]

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥ १६

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २०

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ । २४

हम बुद्धिमान स्तोता गौ, अश्व, अन्न और सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री की अभिलाषा करते हैं । हम अभीष्ट पूर्ण करने वाले, संतानदात्री भार्या के देने वाले तथा सदा अश्व रक्षा करने वाले इन्द्र के मित्र भाव को उसी प्रकार चाहते हैं, जिस प्रकार कूप से जल निकालने की इच्छा करने वाले व्यक्ति जल पात्र को प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र तुम हमारे रक्षक, देखने वाले, बन्धु, उपदेशकर्त्ता एवं शोभन गुणों से युक्त हो । तुम हमारे पूर्व पुरुषों के भी पिता तुल्य पूज्य, संतानों को सुख देने वाले, मित्र, ज्ञान और बल के देने वाले हो । तुम उत्तम लोकों की अभिलाषा करने वाले को श्रेष्ठ पद देते हो ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारा सख्य भाव चाहते हैं । तुम हमारे पालक बनो । तुम्हारी पूजा की जाती है, तुम हमारे मित्र बनो । स्तुति करने वाले यजमानों को अन्न दो । हे इन्द्र ! हमारे श्रेष्ठ कार्यों में विघ्न उपस्थित होने पर हम तुम्हें ही याद करते हैं । तुम हमारे आह्वान पर ध्यान देते हुए हमको जानो ॥ १८ ॥ जब हम उन इन्द्र की स्तुति करते हैं तब वे अकेले ही बहुत से दैत्यों को नष्ट कर डालते हैं । उनको विद्वान स्तोता अत्यन्त प्रिय हैं । उनके शरण में रहने वाले को देवता या मनुष्य कोई भी नहीं रोक सकता ॥ १९ ॥ वे इन्द्र अत्यन्त धनवान्, विविध शब्द वाले, सब प्रजाओं के रक्षक तथा शत्रुओं से शून्य हैं । वे हमारी इस प्रकार की स्तुति को सुनकर हमारी सत्य पूर्ण एवं श्रेष्ठ अभिलाषाओं को पूर्ण करें । हे इन्द्र ! तुम सभी उत्पन्न प्राणियों के स्वामी हो । जिस महिमा वाले सुन्दर यश को स्तुति करने वाला प्राप्त करता है, वह अत्यन्त यश हमको प्रदान करो ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वकाल में हुए ऋषियों द्वारा पूजित हुए, हमारे द्वारा भी स्तुत्य होकर, जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान, अन्न को बढ़ाते हो । हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम रथयुक्त हुए सदा तुम्हारी स्तुति एवं पूजा करते रहें ॥ २१ ॥ [२४]

१८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता–इन्द्रादिती । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१
नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २
परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३
किं स ऋधक् कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४
अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ । २५

यह मार्ग अनादि काल से चला आ रहा है, जिसके द्वारा विभिन्न भोगों और एक-दूसरे को चाहने वाले स्त्री पुरुष, ज्ञानीजन आदि उत्पन्न होते हुए प्रवृद्ध होते हैं। उच्चपद वाले समर्थ व्यक्ति भी इसी परम्परागत मार्ग द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। हे मनुष्य ! अपनी जनयित्री माता को अपमानित करने की चेष्टा न कर ॥ १ ॥ हम पूर्वोक्त योनि-मार्ग से बच नहीं सकते। टेढ़े मार्ग से, पशु-पक्षी के रूप में जन्म लेकर भी जीवन बड़े कष्ट से व्यतीत होता है। मैं चाहता हूँ कि, इस फन्दे से निकल जाऊँ। मुझे बहुत से कर्म न करने पड़ें। परस्पर का विवाद सब झमेला मात्र है। हमको संसार-मार्ग के किनारे लगने का ही यत्न करना चाहिये ॥ २ ॥ जैसे अपनी माता के मरने पर कोई मनुष्य मोहवश कहता कि मैं भी इसके पीछे ही चला जाऊँ, अथवा न जाऊँ। कालोपरांत वह ज्ञान, धैर्य आदि से शांत होकर पिता के घर में पुत्र बन कर रहता हुआ जीवन का उपभोग करता है। उसी प्रकार यह जीवात्मा विवेकी होकर त्वष्टा के घर में सोम-पान करता है ॥ ३ ॥ अदिति ने उस बलशाली इन्द्र को मासों और वर्षों तक धारण किया था। उस महान्

इन्द्र ने अनेक विशिष्ट कार्य किए। उनकी समानता उत्पन्न हुए अथवा आगे उत्पन्न होने वालों में से कोई नहीं कर सकता॥ ४॥ अदिति ने उन इन्द्र को गति देने में समर्थ मानते हुए अदृश्य रूप से धारण किया और फिर वह इन्द्र अपने ही सामर्थ्य से उत्पन्न तेज को धारण करते हुए सर्वोच्च बने और आकाश पृथिवी दोनों को परिपूर्ण किया॥ ५॥ [२५]

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोशमानाः।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति॥ ६
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून्॥ ७
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत्॥ ८
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन॥ ९
गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम्।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम्॥ १०
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व॥ ११
कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम्।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य॥ १२
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार॥ १३। २६

अव्यक्त ध्वनि करती हुई जल से पूर्ण नदियाँ इन्द्र के महत्व को प्रकट करती हुई बहती हैं। हे विप्र! यह नदियाँ क्या कहती हैं, यह इनसे पूछो। क्या यह इन्द्र का यश-गान करती हैं? इन्द्र ने ही जल को रोकने वाले मेघ को चीर कर जल धारी की थी॥ ६॥ वृत्र के नष्ट करने पर इन्द्र को

ब्रह्महत्या का जो पाप लगा, उस सम्बन्ध में वेद वाणी क्या कहती है ? इन्द्र के उस पाप को जल ने फेन के रूप में धारण किया। इन्द्र ने अपने महान वज्र द्वारा वृत्र को विदीर्ण कर इन नदियों को प्रवाहित किया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! अत्यन्त हर्ष वाली युवती अदिति ने ममतामय होकर तुम्हें जन्म दिया। "कुषवा" नाम्नी राक्षसी ने तुम्हें अपना ग्रास बनाने की चेष्टा की। तुमको, उत्पन्न होते ही जलों ने सुख दिया। तुम अपनी सामर्थ्य से सूतिका-गृह में ही राक्षसी का वध करने को उद्यत हुए ॥ ८ ॥ हे ऐश्वर्य-स्वामी इन्द्र ! मदयुक्त होकर "व्यंस" नामक दैत्य ने तुम्हारी ठोड़ी के अर्द्ध भाग को आघात पहुँचाया तब तुमने अपने बल से "व्यंस" के सिर को वज्र से अच्छी प्रकार कुचल डाला ॥ ९ ॥ जैसे गौ बलवान् बछड़े को उत्पन्न करती है, वैसे ही इन्द्र की माता अदिति अपनी इच्छा पर चलने वाले, सर्वशक्ति सम्पन्न सर्व विजेता इन्द्र को जन्म देती है। वह इन्द्र सब के प्रेरक, अविनाशी, सर्वव्याप्त, अभीष्टों की वर्षा करने वाले एवं कर्मों का फल देने में समर्थ हैं ॥ १० ॥ माता अदिति महान् ऐश्वर्य वाले तुम इन्द्र की कामना करती हुई कहती है कि "हे पुत्र इन्द्र ! यह सब विजयाभिलाषी वीर तुम्हें प्राप्त होते हैं।" तब इन्द्र ने कहा—'हे विष्णो ! तुम वृत्र को मारने की इच्छा करते हुए अत्यन्त पराक्रमी बनो' ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा कौन-सा शत्रु पैरों को पकड़ कर तुम्हारे पिता की हत्या करके तुम्हारी माता को विधवा बना सकता है ? तुम को सोते या चलते में कौन मार सकता है ? तुम्हारे सिवा ऐसा कौन देवता है जो उच्च पद पा सकता है ? ॥ १२ ॥ हमने दरिद्रता वश कुत्ते की अन्तड़ियों को भी पकाया। तब हमारे लिए देवताओं में इन्द्र के सिवाय और कोई भी सुख देने वाला नहीं हुआ। जब हमने अपनी भार्या को असम्मानित होते हुए देखा, तब इन्द्र ने ही हमारी रक्षा की और मधुर रस प्रदान किया ॥ १३ ॥ [२६]

१९ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्र। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति)

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः।

महामुभे रोदसी वृद्धमृष्व निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुव सम्राळिन्द्र सत्ययोनि ।
अहन्नहि परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेना ॥ २
अतृप्णुवन्त वियतमबुध्यमबुध्यमान सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्णं वातस्तविषीभिरिन्द्र ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभ पर्वतानाम् ॥ ४
अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथाइव प्र ययु साकमद्रय ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृतां अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ । १०

हे वज्रिन् ! इस यज्ञ में सुन्दर आह्वान वाले तथा रक्षा-सामर्थ्य वाले सभी देवता और आकाश पृथिवी वृत्र नाश के निमित्त केवल तुमको ही भजते हैं। तुम स्तुति योग्य एवं गुणों के उत्कर्ष से बढ़े हुए तथा दर्शनीय हो॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जैसे वृद्ध पिता अपने पुत्र को प्रेरणा देता है, वैसे ही देवतागण तुम्हें राक्षसों का संहार करने की प्रेरणा देते हैं। तुम सत्य के विकसित रूप हो। तुम समस्त भुवनों के स्वामी हो। जल को लक्ष्य कर सोते हुए वृत्र का तुमने संहार किया। सब को तृप्त करने वाली नदियों को तुमने बनाया था ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अतृप्त इच्छा वाले, अज्ञानी, निर्बल बुरे विचार वाले, सुप्त एवं शान्त जल को ढक लेने वाले सोते हुए वृत्र का वज्र द्वारा वध किया ॥ ३ ॥ वायु अपने बल से जैसे जल को क्षुब्ध करती है, वैसे ही परम ऐश्वर्य से युक्त इन्द्र अपने बल से, आकाश को सूक्ष्म तेज से परिपूर्ण कर जल को छिन्न-भिन्न करते हैं। वे बल की कामना करने वाले इन्द्र मेघों और पर्वतों को तोड़ डालते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! जैसे माताएं पुत्र के पास जाती हैं, वैसे ही मरुत तुम्हारे पास गये थे। वैसे ही वृत्र वध के निमित्त तुम्हारे निकट रथ पहुँचा था। तुमने नदियों को जल से परिपूर्ण कर डाला। मेघ को विदीर्ण कर वृत्र द्वारा रोके हुए जल को गिरा दिया ॥५॥ [1]

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।

अश्मयो नमसैजदर्णः सुतरणां अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६
प्राग्रुवो नभन्वो न वका ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीॠतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः ॥ ७
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्वद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥९
प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥ १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ । २

हे इन्द्र ! तुमने सबको स्नेह करने वाली "तुर्वीत" और राजा "वय्य" को इच्छित फलदात्री पृथिवी को अन्न से भर दिया और जल से परिपूर्ण किया था। हे इन्द्र ! तुमने जल को सुविधापूर्वक तैरने के योग्य कर दिया ॥ ६ ॥ शत्रु का नाश करने वाली सेना के समान इंद्र ने किनारे को तोड़ने वाली, जल से पूर्ण, अन्नोत्पादिनी नदियों को परिपूर्ण किया। उन्होंने जल-विहीन शुष्क देशों को वर्षा द्वारा पूर्ण किया और प्यासे पथिकों को शांति दी। जिन गौओं पर राक्षसों ने अधिकार कर लिया था उन प्रसव से निवृत्त हुई गौओं को इन्द्र ने दुहा था ॥ ७ ॥ तमिस्रा से ढकी हुई अनेक उषाओं और वर्षों को इन्द्र ने वृत्र का वध करके विमुक्त किया और वृत्र द्वारा रोके हुए जल को भी छोड़ा। मेघ के चारों ओर ठहरी हुई और वृत्र द्वारा रोकी हुई नदियों को पृथिवी पर प्रवाहित होने के लिये छोड़ा ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठ घोड़ों के स्वामी इन्द्र ! "उपजिह्विका" द्वारा भक्षण किये "अग्रू पुत्र" को तुमने दीमक के बिल से निकाला। निकालते समय वह अग्रू-पुत्र अन्धा था तो भी उसने सर्प को भले प्रकार देखा। उपजिह्विका द्वारा अलग किये गये अङ्गों को इन्द्र ने जोड़ दिया था ॥ ९ ॥ हे बुद्धिमान इन्द्र ! तुम सब कुछ

जानने वाले हो। वर्षा के योग्य और मनुष्यों को सम्पन्न करने वाले वर्षा-सम्बन्धी कर्मों को जिस प्रकार तुमने किया था, उन सब कर्मों का वामदेव ने उल्लेख किया है ॥ १० ॥ हे इन्द्र! तुम पुरातन ऋषियों द्वारा पूजित हुए और हमारे द्वारा भी स्तुत हुए हो। तुम जल-द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न को बढ़ाते हो। हे मघवान् इन्द्र! हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र करते हैं, जिसके द्वारा हम रथवान् हुए तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [२]

२० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २
इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिञ्जयेम ॥ ३
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ । ३

हे इन्द्र! तुम कामनाओं के देने वाले और तेज से युक्त हो। तुम हमको शरण देने के निमित्त दूर हो तो भी आओ। पास हो तो भी आकर हमारी रक्षा करो। तुम युद्धस्थल में शत्रुओं का संहार करते हो। तुम वज्र धारण करने वाले हो। तुम मनुष्यों का पालन करते और तेजस्वी मरुद्गण से युक्त हो ॥ १ ॥ हमारे सामने आने वाले इन्द्र शरण देने और धन देने के लिए अपने घोड़ों सहित हमारे पास पधारें। वे इन्द्र वज्रधारी, धनैश्वर्य से युक्त और महान् हैं। संग्राम का अवसर होने पर वे हमारे कार्यों में सहयोगी

हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमारे साथ मैत्रीभाव रखते हुए हमारे द्वारा किये जाते हुए इस यज्ञ को परिपूर्ण करो । हे वज्रिन् ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । जैसे शिकारी मृगों का शिकार करता है, वैसे हम तुम्हारे बल से धन प्राप्त करने के लिए संग्राम में विजेता हों ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नों के स्वामी हो । तुम हर्षयुक्त मन से हमारे पास आओ तथा हमको चाहते हुए उत्तम प्रकार से सिद्ध किये गए मदकारी सोम-रस को पीओ । दिन के मध्य सवन में उज्ज्वल स्तोत्र के साथ हर्षप्रदायक सोम का पान करो ॥ ४ ॥ जो इन्द्र पके फल वाले वृक्ष के समान और शस्त्र-कुशल विजेता के समान वीर हैं, जो नवीन ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से पूजित होते हैं, उन इन्द्र के निमित्त हम प्रशंसायुक्त स्तोत्र उच्चारित करते हैं ॥ ५ ॥ [५]

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६

न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९

मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥ १०

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ । ४

जो पर्वत के समान विशाल हैं, जो तेज से तेजस्वी हैं, जो शत्रुओं को वश में करने के लिए प्राचीन काल में उत्पन्न हुए, वे इन्द्र जल से भरे हुए पात्र के समान अत्यंत तेजस्वी एवं महान् वज्र के धारण करने वाले हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राकट्य-काल से ही तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं हुआ ।

यज्ञादि शुभ कर्मों के निमित्त तुम्हारे द्वारा किए गए धन का नाश करने वाला भी कोई नहीं हुआ । हे शक्तिशालिन् ! तुम अत्यन्त तेजस्वी और कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । हमारे लिए धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों के धन और घरों के पर्यवेक्षक हो । तुम बाधा देने वाले राक्षसों से गौओं के झुंडों को मुक्त करते हो । तुम शैक्षणिक कार्यों में अग्रणि और युद्ध-काल में नेतृत्व कर शत्रुओं पर प्रहार करते हो । तुम उत्पन्न धनों के सम्पन्नकर्ता बनो ॥ ८ ॥ वह सबसे अधिक बुद्धि वाले इन्द्र किस वाणी, शक्ति और बुद्धि से युक्त हैं ? किन कर्मों द्वारा वह महान् इन्द्र बारम्बार अनेक कार्यों को करते हैं ? वे मनुष्यों के पापों को नष्ट करते हुए स्तुति करने वालों को धनैश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! हमारा विनाश न करो । तुम्हारे निमित्त जो मनुष्य अपने को समर्पित करते हैं, उनको अपना देने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करो । हम तुम्हारी पूजा करते हैं । इन सर्वोत्तम प्रशस्ति वचनों द्वारा हम तुम्हारा भले प्रकार गुणानुवाद करते हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र तुम पुरातन कालीन ऋषियों एवं अब हमारे द्वारा भी स्तुत हुए हो । तुम नदी को पूर्ण करने वाले जलों के सामान हम स्तोताओं के अन्न की वृद्धि करते हो । तुम अश्ववान् हो । हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिसके द्वारा हम रथ से युक्त हुए तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [४]

२१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ ४

उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ । ५

वीरवर इन्द्र स्तुतियों द्वारा हमारी रक्षा के लिए आवें। वह वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमारी प्रसन्नता में ही प्रसन्नता मानें। जो बल कौशल में सम्पन्न और सूर्य के समान तेजस्वी हैं, वे इन्द्र सबको पराजित करने वाले होकर हमारा पालन करें ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले सम्राट् के समान जिनका सबको पराजित करने वाला कर्म शत्रुओं की सेना को हराने में समर्थ है तथा हमारी रक्षा करता है, उन यशस्वी और ऐश्वर्यशाली इन्द्र के बल के कारण रूप मरुद्गण का इस यज्ञ स्थान में स्तवन करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमको आश्रय प्रदान करने के लिए स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य-मंडल, जल-स्थान मेघ मण्डल अथवा जिस दूर देश में भी हो, वहीं से मरुद्गण के साथ यहाँ आओ ॥ ३ ॥ जो स्थिर और महान् ऐश्वर्य के स्वामी हैं, जो प्राण रूप शक्ति से शत्रु की सेनाओं को पराजित करते हैं, जो अत्यन्त मेधावी हैं और स्तुति करने वालों को उत्तम धन प्रदान करते हैं, उन शत्रुहन्ता इन्द्र के निमित्त हम इस यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ जो सम्पूर्ण विश्व को स्तंभित करते हुए गर्जन शब्द को उत्पन्न करने वाले हैं और हवियाँ ग्रहण कर वर्षा द्वारा अन्न देते हैं, जो उत्तम स्तोत्र द्वारा स्तुति के पात्र हैं, उन इन्द्र को हम यज्ञ-स्थान में बुलाते हैं ॥ ५ ॥ [५]

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥ ७
वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति ॥ ८
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९

एवा वस्व इन्द्र॑ सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्य सदासाः ॥ ११ । ६

जब इन्द्र की स्तुति की कामना करने वाले, यजमान के घर में निवास करते हुए स्तोतागण इन्द्र के सामने स्तोत्र सहित उपस्थित हों, तब वे इन्द्र आगमन करें। वे संग्राम भूमि में हमारे सहायक हों। वे इन्द्र अत्यन्त तेज वाले तथा यजमानों के होता रूप हैं ॥ ६ ॥ प्रजापति के पुत्र, संसार का भरण-पोषण करने वाले, कामनाओं की वर्षा करने वाले, इन्द्र की शक्ति स्तोता यजमान की रक्षा करती है। यह शक्ति यजमानों का पालन करने के लिए शरीर के गुफा रूप हृदय में प्रकट होती है। वह शक्ति यजमानों के घरों और कर्मों में व्याप्त होती हुई प्रसन्नता और अभीष्ट-प्राप्ति के निमित्त उत्पन्न होती हुई सदा पोषण करती है ॥ ७ ॥ इन्द्र ने मेघ के द्वार को खोल डाला। जल के वेग को परिपूर्ण किया। जब उत्तम कर्म वाले यजमान इन्द्र को हवियाँ देते हैं, तब वे गवादि धन भी प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे दोनों हाथ कल्याण करने वाले हैं। वे सदा श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए यजमान को धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र! तुम्हारे उच्च-पद की क्या स्थिति है? तुम हमको हर्षित नहीं करते? तुम हमको धन प्रदान करने के लिए प्रसन्न क्यों नहीं होते? ॥ ९ ॥ सत्य से युक्त, धनों के स्वामी, वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र की यह स्तुति किये जाने पर वे यजमानों को धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा पूजित हो। हमारी स्तुति सुनकर हमें धन प्रदान करो, जिससे हम दिव्य ऐश्वर्य का उपभोग कर सकें ॥ १० ॥ हे इन्द्र! तुम पूर्वकालीन ऋषियों द्वारा स्तुत हुए। अब हमारे द्वारा स्तूयमान होकर जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न को बढ़ाते हो। हे अश्ववान् इन्द्र! हम तुम्हारे लिए नूतन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम उत्तम रथ से युक्त हुए तुम्हारा स्तवन और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥　[६]

२२ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ १
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥ २
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥ ३
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥ ४
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥ ५ । ७

वे महाबली इन्द्र हमारा हव्य रूप अन्न भक्षण करते हैं। वे ऐश्वर्यवान् वज्र धारण कर, शक्तिशाली हुए आते हैं। वे हविरन्न, स्तुति, सोम तथा स्तोत्रों को ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। वे अपनी दोनों भुजाओं से वर्षा करने वाले वज्र को शत्रुओं पर चलाते हैं। वे विकराल कर्म वाले, अग्रणि, कर्म करने वाले होकर "परुष्णी" नदी को शरण देने के लिये पूर्ण करते हैं। उन इन्द्र ने "परुष्णी" नदी के प्रदेशों को मैत्री-कर्म के निमित्त सम्पन्न किया ॥ २ ॥ जो अत्यन्त प्रकाशवान, श्रेष्ठ दानी, उत्पन्न होते ही अन्न और अत्यन्त शक्ति से युक्त होगये, वे इन्द्र दोनों भुजाओं में वज्र उठा कर बल से आकाश और पृथिवी को कम्पायमान करते थे ॥ ३ ॥ उन महान् इन्द्र के प्राकट्य पर सब पर्वत, सब समुद्र, आकाश और पृथिवी उनके डर से कांप गए। वे शक्तिशाली इन्द्र गतिवान आदित्य के पिता-माता आकाश पृथिवी को धारण करते हैं। इन्द्र द्वारा प्रेरणा प्राप्त वायु मनुष्य के समान शब्दकारी होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो,

बढ़ाने के लिए कब उनकी रक्षा करेंगे ? ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य से युक्त होकर होता की बात को कैसे सुनते हो ? तुम स्तोत्रों को सुन कर ही स्तुतिकर्त्ता होता की रक्षा की बात कैसे जानते हो ? तुम्हारे प्राचीन दान कौन से हैं ? तुम्हारे वे दान स्तोता की इच्छा को पूर्ण करने वाले क्यों कहे जाते हैं ? ॥ ३ ॥ जो यजमान कष्ट में पड़ कर इन्द्र की स्तुति करते और यज्ञ द्वारा प्रकाश पाते हैं, वे इन्द्र के धन को कैसे प्राप्त करते हैं ? जब प्रकाशमान इन्द्र हवि सेवन कर हम पर प्रसन्न होते हैं, तब वे हमारे स्तोत्र को ठीक प्रकार जानते हैं ॥ ४ ॥ प्रकाशमान इंद्र उषा वेला में कब और किस प्रकार मनुष्यों से बन्धुभाव बनाते हैं ? इन्द्र के निमित्त जो होता सुन्दर हव्य को बढ़ाते हैं उनके प्रति इन्द्र कब और कैसे अपना बन्धुभाव प्रकाशित करते हैं ? ॥५॥ [६]

किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ॥ ६
द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥ ७
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥ ९
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥ १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ । १०

हे इन्द्र ! हम यजमान, शत्रु को हराने वाले तुम्हारे मित्रभाव को किस प्रकार स्तोत्राओं से कहेंगे ? कब हम तुम्हारे बन्धुभाव को प्रचारित करेंगे ? उत्तम दर्शन वाले इन्द्र के सभी कर्म स्तुति करने वालों के लिए सुखकारी होते हैं। सूर्य के समान अत्यन्त दर्शनीय इन्द्र के शरीर की सब कामना करते

हैं ॥ ६ ॥ द्रोह और हिंसा करने वाली, इन्द्र के पराक्रम को न जानने वाली राक्षसी के वध के लिए वे इन्द्र पहले से ही शस्त्रों को तेज करते हैं। जैसे ऋण सब धन को समाप्त कर देता है, वैसे ही इन्द्र उन उपाओं को पीडित करते हैं ॥ ७ ॥ ऋत देव बहुत जल से युक्त हैं। उनकी स्तुति पापों को दूर करती है। उनकी ज्ञान देने वाली वाणी बहरे मनुष्यों के भी कान में पहुँच जाती है ॥ ८ ॥ ऋतदेव के अनेक रूप हैं। साधकगण उनसे अन्न की याचना करते हैं। उनके द्वारा गौएं दक्षिणा के रूप से यज्ञ में जाती हैं ॥ ९ ॥ स्तुति करने वाले ऋतदेव को वश में करने के लिए उनका भजन करते हैं। उनका बल जल की अभिलाषा करता है। आकाश और पृथिवी दोनों ऋतदेव की हैं। स्नेहमयी तथा श्रेष्ठ आकाश-पृथिवी ऋतदेव के लिए दूध दुहती हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों द्वारा स्तुत हुए। अब हम भी तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तोताओं के अन्न को बढ़ाते हो। हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो। हम तुम्हारे लिये नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [१०]

२४ सूक्त

(ऋषि-वामदेवः। देवता-इन्द्रः। छन्दः-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ १

स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २

तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३

क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥४

आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।

आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ । ११

बल के पुत्र इन्द्र को, सुन्दर स्तुति द्वारा धन देने के निमित्त हम किस प्रकार बुलावें ? हे मनुष्यो ! पशुओं का पालन करने वाले वीर इन्द्र हमको शत्रुओं का धन प्रदान करें । हम उनका स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ वृत्र-के लिये इन्द्र युद्ध में बुलाए जाते हैं । वे स्तुति के पात्र हैं । उत्तम प्रकार से स्तुति किये जाने पर वे यजमानों को धन देने के लिए सत्य स्वरूप बनते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्र स्तोत्र की और सोम की कामना करने वाले, यजमान को धन देते हैं ॥ २ ॥ संग्राम में मनुष्य इन्द्र को आहूत करते हैं । यजमान अपने शरीर को तप से क्षीण करते हुए उन्हीं को रक्षक मानते हैं । यजमान और स्तोता दोनों मिलकर संतति-लाभ के लिए इन्द्र के पास जाते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान् हो । चारों दिशाओं में रहने वाले मनुष्य जल के निमित्त इकट्ठे होकर यज्ञ करते हैं । जब युद्ध करने वाले समर भूमि में इकट्ठे होते हैं तब उनमें से कौन इन्द्र की कामना करता है ? ॥ ४ ॥ उस समय कोई वीर सशक्त इन्द्र का पूजन करते और कोई पुरोडाश लाकर इन्द्र को देते हैं । उस समय सोम सिद्ध करने वाले यजमान, सोम सिद्ध न करने वाले यजमान को धन विहीन कर देते हैं । उस समय कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र के लिए कोई यज्ञ करने की इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७

यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८

भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥ १०

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ॥ ११ । १२

दिव्य लोक में निवास करने वाले इन्द्र के लिए जो सोम की कामना वाले उसे सिद्ध करते हैं, उनको इन्द्र धन प्रदान करते हैं। एकाग्र भाव से इन्द्र को चाहने वाले तथा सोम सिद्ध करने वाले यजमान से वे इन्द्र युद्ध क्षेत्र में सख्य भाव स्थापित करते हैं ॥ ६ ॥ आज जो इन्द्र के निमित्त सोम-रस निकालते हैं, जो पुरोडाश लाते और भूनने योग्य जौ को भूनते हैं, उन स्तोत्र को ग्रहण करने वाले इन्द्र यजमान की इच्छा पूर्ण करने वाले बल को धारण करते हैं ॥ ७ ॥ जब वे शत्रु-संहारक प्रभु इन्द्र शत्रुओं को जान लेते हैं और जब वे भीषण संग्राम में लगे होते हैं, तब उनको भार्या सोम सिद्ध करने वाले ऋत्विक् द्वारा सोम-पान से हृष्ट और कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र का आह्वान करती हैं ॥ ८ ॥ कोई पुण्य करके थोड़ा धन पाता है। फिर खरीदने वाले के पास जाकर 'हमने बेचा नहीं' ऐसा कहकर शेष धन माँगता है। खरीदने वाला उससे अधिक धन नहीं देता ॥९॥ इन्द्र को कौन दश गायों के समान धन से खरीद सकता है ? वह जब बढ़ते हुए शत्रुओं का वधकर डालते हैं, तब वह उनके गवादि धन को मुझे ही सौंप देते हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों के द्वारा पूजित हुए। अब हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम जल से परिपूर्ण नदी के समान स्तुति करने वालों के अन्न की वृद्धि करते हो। हे इन्द्र तुम अश्ववान् हो। हम तुम्हारे लिये नूतन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [१२]

२५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २
को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥ ५।१३

हितकारी, देवताओं की कामना वाला कौन-सा मनुष्य आज इन्द्र से मित्रता स्थापित करना चाहता है ? सोम का अभिषव करने वाला ऐसा कौन व्यक्ति है जो अग्नि के प्रदीप्त होने पर इन्द्र के रक्षा करने वाले आश्रय की कामना से उनका स्तवन करता है ? ॥ १ ॥ कौन-सा यजमान इन्द्र के सामने स्तुति करता हुआ नत मस्तक होता है ? कौन इन्द्र की स्तुति की इच्छा करता है ? इन्द्र की दी हुई गौओं को कौन लेता है ? इन्द्र की सहायता कौन चाहता है ? कौन उनसे मित्रता करने का अभिलाषी है ? कौन उससे बन्धुत्व भाव करना चाहता है ? कौन उन तेजस्वी इन्द्र के आश्रय की याचना करता है ? ॥ २ ॥ कौन यजमान इन्द्र आदि देवताओं से रक्षा के लिये निवेदन करता है ? आदित्य, अदिति और उदक की स्तुति कौन करता है ? अश्विनी-कुमार, इन्द्र और अग्नि किस यजमान के स्तोत्र से प्रसन्न होकर छने हुए सोम-रस को इच्छानुसार पीते हैं ? ॥ ३ ॥ जो यजमान मनुष्यों के सखा, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले इन्द्र के निमित्त सोम सिद्ध करने का संकल्प करते हैं, ऐसे यजमानों को हवियों के स्वामी अग्नि सुखी करें और सदा से उदय होने वाले सूर्य के दर्शन करने वाला बनावें ॥ ४ ॥ जो यजमान इन्द्र के निमित्त सोम सिद्ध करते हैं इन्द्र की माता अदिति उनको सुखी बनावें, सुन्दर यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले यजमानों को इन्द्र स्नेह करें । इन्द्र की स्तुति करने के इच्छुक उनके स्नेह भाजन हों । जो शील स्वभाव वाले एवं सोम को सिद्ध करने वाले हैं, वे सब इन्द्र के स्नेही बनें ॥ ५ ॥ [१३]

स प्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७
इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ । १४

इन्द्र के निकट जाने वाले और सोम सिद्ध करने वाले यज़मान के पाक कर्म को वीर इन्द्र स्वीकार करते हैं । सोम का अभिषव न करने वाले यजमान के लिये इन्द्र व्याप्त नहीं होते । वे उससे सख्य और बन्धुत्व नहीं रखते । इन्द्र के समीप न जाने वाला, उनकी स्तुति न करने वाला उनके द्वारा हिंसित किया जाता है ॥ ६ ॥ सिद्ध सोम को पीने वाले इन्द्र सोम सिद्ध करने वाले कर्म से विहीन धनिक एवं लोलुप के साथ सख्य भाव नहीं बनावें । वे उनके, किसी काम न आने वाले धन का नाश कर देते हैं । वे सोमाभिषवकर्ता तथा हविरन्न के पाक कर्त्ता यजमान से अत्यन्त बन्धुत्व स्थापित करते हैं ॥ ७ ॥ ऊँच, नीच, मध्यम सभी प्रकार के मनुष्य इन्द्र को आहूत करते हैं । गमनशील, उपविष्ट, घरों में रहने वाले, समरभूमि में जाने वाले तथा अन्न की कामना वाले सभी जीव इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ८ ॥ [१४]

२६ सूक्त

(ऋषि—वामदेव । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३
प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।

अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५
ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोम भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६
आदाय श्येनो अभरत्सोम सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ । १५

हम प्रजापति, सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य हैं, एवं हम ही "दीर्घतमा" के विद्वान् पुत्र "कक्षीवान्" ऋषि हैं। हम ही कवि "उशना" हैं। हमने ही "अर्जुनी" के पुत्र "कुत्स" को भले प्रकार प्रशंसित किया था। हे मनुष्यो! हम ही मान्त्वदर्शी और सर्वप्रिय हैं ॥ १ ॥ मैंने ही मनुष्य को भूमि दी। मैंने ही सत्य की वृद्धि के लिए वृष्टि की। मैंने ही शब्द करते हुए जल को प्रेरित किया। मेरी इच्छा पर सभी देवता चलते हैं ॥ २ ॥ सोम पीकर हृष्ट हुए मैंने "शम्बर" के निन्यानवे नगरों का एक ही समय में विध्वंस कर डाला। जब मैं यज्ञ में "राजर्षि दिवोदास" की रक्षा कर रहा था, तब मैंने उनके निवास के लिए सौ नगर प्रदान किये थे ॥ ३ ॥ हे मरुतो! तुम बाज पक्षियों में प्रधानत्व प्राप्त हो। दूसरों की अपेक्षा तुम शीघ्रगामी हो। देवतायों द्वारा सेवन किए जाने वाले सोमरूप हव्य को सुपर्ण ने बिना पहिये के रथ द्वारा दिव्य लोक से लाकर मनुष्यों को दिया था ॥ ४ ॥ जब श्येन डरकर आकाश से सोम लाया तब वह विशाल अन्तरिक्ष के पथ में मन के समान वेग वाला होकर उड़ा। सोमरूप अन्न के सहित वह शीघ्र गया और सोम लाने से उसका यश फैल गया ॥ ५ ॥ द्रुतगामी और यशस्वी श्येन देवताओं के साथ दूर से सोम को उठा कर स्तुत्य एवं हर्षदायक सोम को ऊँचे आकाश से लेकर दृढ़तापूर्वक पृथिवी पर चला आया ॥ ६ ॥ श्येन ने हजारों लाखों यज्ञ-कर्मों द्वारा सोम को पाया और वह उसे ले आया। उस सोम के लाने पर बहुकर्मा एवं मेधावी इन्द्र ने सोम से उत्पन्न शक्ति से अज्ञानी शत्रुओं का संहार किया ॥ ७ ॥ [१५]

२७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, शक्वरी)

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १
न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वातौं अतरच्छूशुवानः ॥ २
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥ ५ । १६

गर्भ में रहते हुए ही हमने इन्द्रादि सब देवताओं के प्राकट्य को उत्तमता से जान लिया था। लौह की बनी हुई दृढ़ नगरियों में हमारा पालन हुआ था। हम ज्ञान से युक्त हो बाज के समान बड़े वेग से उड़ जाने वाले आत्मा को जानते हुए देह-बन्धन से निकल जाते हैं ॥ १ ॥ उस गर्भ में रहते हुए भी हमको मोह ने नहीं घेरा। हमने गर्भ के दुःखों को ज्ञान के बल से जीत लिया। सब को प्रेरणा देने वाले प्रभु ने गर्भ में स्थित शत्रु रूप कीटाणुओं को नष्ट किया और वृद्धि को प्राप्त होकर क्लेश पहुँचाने वाली वायु का शमन किया ॥ २ ॥ सोम लाते समय जब बाज ने आकाश से नीचे की ओर मुख करके शब्द किया, जब सोम के रक्षकों ने श्येन से सोम को छीन लिया, जब सोम रक्षक कृशानु ने मन के वेग से जाने वाले बाण के लिए धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ाई और श्येन की ओर बाण चलाया, तब श्येन सोम को लेकर आया ॥ ३ ॥ जैसे अश्विनीकुमारों ने इन्द्र के स्वामित्व वाले देश से राजा भुज्यु का अपहरण किया था उसी प्रकार इन्द्र से रक्षित महान्

आकाश से ऋजुगामी श्येन सोम को लेकर आया। उस समय कृशानु से लड़ने के कारण उस गमनशील श्येन का एक पङ्ख वाण से विध जाने के कारण गिर पड़ा ॥ ४ ॥ महा पराक्रमी इन्द्र पवित्र पात्र में सुरक्षित, गव्य मिश्रित हर्षदायक, सार रूप सोम के अध्वर्युओं द्वारा दिये जाने पर उसके हर्षप्रदायक रस का इस समय पान करें ॥ ५ ॥ [१६]

२८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रासोमौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १

त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥ २

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यंदिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३

विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥ ४

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥ ५ । १७

हे सोम! जब इन्द्र तुम्हारे मित्र हुए, तब तुम्हारी सहायता से उन्होंने मनुष्यों के निमित्त जल को बहाया और वृत्र का संहार किया। वृत्र द्वारा रोके हुए द्वार को खोलकर जल का प्रेरण किया ॥ १ ॥ हे सोम! तुम्हारी सहायता से ही इन्द्र ने सूर्य के रथ के ऊपर स्थित दो चक्रों वाले रथ के एक चक्र को क्षण भर में छिन्न कर दिया। सूर्य के सर्वत्र गतिमान चक्र को स्पर्धा के कारण इन्द्र ने ले लिया ॥ २ ॥ हे सोम! तुमको पीकर पराक्रमी इन्द्र ने मध्यान्ह काल से पूर्व ही शत्रुओं को युद्ध में नष्ट कर दिया और अग्नि ने भी अनेक शत्रुओं को भस्म किया। जैसे अरक्षित मार्ग से जाने वाले धनिक को चोर मार देता है, वैसे ही असंख्य शत्रु सेनाओं को इन्द्र ने मार डाला ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सब दुष्टों को सद्‌गुणों से विहीन करते हो। तुम उन दस्युओं को निन्दा के योग्य करते हो। हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनों ही शत्रुओं के आक्रमण-कार्य में बाधक बनते हुए उनका संहार करो। उनका वध करने के लिए की जाने वाली स्तुतियों को स्वीकार करो॥ ४॥ हे सोम ! तुमने और इंद्र ने विशाल अश्वों और गौओं के झुन्डों को दान दिया था। हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनों ही अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हो। तुम दोनों ही शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हो। तुम दोनों जो भी कर्म करते हो वह सब सत्य है॥ ५॥ [१७]

२९ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः। देवता—इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः॥ १

आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम्।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः॥ २

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च॥ ३

अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम्।
उप त्मनि दधानो धुर्या३शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः॥ ४

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः॥ ५॥ १८

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा स्तवन करने पर हमारी रक्षा के निमित्त हवि-रन्न युक्त हमारे यज्ञों में अश्वों के सहित पधारो। तुम प्रसन्न मन वाले, स्तोत्रों द्वारा पूजित, सत्य स्वरूप एवं सब के स्वामी हो॥ १॥ मनुष्यों का कल्याण करने वाले, सर्वज्ञानों के जानने वाले इन्द्र सोम सिद्ध करने वालों द्वारा बुलाए जाने पर यज्ञ के लिए आवें। वे इन्द्र शोभित अश्वों वाले, निडर स्तुत तथा वीर मरुद्‌गण के साथ पुष्टि को प्राप्त करते हैं॥ २॥ मनुष्यों !

इन्द्र की बल - वृद्धि के लिये तथा उन्हें हर प्रकार से पुष्ट करने के लिए उनके दोनों कानों में स्तोत्रों को श्रवण कराओ। सोम रस से सींचे गए पराक्रमी इन्द्र हमारे धन के लिए उत्तम स्थानों को भय से मुक्त करें ॥ ३ ॥ भुजाओं में वज्र धारण करने वाले इन्द्र अपने बहुसंख्यक घोड़ों को रथ में चलने के लिए जोड़ते हैं और रक्षा करने के लिए बुद्धिमान, प्रसन्न करने वाले, स्तवन करते हुए याचक यजमान के पास जाते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। हम स्तोता विद्वान तुम्हारे द्वारा रक्षित हैं। तुम दीप्तिवान्, अन्नवान और स्तुतियों के पात्र हो। धन देने वाले समय में हम तुम्हारा भजन करें ॥ ५ ॥ [१८]

३० सूक्त

(ऋषि-वामदेवः। देवता-इन्द्र। छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्)

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥१
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥ ३
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् ।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ । १६

हे इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो। इस संसार में तुमसे बढ़ कर कोई श्रेष्ठ नहीं। तुमसे बढ़कर बड़ा भी कोई नहीं है। तुम संसार में जितने प्रसिद्ध हो उतना प्रसिद्ध कोई नहीं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सर्वव्यापी पहिया जैसे गाड़ी के पीछे चलता है, वैसे ही प्रजाजन भी तुम्हारे पीछे चलते हैं। तुम सत्य ही मेधावी हो। तुम अपने गुणों द्वारा प्रसिद्ध हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! विजय की कामना वाले सब देवताओं ने बल के रूप में तुम्हारी सहायता पाकर राक्षसों से संग्राम किया था। तब तुमने रातदिन शत्रुओं का संहार किया था ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! उस संग्राम में तुमने युद्धरत "कुत्स" और उसके सहायकों के निमित्त सूर्य पर चक्र को घुमाया और अपने जनों की रक्षा की थी ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! संग्राम में तुमने अकेले ही हिंसा करने वाले तथा सभी

देवताओं को बाधा देने वाले असुरों से युद्ध किया था, उसमें उन सभी का संहार किया था ॥ ५ ॥ [१६]

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इंद्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६
किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥ ७
एतद्घेदुत वीर्य मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९
अपोषा अनसः सरत्सन्पिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ १० । २०

हे इन्द्र ! तुमने जिस युद्ध में "एतश" के निमित्त सूर्य पर भी आक्रमण किया था, उस समय घोर संग्राम द्वारा तुमने "एतश" ऋषि की भले प्रकार रक्षा की थी ॥ ६ ॥ हे वृत्र रूप आवरणकारी अन्धकार को दूर करने वाले इन्द्र ! और तो क्या, तुम दुष्टों पर अत्यन्त क्रोध करने वाले हो। तुम प्रजाओं को छिन्न-भिन्न करने वाले असुर का वध करो ॥ ७ ॥ हे इंद्र ! तुम पुरुषोचित वीर कर्मों को करने वाले हो। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से उषा का नाश कर देता है, वैसे ही तुम एकत्रित हुई शत्रु-सेना को नष्ट करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! सूर्य जैसे प्रकाश का दोहन करने वाली उषा को छिन्न-भिन्न कर देता है, वैसे ही तुम विजय की कामना करने वाली शत्रु-सेना को पीस डालो ॥ ९ ॥ कामनाओं के वर्षक इन्द्र ने जब उषा के रथ को छिन्न-भिन्न किया था। तब उषा डर कर इन्द्र द्वारा तोड़े हुए रथ के ऊपर से प्रकट हुई थी ॥ १० ॥ [२०]

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥ ११
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४

उत दासस्य वर्चिन सहस्राणि शतावधीः ।

अधि पञ्च प्रधींरिव ॥१५ ॥२१

इन्द्र द्वारा तोड़ा गया उषा का वह रथ विपाशा नदी के किनारे जा पड़ा। रथ के भग्न होने पर उषा दूर देश में अचेत होकर जा पड़ी ॥ ११ ॥ हे इन्द्र! तुमने सभी जलों को तथा विपाशा नदी को इस भूमन्डल पर अपनी बुद्धि के बल से प्रकट किया था ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम वृष्टि करने वाले हो। जब तुमने "शुष्ण" के नगरों को नष्ट किया था, तब तुमने उसके धन को भी लूटा था ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुमने "कौलितर" के पुत्र "शम्बर" नामक असुर को पर्वत से नीचे गिरा कर मार डाला ॥ १४ ॥ हे इन्द्र! चक्र के चारों ओर स्थित शंकु के समान "वर्चि" नामक दस्यु के चारों ओर स्थित पाँच सौ और सहस्र संख्यक दासों का तुमने वध किया था ॥१५॥ [२१]

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६॥
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥ १९
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥२२

हे इन्द्र! तुमने प्रशंसनीय कार्यों में भी उस "अग्रु" पुत्र को दुःखों से बचा कर यश-भागी बनाया ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्र ने "ययाति" के शाप से च्युत राजा "यदु" और "तुर्वश" को संकट से पार किया था ॥ १७ ॥ हे इन्द्र! तुमने तत्क्षण "सरयू" के पार रहने वाले "अर्ण" और "चित्ररथ" नामक राजा का संहार किया ॥ १८ ॥ हे वृत्र नाशक इन्द्र! तुमने बन्धुओं द्वारा त्यागे गए अंधे और लँगड़े पर कृपा की थी। तुम्हारे द्वारा दिये गये सुख को नष्ट करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ १९ ॥ इन्द्र ने हविर्दान करने वाले यजमान "दिवोदास" को "शम्बर" के पाषाण से बने सौ नगर दिए ॥ २० ॥ [२२]

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ।२२
उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् अद्या नकिष्टदा मिनत् ।२३
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ।।२४ ।२३

इन्द्र ने अपनी माया से दस्युओं की तीन सौ सहस्र सेना को नष्ट करने के लिए हनन करने वाले अस्त्रों से पृथिवी पर सुला दिया ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र के हननकर्त्ता हो । तुमने सभी शत्रु-सेनाओं को रणक्षेत्र से विचलित कर दिया । तुम गौओं के पालनकर्त्ता हो । तुम सब यजमानों के लिए समान रूप से वर्त्तते हो ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस सामर्थ्य और ऐश्वर्य को धारण करते हो, उसकी हिंसा आज भी कोई व्यक्ति करने में समर्थ नहीं है ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो, अर्यमा तुम्हें सुन्दर धन दें । दन्तविहीन पूषा और भग भी रमणीय धन प्रदान करें ॥ २४ ॥ [२३]

३१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री ।)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ।।१
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु ।। २
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ।। ३
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ।। ४
प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ।। ५ । २४

वे सदा बढ़ने वाले, पूजा के पात्र, मित्र रूप इन्द्र किस पूजा द्वारा हमारे सामने आवेंगे ? किस बुद्धिमान के श्रेष्ठ कर्म से प्रभावित हुए वे हमारे सामने पधारेंगे ? ॥ १ ॥ हे इन्द्र, सत्य रूप और प्रसन्न करने वाले सोम रसों के बीच, शत्रुओं के धन का नाश करने के लिये तुम्हें कौन-सा सोमरस पुष्ट करेगा ? ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम मित्र रूप स्तुति करने वालों की रक्षा करते

हो, अपने विभिन्न रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र हम तुम्हारे मार्ग पर चलने वाले हैं। हम मनुष्यों की स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए तुम हमारे सामने वृत्ताकार चक्र के समान आओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञ में अपने स्थान को जानते हुये यहाँ पधारो। सूर्य के साथ हम तुम्हारा सदा भजन करते हैं ॥ ५ ॥ [२४]

सं यत्त इन्द्र मन्यव सं चक्राणि दधन्विरे। अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते। दातारमविदीधयुम् ॥ ७
उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते। पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः।
न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९
अस्मां अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतय.।
अस्मान्विश्वा अभिष्टय. ॥ १० । २५

हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त सम्पादन की गई स्तुति तथा कर्म जब एक साथ ऊपर उठते हैं, तब वे प्रथम तुम्हारे और फिर सूर्य के होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम कर्मों के रक्षक हो। तुमको धनवान और स्तोता की इच्छा पूर्ण करने वाला तथा तेजस्वी कहा जाता है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सोम सिद्ध करने वाले तथा स्तुति करने वाले यजमान को तुम तुरंत ही बहुत-सा धन देते हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! बाधा देने वाले दैत्य भी तुम्हारे सैकड़ों ऐश्वर्यों को रोक नहीं सकते। विभिन्न पराक्रम वाले वीरकर्मा भी तुम्हारे बलों को रोक नहीं सकते ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे सैकड़ों रक्षा-साधन हमारी रक्षा करें। तुम्हारे हजारों रक्षा साधन हमारी रक्षा करें, तुम्हारी समस्त प्रेरणायें हमारी रक्षा में सहायक हों ॥ १० ॥ [२५]

अस्मां इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये। महो राये दिवित्मते ॥ ११
अस्मां अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः ।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥१५ ।२६

हे इन्द्र ! हम यजमानों को इस यज्ञ में मित्र रूप, कभी नष्ट न होने वाला तथा प्रकाश से युक्त धन का अधिकारी बनाओ ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम नित्यप्रति अपने महान् धन द्वारा हमारी रक्षा करो । तुम अपने सभी रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! वीर के समान अपने नवीन रक्षा-साधन द्वारा हमारे लिये और गौओं के निवास स्थान को पुष्ट करो ॥१३॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रुओं को रगड़ने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, अविनाशी, गौओं से युक्त, अश्वों वाले रथ में सब ओर जाने वाले हो । तुम उस रथ के सहित हमारी रक्षा करने वाले होओ ॥ १४ ॥ हे सूर्य ! तुम सबको प्रेरणा देने वाले हो । तुमने वर्षा करने में समर्थ आकाश को जैसे ऊपर स्थापित किया है, वैसे ही देवताओं के मध्य हमारे यश को बढ़ाओ ॥ १५ ॥ [२६]

३२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः, इन्द्राश्वौ । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१
भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४
स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥५ ।२७

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो । तुम शीघ्र हमारे सामने आओ । तुम महान् हो । अपनी महान् रक्षाओं सहित हमारे निकट पधारो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम पूजा के योग्य हो । तुम भ्रमणशील हो । तुम हमको इच्छित फल प्रदान करते हो । अद्भुत कर्म वाली प्रजा को तुम पोषण के निमित्त धन प्रदान करते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो यजमान तुम्हारे अनुकूल

होते हैं, उन थोड़े यजमानों के साथ लेकर तुम उच्छृंखल बढ़े हुए शत्रुओं को अपने महान् पराक्रम से नष्ट करते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र हम यजमान तुम्हारे द्वारा सुसंगत हुए हैं। हम तुम्हारी अत्यन्त स्तुति करते हैं। तुम हमारा विशेष रूप से पालन करो ॥ ४ ॥ हे वज्रिन ! आनन्दित, अद्भुत, शत्रुओं द्वारा पराजित न होने वाले, तुम अपनी समृद्ध रक्षाओं सहित हमारे पास आओ ॥ ५ ॥ [२७]

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६
त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥७
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९
प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥१०।२८

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे समान गोयुक्त पुरुष के सहयोगी हैं। हम श्रेष्ठ धन के निमित्त तुम्हारी सहायता चाहते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम अकेले ही गौ, घोड़े आदि के स्वामी हों, हमको बहुत-सा अन्नादि धन प्रदान करो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति के पात्र हो। स्तुति करने वालों को धन देने की इच्छा करते हो, तब तुम्हारे इस दान को रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे उद्देश्य से गौतम वंशज ऋषि धन और अन्न के निमित्त स्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर पराक्रमी हुए "सेवक" राक्षसों के सब नगरों में जाकर उन्हें ध्वंस करते हो। हम स्तुति करने वाले तुम्हारे इसी पराक्रम का बखान करते हैं ॥ १० ॥ [२८]

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११
अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद्यशः ॥१२
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३
अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४
अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ।१५

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः ।

वधूयुरिव योषणाम् ॥१६ ।२९

हे इन्द्र ! तुम स्तुति के पात्र हो । तुम जिन बलों को प्रकट करते हो, तुम्हारे उन्हीं बलों का मेधावी जन सोम के सिद्ध होने पर गान करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र स्तोत्रों को वहन करने वाले गौतम वंशज स्तोत्र से तुम्हें बढ़ाते हैं तुम उन्हें पुत्रादि से युक्त अन्न दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र तुम सब यजमानों के प्रसिद्ध देवता हो । हम स्तुति करने वाले तुम्हें बुलाते हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम उत्तम निवास देते हो । तुम हम यजमानों के सामने आओ । हे सोम-पान करने वाले इन्द्र ! तुम सोम-रूप अन्न से पुष्टि को प्राप्त होओ ॥१४॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं । हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे पास लावे । तुम अपने दोनों घोड़ों को हमारे सामने मोड़ो ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे पुरोडाश को खाओ । जैसे पुरुष स्त्रियों के वचनों को सुनता है, उसी प्रकार तुम हमारे वचनों को ध्यान से सुनो ॥ १६ ॥　　　　[२९]

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् ।

माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३

अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४ ।३०

हम स्तुति करने वाले इन्द्र के समीप सीखे हुए, शीघ्र चलने वाले सहस्रों घोड़ों को माँगते हैं और सैकड़ों सोम-कलशों की याचना करते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी सैकड़ों अथवा हजारों गौओं को अपने सामने प्राप्त करें, हमारा धन तुम्हारे पास से यहाँ आवे ॥ १८ ॥ हे इन्द्र !

हम तुम्हारे द्वारा दश कलशों में सुवर्ण धारण करें। हे वृत्र के हननकर्ता इन्द्र ! तुम अपरिमित दान करने वाले हो ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको बहुत सा धन देने की इच्छा करते हो। तुम बहुत धन के दाता होकर हमको अत्यन्त धन दो। स्वल्प धन मत दो। बहुत-बहुत ऐश्वर्य प्रदान करो ॥२०॥ हे वृत्र के हनन करने वाले वीर इन्द्र ! तुम बहुत देने वाले के रूप में यज- मानों में प्रसिद्ध हो। तुम हमको धन का अधिकारी बनाओ ॥ २१ ॥ हे मेधावी इन्द्र ! हम तुम्हारे लाल रङ्ग वाले दोनों घोड़ों की स्तुति करते हैं। तुम गौओं के देने वाले हो। तुम स्तुति करने वालों को नष्ट नहीं करते। तुम-अपने दोनों अश्वों द्वारा हमारी गौओं को पीड़ित न करना ॥२२॥ हे इन्द्र ! जाने योग्य मार्ग में जैसे लाल रङ्ग के दो अश्व, शोभा पाते हैं, उसी प्रकार दृढ़ नवीन खूँटे के समान कर्मों में स्थिर स्त्री-पुरुष-रूप यजमान सुशोभित होते हैं ॥२३॥ हे इन्द्र ! जब हम बैलों से जुते रथ में बैठ कर चलें अथवा पद्यात्रा करें, तब तुम्हारे हिंसा रहित लाल वर्ण वाले दोनों घोड़े हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥ २४ ॥ [३०]

३३ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—वामदेव । देवता—ऋभव. । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३
यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।

कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥१

हम यजमान ऋभुगण के निमित्त दूत के समान स्तुति रूप वाणी को प्रेरित करते हैं। हम उनके समीप सोम उपस्थित करने के लिए दूध वाली गाय की याचना करते हैं। वे ऋभुगण वायु के समान चलने वाले हैं तथा संसार का उपकार करने वाले कर्मों को करते हैं। वे अपने वेगवान् अश्वों से क्षण भर में अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं ॥ १ ॥ जब ऋभुगण ने अपने माता-पिता को युवावस्था दी और चमस बनाने आदि कार्यों को करते हुए यशवान् हुए तब उसी समय उनकी मित्रता इन्द्रादि देवताओं के साथ हो गई। वे मनस्वी और धैर्यवान् हैं तथा यजमानों के निमित्त बल धारण करते हैं ॥ २ ॥ ऋभुओं ने यूप रूप काष्ठ के समान जीर्ण और लुढ़के पड़ते हुए माता-पिता को तरुणता दी। वे बलवान् विभु और ऋभु इन्द्र के साथ सोम पीते हुए हमारे यज्ञ के रक्षक हों ॥ ३ ॥ ऋभुगण ने एक वर्ष तक मरी हुई धेनु की सेवा की। उन्होंने उस मृत गाय के देह को अवयवों से सम्पन्न किया और वर्ष भर उसकी रक्षा की। अपने इन कार्यों से वे देवत्व को प्राप्त कर सके ॥ ४ ॥ बड़े ऋभु ने एक चमस को दो करने की इच्छा प्रकट की। बीच के ऋभु ने तीन करने की और छोटे ऋभु ने चार करने को कहा। हे ऋभुगण! तुम्हारे गुरु त्वष्टा ने तुम्हारे इस 'चार करने' वाली बात को स्वीकार कर लिया ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　[१]

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०
इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११ ।२

उन मनुष्य रूप वाले ऋभुओं ने जो कहा वही किया । उनका कथन सत्य हुआ । फिर वे ऋभुगण तीसरे सवन में स्वधा के अधिकारी हुए । दिन के समान प्रकाशमान् चार चमसों को देखकर त्वष्टा ने उसकी इच्छा करते हुए ग्रहण किया ॥ ६ ॥ अत्यन्त प्रकाशमान् सूर्य के लोक में जब वे ऋभुगण आर्द्रा से वर्षाकारक बारह नक्षत्रों तक अतिथि रूप में रहते हैं, तब वे वर्षा द्वारा कृषि को धान्य पूर्ण करते और नदियों को प्रवाहमान बनाते हैं । जल से रहित स्थान में औषधियाँ उत्पन्न होती और निचले स्थानों में जल भरा रहता है ॥ ७ ॥ जिन्होंने सुन्दर पहिए और पहिये वाले रथ को बनाया था, जिन्होंने संसार को प्रेरणा देने वाली तथा अनेक रूपिणी गौ को प्रकट किया था, वे उत्तम कर्म वाले, सुन्दर, अन्नवान् और सिद्धहस्त ऋभुगण हमारे धन का सम्पादन करें ॥ ८ ॥ इन्द्रादि देवताओं ने वर देने जैसे कर्म द्वारा तथा प्रसन्न मन से तेजस्वी होकर ऋभुगण के घोड़े, रथ आदि निर्माण कार्य को स्वीकार किया । उत्तम कर्म वाले छोटे ऋभु 'वाज' सब देवताओं से सम्बन्धित हुए, मध्यम ऋभु वरुण से तथा बड़े ऋभु इन्द्र से सम्बन्धित हुए ॥ ९ ॥ जिन ऋभुओं ने दो घोड़ों को बुद्धि और प्रशंसा द्वारा पुष्ट किया, जिन ऋभुओं ने उन दोनों घोड़ों को इन्द्र के रथ में जुतने योग्य किया, वे ऋभुगण हमारे निमित्त कल्याणकारी मित्र के समान धन, बल, गवादि और समस्त सुख प्रदान करें ॥ १० ॥ चमस आदि के बनाने के पश्चात् देवताओं ने तीसरे सवन में तुम्हारे लिये सोम-पान से उत्पन्न हर्ष प्रदान किया था । देवगण तपस्वी के सिवाय किसी अन्य के मित्र नहीं बनते । हे ऋभुओ ! इस तीसर सवन मे तुम हमारे लिए अवश्य ही धन दो ॥ ११ ॥ [२]

३४ सूक्त

(ऋषि—वामदेव । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप्, -पंक्ति ।)

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।

इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥४
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५ ।३

हे ऋभु, विभु, वाज और इन्द्र! धन-दान के लिये हमारे इस यज्ञ में पधारो, अभी दिवस में वाणी रूप स्तुति तुम्हारे निमित्त सोम सिद्ध करने सम्बन्धी प्रीति देती है। सोम से उत्पन्न हर्ष तुम्हारे साथ सुसङ्गत हो ॥ १ ॥ हे ऋभुओ! तुम अन्न द्वारा सुशोभित हो। पूर्व में तुम मनुष्य थे, अब तुम देवता हो गए हो। इस बात को ध्यान रखते हुए देवताओं के साथ पुष्टि को प्राप्त होओ। हर्षकारी सोम और स्तोत्र तुम्हारे निमित्त सुसंगत हुए हैं। तुम हमारे लिये पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन भेजो ॥ २ ॥ हे ऋभुगण! यह यज्ञ तुम्हारे निमित्त किया गया है। तुम इसे मनुष्य के समान दीप्तिवान् होकर ग्रहण करो। सेवाकारी सोम तुम्हारे समीप उपस्थित है। तुम हमारे मुख्य साध्य हो ॥ ३ ॥ हे अग्रगण्य ऋभुओ! हविदाता यजमान के लिये इस तीसरे सवन में तुम्हारी कृपा से दान-योग्य रत्न प्राप्त हो। हम तुम्हारे निमित्त पुष्टिदायक सोम प्रदान करते हैं, तुम उसका पान करो ॥ ४ ॥ हे नेतृ-श्रेष्ठ ऋभुगण! महान् ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए तुम हमारे समीप आओ। दिन की समाप्ति में जैसे नवप्रसूता गौएं अपने स्थान को लौटती हैं, उसी प्रकार यह सोमरस तुम्हारे पीने के निमित्त तुम्हारी ओर आता है ॥ ५ ॥ [३]

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभि सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७
सजोषस आदित्यैर्मदयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभि. ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभि. ॥८
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रु ॥९
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिः शस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवा ॥११ ।४

हे बल से युक्त ऋभुओ! स्तोत्र द्वारा बुलाये जाने पर तुम इस यज्ञ में आओ। तुम इन्द्र के सखा रूप एवं बुद्धिमान् हो, क्योंकि तुम इन्द्र के सम्बन्धी हो। तुम मधुर सोमरस को इन्द्र के साथ पीते हुए रत्नादि धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम वरुण के साथ सम्यक् प्रीतिवान् होकर सोम-पान करो। तुम स्तुति के पात्र हो। मरुद्गण के साथ मिल कर तुम सोम को पियो। प्रथम पीने वाले ऋतुओं, देवांगनाओं तथा रत्नदात्री सामर्थ्यों के साथ सोम-पान करो ॥ ७ ॥ हे ऋभुओ! आदित्यों के साथ मिल कर हर्ष को प्राप्त होओ। उपासनीय देवों के साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करो। सवितादेव के साथ सुसंगत होकर हर्ष को प्राप्त करो। पर्वतों के समान अचल एवं रत्न-दाता देवताओं के साथ मिलकर हृष्ट-पुष्ट होओ ॥ ८ ॥ जिन्होंने अश्विनी-कुमारों को रथ बनाने आदि कार्यों से अपने प्रति स्नेही बनाया, जिन्होंने जीर्ण माता-पिता को तारुण्यता दी, जिन्होंने गौ और अश्व को बनाया, जिन्होंने देवताओं के लिए अंसत्रा कवच बनाया, जिन्होंने आकाश-पृथिवी को पृथक् किया, जिन्होंने सुन्दर संतान उत्पन्न करने वाला कार्य किया और जो सबके नेता रूप हैं, वे ऋभु प्रथम सोम-पान करने वाले हैं ॥ ९ ॥ जो गौ, अन्न, संतान तथा निवास योग्य गृहादि धनों से युक्त हैं, जो बहुत अन्न वाले धनों के पालक हैं, जो धनों की प्रशंसा करने वाले हैं, वे ऋभुगण प्रथम सोम-पान

द्वारा हृष्ट होकर हमको धनैश्वर्य दें ॥ १० ॥ हे ऋभुगण ! हम से दूर मत जाना । हम तुमको अधिक समय तृषित नहीं रहने देंगे । तुम सुन्दर धन देने के निमित्त इन्द्र के साथ इस यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होओ । मरुद्‌गण तथा अन्य तेजस्वी देवताओं के साथ पुष्ट होओ ॥ ११ ॥ [४]

३५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३
किमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोमस्य ॥४
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५ ।५

हे "सुधन्वा" के बलवान पुत्रो ! हे ऋभुओ ! इस तृतीय सवन में यहाँ आओ, कहीं अन्यत्र गमन मत करो । हृष्टिकारक सोम इस सवन में, रत्नदान करने वाले इन्द्र के पश्चात् तुम्हारे निकट पहुँचे ॥ १ ॥ ऋभुओं द्वारा दिये जाने वाले रत्नों का दान इस तीसरे सवन में मेरे पास आवे । हे ऋभुगण तुमने अपनी हस्तकला द्वारा ही एक चमस के चार बना दिये थे और सुसिद्ध सोम का पान किया था ॥ २ ॥ हे ऋभुगण ! तुमने एक चमस के चार करते हुए कहा था—'हे मित्र रूप अग्ने ! कृपा करो ।' तब अग्नि ने उत्तर दिया था—'हे ऋभुओ ! तुम हस्त-व्यापार में कुशल हो । तुम 'अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर जाओ ॥ ३ ॥ जिस चमस के चतुरतापूर्वक चार बनाये गये, वह चमस कैसा था ? हे ऋत्विको ! आनन्द के निमित्त सोम को सिद्ध

करो। हे ऋभुओ ! तुम मधुर सोम-रस को पीओ ॥ ४ ॥ हे उत्तम सोमयुक्त ऋभुगण ! तुमने कला द्वारा अपने माता-पिता को तारुण्यता प्रदान की, एक चमस के चार बनाये और इन्द्र के शीघ्र चलने वाले दोनों घोड़ों को प्रकट किया ॥ ५ ॥ [५]

यो व सुनोत्यभिपित्वे अह्ना तीव्रं वाजास सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभव सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दमाना ॥६
प्रात सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभि. सखीं यां इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपात सौधन्वना अभवतामृतास. ॥८
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ता. ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९ ।६

हे ऋभुगण ! तुम अन्न के स्वामी हो। जो यजमान तुम्हारे आनन्द के निमित्त दिन के अन्तिम काल में सोम को छानता है, उस यजमान के लिए तुम उत्तम अभीष्टवर्षी होते हुए अनेक सन्तानयुक्त धन के देने वाले होओ ॥ ६ ॥ हे अश्ववान् इन्द्र ! तुम सुसिद्ध-सोम को प्रातः सवन में पीओ। दिन के मध्यकाल वाला सवन केवल तुम्हारे निमित्त ही है। हे इन्द्र ! अपने उत्तम कार्य द्वारा तुमने जिनके साथ मित्रता स्थापित की, उन रत्न-दान करने वाले ऋभुगण सहित तीसरे सवन में सोम-पान करो ॥ ७ ॥ हे ऋभुगण ! तुमने अपने उत्तम कर्मों से देवत्व प्राप्त किया। तुम श्येन के समान आकाश में व्याप्त हो। हे सुधन्वा-पुत्रो ! तुम अमरत्व प्राप्त कर चुके हो। हमको धन प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे ऋभुओ ! तुम श्रेष्ठ हस्त-कला से युक्त हो। तुम सुन्दर सोमयुक्त तीसरे सवन को श्रेष्ठ कर्मों की कामना से सुसिद्ध करते हो। अतः तुम प्रमत्त मन से सोम को पीओ ॥ ९ ॥ [६]

३६ सूक्त

(ऋषि—वामदेव । देवता-ऋभव । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती ।)

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र. परि वर्तते रजः ।

महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥१
रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्वमहित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३
एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५ ॥७

हे ऋभुओ ! तुम्हारे द्वारा किये जाने वाले कार्य प्रशंसा के योग्य हैं। तुम्हारे द्वारा दिया गया अश्विनीकुमारों का तीन पहिये वाला रथ, घोड़े के विना ही अन्तरिक्ष में घूमता है। जिसके द्वारा तुम आकाश और पृथिवी का पालन करते हो, वह रथ बनाने वाला महान् कार्य तुम्हारे देवत्व का साध्य रूप है ॥ १ ॥ हे उत्तम हृदय वाले ऋभुगण ! तुमने अपने आंतरिक ध्यान से सुन्दर चाल वाला, पहिये से युक्त रथ बनाया था। हम साधकगण तुम्हें सोम-पान के लिये बुलाते हैं ॥ २ ॥ हे ऋभुओ ! तुम तीनों ने अपने वृद्ध माता-पिता को तारुण्यता देकर चलने के योग्य बनाया था, तुम्हारा वह महान् कर्म देवताओं में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ हे ऋभुओ ! तुमने एक चमस के चार भाग किए। अपने उत्तम कर्म से गौ को चमड़े से ढका। इसलिये तुमने देवताओं का अविनाशी पद प्राप्त किया। तुम्हारे सभी कर्म स्तुति के योग्य हैं ॥ ४ ॥ ऋभुगण ने जिस धन को प्रकट किया था, वह अन्नयुक्त मुख्य धन ऋभुओं के पास आवे। यज्ञ स्थान में ऋभुगण द्वारा निर्मित रथ प्रशंसा करने के योग्य है। हे दीप्तिमान ऋभुओ ! तुम जिसके रक्षक होते हो वह साधक देखने योग्य होता है ॥ ५ ॥ [७]

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६

अष्टं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता न ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥९ ।८

जिस व्यक्ति की ऋभुगण रक्षा करते हैं, वह व्यक्ति पराक्रमी एवं युद्ध कौशल में चतुर होता है। वह ऋषि होता हुआ स्तुतियों से सम्पन्न होता है। वह वीर शत्रुओं को हटाकर संग्राम में ऊँचा उठता है तथा धनवान्, संतानवान् और बलवान होता है ॥ ६ ॥ हे ऋभुओ! तुम अत्यन्त उत्कृष्ट और दर्शन के योग्य स्वरूप वाले हो। हमने यह सुन्दर स्तोत्र तुम्हारे लिए ही रचा है। तुम इसे ग्रहण करो। तुम मेधावी, ज्ञानी और कवि हो। स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥ हे ऋभुओ! हमारी स्तुति के निमित्त मनुष्यों का हित करने वाली सब-भोग्य सामग्री को तुम ग्रहण करो और हमारे निमित्त अत्यन्त तेजस्वी तथा बल उत्पन्न करने वाला, शत्रुओं का शोषण करने वाला अन्न-धन प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे ऋभुगण! तुम हमारे यज्ञ में प्रीतिवान् होकर पुत्र-पुत्रादि तथा धन, भृत्यादि से युक्त यश प्राप्त कराओ। हम जिस धन से दूसरों पर विजय पा सकें, वह सुन्दर धन हमको प्रदान करो ॥ ९ ॥ [८]

३७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति, अनुष्टुप्)

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२

व्युदार्यं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम्।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५ ।९

हे ऋभुगण! तुम जैसे दिनों को श्रेष्ठ दिन बनाने के लिए मनुष्यों के यज्ञ का पालन करते हो, वैसे ही तुम देवताओं के श्रेष्ठ मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ ॥ १ ॥ आज सब यज्ञ तुम्हारे अन्तःकरण को स्नेह प्रदान करें। घृत मिश्रित सोम रस पर्याप्त मात्रा में तुम्हारे हृदय में प्रवेश करे। चमस में रखा हुआ सोम तुम्हारी इच्छा करता है, वह स्नेहमय होकर तुम्हें उत्तम कर्मों की प्रेरणा दे ॥ २ ॥ हे ऋभुओ! जो व्यक्ति तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त देवताओं का हित करने वाले सोम को धारण करते हैं, उनमें हम अत्यन्त मनस्वी हुए तुम्हारे लिए सोम रस देते हैं ॥ ३ ॥ हे ऋभुओ! तुम्हारे घोड़े हृष्ट-पुष्ट हैं, तुम्हारे रथ देदीप्यमान हैं। तुम्हारी ठोड़ी लोहे के समान दृढ़ है। तुम अन्नों के स्वामी तथा उत्तम दान वाले हो। हे बलवानो! तुम्हारी पुष्टि के निमित्त हम हम इस प्रथम सवन में अनुष्ठान करते हैं ॥ ४ ॥ हे ऋभुओ! हम महान् बढ़े हुए धन की याचना करते हैं। युद्धकाल उपस्थित होने पर अत्यन्त शक्तिशाली रक्षक को बुलाते हैं तथा सदा दानशील, अश्वों के स्वामी तुम्हारे गणों को हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥ [९]

सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम्।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम्।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८ ।१०

हे ऋभुओ ! तुम और इन्द्र जिसके रक्षक होते हो, वह मनुष्य सबमें श्रेष्ठ होता है। वह अपने कार्य द्वारा धन-भाग प्राप्त करे तथा यज्ञ में घोड़े से युक्त हो ॥ ६ ॥ हे ऋभुओ ! हमको यज्ञ-मार्गगामी बनाओ। तुम मेधावी हो। तुम पूजित होकर हमारे लिए सब दिशाओं में सफल होने की सामर्थ्य बाँटने वाले होओ ॥ ७ ॥ हे ऋभुओ ! हे इन्द्र ! हे अश्विनीकुमारो ! हम स्तोताओं को तुम धन-दान के निमित्त श्रेष्ठ धन और घोड़ों के दान की प्रेरणा करो ॥ ८ ॥ [१०]

३८ सूक्त

(ऋषि—वामदेव। देवता—द्यावापृथिव्यौ, दधिक्राः। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१
उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम्।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥२
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३
यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन्।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५।११

हे आकाश पृथिवी, "त्रसदस्यु" नामक दानी राजा ने तुमसे बहुत धन पाकर माँगने वालों को दिया। तुमने इनको घोड़ा और पुत्र प्रदान किया था तथा राक्षसों का संहार करने के लिए विपक्षियों को हराने वाला तीक्ष्ण अस्त्र दिया था ॥ १ ॥ अनेक शत्रुओं को रोकने वाले, सभी मनुष्यों की रक्षा करने वाले, सुन्दर चाल वाले, विशेष प्रकाश वाले, द्रुतगामी, पराक्रमी भूमिपति के समान शत्रुओं का नाश करने वाले दधिक्रादेव (अश्व रूप अग्नि) को तुम दोनों धारण करने वाली हो ॥ २ ॥ सब मनुष्य प्रसन्न होकर जिस

दधिक्रा की पूजा करते हैं, वे नीचे जाने वाले के समान गमन करने वाले, वीर के समान पैरों से दिशाओं को उलाँघने वाले, रथ में चलने वाले तथा वायु के समान शीघ्र चाल वाले हैं ॥ ३ ॥ जो युद्ध में एकत्र हुए पदार्थों को रोकते हुये सब दिशाओं में जाते हुए वेग से चलते हैं, जिनकी शक्ति स्वयं प्रकट होती रहती है वे जानने योग्य कर्मों के ज्ञाता स्तोता यजमानों के शत्रुओं को यशस्वी नहीं होने देते ॥ ४ ॥ जैसे लोग वस्त्र चुराने वाले चोर को देख कर चिल्लाते हैं, वैसे ही युद्ध-भूमि में दधिक्रादेव को देखकर शत्रुगण चीखते हैं। जैसे नीचे की ओर आते हुए भूखे बाज को देखकर पक्षी नहीं ठहरते, वैसे ही मनुष्य अन्न और पशुओं के निमित्त जाते हुए दधिक्रा देव को देख कर चीखते हैं ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　[११]

उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥६
उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८
उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥९
आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥१२

वे राक्षस-सेनाओं में जाने की इच्छा से रथों की पंक्ति के समान गमन करते हैं। वे सुशोभित हैं और मनुष्यों का हित करने वाले घोड़े के समान सुन्दर लगते हैं। वे मुख में पड़ी लगाम को चबाते और पाँव से उड़ती हुई धूल को चाटते हैं ॥ ६ ॥ इस प्रकार वह घोड़ा अन्नवान्, सहनशील और अपने देह द्वारा युद्ध कार्य को सिद्ध करता है। वह वेग से चलने वाला शत्रुओं की सेनाओं में वेग से दौड़ता है। वह धूल को पाँव से उठाकर

अपनी आँखों में धारण करता है ॥ ७ ॥ युद्ध की कामना करने वाले व्यक्ति निनाद करने वाले उज्ज्वल वज्र के समान घातक दधिक्रा से डरते हैं। जब वे सब ओर प्रहार करते हैं, तब वे महा पराक्रमी हो जाते हैं। उस समय इन्हें कोई रोक नहीं सकता ॥ ८ ॥ मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करने वाले, अत्यंत वेग से युक्त दधिक्रा देव के विजयोल्लास युक्त वेग की स्तोता स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'शत्रु हारेंगे', दधिक्रादेव हजार संख्यक सैन्य बल के साथ युद्ध में जाते हैं ॥९॥ सूर्य अपने तेज से जैसे जल-वृष्टि करते है वैसे ही दधिक्रादेव जल द्वारा 'पञ्चकृष्टि' की वृद्धि करते हैं। सैकड़ों तथा हजारों फलों के देने वाले दधिक्रा देव हमारे स्तुति रूप वचनों को मिष्ट फल देते हुये संपादन करें ॥ १० ॥ [१२]

३६ सूक्त

(ऋषि—वामदेव । देवता—दधिक्रा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप्)

आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषस: सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१
महश्चर्कर्म्यर्वत: क्रतुप्रा दधिक्राव्ण: पुरुवारस्य वृष्ण: ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२
यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदिति: कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषा: ॥३
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्त: ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिन: ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६ ॥१३

उन शीघ्रगामी दधिक्रादेव की हम मनुष्य शीघ्र ही पूजा करेंगे। आकाश पृथिवी के निकट से उनके सामने घास डालेंगे। अन्धकार को दूर

करने वाली उषा हमारी रक्षिका हों और वह सभी संकटों से हमको पार लगावें ॥ १ ॥ हम यज्ञ-कार्य के सम्पादनकर्त्ता हैं। बहुतों द्वारा वरण किये जाने वाले, कामनाओं की वर्षा की करने वाले दधिक्रादेव का हम स्तवन करेंगे। हे मित्रा-वरुण! तुम दैदीप्यमान अग्नि के समान दुःखों से तारने वाले दधिक्रा को मनुष्यों के हितार्थ धारण करने वाले हो ॥ २ ॥ जो यजमान उषा काल में अग्नि के प्रज्वलित होने पर अश्व रूप दधिक्रा का स्तवन करते हैं, उनको मित्र वरुण अदिति और दधिक्रा पापों से बचावें ॥ ३ ॥ अन्न का साधन करने वाले, बल सम्पादन करने वाले, स्तुति करने वालों का मङ्गल करने वाले महान् दधिक्रा देव का नाम संकीर्तन करते हैं। सुख प्राप्ति के निमित्त हम मित्र, वरुण, अग्नि और बाहु में वज्र धारण करने वाले इन्द्र को बुलाते हैं ॥ ४ ॥ जो युद्ध की तैयारी करते हैं, और जो यज्ञ-कर्म करते हैं, यह दोनों ही इन्द्र के समान दधिक्रादेव को बुलाते हैं। हे मित्रावरुण! तुम मनुष्यों को प्रेरणा देने वाले, घोड़े के रूप वाले दधिक्रादेव को हमारे निमित्त धारण करो ॥ ५ ॥ विजय से युक्त, व्यापक और वेग वाले दधिक्रा का हम स्तवन करते हैं। वे हमारी नेत्रादि मुख इन्द्रियों को सुरभित करें और हमारी आयु को बढ़ावें ॥ ६ ॥ [१३]

४० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—दधिक्रावा,सूर्यः। छन्द–त्रिष्टुप्)

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१
सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत्।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३
उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत् पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।

नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५ ।१४

उन दधिक्रादेव का हम बारंबार पूजन करेंगे। सभी उषायें हमको कर्मों में लगावें। जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और अंगिरा-वंशज जिष्णु का हम स्तवन करेंगे ॥ १ ॥ भरण-पोषण कार्य में चतुर, गमनशील, गौओं को प्रेरणा देने वाले, परिचारकों के साथ रहने वाले दधिक्रा इच्छा करने योग्य उषा वेला में अन्न की कामना करें। वे वेगवान्, शीघ्र चलने वाले दधिक्रा अन्न, बल और दिव्य गुणों के प्रकट करने वाले हों ॥ २ ॥ जैसे सभी पक्षी, पक्षियों की परम्परागत चाल पर चलते हैं वैसे ही सब वेगवान् जीव शीघ्रता से युक्त एवं कामना वाले दधिक्रा की चाल पर चलते हैं। श्येन के समान शीघ्रगामी एवं रक्षा करने वाले दधिक्रा के सब ओर एकत्र होकर सभी अन्न के निमित्त जाते हैं ॥ ३ ॥ यह देवता घोड़े के रूप वाले हैं। यह कण्ठ, कक्ष और मुख में बँधे हुए होते हैं और पैदल ही तेजी से चलते हैं। वे दधिक्रा अत्यन्त पराक्रमी होकर टेढ़े मार्गों को भी पार करते हुए यज्ञ के सामने मुख करके सब ओर जाते हैं ॥ ४ ॥ आदित्य आकाश में, वायु अन्तरिक्ष में और होता रूप यज्ञाग्नि वेदी पर अवस्थित होते हैं, अतिथि के समान पूजनीय होकर घर में वास करते हैं। अतः मनुष्यों में वरणीय स्थान तथा यज्ञस्थल में रहते हैं। वे जल, रश्मि मध्य और पर्वतों में उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥ [१४]

४१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति।)

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्मां अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमां अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१
इंद्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान्।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम्।

यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५ ॥१५

हे इन्द्र ! हे वरुण ! अमरत्व प्राप्त होता ! अग्नि के समान, हवियुक्त कौनसा स्तोत्र तुम दोनों की कृपा प्राप्त कर सकता है ? वह स्तोत्र हमारे द्वारा अर्पित हुआ हवियों से युक्त होकर तुम दोनों के अन्तःकरण में घुस जाय ॥१॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम दोनों प्रसिद्ध हो । जो मनुष्य तुम्हारे निमित्त हविरन्न से युक्त बन्धुत्व प्रदर्शित करता है, वह मनुष्य पापों को नष्ट करने में समर्थ है । वह युद्ध में शत्रु का संहार करता है और विशाल रक्षा-साधनों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे प्रख्यात इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों देवता हम स्तोताओं को सुन्दर धन प्रदान करने वाले बनो । यदि तुम यजमान के सखा रूप हो तो मित्र-भाव के निमित्त सिद्ध किये गए इस सोम रस से पुष्टि को प्राप्त होओ और धन देने वाले बनो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों विकराल कर्म वाले हो । इस शत्रु पर तुम दोनों ही अत्यन्त तेजवाले वज्र का प्रहार करो । जो शत्रु अदानशील, हिंसक तथा हमारे द्वारा दमन किये जाने योग्य नहीं है, उस शत्रु के विरुद्ध तुम दोनों उसे हराने वाली शक्ति से हराओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! जैसे बैल गौ को प्रेम करता है वैसे ही तुम दोनों स्तुतियों को प्रेम करने वाले हो । तृणादि को खाकर जैसे धेनु दूध देती है, वैसे ही तुम्हारी स्तुति रूप धेनु हमारी कामनाओं को सदा देती रहे ॥ ५ ॥ [१५]

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८

इमा इन्द्र वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमाना' ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९
अश्व्यस्य त्मना नथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य राय. पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०
आ नो वृहन्ता वृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यव पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वा स्याम सनितार आजे. ॥११ ॥१६

हे इन्द्र और वरुण ! रात्रि काल में तुम दोनों अपने रक्षा-साधनों से पूर्ण होकर शत्रुओं का संहार करने के लिए चल दो, जिससे हम संतानादि धन एवं उर्वरा पृथिवी को पा सकें और आयु पर्यंत सूर्य के दर्शन करते रहें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र-वरुण ! गाय की कामना करने वाले हम, तुमसे, हमारे प्राचीन काल से चले आ रहे पोषण-सामर्थ्य की याचना करते हैं। तुम दोनों ही सब कार्यों के करने में समर्थ, मित्र रूप और अत्यन्त पूजनीय हो। तुम दोनों से हम पुत्र को सुख देने वाले पिता के समान अत्यन्त स्नेह प्रदान करने की याचना करते हैं ॥ ७ । हे इन्द्रावरुण ! तुम दोनों देवता सुन्दर फल प्रदान करने वाले हो। जैसे वीर पुरुष युद्ध की इच्छा करते रहते हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ रत्नादि धन की अभिलाषा से रक्षा-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारे पास जाती हैं। जैसे गौएं दूध दही आदि सुन्दर पदार्थों के निमित्त सोमके पास रहती हैं, वैसे ही हमारी हार्दिक प्रार्थनाएं इन्द्र के पास पहुँचती हैं ॥८॥ जैसे सेवकगण धन के निमित्त धनिकों की सेवा करने को जाते हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ धन की कामना करती हुई इन्द्र और वरुण के पास जावें। ये स्तुतियाँ अन्न की भीख माँगने वाली भिखारिनों के समान इन्द्र के पास पहुँचें ॥ ९ ॥ वे इन्द्रावरुण दोनों देवता गमनशील हैं। अपने अभिनव रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने अश्वादि पशु एवं धन सम्पादित करें। तब हम बिना प्रयत्न किए ही घोड़ों, रथों बलों और स्थिर धनों के अधीश्वर होंगे ॥ १० ॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम महान् हो। तुम अपने महान् रक्षा-साधनों सहित आओ। धन-प्राप्ति वाले जिस संग्राम में शत्रु-सेना के हथियार अघात करते हैं, उस संग्राम में हम साधकगण तुम दोनों देवताओं की कृपा से विजय प्राप्त करें ॥ ११ ॥ [१६]

४२ सूक्त

(ऋषि—त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । देवता-आत्मा:, इन्द्रावरुणः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ।३
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥४
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५ ।१७

हम क्षत्रिय हैं। सब मनुष्यों के हम स्वामी हैं। हमारा राष्ट्र दो प्रकार का है। जैसे सब देवता हमारे हैं, वैसे ही सम्पूर्ण प्रजाजन भी हमारे ही हैं। हम सुन्दर रूप वाले एवं वरुण के समान यशस्वी हैं। देवता हमारे यज्ञ की रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ हम वरुण तेजस्वी राजा हैं। देवता हमारे निमित्त ही राक्षसों का संहार करने वाला पराक्रम धारण करते हैं। हम सुन्दर रूप वाले वरुण अन्तकस्थ हैं। हमारे यज्ञ की देवता रक्षा करते हैं और हम मनुष्यों के भी स्वामी हैं ॥ २ ॥ हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्व के कारण विशालता को प्राप्त, सुन्दर रूप वाले आकाश और पृथिवी भी हम हैं। हम प्राणीमात्र को प्रजापति के समान प्रेरणा देने वाले हैं हम आकाश और पृथिवी के धारण करने वाले तथा प्रज्ञावान् हैं ॥ ३ ॥ हमने ही वृष्टिरूप जल को सींचा है। सूर्य के आश्रय स्थान आकाश को हमने ही धारण किया है। हम अदिति पुत्र जलके निमित्त यज्ञवान् हुए हैं। हमने ही व्यापक आकाश को तीन लोकों के रूप

में परिवर्तित किया है ॥ ४ ॥ युद्ध में नेतृत्व करने वाले, सुन्दर अश्ववान् वीर हमारे ही पीछे चलते हैं। वे सब संकल्पवान् हुए युद्ध में हमको ही बुलाते हैं। हम ऐश्वर्यशाली इन्द्र के रूप में युद्ध करते हैं। हम शत्रु को हराने वाले बल से परिपूर्ण हैं। हमारे प्रबल वेग से युद्धस्थल में धूल उड़कर आकाश में छा जाती है ॥ ५ ॥　[१७]

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोमे भयेते रजसी अपारे ॥६
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेध. ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७
अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८
पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥९
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गाव ।
ता धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१० ॥१८

हम दिव्य बल से परिपूर्ण हैं। हमको हमारे कार्यों से कोई नहीं रोक सकता। हमने उन सब कार्यों को पूर्ण किया है। जब सोम-रस और स्तोत्र हमको पुष्ट करते हैं तब हमारे बल को देखकर विशाल आकाश और भू-मंडल दोनों ही चलायमान हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे वरुण ! तुम्हारे कार्य को सभी प्राणी जानते हैं। हे स्तुति करने वालो ! वरुण की स्तुति करो। हे इन्द्र ! तुमने शत्रुओं का संहार किया है—तुम्हारे इस कर्म को सभी जानते हैं। तुमने रुकी हुई नदियों को भी छोड़ा—प्रवाहित किया है ॥ ७ ॥ "पुरुकुत्स" के बन्धन में पड़ने पर सप्तर्षि ने इस पृथिवी का पालन किया था। उन्होंने इन्द्रावरुण की कृपा से पुरुकुत्स की पत्नी के निमित्त यज्ञ किया और "त्रसदस्यु" को प्राप्त किया था। वह त्रसदस्यु इन्द्र के समान शत्रुओं का नाशक हुआ और वह अर्द्ध देवत्व का भी अधिकारी हुआ ॥ ८ ॥ हे इन्द्रा-वरुण ! ऋषि के प्रेरणा से "पुरुकुत्स" की भार्या ने तुम दोनों को हविरन्न

और स्तुतियों द्वारा प्रसन्न किया। फिर तुम दोनों ने उसे अर्द्ध देवत्व प्राप्त शत्रुओं का नाश करने वाले त्रसदस्यु को प्रदान किया॥ ९॥ तुम दोनों की स्तुति करके हम धन-प्राप्त कर संतुष्ट होंगे। देवता हविरन्न से तथा गायें तृणादि से तृप्ति को प्राप्त होती हैं। हे इन्द्रावरुण! तुम दोनों विश्व के उत्पत्ति और संहारकर्त्ता हो। हमको स्थिर धन प्रदान करो॥ १०॥ [१८]

४३ सूक्त

(ऋषि–पुरुमीह्ळाजमीह्ळौ सौहोत्रो। देवता–अश्विनौ। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति)

क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेपाम सुष्टुतिं सुहव्याम्॥१
को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत॥२
मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम्।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा॥३
का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती॥४
उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम्।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः॥५
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुपासः परि ग्मन्।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः॥६
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक्॥७॥१९

यज्ञ के देवताओं में कौनसे देवता इस स्तुति को सुनेंगे? कौनसे देवता इस पूजा के योग्य स्तोत्र को ग्रहण करेंगे? देवताओं में ऐसे किस देवता को हम अपनी स्नेहमयी, उज्ज्वल, हविरन्न वाली सुन्दर स्तुति को सुनावें जो इसके अधिकारी हों॥ १॥ हमको कौनसे देवता सुख प्रदान

करेंगे ? हमारे यज्ञ में कौनसे देवता सर्वाधिक आते है ? देवताओं में कौनसे देवता हमको कल्याणकारी होंगे ? किसका रथ सुन्दर घोड़ों से युक्त और अधिक वेगवान् है, जिसका सूर्य की पुत्री सूर्या ने आदर किया था ? उपरोक्त कार्यों के करने वाले दोनों अश्विनीकुमार ही हैं ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! रात्रि के अवसान होने पर इन्द्र जैसे अपना पराक्रम दिखाते हैं, वैसे ही तुम दोनों भी सोमाभिषव के समय आओ। तुम दोनों आकाश-मार्ग से आते हो। तुम सुन्दर गति वाले तथा दिव्य गुण वाले हो। तुम्हारे कार्यों में कौन-सा कार्य सबसे अधिक उत्तम है ? ॥ ३ ॥ तुम दोनों के उपयुक्त कौन-सी स्तुति है ? तुम किस स्तोत्र द्वारा बुलाये जाने पर आओगे ? तुम दोनों के विकराल क्रोध को सहन करने की सामर्थ्य किस में है ? हे मीठे जल के उत्पन्न करने वालो ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो। तुम अपना आश्रय प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ आकाश में चतुर्दिक अधिकाधिक गमनशील है। वह समुद्र में भी चलता है। तुम्हारे निमित्त परिपक्व जौ के साथ सोम रस मिश्रित हुआ है। तुम मधुर जल के उत्पन्न करने वाले हो और शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो। यह अध्वर्यु तुम्हारे निमित्त सोम रस में दूध मिला रहे हैं ॥ ५ ॥ मेघ द्वारा तुम्हारे अश्वों को अभिषिक्त किया गया है। दीप्ति से प्रकाशमान हुए तुम्हारे अश्व पक्षियों के समान चलते हैं। जिस रथ द्वारा तुम दोनों ने सूर्या की रक्षा की थी, तुम दोनों का वह प्रसिद्धि प्राप्त रथ शीघ्रता से चलने वाला है ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो तुम दोनों एक समान हो। इस यज्ञ में हम स्तुति द्वारा तुम दोनों को समान मानते हुए एकत्र आहूत करते हैं। यह सुन्दर स्तुति हमको उत्तम फल देने वाली हो। हे अश्विद्वय ! तुम शोभन अन्न से युक्त हो। हम स्तोताओं के रक्षक होओ। हमारी कामना तुम्हारे पास पहुँचते ही पूर्ण हो जाती है ॥ ७ ॥ [१९]

४४ सूक्त

(ऋषि-पुरुमीढाजमीढौ सौहोत्रौ। देवता-अश्विनौ। छन्द-त्रिष्टुप, पंक्ति)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः

यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिवाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ।२०

हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारे गोदाता एवं प्रसिद्ध वेगवान् रथ को बुलाते हैं। वह रथ सूर्या को आश्रय दे चुका है। उसमें बैठने का स्थान काठ का बना है। तुम्हारा वह रथ स्तुतियों को वहन करने वाला तथा अन्न-धन से युक्त परमैश्वर्य वाला है ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों ही देवता हो। तुम दोनों ही अपने उत्तम कर्म द्वारा सुशोभित होते हो। तुम दोनों के शरीर में सोम-रस व्याप्त होता है। तुम्हारे रथ को उत्तम अश्व ढोते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! सोम प्रदान करने वाला कौनसा यजमान सोम-पान के निमित्त और अपनी रक्षा-कामना करता हुआ तुम्हारा स्तवन करता है ? कौनसा नमस्कार-कर्त्ता यजमान तुम दोनों को यज्ञ की ओर बुलाता है ? ॥ ३ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! तुम दोनों अनेक कर्म वाले हो। तुम अपने स्वर्णयुक्त रथ सहित इस यज्ञ में आओ और मधुर सोम रस को पीओ। हम साधकों को सुन्दर धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ से आकाश से हमारे पास आओ। तुम्हें आहूत करने वाले अन्य यजमान तुम्हें यहाँ आने से

कहीं रोक न लें, इसलिए हमने अपनी स्तुतियों को पहिले ही निवेदन कर दिया है ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमको बहुत सन्तानयुक्त मन दो। मुझ "पुरमीळ्ह" के ऋत्विकों ने अपने स्तोत्र की शक्ति से तुम्हें यहाँ बुलाया है और "अजमीळ्ह" के ऋत्विकों ने जो स्तोत्र-पाठ किया है, उनकी शक्ति भी उसी के साथ मिली हुई है ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ में समान मन वाले होओ। हम जिस स्तोत्र द्वारा तुम दोनों को युक्त करते हैं, वह सुन्दर स्तोत्र हमारे निमित्त उत्तम फल वाला हो। तुम दोनों श्रेष्ठ अश्व वाले हो। मुझ स्तुति करने वाले के तुम रक्षक बनो। हमारी कामना तुम्हारे पास पहुँचने से पूरी हो जाती है ॥ ७ ॥ [२०]

४५ सूक्त

(ऋषि—वामदेव । देवता—अश्विनी । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥१
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६
प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७ [२१]

प्रकाशमान् सूर्य उदय हो रहे हैं। अश्विनीकुमारों का श्रेष्ठ रथ सब ओर गमन करता है। वह तेजस्वी रथ से जुड़ा हुआ है। इस रथ के ऊपर की ओर त्रिविध अन्न हैं तथा सोम-रस से भरा हुआ चमस चतुर्थ रूप से सुशोभित है॥ १॥ हे अश्विद्वय! उषारम्भ में तुम्हारा सुन्दर त्रिविध अन्न और सोम रस से युक्त रथ सब ओर व्याप्त अँधेरे को मिटाता हुआ सूर्य के समान उज्ज्वल प्रकाश को फैलाता हुआ ऊपर की ओर चलता है॥ २॥ हे अश्विद्वय! तुम अपने सोम पीने के अभ्यस्त मुख द्वारा सोम-रस पीओ। सोम रस पीने के लिए अपने रथ को जोड़कर यजमान के घर में आओ। अपने गमन-मार्ग को सोम की कामना करते हुए शीघ्र पूरा कर लो और सोमपूर्ण पात्र को ग्रहण करो॥ ३॥ हे अश्विद्वय! तुम्हारे पास तेज चाल वाले, मधुरिमा से युक्त, द्वेष से शून्य, सुवर्ण के समान तेज वाले, पङ्ख से युक्त, उषाकाल में चैतन्य होने वाले, प्रसन्न मन वाले, जलों को प्रेरित करने वाले एवं सोम को स्पर्श करने की इच्छा वाले सुन्दर अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम मधुमक्खी के मधु के पास जाने के समान हमारे यज्ञों में आगमन करते हो॥ ४॥ कर्मवान् अध्वर्यु जब अभिमन्त्रित जल द्वारा हाथ धोकर पाषाण से मधुर सोम को कूटते हैं तब यज्ञ के साधन रूप गार्हपत्यादि अग्नि अश्विनीकुमारों का स्तवन करते हैं॥ ५॥ पास में ही पड़ती हुई किरणें दिन के द्वारा अँधेरे को नष्ट करती और सूर्य के समान प्रकाश को फैलाती हैं। उस समय सूर्य अपने घोड़ों पर चढ़कर चलते हैं। हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों सोम-रस सहित उनके चलते हुए सम्पूर्ण मार्ग को पूरा करो॥ ६॥ हे अश्विद्वय! हम याज्ञिकगण तुम दोनों का स्तवन करते हैं। जो तुम्हारा सुन्दर घोड़े से युक्त नित्य नवीन रथ है तथा जिस रथ द्वारा तुम तीनों लोकों का भ्रमण करते हो, अपने उसी रथ के सहित तुम हविरन्न वाले हमारे यज्ञ में आओ॥७॥ [२.१]

४६ सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रवायुः। छन्द—गायत्री)

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु। त्वं हि पूर्वपा असि॥१

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः। वायो सुतस्य तृम्पतम्॥

आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३
रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥४
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५
इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥६
इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७।२२

हे वायो ! स्वर्ग में स्थान बनाने वाले यज्ञ में इस अभिषुत सोम-रस को आकर पीओ, क्योंकि तुम सबसे पहले सोम-रस का पान करने वाले हो ॥ १ ॥ हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम दोनों सोम-पान द्वारा तृप्ति को प्राप्त होओ । हे वायो ! तुम लोक के कल्याणकारी कर्म में नियुक्त हुए हो । तुम इन्द्र के सारथि होकर हमारी बलवती इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए यहाँ आगमन करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों को हजारों घोड़े शीघ्रता पूर्वक सोम-पान के निमित्त यहाँ ले आवें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों सुवर्ण के उज्ज्वल काठ के आधार वाले तथा आकाश को स्पर्श करते रहने वाले सुन्दर रथ पर चढ़ो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों ही श्रेष्ठ शक्ति वाले रथ से ही हवि देने वाले यजमान के समीप आओ । तुम दोनों, यजमान के लिये ही इस श्रेष्ठ यज्ञ में पधारो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! हे वायो ! यह सुसिद्ध सोम रखा है । तुम दोनों समान प्रीति वाले होकर हवि-दाता यजमान के यज्ञ-स्थान में आकर सोमरस का पान करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हे वायो ! इस यज्ञ में तुमको सोम-पान कराने के निमित्त अश्व खोल दिए जावें । तुम दोनों इस यज्ञ-स्थान में आओ ॥ ७ ॥ [२२]

४७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—वायुः । इन्द्र—अनुष्टुप् उष्णिक्)

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।

नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४ ।२३

हे वायो ! श्रेष्ठ कर्मानुष्ठानों द्वारा पवित्र हुए हम दिव्यलोक प्राप्ति की कामना करते हुये पहले तुम्हारे लिये ही सोम रस को लाते हैं। तुम कामना के योग्य हो। अपने वाहन सहित, सोम पीने के निमित्त इस स्थान में पधारो ॥ १ ॥ हे वायो ! इस ग्रहण किए गए सोम को पीने के पात्र तुम हो और इन्द्र हैं। जैसे जल गड्ढे की ओर जाता है, वैसे ही सब प्रकार के सोम तुम्हारे पास जाते हैं। इस प्रकार तुम दोनों ही सोम को प्राप्त करने वाले हो ॥ २ ॥ हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही शक्ति के अधिपति हो तुम दोनों अत्यन्त पराक्रम वाले एवं घोड़ों से युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथ पर बैठकर सोम पीने तथा हमको शरण देने के निमित्त यहाँ आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों ही यज्ञ के वहन करने वाले एवं सब देवताओं में अग्रणी हो। हम तुमको हविरन्न प्रदान करने वाले यजमान हैं। तुम्हारे पास कामना के योग्य जो अश्व हैं, वह हमको प्रदान करो ॥ ४ ॥ [२३]

४८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—वायुः । छन्द—अनुष्टुप्)

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२
अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।

उत वा ते सहस्त्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५।२४

हे वायो ! शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले राजा के समान तुम अन्य के द्वारा न पीए गए सोमरस को पहले ही पीलो और स्तुति करने वालों के लिए धनों को प्राप्त कराओ। तुम अपने कल्याणकारी रथ द्वारा सोम पीने के लिए यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे वायो ! तुम इन्द्र के साथ ही सारथि रूप में सुवर्णमय रथ द्वारा अश्वादि से युक्त होकर सौम्य स्वभाव वाले बलवान व्यक्तियों से युक्त तथा अनेक दुष्ट व्यक्तियों से रहित रहते हो। तुम हर्षकारी सोम का रस पान करने के लिए यहाँ पधारो ॥ २ ॥ हे वायो ! काले वर्ण वाली, वसुओं को धारण करने वाली, विश्वरूपा आकाश पृथिवी तुम्हारे पद चिन्ह पर चलती हैं। तुम अपने प्रसन्नतादायक रथ के द्वारा सोम पीने के लिए यहाँ आओ ॥ ३ ॥ हे वायो ! मन के समान वेगवान्, परस्पर मिले हुए निन्यानवे अश्व तुम्हारे लिए यहाँ लाते हैं। तुम सोम पीने के निमित्त, सुन्दर प्रसन्नताप्रद रथ द्वारा पधारो ॥ ४ ॥ हे वायो ! तुम सैकड़ों घोड़ों को रथ में जोड़ो और उनके सहित तुम्हारा रथ वेग-सहित यहाँ आगमन करे ॥ ५ ॥ [२४]

४९ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः । देवता–इन्द्राबृहस्पती । छन्द—गायत्री)

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१
अयं वा परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥३
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६।२५

हे इन्द्र और बृहस्पति ! इस परम प्रिय सोम रूप हविरन्न को हम तुम दोनों के मुख में डालते हैं। तुम दोनों को हम हर्षकारी सोम रस प्रदान

करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र और वृहस्पति! तुम दोनों की हृष्टि के निमित्त तथा पीने के लिए यह सुस्वादु सोम-रस हम तुम्हारे मुख में डालते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वृहस्पति! तुम दोनों सोम पान करने वाले हो। तुम दोनों हमारे यज्ञ-गृह में सोम पीने के लिए आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वृहस्पति! तुम दोनों ही हमको सैकड़ों गायों और हजारों घोड़ों से युक्त धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वृहस्पते! सोम के सिद्ध किये जाने पर हम दोनों अपने स्तोत्र द्वारा तुम दोनों को सोम रस पीने के लिए बुलाते हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! हे वृहस्पते! हवि देने वाले यजमान के घर में निवास करते हुए तुम दोनों सोम पीकर हृष्ट होओ ॥ ६ ॥ [२५]

५० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—वृहस्पतिः, इन्द्रावृहस्पती। छन्द—त्रिष्टुप)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्वृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो वृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं वृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२

वृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३

वृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
वृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५ ॥२६

वेद-रक्षक वृहस्पति ने अपने बल से पृथिवी की दसों दिशाओं को अपने वश में किया। वे शब्द द्वारा तीनों लोकों में व्याप्त हैं। उन विशिष्ट जिह्वा वाले, प्रसन्नता देने वाले वृहस्पति को प्राचीन ऋषियों ने पुरोहित पद पर स्थापित किया ॥ १ ॥ हे मेधावी वृहस्पतिदेव! तुम्हारी चाल से शत्रुगण काँपने लगते हैं। जो तुमको पुष्ट करने के निमित्त स्तुति करते हैं, तुम उनके

लिये फलदायक, बढ़ाने वाले तथा हिंसा रहित होते हो और तुम उनके महान् यज्ञ के पालन करने वाले हो ॥ २ हे बृहस्पतिदेव ! जो दूरस्थ दिव्य लोक है, वह अत्यन्त उत्कृष्ट है । वहाँ से तुम्हारे घोड़े इस यज्ञ में आते हैं। जैसे खाद से भरे हुए कुए के चारों ओर जल उबलता है, वैसे ही पाषाण द्वारा निष्पन्न मधुर सोम रस स्तुतियों के द्वारा तुम्हें चारों ओर से सींचता है ॥ ३ ॥ जब ये मन्त्रज्ञ बृहस्पति सूर्य मण्डल में प्रथम बार प्रकट हुए तब मुख से सप्त छन्दोमय तथा शब्द से युक्त होकर उन गमनशील बृहस्पति ने अपने तेज से अँधेरे को नष्ट किया ॥ ४ ॥ उन बृहस्पति ने स्तुति करते हुए अङ्गिराओं के साथ घोर शब्द द्वारा "वल" नामक दैत्य का नाश किया। उन्होंने शब्द से ही उत्तम दूध देने वाली गौओं को को गुफा से निकाला था ॥ ५ ॥ [२६]

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६
स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७
स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १०
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११ ।२७

वे बृहस्पति सबके देवतास्वरूप, पालन करने वाले और कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं, हम यज्ञ में हविरन्न द्वारा स्तुति करते हुए उनकी पूजा करेंगे । जिसमें हम सन्तान तथा बलयुक्त ऐश्वर्य का स्वामित्व प्राप्त कर

सकें ॥ ६ ॥ जो राजा बृहस्पति की भले प्रकार रक्षा करता है तथा प्रथम हव्य ग्रहण करने वाला मानकर उनको हवि देता हुआ नमस्कार युक्त स्तुति करता है, वह राजा अपनी शक्ति से शत्रुओं की शक्ति को निरर्थक करता हुआ उसे हरा देता है ॥ ७ ॥ जिसके पास बृहस्पति सबसे पहले जाते हैं, वह राजा संतुष्ट होकर अपने स्थान में रहता है। उसके लिए पृथिवी भी हर ऋतु में फल देने वाली होती है। उसकी प्रजा उसके सामने सदा सिर झुकाये रहती है ॥ ८ ॥ जो राजा रक्षा चाहने वाले धनहीन विद्वान को धन देता है, वह शत्रुओं के धन का विजेता होता है। देवता उसके सदा रक्षक रहते हैं ॥ ९ ॥ हे बृहस्पते! तुम और इन्द्र दोनों ही इस यज्ञ में प्रसन्न होकर यजमानों को धन दो। यह सोम-रस सर्वव्यापक है। यह तुम्हारे शरीरों में प्रविष्ट हो। तुम दोनों ही हमारे निमित्त सन्तान से युक्त रमणीय धन प्रदान करो ॥ १० ॥ हे बृहस्पते! हे इन्द्र! तुम दोनों ही हमको हर प्रकार से बढ़ाओ। हमारे प्रति तुम दोनों की कृपा एक साथ ही प्रेरित हो। हमारे इस यज्ञ की तुम दोनों ही रक्षा करो। स्तुति करने वालों के शत्रुओं से युद्ध करो। तुम दोनों ही हमारी स्तुति से चैतन्यता को प्राप्त हो जाओ ॥ ११ ॥ [२७]

५१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३

कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥ ५ ।१

जो तेज हमारे द्वारा स्तुत है, यह सर्व विख्यात अत्यन्त प्रकाशमान तेज अन्धकार को चीरता हुआ पूर्व दिशा में प्रकट होता है। सूर्य की पुत्री, प्रकाश से पूर्ण उषा यजमानों के चलने के कार्य में सहायता देने में सर्वथा समर्थ हैं ॥ १ ॥ जैसे यज्ञ में गड़े हुए यूपांश स्थिर होते हैं, वैसे ही सुशोभित उषाऐं पूर्व दिशा में व्याप्त होती हैं। वे बाधा देने वाले अन्धकार को खोल कर पवित्र उज्ज्वल हुई प्रकाश देती हैं ॥ २ ॥ अन्धकार को मिटाने वाली, ऐश्वर्य से युक्त उषाऐं हवि देने वाले यजमान को सोमादि अन्न देने के लिए प्रेरित करती हैं। उसी प्रकार श्रीसम्पन्न गृहणियाँ अपने गुणों को प्रकट करती हुई अगाढ़ अन्धकार के अन्त होने पर अपने पतियों को सचेत करती हैं ॥ ३ ॥ हे प्रकाशमान् उषाओ! जिस रथ से तुमने नवग्व अर्थात् सदा तरुण और दशग्व अर्थात् दसों इन्द्रियों को जीतने वाले अंगिराओं को तेजस्वी बनाया था, तुम्हारा वही प्राचीन रथ हमारे इस यज्ञ स्थान को आकर प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे प्रकाशमान उषाओ! तुम सोते हुए चौपायों को अपने चलने फिरने आदि कर्मों में प्रेरित करती हुई अपने गतिमान अश्व द्वारा घरों के चारों ओर क्षण भर में घूमती हो ॥ ५ ॥ [१]

क स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६
ता घा ता भद्रा उषस: पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८
ता इन्न्वेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।

स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११ ।२

ऋभुगण ने जिन उषाओं के निमित्त चमस आदि बनाए थे, वे प्राचीन उषाऐं अब कहाँ हैं ? प्रकाशमान्, नवीन सुन्दर रूप वाली उषाऐं जब उज्ज्वल प्रकाश करती हैं, तब वे एक रूप रहती हैं। उस समय वे प्राचीन हैं या नवीन, यह बात पहचानने में नहीं आती ॥ ६ ॥ यज्ञ करने वाले यजमान जिन उषाओं का स्तोत्रों द्वारा पूजन करते हुए धन प्राप्त करते हैं, वे उषाऐं कल्याण करने वाली हैं। वे प्राचीनकाल से आने वाली उषाऐं यजमान को धन दें। वे यज्ञ के निमित्त प्रकट हुई हैं। वे उषाऐं सत्य फल प्रदान करने वाली हैं ॥ ७ ॥ एक रूप वाली समान उषाऐं अन्तरिक्ष से पूर्व दिशा में अवतरित होती हुई सर्वत्र जाती हैं। प्रकाश से पूर्ण उषाऐं यज्ञ स्थान को लक्ष्य करती हुई किरणों के समान पूजी जाती हैं ॥ ८ ॥ वे उषाऐं एक रूप वाली समान, सुन्दर वर्ण वाली, उज्वल तथा कान्तिमती हैं। वे अपने शरीर द्वारा प्रकाशमान हैं और अन्धकार को छुपा कर सर्वत्र घूमती हैं ॥ ६ ॥ हे प्रकाशमान् सूर्य की पुत्रियों ! तुम हमको संतान और धन से परिपूर्ण करो। हम अपने सुख के निमित्त तुमसे निवेदन करते हैं, जिससे हम संतान से युक्त ऐश्वर्य के अधिपति हो सकें ॥ १० ॥ हे प्रकाशमान् सूर्य की पुत्रियों ! हम याज्ञिक तुमसे प्रार्थना करते हैं कि हम सब मनुष्यों के मध्य में यशस्वी और ऐश्वर्यवान् बनें आकाश और कान्ति से परिपूर्ण पृथिवी हमारे निमित्त सुख को धारण करने वाले हों ॥ ११ ॥ [४]

५२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—उषा । छन्द—गायत्री ।)

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३

यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि । प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥४
प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६
आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७ ।३

यह सूर्य की पुत्री उषा दिखाई देती है। वह स्तुति के योग्य, प्राणियों का नेतृत्व करने वाली और सुन्दर फलों को उत्पन्न करने वाली है। वह अपनी बहिन स्वरूपा रात्रि की समाप्ति पर अँधेरे को नष्ट करती है ॥ १ ॥ घोड़े के समान सुन्दर दीखने वाली, प्रकाशमयी, किरणों की माता और यज्ञ को सम्पन्न करने वाली उषा अश्विनीकुमारों से बन्धु-भाव स्थापित करती है ॥२॥ हे उषे ! तुम अश्विनीकुमारों से बन्धुत्व रखने वाली और किरणों की जननी हो। तुम ऐश्वर्य की अधीश्वरी हो ॥ ३ ॥ हे सत्य वचन वाली उषे ! तुम शत्रुओं को दूर भगा दो। तुम हमको ज्ञान प्रदान करो। हम स्तुतियों से तुमको नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ वर्षा की धारा के समान महान् तेजवाली उषा ने संसार को परिपूर्ण किया है। स्तुति के योग्य किरणें दर्शनीय होती हैं ॥ ५ ॥ हे उषे ! तुम सुन्दर प्रकाशवाली हो। अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करती हुई संसार को सम्पन्न बनाओ। तुम इस हविरन्न का पालन करो ॥ ६ ॥ हे उषे ! तुम अपने प्रकाशमान तेज से परिपूर्ण होकर किरणों द्वारा आकाश और विस्तृत अन्तरिक्ष में व्याप्त होओ ॥ ७ ॥ [७]

५३ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः । देवता–सविता । छन्द–जगती)

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।

प्र बाहू अस्राक्सविता सवी[illegible]नि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ।। ३
प्रदाभ्यो भु[illegible]वनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ।। ४
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ।।५
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ।।६
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ।।७ ।४

सविता देव बलवान् एवं मेधावी हैं। हम उनसे वरण करने योग्य और पूजनीय धन की याचना करते हैं, उस धन को वे हविर्दान करने वाले यजमान को अपनी इच्छा से प्रदान करें करें ॥ १ ॥ आकाश तथा सभी लोकों को धारण करने वाले, प्राणियों को प्रकाश और वर्षा आदि द्वारा पालन करने वाले मेधावी सवितादेव सुवर्ण कवच को धारण करते हुए अपने तेज से संसार को भली प्रकार परिपूर्ण करते और प्रशंसा के योग्य श्रेष्ठ सुख प्रकट करते हैं ॥ २ ॥ वे सवितादेव अपने तेज से आकाश और पृथिवी को परिपूर्ण करते हुए अपने उत्तम कार्यों द्वारा प्रशंसा को प्राप्त करते हैं। वे नित्य प्रति संसार को कार्य की ओर प्रेरित करते तथा सृष्टि के निर्माण-कार्य के लिये भुजा फैलाते हैं ॥ ३ ॥ वे सवितादेव अहिंसा-भावना सहित लोकों को प्रकाशित करते हैं और संकल्पों का पालन करते हैं। वे सब लोकों में रहने वाले प्राणियों की रक्षा के लिए अपनी भुजा फैलाते हैं। वे व्रतों के धारण करने वाले हैं और इस विशाल संसार के स्वामी हैं ॥ ४ ॥ अपनी महिमा द्वारा सवितादेव तीनों अन्तरिक्षों को व्याप्त करते हैं। वे लोकत्रय में भी व्याप्त हैं। वे प्रकाशमान् सवितादेव अग्नि वायु और आदित्य को तथा तीनों आकाशों और तीनों पृथिवियों को व्याप्त करते हैं। वे तीनों व्रतों द्वारा हमारी कृपा पूर्वक रक्षा करें ॥ ५ ॥ जो कर्मों को निर्धारित करते हैं, जिनके पास महान् ऐश्वर्य है, जो सबके जानने योग्य तथा सब प्राणियों को वश में रखने वाले हैं,

वे सवितादेव हमारे पापों को नष्ट करें और तीनों लोकों में स्थित महान् सुख के प्रदान करने वाले हों ॥ ६ ॥ वे प्रकाशमान् सवितादेव ऋतुओं द्वारा संसार का पालन करें, हमारे ऐश्वर्य को बढ़ावें, हमको संतान युक्त धन प्रदान करें। वे दिन में तथा रात्रि में भी हम पर स्नेह रखें। व हमको पुत्र-पौत्रादि से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥ ७ ॥ [४]

५४ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः। देवता–सविता। छन्द–त्रिष्टुप्)

अभूद्देव सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवे— ३

न

यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४

इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५

ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६ ॥५

सवितादेव प्रकट हो गये। हम शीघ्र ही उनको नमस्कार करेंगे। तीसरे सवन में होताओं द्वारा उनकी स्तुति की जाय। जो मनुष्यों को रत्नादि धन प्रदान करते हैं, वे इस यज्ञ में हमारे लिए उत्तम धन प्रदाता हों ॥ १ ॥ तुम पहले यज्ञ में श्रेष्ठ साधन रूप अमरत्वयुक्त सोम के श्रेष्ठ भाग को प्रकट करो। हे सवितादेव ! तुम हविदाता यजमान को प्रकाश से युक्त करो और पिता, पुत्र, पौत्रादि के क्रम से मनुष्यों को दीर्घ आयु प्रदान करो ॥ २ ॥ हे सवितादेव ! अज्ञानवश अथवा धन के मद में प्रमादी होकर या बल और

कुटुम्ब के अहङ्कार से हमने तुम्हारा या अन्य देवताओं और विद्वान मनुष्यों का कोई अपराध किया हो तो तुम हमको इस यज्ञ में उसके पाप से मुक्त करो ॥ ३ ॥ वे सवितादेव संसार के धारण करने वाले हैं। उनके सभी कर्म अहिंसनीय हैं। वे भूमण्डल तथा आकाश को विस्तृत होने के निमित्त प्रेरण करते हैं। उनका यह कर्म किसी के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥ हे सवितादेव! महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र हम में पूजित होते हैं। तुम हमको पर्वतों से भी अधिक उन्नत करो। इन सब यजमानों को घरों से युक्त निवास-स्थान दो। तुम अपने द्वारा नियत सभी गमनागमन कालों को नियमित करो ॥ ५ ॥ हे सवितादेव! तुम्हारी प्रीति से जो यजमान तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त शोभनीय सोम को सिद्ध करते हैं, उन यजमानों को आकाश पृथिवी, महान् एवं गम्भीर सिंधु, देवता और आदित्यों के साथ अदिति श्रेष्ठ सुख प्रदान करें और हमको भी सुखी बनावें ॥ ६ ॥ [५]

५५ सूक्त

(ऋषि-वामदेवः । देवता-विश्वेदेवाः । छन्द-त्रिष्टुप्, गायत्री)

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२
प्र पस्त्यामदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३
व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवानः शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४
आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५ ।६

हे वसुओं! तुममें कौन दुःखों से छुड़ाने वाला है? कौन रक्षा करने वाला है? हे आकाश-पृथिवी, तुम कभी भी खण्ड होने योग्य नहीं हो। तुम

हमारी रक्षा करो। हे मित्रावरुण ! हमारे रक्षक बनो। हे देवताओ ! तुममें से कौनसा देवता यज्ञ में धन प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ जो देवगण स्तुति करने वालों को प्राचीन स्थान देते हैं, जो दुःखों को हटाते हैं, जो ज्ञानी और अँधेरे को नष्ट करने वाले हैं, वही देवता मनुष्यों के कर्मों के विधायक एवं कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं। वे सत्य कर्मों से युक्त एवं सुन्दर और सुशोभित हैं ॥ २ ॥ सबके लिए स्नेह देने वाली माता अदिति की हम सुख एवं कल्याण प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं, जिससे आकाश और पृथिवी दोनों ही हमारी रक्षा करें। दिवस रात्रि और उषा हमारी कामनाओं का सम्पादन करनी वाली हों ॥ ३ ॥ अर्यमा और वरुण उचित मार्ग दिखाते हैं। हविरन्न के स्वामी अग्निदेव ने कल्याणकारी यज्ञमार्ग को दिखाया है। इन्द्र और विष्णु सुशोभित हुए हमारे द्वारा पूजित होने पर सन्तान, बल और रमणीय धनयुक्त सुख प्रदान करें ॥ ४ ॥ इन्द्र के मित्र मरुद्गण, पर्वत और भगदेवता से हम रक्षा की याचना करते हैं। वरुणदेव हमको पाप से बचावें और मित्र देवता हमारे सखा होते हुए हमारा पालन करें ॥ ५ ॥ [६]

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो अप व्रन् ॥६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥८
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१० ।७

हे आकाश पृथिवी रूप देवियो ! जैसे धन की कामना वाला मनुष्य समुद्र-यात्रा में आने के लिए समुद्र का स्तवन करता है, वैसे ही हम भी अपने इच्छित कार्य के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ देवमाता अदिति अन्य देवताओं के साथ हमारी रक्षा करें। दुःखों से छुड़ाने वाले इन्द्र हमारे रक्षक हों। मित्र, वरुण और अग्नि से सोम रूप अन्न को हम रोक नहीं

सकते, बल्कि यज्ञानुष्ठानों द्वारा इन्हें प्रवृद्ध कर सकते हैं ॥ ७ ॥ अग्निदेव धन और महान् सौभाग्य के स्वामी हैं। इसलिए वे हमको श्रेष्ठ धन और सौभाग्य से सम्पन्न करें ॥ ८ ॥ हे सत्य वाणी रूपिणी, धन और अन्न की स्वामिनी उषा देवी ! हमको अत्यन्त शोभायुक्त धन प्रदान करो ॥ ९ ॥ जिस धन सहित सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र यज्ञ-स्थान में आते हैं, वे अपने उस धन को हमारे लिए प्रदान करें ॥ १० ॥ [७]

५६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—द्यावापृथिव्यौ। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१
देवी देवेभिर्यजते यजत्रै रमिनती तस्थतुरुक्षमाणे।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयाद्भिरर्कैः ॥२
स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे। शुची उप प्रशस्तये ॥५
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः। ऊह्याथे सनादृतम् ॥६
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥७ ।८

सुश्रेष्ठ, महत्त्ववती आकाश-पृथिवी इस यज्ञ में शोभन स्तोत्र और सोम रस से परिपूर्ण होकर प्रकाश से युक्त हों। इस कार्य के निमित्त सिंचन कर्म में समर्थ पर्जन्य विस्तृत और महत्त्ववती आकाश-पृथिवी की स्थापना करते हुए मरुद्गण के साथ विशेष शब्द करते हैं ॥ १ ॥ यज्ञ के योग्य,

कामनाओं के वर्धक, हिंसा से शून्य, द्रोह से शून्य, सत्य से युक्त, देवताओं के अभिभूत कर्त्ता, यज्ञ-सम्पादक आकाश पृथिवी रूप दोनों देव अन्य देवताओं से सुसंगत हो हविरन्नों से परिपूर्ण हों॥ २ ॥ जिन्होंने इस आकाश-पृथिवी को बनाया, जिन्होंने इस विस्तृत, अविचलित, सुन्दर रूप वाली, आधार से शून्य आकाश पृथिवी को समान रूप से सुन्दर ढङ्ग से धारण रखा है, वे इस समस्त लोकों के मध्य में शोभा पाने वाले हैं ॥ ३॥ हे आकाश-पृथिवी! तुम दोनों ही हमको अन्न प्रदान करने की कामना करती हो तथा परस्पर सुसंगत हो । तुम व्याप्त, निस्तृत और यज्ञ के योग्य होती हुई हमको गृहिणी युक्त घर प्रदान करो और हमारी रक्षा करो । हम अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा रथ युक्त सेवकों को प्राप्त करें ॥ ४ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम कांतिमती हो । हम तुम्हारे निमित्त इस महान् स्तोत्र को प्रस्तुत करते हैं । तुम दोनों ही पवित्र हो । हम तुम्हारी स्तुति के लिए तुम्हारे पास आते हैं ॥ ५ ॥ हे देवियो ! तुम दोनों अपने तेज और जल से परस्पर एक दूसरी को पवित्र करती हुई सुशोभित होओ और सदा ही यज्ञ को वहन करने वाली बनो ॥ ६ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम महत्वरवती हो । तुम मित्र रूप स्तुति करने वाले की सहायक बनो । तुम अन्नादि धनों को धारण करती हुई यज्ञ स्थान की परिक्रमा करती हुई विराजमान होओ ॥ ७ ॥ [८]

५७ सूक्त

(ऋषि-वामदेवः। देवता -क्षेत्रपति. आदि । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्उष्णिक)

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥१
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ....
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगासति यथा नः सुफलासति ॥६
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७
शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८ ।६

बन्धु के समान क्षेत्रपति के साथ हम यजमान गण क्षेत्र को जीतेंगे। वे क्षेत्रपति हमारी गौओं और घोड़ों को पुष्ट करें। वे हमको देने योग्य धन देकर हमारा कल्याण करें ॥ १ ॥ हे क्षेत्रपते ! जैसे गौ दूध देती हैं, वैसे ही तुम मीठा, शुद्ध, घृत के समान सुस्वादु जल हमको दो। तुम जलों के स्वामी हमको हर प्रकार से सुखी बनाओ ॥ २ ॥ औषधियाँ हमारे लिए मधुर गुण वाली हों, पृथिवियाँ अन्नों से युक्त हो, नदियाँ मीठे जल वाली हों। अन्तरिक्ष मधुर जलवर्षक हो। क्षेत्रपति मधुर अन्न से युक्त हों। हम किसी की हिंसा न करते हुए उनके अनुकूल रहें ॥ ३ ॥ हल चलाने वाले पशु सुखी हों। मनुष्य भी सुख पूर्वक हल चलावें। हल भी सुख से खेत को खोदें। रस्सियाँ सुख से पशुओं को बाँधें। चाबुक को भी सुखपूर्वक चलाया जावे ॥ ४ ॥ हे अन्नपति और स्वामिन् ! तुम दोनों ही हमारी स्तुतियों को सुनो। तुमने आकाश में जिस जल की रचना की है, उसके द्वारा ही इस पृथिवी को सींचो ॥ ५ ॥ हे सीते ! तुम सौभाग्यवती हो। तुम पृथिवी के नीचे जाने वाली हो। तुम्हारे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं, क्योंकि तुम सुन्दर सौभाग्य को प्रदान करती हो। सुन्दर फल तुम देने में समर्थ हो (सीता हल का अग्र भाग अर्थात् फाली को कहते हैं) ॥ ६ ॥ इन्द्रदेव सीता को ग्रहण करें। पूषा उसे भले प्रकार

पकड़ें, जिससे पृथिवी जल और अन्न से सम्पन्न होकर उत्तरोत्तर समृद्धि को प्राप्त हो ॥ ७ ॥ यह हल की फाली सुख पूर्वक भूमि को खोदे। कृषक जन सुख पूर्वक बैलों को चलावें। मेघ मधुर जल की वृद्धि करता हुआ पृथिवी को जल से परिपूर्ण करे। हे अन्न और क्षेत्र के अधिपतियो ! हमको सुखी करो ॥ ८ ॥ [१]

५८ सूक्त

(ऋषि—वामदेव. । देवता—अग्निः सूर्यो वाऽयो वा गावो वा घृतं वा छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ॥३
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५ ।१०

समुद्र से माधुर्यमयी किरणें अविर्भूत हुई हैं। मनुष्य उनके द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं। घृत का जो व्यापक रूप है, वह देवताओं की जिह्वा और अमृत का आश्रय रूप है ॥ १ ॥ हम यजमान घृत की प्रशंसा करते हुए, उसे नमस्कार पूर्वक इस यज्ञ में ग्रहण करते हैं। ब्रह्मा इस वाक्य को श्रवण करें। चार सींग वाले मृग के समान चारों वेदों का ज्ञाता विद्वान वेद वाणी का निर्वाह करने वाला है ॥२॥ यज्ञात्मक अग्नि के चार सींग, सवन रूप तीन पाद, ब्रह्मोदन और प्रवर्ग्य रूप दो शिर तथा छन्द रूप सात हाथ हैं। यह सब ... मनाओ के वर्षक हैं। यह

मंत्र, कल्प और ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकार से बँधे हुए अत्यन्त शब्द करते हैं। वे देव रूप से मरणधर्मा मनुष्यों के बीच विद्यमान हैं ॥ ३ ॥ पणियों ने गौओं के मध्य दुग्ध, दधि और घृत इन तीन पदार्थों को रखा। देवताओं ने उन्हें ढूँढ कर प्राप्त किया। इन्द्र ने एक पदार्थ क्षीर को तथा सूर्य ने एक पदार्थ को उत्पन्न किया। देवताओं ने दीप्तिमान अग्नि के पास से अन्न के द्वारा एक पदार्थ घृत को प्राप्त किया था ॥ ४ ॥ अपार गति वाला यह जल अन्तरिक्ष से नीचे गिरता है। शत्रु उसे देखने में समर्थ नहीं है। उस सम्पूर्ण घृतधारा को देखने में हम समर्थ हैं तथा इसके मध्य में हम अग्नि को भी देख सकते हैं ॥ ५ ॥ [१०]

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८
कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०
धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११ ।११

स्नेहदायिनी नदी के समान यह घृत-धाराएं अथवा वाणियाँ अन्तःकरण में चित्त द्वारा पवित्र होती हुई बाहर आती हैं। जल की तरङ्गों के समान यह वेग पूर्वक दौड़ती हैं, जैसे व्याध के डर मृग दौड़ते हैं ॥ ६ ॥ जैसे नदी का जल नीचे स्थान की ओर वेग पूर्वक जाता है, वैसे ही घृत धारा भी वेग पूर्वक निकलती हुई जाती हैं। यह घृत राशि

सीमाओं को पार करती हुई तरंगित होती हुई बढ़ती है, जैसे स्वाभिमानी अश्व तरङ्ग में बढ़ता जाता है ॥ ७ ॥ जैसे श्रेष्ठ आचरण वाली, मंगलमयी, प्रसन्नवदना नारी एक चित्त में पति से ही प्रेम करती है, वैसे ही घृत की धारा अग्नि से प्रेम करती हुई उनकी ओर जाती है और समान रूप से प्रदीप्ति युक्त होकर मिल जाती है। वे मेधावी अग्नि उन घृतधाराओं की सदा इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे कन्या अपने सुन्दर रूप और वेश-विन्यास को प्रकट करती हुई पति को प्राप्त करने के लिए जाती है, वैसे ही यह घृत धाराएं गमन करती हैं। जहाँ सोम-याग होता है वहाँ कान्तिमय एवं उज्ज्वल घृत-धाराएं अग्नि को प्राप्त होती हैं ॥ ९ ॥ हे ऋत्विको! गौओं के समीप जाओ, उनकी सुन्दर स्तुति करो। हम यजमानों के निमित्त ये स्तुतियाँ ऐश्वर्य धारण करने वाली हों और हमारे यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचावें। घृत-धाराएं माधुर्यमयी होती हुई गमन करें ॥ १० ॥ हे अग्ने! सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे आश्रय पर टिका है। तुम्हारा महान् बल समुद्र में, हृदय में, प्राण में, जलों के मन्थन रूप विद्युत में, जीवन-युद्ध में प्रकट होता है। हम तुम्हारे उस मधुर रस को प्राप्त करने में समर्थ हों ॥ ११ ॥ [११]

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ अथ पञ्चमं मण्डलम् ॥

१ सूक्त

(ऋषि—बुधगविष्ठिरावात्रेयौ। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंपीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६ ॥१२

गौ के समान आने वाली उषा के प्रकट होने पर अग्नि अध्वर्युओं के काष्ठ से प्रदीप्त होते हुए बढ़ते हैं। उनकी शिखाएँ ऊँची फैलती हुई विस्तृत वृक्ष के समान अन्तरिक्ष की ओर बढ़ती जाती हैं ॥ १ ॥ होता रूप अग्निदेव, देवताओं के यजन के निमित्त बढ़ते हैं। वे उषाकाल में प्रसन्न चित्त से ऊँचे की ओर उठते हैं। समृद्ध हुए अग्नि का प्रकाशित बल दिखाई देता है। वे महान् देवता अन्धकार से स्वयं मुक्त होते हुए अन्यों को भी मुक्त करते हैं ॥२ जब वे अग्नि विश्व के अन्धकार को दूर करते हैं, तब प्रदीप्त होकर अपनी किरणों द्वारा संसार को प्रकाश देते हैं। फिर वे बढ़ी हुई एवं कामनायुक्त घृत-धाराओं से युक्त होते हुए ऊँचे उठकर उन घृत-धाराओं का पान करते हैं ॥३ प्रकाशयुक्त किरणों की कामना करने वाले मनुष्य के नेत्र जैसे सूर्य के दर्शन के लिए बढ़ते हैं, वैसे यजमानों के हृदय अग्नि के सामने बढ़ते हैं। जब विभिन्न रूप वाली आकाश पृथिवी उषाकाल में अग्नि को प्रकट करती हैं, तब वे उज्ज्वल वर्ण वाले एवं बलयुक्त अग्नि उत्पन्न होते हैं ॥४॥ प्रादुर्भाव होने के सामर्थ्य से युक्त अग्नि उदयकाल में प्रकट होते हैं। वे दीप्ति से युक्त हुए वनों में अवस्थित रहते हैं। वे सप्त ज्वालाएँ धारण कर यज्ञ के योग्य होता होकर यज्ञ-स्थान में विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥ यज्ञ योग्य होता होकर माता पृथिवी की गोद में सुन्दर वेदी पर अग्नि देवता प्रतिष्ठित होते हैं। वे युवा, विद्वान्, निष्ठावान् जनों के मध्य स्थिर होकर सबका पालन करते हैं ॥६॥ [१२]

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८
प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२ ।१३

जो आकाश पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं, उन ज्ञानी, यज्ञ के फल को सिद्ध करने वाले, होता रूप अग्नि का स्तोत्र द्वारा यजमान स्तवन करते हैं। यजमान उन अन्न के स्वामी अग्नि की घृत-सिंचन द्वारा नित्य प्रति पूजा करते हैं ॥७॥ सबको पवित्र करने वाले अग्नि देव अपने स्थान में पूजे जाते हैं। वे ज्ञानी हैं। विद्वज्जन उनका स्तवन करते हैं। उनकी हम अतिथि के समान पूजा करते हुए सुख पाते हैं। उनकी शिखाऐं सीमा रहित हैं। वे विश्वविहित बल वाले एवं कामनाओं की वर्षा से तृप्त करने वाले हैं। हे अग्निदेव ! तुम सबको अपनी शक्ति से परिपूर्ण करते हो ॥८॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ को प्राप्त करते हुए अत्यन्त सुन्दर रूप से प्रकट होते हो। तुम शीघ्र ही अन्यों को पार कर उनमें बढ़ते और अग्रसर होते हो। तुम स्तुति के पात्र, प्रकाश देने वाले एवं स्वयं प्रकाशमान हो। तुम सभी प्राणियों के लिए पूजनीय तथा अतिथि रूप हो ॥ ९ ॥ हे अत्यन्त युवा अग्निदेव ! साधकगण पास से तथा दूर से तुम्हारी परिचर्या करते हैं। अधिक स्तुति करने वाले उपासक की स्तुतियों को तुम ग्रहण करते हो। तुम्हारा दिया हुआ सुख सदा स्थिर रहने वाला तथा प्रशंसनीय होता है ॥ १० ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त प्रकाशमान् हो। तुम सर्वाङ्ग सुन्दर रथ पर देवताओं के साथ सवार होओ। तुम विभिन्न मार्गों को जानकर उन्हें अतिक्रमण करने में समर्थ हो तथा देवगण

को हवि ग्रहण करने के निमित्त यज्ञ-स्थान में लाते हो ॥ ११ ॥ हम मेधावी-जन कामनाओं की वर्षा करने वाले, पवित्र अग्नि के लिए स्तुति योग्य श्रेष्ठ स्तोत्र को कहते हैं। स्थिर चित्त वाले ऋषिजन आकाशस्थ गतिमान, प्रकाशमान और विस्तीर्ण सूर्य रूप अग्नि के लिए नमस्कार युक्त स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ [१३]

२ सूक्त

(ऋषि-कुमार आत्रेयो वृशो। देवता-अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति जगती)

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१
कमेतं त्वं युवते कुमार पेषी बिभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम्।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम्।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥ ४
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६ ।१४

बालक को जन्म देने वाली माता गर्भ में धारण करती है और उत्पन्न होने पर स्वयं पालती है और उसके पिता को नहीं देती। उस सुरक्षित बालक को द्वेषी जन विनष्ट नहीं कर सकते और उसके अरणि स्थान में स्थित होने पर देखते हैं ॥ १ ॥ हे रमणी! तुम बालक को गर्भ में धारण करती और फिर उसका पोषण करती हो। तब उस उत्पन्न हुए बालक को सभी जान पाते हैं। वह बालक प्रारंभिक वर्षों में बढ़ता है। उसी

माता रूप अरणि जिस बालक को उत्पन्न करती है, उसे हम देखते हैं ॥ २ ॥ हमने निकटवर्ती स्थान से सुवर्ण के समान ज्वाला वाले, प्रदीप्त अग्निदेव को देखा। हमने उन्हें सर्वत्र व्याप्त तथा अमरत्व से युक्त स्तोत्र निवेदन किया। जो व्यक्ति इन्द्र को आराध्य नहीं मानते अथवा उनका पूजन नहीं करते, वे हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? ॥३॥ गौओं के झुन्ड के समान निश्चित भाव से वन में विचरते हुए तथा विभिन्न प्रकार से सुशोभित एवं प्रकाशमान अग्नि के हमने दर्शन किए। उनकी ज्वालाएं प्रदीप्त होती हुई युवतियों के बालक जनते-जनते वृद्धा हो जाने के समान ही निर्वीर्य होने लगती हैं, तब हविरन्न प्राप्त करती हुई वे वृद्धाओं के समान निर्बल ज्वाला भी युवतियों के समान हृष्ट पुष्ट हो जाती हैं ॥ ४ ॥ जहाँ सदाचारी पुरुष नहीं होता, वे सम्पत्तियों से हीन होते हैं। जिनमें कोई नायक या स्वामी नहीं है, वे कौन हैं? कौन मुक्त राष्ट्रवासी के रक्षक को भूमिहीन कर सकता है? उसे पकड़ने वाले शत्रु, उसे मुक्त करें। वे अग्नि हमारे पशुओं के रक्षक होते हुए हमारे निकट रहें ॥ ५ ॥ अग्निदेव सब जीवों के ईश्वर तथा आश्रयदाता हैं। शत्रु लोग मरणधर्माओं में उनको छिपा देते हैं। अत्रि वंशियों की स्तुति उन्हें बन्धन से छुड़ावे। निन्दा करने वालों की निन्दा हो ॥ ६ ॥ [१४]

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७
हृणीयमानो अप हि मदैये प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९
उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१०
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते
मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥१५

हे अग्ने ! तुमने शुनःशेप को सहस्र यूप से छुड़ाया, क्योंकि उन्होंने तुम्हारी स्तुति की थी । हे होता रूप अग्निदेव ! तुम मेधावी हो । इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ । हम साधकों को भी बन्धनों से छुड़ाने की कृपा करो ॥७॥ हे अग्ने ! जब तुम क्रोधित होते हो, तब हमसे दूर चले जाते हो । देवताओं के कार्यों को सिद्ध करने वाले इन्द्र ने मुझे उपदेश दिया था । वे मेधावी हैं, उन्होंने तुम्हें प्रेरण किया था । उनके द्वारा अनुशासित होने वाले हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित होते हैं ॥ ८ ॥ वे अग्निदेव अपने महान् तेज द्वारा अत्यन्त प्रकाशमान होते हैं । वे अपनी महानता से ही सब पदार्थों को प्रकट करते हैं । वे अग्निदेव वृद्धि पाकर असुरों की कष्टकर योजना को विनष्ट करते हैं । असुरों का नाश करने के लिए वे अपनी ज्वालाओं की दीप्ति विशिष्ट करते हैं ॥ ९ ॥ अग्नि की शब्दमती ज्वाला तेज धार वाले हथियार के समान असुरों का नाश करने के लिए आकाश में प्रकट होती हैं । वे जब पुष्ट होकर विकराल रूप धारण करते हैं, तब उनका क्रोध दुष्टों को संतापजनक होता में । दुष्टों की सेनाएं उनके किसी कार्य में बाधक नहीं हो सकतीं ॥१०॥ हे बहुकर्मा अग्निदेव ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले साधक हैं । जैसे चतुर व्यक्ति रथ को बनाता है, वैसे ही हम तुम्हारे उद्देश्य से स्तोत्र को बनाते हैं । हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र को स्वीकार करो जिससे हम विजय प्राप्त कर सकें ॥ ११ ॥ बहुत ज्वालाओं वाले, कामनाओं के वर्षक, प्रवृद्ध अग्निदेव निर्बाध रूप से शत्रुओं के धन को (छीन कर) देते हैं । इसी कारण देव-गण उन्हें अग्नि कहते हैं । वे याज्ञिकों को सुख दें तथा हविदाता यजमान को भी सुख प्रदान करें ॥ १२ ॥ [१५]

३ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप् ।)

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।

त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥ १
त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥ २
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ४
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥ ५
वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ६ । १६

हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही वरुण के समान होते हो । समृद्ध होकर मित्र के समान होते हो । सब देवता तुम्हारे पदचिन्हों पर चलते हैं । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! तुम हविदाता यजमान के लिए इन्द्र के समान ही पूजनीय हो ॥१ हे अग्ने तुम कन्याओं के अर्यमा अर्थात् विधानकर्ता के तुल्य हो । गोपनीय नाम धारण करने वाले हो । तुम जब पति-पत्नी को समान मन वाला बनाते हो, तब वे तुम्हें घृत, दुग्ध द्वारा बन्धु के समान सींचते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! मरुद्गण तुम्हारे आश्रय हेतु अन्तरिक्ष का शोधन करते हैं । हे रुद्र रूप ! विष्णु का व्यापक पद तुम्हारे निमित्त अवस्थित हुआ है, उसके द्वारा तुम प्रजाओं के जल का पालन करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! इन्द्रादि देवता भी तुम्हारे समृद्ध होने पर ही दर्शनीय होते हैं । वे देवता लोग तुमसे अनन्य स्नेह करते हुए अमृत को प्राप्त करते हैं । फल की कामना करने वाले यजमान के निमित्त ऋत्विगण हवियाँ देते हुए होता रूप अग्नि की सेवा करते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम्हारे सिवाय अन्य कोई होता नहीं है । कोई यज्ञ करने वाला भी तुम्हारे समान प्राचीन नहीं है । हे अन्नवान् अग्ने ! भविष्य में तुम्हारे सिवाय कोई अन्य स्तुति का पात्र नहीं होगा । तुम जिसके अतिथि रूप होते हो, वह

ऋत्विक् यज्ञ कर्म द्वारा शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होता है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! हम जब तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर लेंगे तब शत्रुओं को पीड़ित करेंगे। हम धन की इच्छा करते हैं। हम तुम्हें हविरन्न द्वारा बढ़ाते हैं। हम युद्ध में विजय प्राप्त करें और नित्य प्रति यज्ञ द्वारा बल लाभ करें। हे बल के पुत्र अग्ने ! हम धन तथा संतान प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [१६]

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥ ९
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥ १०
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥ ११
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥ १२।१७

जो मनुष्य हमारा अपराध करता है या हमारे प्रति पाप व्यवहार करता है, उस पापी मनुष्य के प्रति अग्निदेव पाप-पुण्य के व्यवहार को न देखें। हे अग्ने ! तुम मेधावी हो। जो हमको पाप-कर्म अथवा अपराध द्वारा शुभ कर्मों से रोके, उसे तुम नष्ट कर दो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! प्राचीन यजमान उषा-काल में यज्ञ करते हुए तुम्हें देवदूत बनाते हैं। तुम हवि ग्रहण करने के पश्चात् यजमानों द्वारा प्रवृद्ध होते हुए चलते हो ॥ ८ ॥ हे बल के पुत्र ! तुम सबके पिता समान हो। जो मेधावी पुत्र तुमको हविर्दान करता है तुम उसे सङ्कट से पार करते हुए पाप से हटाते हो। हे अग्ने ! तुम हमको कब

देखोगे और कब श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करोगे ? ॥९॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम वास देने वाले हो। तुम पालनकर्त्ता हो। तुम्हारे नाम की स्तुति करने पर दी जाने वाली हवियों को तुम भक्षण करते हो। यजमान उससे पुत्रवान् होता है। यजमान के बहुत हविरन्न के इच्छुक तथा बढ़ने वाले अग्निदेव शक्तिशाली होकर सुख देते हैं ॥१०॥ हे अत्यन्त युवा अग्निदेव ! तुम सबके स्वामी हो। तुम स्तुति करने वालों पर कृपा करने के लिए सभी विघ्नों से बचाते हो। घोर और शत्रु रूप मनुष्य सब हमारे द्वारा रोके जाते हैं ॥११॥ यह स्तोत्र तुम्हारे सामने पहुँचते हैं। हम अपने अपराधों को तुम्हारे सम्मुख निवेदन करते हैं। हमारी स्तुति से प्रबुद्ध हुए अग्निदेव हमको हिंसकों के हाथ में जाने से बचावें ॥१२ [१७]

४ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः। देवता—अग्नि.। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन्।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १
हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २
विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥ ३
जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ४
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५॥१८

हे अग्निदेव ! तुम धनों के स्वामी हो। इस यज्ञ में हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम अन्न की कामना करने वाले हैं। तुम्हारे अनुकूल होने से हमको अन्न का लाभ होगा और हम शत्रु सेना को भगा सकेंगे ॥१॥ हवियों को वहन

करने वाले अग्नि हमारी रक्षा करें । वे हमारे सामने सर्व व्यापक रूप से तथा प्रकाशयुक्त होते हुए श्रेष्ठ दर्शन करने वाले हो । हे अग्ने ! तुम सुन्दर अन्न को प्रकट करो । हमको प्रचुर अन्न प्रदान करो ॥२॥ हे ऋत्विको ! तुम मनुष्यों के ईश्वर, पवित्र, मेधावी तथा मनुष्यों को पवित्र करने वाले, यज्ञ-सम्पादक, सर्वज्ञानी और घृत की कामना वाले अग्नि को धारण करो । वे अग्नि हमारे बीच एकत्रित धन को हमारे लिये समान भाव से बाँटते हैं ॥३॥ हे अग्ने ! इला से प्रीतिमान हुए तुम सूर्य की किरणों द्वारा क्रियावान् होते हुए स्तुति को ग्रहण करो । हमारी समिधा को ग्रहण करते हुए हविर्भक्षण के निमित्त देवताओं को बुलाओ तथा हवियों के वहन करने वाले होओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम विद्वान् हो । तुम घर आये हुए अतिथि के समान पूजनीय होकर हमारे इस यज्ञ स्थान में आओ । तुम सब शत्रुओं का नाश करते हुए शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब मनुष्यों के धन को छीन लो ॥५॥ [१८]

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९
यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १०
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ११ । १९

हे अग्ने ! तुम अपने पुत्र स्वरूप यजमान को अन्न देते और शस्त्रों द्वारा असुरों का नाश करते हो । तुम बल के पुत्र हो । तुम जिस कारण देव-

ताओं को बढ़ाते हो, हे श्रेष्ठदेव ! उसी कारण हम साधकों की रणभूमि में रक्षा करो ॥६॥ हे अग्ने ! हम श्रेष्ठ वचनों द्वारा तुम्हारी स्तुति करेंगे। हे पवित्र करने वाले ! हम हविर्दान द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हे कल्याण-कारी एवं अत्यन्त तेज से युक्त अग्निदेव ! तुम हमको सबके वरण करने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कराओ। हमको सब प्रकार के धन प्रदान करो ॥७॥ हे अग्ने ! हमारे यज्ञ-स्थान में रक्षक-पद को ग्रहण करो। जल, स्थल, पर्वत इन तीन स्थानों में निवास करने वाले तुम हमारे हविरन्न को सेवन करो। हम देवताओं के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले बनें। तुम हमारी तीनों तापों से रक्षा करो। सुन्दर आवासयुक्त घर देकर हमारा पोषण करो ॥८॥ हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! जैसे मल्लाह नाव द्वारा सबको नदी के पार लगाता है, वैसे ही तुम हमको समस्त बाधाओं से पार लगाओ। तुम अत्रि के समान हमारे स्तोत्र द्वारा नमस्कृत होकर हमारे शरीरों की रक्षा करने वाले बनो ॥९॥ हे अमर अग्ने ! हम मनुष्य मरणधर्मा हैं। हम स्तुतियों से परिपूर्ण हृदय द्वारा नमस्कार करते हुए बारम्बार तुम्हारा आह्वान करते हैं। हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हमको अन्न और यश प्रदान करो। हे अग्ने ! हम तुम्हारे अविनाशी स्वरूप का ध्यान करते हुए सन्तानों से युक्त होकर सदा स्थिर मन वाले रहें ॥१०॥ हे ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले अग्निदेव ! जिस उत्तम कर्म करने वाले यजमान पर तुम कल्याणमय कृपा करते हो, वह यजमान अश्व, सन्तान, बल, गौ तथा अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥११ [१९]

५ सूक्त

(ऋषि-वसुश्रुत आत्रेय । देवता—आप्रीम् । छन्द-गायत्री, उष्णिक् ।)

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥१
नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥३
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥४
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥५॥२०

हे ऋत्विको ! ऐश्वर्योत्पादक, तेजस्वी एवं प्रकाशमान अग्नि के निमित्त

घृतयुक्त अन्न से यज्ञ करो ॥१॥ सब मनुष्यों में प्रशंसा के योग्य अग्नि हमारे इस यज्ञ को प्रज्वलित करें। वे अग्नि कर्म-कुशल, विद्वान् तथा कभी भी पीड़ित न होने वाले हैं ॥२॥ हे अग्ने! तुम स्तुति के पात्र हो। तुम इस लोक में हमारी रक्षा के निमित्त अद्भुत एवं सबके प्रिय इन्द्र को सुखकारी रथ द्वारा इस यज्ञ स्थान में ले आओ ॥३॥ हे अग्ने! तुम ऊन के समान मृदु एवं सुखकारी होते हुए रक्षक बनो। हे शुभ्र! हम स्तोतागण तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम विविध प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको धनैश्वर्य प्राप्त कराओ ॥४॥ हे देवियो! तुम उत्तम गतिवाली, यज्ञ-द्वार की रक्षिका एवं श्रेष्ठ कर्म वाली हो। तुम सब हमारी रक्षा के निमित्त अपने विविध कार्यों द्वारा यज्ञ की परिचर्या करो ॥५		[२०]

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा। दोषामुषासमीमहे ॥६
वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः। इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। र्बाहः सीदन्त्वस्रिधः ॥८
शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना। यज्ञेयज्ञे न उदव ॥९
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि। तत्र हव्यानि गामय ॥१०
स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः। स्वाहा देवेभ्यो हविः ।११।२१

सुन्दर रूप वाली, अन्नों को बढ़ाने वाली, महान् कर्मों के करने में सामर्थ्यवती, जल की निर्मात्री रात्रि और उषा देवियों की हम उत्तम स्तुति द्वारा पूजा करते हैं ॥६॥ हे अग्नि-आदित्य रूप दो होताओ! तुम दोनों हमारे द्वारा पूजित हुए वायु-मार्ग से चलते हो। तुम दोनों हमारे इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ ॥७॥ इला, सरस्वती, मही तीनों देवियाँ सुख उत्पन्न करने वाली हों और वे हिंसा आदि कर्मों को न करती हुई, वृद्धिपूर्वक हमारे यज्ञ स्थान में स्थापित हों ॥८॥ हे त्वष्टादेव! तुम व्यापक सामर्थ्य वाले, कल्याण-कारी और सर्वपोषक होकर यहाँ आगमन करो और हमारे श्रेष्ठ यज्ञादि कर्मों में उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होकर हमारे रक्षक बनो ॥९॥ हे वनस्पते! तुम जहाँ कहीं भी हो देवताओं के गुप्त चिन्हों को बुद्धिपूर्वक जानते हो, वहाँ हव्यादि यज्ञ-साधनों को प्राप्त कराओ ॥१०॥ यह स्वाहाकार युक्त हवि

अग्नि और वरुण को दी गई है। यह हवि स्वाहा रूप से मरुद्गण के निमित्त दी गई है। यह स्वाहाकार युक्त हवि देवताओं को दी गई है ॥११॥ [२१]

६ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेय। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अग्नि तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥५।२२

जो उत्तम निवास देने वाले हैं, जो सबको घर के समान आश्रय रूप हैं, जिन्हें गायें, द्रुतगामी अश्व तथा प्रतिदिन हवि देने वाले यजमान आहूत करते हैं, उन अग्नि की हम पूजा करते हैं। हे अग्ने ! स्तोताओं के लिए तुम अन्न और कामना योग्य धन प्राप्त कराओ ॥१॥ जो अग्नि निवासदाता के रूप में आहूत होते हैं, जिनके समीप गौएं और शीघ्रगामी अश्व एकत्र होकर आते हैं, जिनके सत्संग के निमित्त विद्वज्जन भी उपस्थित होते हैं, वे देवता अग्नि ही हैं। हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वालों को अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ ॥२॥ सबके कर्मों के देखने वाले अग्नि मनुष्यों को अन्न और सन्तान देते हैं। वे प्रसन्न होकर सबके द्वारा ग्रहण करने योग्य धन प्रदान करने के लिए प्रस्थान करते हैं। हे अग्ने ! स्तुतिकर्त्ता के लिए अभिलषित अन्नादि पदार्थ प्राप्त

कराओ ॥३॥ हे अग्ने ! तुम अजर एवं प्रकाश से पूर्ण हो । हम तुम्हें सभी श्रेष्ठ भावों द्वारा प्रज्ज्वलित करते हैं। तुम्हारा प्रकाश पूजनीय है। वह आकाश में प्रकाशित होता है । हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को इच्छित धनादि पदार्थ प्राप्त कराओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम तेज-पुंजों के अधीश्वर हो। तुम शत्रुओं को नष्ट करने वाले प्रजाओं के पालनकर्त्ता, प्रसन्नताप्रद, हवियों के वहन करने वाले तथा प्रकाशमान हो। तुम्हारे निमित्त मन्त्रों द्वारा हवियाँ दी जाती हैं। हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वाले श्रेष्ठ जनों को अभिलपित अन्न धन प्राप्त कराओ ॥५ [२२]

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इपण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६
तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानाँ व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९
एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥ [२३]

यह लौकिक अग्नि, गार्हपत्यादि अग्नि में सभी वरण करने योग्य धनों को पुष्ट करते हैं। यह अग्नि प्रीतिपूर्वक सब ओर व्याप्त होते हैं और हविरन्न की कामना करते हैं। हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को अभिलपित अन्नादि प्राप्त कराओ ॥६॥ हे अग्ने ! तुम्हारी किरणें अन्नवान् होकर बढ़ें। तुम्हारी किरणें हवन की अभिलाषा करने वाली हों। हे अग्ने ! तुम स्तुति-साधकों के लिए अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ ॥७॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। तुम हमको अन्न युक्त नवीन घर प्रदान करो, जिससे हम सभी यज्ञों में पूजा करें और दूत रूप से तुम्हें प्राप्त करें। हे अग्ने ! स्तुति-साधकों को अभिलपित धनादि प्राप्त कराने वाले होओ ॥८॥ हे अग्ने ! तुम

प्रसन्नता प्रदान करते हो। तुम शत्रुओं को नाश करने के लिए दुर्बुद्धि को मुख में रखते हो। तुम बल के रक्षक हो। इस यज्ञ में हमको फल देते हुए परिपूर्ण करो। हे अग्ने ! स्तुति-साधकों के लिए इच्छित अन्न धन लाभ कराओ ॥९॥ इस प्रकार विद्वान् उत्तम वाणियों द्वारा अग्नि के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें प्रतिष्ठित करते हैं। वे अग्नि हम साधकों को सुन्दर सन्तान और द्रुतगति वाले अश्व प्रदान करें। हे अग्ने ! स्तुति वालों को तुम अभिलषित धन प्राप्त कराओ ॥१०॥ [२३]

७ सूक्त

(ऋषि—इष.। देवता—अग्नि। छन्द-अनुष्टुप्)

सखाय सं व सम्यञ्चमिषं स्तोम चाग्नये।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते सञ्जनयन्ति जन्तव ॥२
स यदिषो वनामहे स हव्या मानुषाणाम्।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३
स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सत।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजर ॥४
अव स्म यस्य वेषणे स्वेद पथिषु जुह्वति।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहु ॥५॥ [२४]

हे समान भाव वाले मित्रो ! तुम यजमानों के लिए अत्यन्त बढ़े हुए, शक्तिशाली, बल के पुत्र अग्नि को, पूजन के योग्य हविरन्न देते हुए उनकी स्तुति करो ॥१॥ जिन्हें पाकर ऋत्विग्गण प्रसन्न होते हैं, जिन्हें यज्ञ गृह में पूजते हुए प्रज्वलित करते हैं, जिन्हें सर्वजन मिलकर प्रधान कर्म वाले मानते हैं, वे अग्नि हैं ॥२॥ जब हम अग्नि के निमित्त हव्य देते हैं और जब वे हमारे हव्य को भक्षण करते हैं, तब वे प्रकाशमान अग्नि अन्न के बल से रश्मियों को ग्रहण करते हैं ॥३॥ जब अजर और पवित्र अग्नि वनस्पतियों को

भस्म करते हैं, तब वे रात्रि के समय भी अंधकार को दूर करते हुए सब ओर प्रकाश को फैलाते हैं ॥४॥ अग्नि की परिचर्या में सींचे जाने वाले घृत को अध्वर्यु गण ज्वालाओं में अवस्थित करते हैं। जैसे पुत्र पिता के अंक को प्राप्त होता है, वैसे ही घृतधारा अग्नि की गोद में गिरती है ॥५॥ [२४]

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१०॥ [२५]

अग्निदेव अनेकों द्वारा कामना के योग्य, सब के धारण करने वाले, अन्नों को चखने वाले एवं यजमानों को सुन्दर निवास देने वाले हैं। यजमान उनके गुणों को भले प्रकार जानते हैं ॥ ६ ॥ तृणों को उखाड़ने वाले पशुओं के समान अग्नि जल से रहित तथा तिनके और काठ से परिपूर्ण प्रदेश को पृथक् करते हैं। वे सुवर्ण वर्ण की मूँछों वाले, उज्वल दाँतों वाले तथा महान् हैं। उनका बल किसी के सामने भी फीका नहीं पड़ता ॥ ७ ॥ जो कुल्हाड़े के समान वृक्षादि को विनष्ट कर देते हैं, जिनके निकट लोग अत्रि के समान जाते हैं वे अग्नि हैं। वे दीप्तिमान अग्नि हविरन्न को ग्रहण करते तथा संसार का कल्याण करने वाले हैं। माता रूप अरणि ने उन्हीं अग्नि को उत्पन्न किया था ॥ ८ ॥ हे अग्ने! तुम हवि भक्षण करने वाले हो। तुम सबके धारणकर्त्ता हो। हमारी स्तुतियाँ तुमको प्रसन्न करने वाली हों। तुम स्तुति करने वालों को धन, अन्न और हार्दिक स्नेह प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे अग्ने! अन्यों द्वारा न

किए गए स्तोत्रों को उच्चारण करने वाले ऋषिगण तुमसे पशु प्राप्त करते हैं। जो अग्नि को हवियाँ नहीं देता उस दुष्ट को अग्नि अपने वश करें तथा अन्य विद्वेषियों को भी वशीभूत करलें ॥ १० ॥ [२४]

८ सूक्त

(ऋषि-इष आत्रेय: । देवता-अग्नि: । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती ।)

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२
त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४
त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५
त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७।२६

हे अग्ने ! तुम प्राचीन हो। तुम बलकारक हो। प्राचीन यज्ञ करने वाले तुम्हारा आश्रय प्राप्त करने के निमित्त तुम्हें भले प्रकार प्रज्वलित करते हैं। तुम अत्यन्त स्नेह देने वाले, यज्ञ के योग्य, वरण करने योग्य, अन्नवान गृह स्वामी हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम्हें यजमानों ने गृहपति के रूप से स्थापित किया है। तुम अतिथि के समान पूजनीय हो। तुम दीप्तियुक्त शिखा वाले, प्राचीन, ज्वालामय, धन देने वाले, सुख देने वाले, बहुरूप, मनुष्यों के रक्षक

एवं जीर्ण वृक्षों को भस्म करने वाले हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम शोभन धन के स्वामी हो। मनुष्य तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम यज्ञ-कर्म के ज्ञाता, रत्नदान करने वालों में श्रेष्ठ, गुफा में अवस्थित, प्रच्छन्न रहने वाले, सब के लिए दर्शनीय, शब्दयुक्त यज्ञ करने वाले तथा घृत के ग्रहण करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सबके धारणकर्त्ता हो। हम बहुत स्तोत्र और नमस्कार द्वारा पूजन करते हुए तुम्हारे समक्ष उपस्थित होते हैं। तुम हमको धन देते हुए प्रसन्न होओ। हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रज्ज्वलित होते हुए यजमानों की हवियों से प्रीति करने वाले होओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम विभिन्न रूप वाले होकर सभी यजमानों को पहले के समान अन्न देते हो। तुम बहुत बार पूजित हो। तुम अपने बल से ही बहुत अन्नों के अधीश्वर हो। तुम प्रकाश से युक्त हो तथा तुम्हारे प्रकाश को कोई रोक नहीं सकता ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा हो। तुम समान रूप से प्रज्ज्वलित होते हो। देवताओं ने तुम्हें हवि वहन करने वाला बनाया। देवताओं तथा मनुष्यों ने अत्यन्त वेगवान अग्नि को दर्शनीय, प्रदीप्त एवं बुद्धि का प्रेरक मानकर स्थापित किया ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! घृताहुति द्वारा सुख के इच्छुक यजमान तुम्हें प्रदीप्त करते हैं। सुन्दर काष्ठों द्वारा तुम्हें बढ़ाते हैं। तुम औषधियों द्वारा सींचे जाकर पृथिवी परके अन्नों में व्याप्त होते हुए विविध बलयुक्त कर्मों को करते हो ॥ ७॥ [२६]

॥ तृतीय अष्टक समाप्तम् ॥

चतुर्थ अष्टक

प्रथम अध्याय

६ सूक्त

(ऋषि–गय आत्रेयः। देवता–अग्नि। छन्द–उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती पंक्ति)

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजास श्रवस्यवः ॥ २

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्।
पुरु यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः।
यदमिह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥ ६

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७।१

हे अग्ने! तुम देवता हो। तुम प्रकाशमान हो। यज्ञ-साधन करने वाले पदार्थों से युक्त हुए मनुष्य तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम जीव मात्र के जानने वाले हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम यज्ञ-साधक हवियों के वहन करने वाले हो ॥ १ ॥ सभी यज्ञ जिन अग्नि का अनुगमन करते हैं, यजमान के

यश का सम्पादन करने वाले हव्य जिन अग्नि को प्राप्त होते हैं, वह अग्नि कुश उखाड़ने वाले यजमान के यज्ञ के निमित्त देवताओं को बुलाने वाले बनते हैं ॥ २ ॥ भोजनादि को पकाकर मनुष्यों का पोषण करने वाले तथा यज्ञ को सुशोभित करने वाले अग्नि को दो अरणियाँ शिशु के समान उत्पन्न करती हैं ॥ ३ हे अग्ने ! तुम टेढ़ी चाल वाले सर्प या अश्व के बालक के समान कठिनाई से धारण किए जाते हो । जैसे घास के ढेर पर छोड़ा हुआ पशु घास को खाता है, वैसे ही वन में छोड़े जाने पर तुम वन को भक्षण करते हो ॥ ४ ॥ अग्नि की शिखाएं धूम्रयुक्त होती हैं । वे सुन्दर रूप वाली सब ओर व्यापती हैं ! सर्वत्र व्याप्त अग्नि अपनी ज्वालाओं को अन्तरिक्ष की ओर उठाते हैं । जैसे कर्मकार भट्ठी में अग्नि को बढ़ाते हैं, वैसे ही कर्मकार द्वारा प्रकट किए गए अग्नि के समान अग्निदेव स्वयं अपने को तीक्ष्ण करते हैं ॥५॥ हे अग्ने ! तुज सब से मैत्री-भाव रखते हो । स्तुति करने पर तुम्हारे आश्रय द्वारा हम शत्रु-भाव रखने वाले व्यक्तियों के पाप-षड़यन्त्रों पर विजय प्राप्त करें । तुम्हारे रक्षा-साधनों के बल पर हम बाहरी और भीतरी शत्रुओं को जीतें ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले एवं सशक्त हो । तुम हमारे पास प्रसिद्ध धनों को ले आओ । हमारे शत्रुओं को हराकर हमारा पालन करो । युद्ध में हमारी समृद्धि के साधन उपलब्ध करते हुए हमको शोभन अन्न प्रदान करो ॥ ७ ॥ [१]

१० सूक्त

(ऋषि—गय आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती पंक्ति)

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यं मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥ २

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥ ३

ये अग्ने चन्द्र ते गिर शुम्भन्त्यश्वराधस ।
शुष्मेभि शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषा बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४
तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युत स्वानो रथो न वाजयु ॥ ५
नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ६
त्व न अग्ने अङ्गिर स्तुत स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासह रयि स्तोतृभ्य स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ । २

हे अग्ने हमारे लिये अत्यन्त श्रेष्ठ धन लेकर आओ। तुम्हारी गति कभी भी मन्द नहीं होती। तुम हमको सब जगह उपलब्ध होने वाले धन से परिपूर्ण करो। अन्न प्राप्त कराने के लिए हमारे लिए उत्तम मार्ग बनाओ ॥१॥ हे अग्ने ! तुम सब से अद्भुत हो। तुम हमारे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से प्रसन्न होते हुए हमको श्रेष्ठ धन प्रदान करो। तुम्हारा बल राक्षसों का संहार करने में समर्थ है। तुम आदित्य के समान उत्तम-कर्म को नित्य पूर्ण करते हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! प्रसिद्ध स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करने वाले साधकगण तुम्हारी स्तुति द्वारा उत्तम धन प्राप्त करते हैं। इसलिए हमारे निमित्त भी धन की वृद्धि करते हुए हमारा पोषण करो। हे अग्ने ! हम साधक भी तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सुखदाता हो। जो साधक तुम्हारी स्तुतियों का उच्चारण करते हैं, वे अश्व युक्त ऐश्वर्य लाभ करते हैं। वे साधक अत्यन्त शक्तिशाली होकर अपनी शक्ति से शत्रुओं को मारते हैं। उन्हें स्वर्ग से भी अधिक यश प्राप्त होता है। हे अग्ने ! तुमको गय नामक ऋषि ने चैतन्य किया था ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी चंचल गति वाली ज्वालाएँ, सर्वत्र स्थित विद्युत के समान तथा शब्द करते हुए रथ के समान एव अन्न की कामना से गमन करने वाले मनुष्यों के समान सर्वत्र जाती हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारी शीघ्र रक्षा करो। हमको धन देकर हमारे दारिद्र्य को दूर करो। हमारे पुत्रादि एव बांधव तुम्हारी स्तुति करते हुए अपनी कामनाओं को प्राप्त हों ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! प्राचीन महर्षियों ने तुम्हारा स्तव किया है

और अब के ऋषिगण भी तुम्हारा स्तवन करते हैं। जो धन ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को महान् बनाता है, वह धन हमारे लिए प्राप्त कराओ। तुम देवताओं को बुलाने वाले हो। हमको स्तुति करने में समर्थ करो। हम तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम हमको समृद्ध बनाओ ॥ ७ ॥ [२]

११ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती।)

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥
असम्मृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥ ३
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥ ४
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ५
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ ६ । ३

बलशाली अग्नि सदा प्रवृद्ध रहते हैं। वे सबकी रक्षा करने वाले हैं, वे जन-कल्याण के निमित्त प्रादुर्भूत हुए हैं। घृत द्वारा प्रज्वलित होने पर वे तेज से युक्त होते हैं तथा ऋत्विकों के लिए पवित्र दीप्ति से प्रकाशमान होते हैं ॥ १ ॥ अग्नि यजमानों द्वारा स्थापित होते हैं। वे यज्ञ के ध्वज रूप हैं। वे इन्द्रादि देवताओं के समान ही प्रभुता-सम्पन्न हैं। ऋत्विजों ने तीन स्थानों में उन्हें स्थापित किया था। वे देवताओं के बुलाने वाले तथा शुभ कर्मों के कर्त्ता हैं। वे यज्ञ-कर्म के लिए कुश पर स्थापित किए जाते हैं ॥ २ ॥ हे

अग्ने ! माता रूप दो अरणियों से तुम जन्म लेते हो । तुम विद्वान् एवं पवित्र-कर्मा हो । तुम यजमानों द्वारा प्रज्वलित किए जाते हो । तुम्हें प्राचीनकालीन ऋषियों ने भी घृत द्वारा प्रवृद्ध किया था । तुम हवियों के वहन करने वाले हो । अन्तरिक्ष तक जाने वाला तुम्हारा धूम्र ध्वज के समान महत्वशाली है ॥ ३ ॥ यज्ञ-स्थान में मनुष्य अग्नि की स्थापना करते हैं वे सब कार्यों को सिद्ध करने वाले हमारे यज्ञ में पधारें । वे हवियों के वहन करने वाले तथा देवताओं के दूत-स्वरूप हैं । स्तोतागण उन्हें यज्ञ का सम्पादन करने वाले मानते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! यह मधुर स्तोत्र तुम्हारे निमित्त प्रयुक्त हैं । यह स्तोत्र तुम्हारे हृदय को सुखी करे । जैसे समुद्र को नदियाँ परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ तुम्हें बलवान बनाती हुई परिपूर्ण करती हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम गुफा में रहते हुए वन के आश्रय में अवस्थान करते हो । तुम्हें अंगिराओं ने प्रकट किया था । तुम मंथन द्वारा महान बल के सहित प्रकट होते हो, इसी कारण तुम बल के पुत्र कहे जाते हो ॥ ६ ॥ [३]

१२ सूक्त

(ऋषि-सुतम्भर आत्रेयः । देवता-अग्निः । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप् ।)

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥ १
ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥ ३
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥ ४
सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥ ५
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।

तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥ ६ । ४

अग्निदेव अपने समार्थ्य से अत्यन्त महान्, कामनाओं के पूर्ण करने वाले वृष्टि करने में कारणभूत, तथा यज्ञ के योग्य हैं। यज्ञ में डाले गए पवित्र घी के समान हमारी स्तुतियाँ भी अग्नि को प्रसन्न करने वाली हों ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमारी स्तुतियों को जानो और इन्हें ग्रहण करो। तुम प्रचुर जल-वर्षा के लिये हमारे अनुकूल होओ। हम यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाला कोई कार्य नहीं करते और न विधान के विरुद्ध ही कोई कार्य करते हैं। हे अग्ने ! तुम अभीष्ट पूरक एवं प्रकाशमान् हो। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम जल वर्षा करने वाले हो, तुम स्तुति के पात्र हो, तुम हमारे किस श्रेष्ठ अनुष्ठान द्वारा हमारी स्तुतिओं को जानोगे ? तुम ऋभुओं की रक्षा करने वाले हो। हमको जानने वाले होओ। हम तुम्हारा भजन करते हैं क्या हम अपने पशु आदि धनों के रक्षक अग्निदेव को नहीं जानते ? ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! लोकों की रक्षा करने वाला कौन है ? शत्रुओं को बाँधने वाला कौन है ? प्रकाशमान् एवं प्रदाता कौन है ? असत्य व्यवहार करने वाले से रक्षक कौन हैं ? अर्थात् इसका विवेचन करते हुए शुभाचरण करने वालों की रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने तुम्हारे यह मित्र जन पहले तुम्हारी स्तुति नहीं करते थे, इसलिए दुःख पाते थे। फिर तुम्हारी उपासना करके हृष्ट सुखी हुए। हम सर्वदा सत्य आचरण करने में तत्पर रहते हैं। फिर भी जो व्यक्ति अपने अविवेक से हमको बुरा कहें, वह स्वयं अपने ही वचनों द्वारा विनष्ट हो जाँय ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो। तुम इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हो। जो साधक अन्तःकरण द्वारा तुम्हारे यज्ञ का पालन करता हुआ तुम्हें पूजता है, उसका घर सम्पन्न होजाता है। जो तुम्हारी भले प्रकार सेवा करता है वह यजमान अभीष्ट सिद्ध करने वाला पुत्र-रत्न प्राप्त करता है ॥ ६ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　[४]

१३ सूक्त

(ऋषि–सुतम्भर आत्रेयः। देवता–अग्निः। छन्द–गायत्री।)

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि। अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृश.। देवस्य द्रविणस्यवः ॥ २
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ ३
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्य.। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५
अग्ने नेमिरराँ इव देवांस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥ ६।५

हे अग्ने ! हम तुम्हारा पूजन करते हुए तुम्हें बुलाते हैं तथा स्तुति करते हुए हम साधक अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हें चैतन्य करते हैं ॥ १ ॥ हम धन के इच्छुक होकर आकाश को छूने वाले एवं प्रकाशमान अग्नि की बल प्रदात्री स्तुति का उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥ मनुष्यों के मध्य स्थापित हुए जो अग्नि देवताओं को आहूत करते हैं, वे अग्नि हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें। वे अग्नि यज्ञ साधक द्रव्यों के ज्ञाता देवताओं के पास हमारी स्तुतियों को पहुँचावें ॥ ३ ॥ हे अग्ने तुम यशस्वी और महान् हो। तुम आदरणीय होता और सब के द्वारा वरण करने योग्य हो। तुमको प्राप्त कर साधक मनुष्य अपने यज्ञादि कर्मों को पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति के पात्र एवं अन्न प्रदान करने वाले हो। स्तुति करने वाले विद्वान् तुम्हें सुन्दर स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं। हे अग्ने ! तुम हमको श्रेष्ठ पराक्रम के प्रदाता होओ ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जिस प्रकार परिधि चक्र के अरों से सब ओर लगी रहती है, उसी प्रकार तुम देवताओं के पालक हो। तुम हमको सब प्रकार के अद्भुत ऐश्वर्यों को प्रदान करो ॥ ६ ॥ [५]

१४ सूक्त

(ऋषि–सुतम्भर आत्रेयः। देवता–अग्निः। छन्द–गायत्री)

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १
तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २
तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।
अविन्दद् गा अपः स्वः ॥ ४

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५
अग्नि घृतेन वावृधु: स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ । ६

हे मनुष्यो ! अविनाशी गुण वाले अग्नि को स्तोत्र द्वारा चैतन्य करो । प्रज्वलित होने पर वे दिव्य पदार्थों के धारण करने वाले होते हैं । वे हमारे लिये हव्य वहन करते हैं ॥ १ ॥ प्रकाशमान्, अविनाशी, मनुष्यों में आराधन करने के योग्य अग्नि की साधकगण यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ अनेक स्तुति करने वाले साधक घृत युक्त स्रुक सहित देवताओं को हवियाँ पहुँचाने के निमित्त प्रकाशमान अग्नि का स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि अरणियों के मंथन से आविर्भूत होते हैं । वे अपने प्रकाश से अँधेरे को दूर करते हैं तथा यज्ञ में अनिष्ट करने वाले राक्षसों का नाश करते हुए प्रदीप्त होते हैं । किरण, जल और प्रकाश अग्नि के द्वारा ही प्रकट हुए हैं ॥ ४ ॥ हे साधको ! इन मेधावी तथा अराधन करने के योग्य अग्निदेव का पूजन करो । वे घृत की आहुति से प्रदीप्त होते हुए ऊँचे उठते हैं । वे अग्नि हमारे स्तुति वचनों को श्रवण करें ॥ ५ ॥ घृत तथा स्तोत्रों द्वारा ऋत्विग्गण स्तुतियों की कामना करने वाले, सब के द्रष्टा अग्नि को संवर्द्धित करें ॥ ६ ॥ [६]

१५ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-धरुण आङ्गिरसः । देवता-अग्निः । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजातां अभि ये ननक्षुः ॥ २
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ । ७

घृत रूप हवि से अग्नि प्रसन्न होते हैं । वे अत्यन्त बलशाली, कल्याण रूप, धनों के स्वामी, निवासप्रद, हवियों के वहन करने वाले, स्तुतियों के पात्र, उज्वलदर्शी, श्रेष्ठ एवं तेजस्वी हैं । उन अग्निदेव के निमित्त हम स्तोत्र रचते हैं ॥ १ ॥ जो यजमान आकाश के धारण करने वाले, यज्ञस्थल में स्थापित होने वाले, नेता रूप देवगण को ऋत्विकों द्वारा आहूत करते हैं, वे यजमान यज्ञ के धारण करने वाले सत्य स्वरूप अग्नि को यज्ञस्थान में श्रेष्ठपद पर स्तुति द्वारा स्थापित करते हैं ॥ २ ॥ जो यजमान दैत्यों द्वारा दुष्प्राप्य हव्य अग्नि के लिए देते हैं, वे यजमान पवित्र होते हैं । नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंह के समान शत्रुओं को भगावें । जो शत्रु मेरे चारों ओर वर्तमान हैं, वे मुझसे दूर चले जाँय ॥ ३ ॥ अग्नि सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । वे प्राणीमात्र की माता के समान पावन करते हैं । उनकी रक्षा तथा दर्शन के लिए सभी उनकी स्तुति करते हैं । जब वे धारण करने में समर्थ होते हैं तब सब अन्नों को जीर्ण करते हैं । वे हर प्रकार के बल को पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो । कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा धन के धारण करने वाले हविरन्न तुम्हारे बल को पुष्ट करें । जैसे कोई अपहृत धन को छिपा कर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम प्रचुर परिमाण में धन प्राप्त कराने के लिए सुन्दर मार्ग दिखाओ ॥ ५ ॥ [७]

१६ सूक्त

(ऋषि–पूरुरात्रेयः । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥
सहि द्युभिर्जनाना होता दक्षस्य बाह्वोः ।

वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५।८

जिन मित्रभूत अग्नि की उत्तम स्तुतियों द्वारा साधकगण स्तुति करते हैं और उन्हें वेदी में स्थापित करते हैं, उन प्रकाशमान अग्नि के लिए हवियाँ दी जाती हैं ॥ १ ॥ जो अग्नि अपने भुज-बल के तेज से युक्त हैं तथा जो देवताओं के लिये हवि वहन करते हैं, वे अग्नि यजमानों के लिए देवताओं को बुलाते हैं। वे साधकों को सूर्य के समान, वरण करने योग्य धनों को प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ सभी ऋत्विक् हवि और स्तुतियों के दान द्वारा, शब्द करने वाले अग्नि को भले प्रकार पुष्ट करते हैं, उन्हीं बढ़े हुए तेज वाले और ऐश्वर्य सम्पन्न अग्नि की हम स्तुति करते हैं। उन अग्नि के साथ हम सख्य-भाव रखते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! सब के द्वारा कामना किया हुआ धन हम यजमानों को दो। जैसे महान् सूर्य पर पृथिवी और आकाश आश्रित हैं, वैसे ही तुम महान् के आश्रय से हम अन्न और धन प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने हम यजमान तुम्हारा स्तवन करते हैं। हमारे यज्ञ में तुम शीघ्र ही आगमन करो। हमारे लिए वरण करने योग्य धनों को प्राप्त कराओ। हम यजमान स्तोताओं को तुम युद्ध क्षेत्र में रक्षा साधनों से सम्पन्न करो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [८]

१७ सूक्त

(ऋषि–पूरु रात्रेयः । देवता–अग्निः । छन्द–उष्णिक, अनुष्टुप् बृ ःतो)

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥ १

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५।६

हे देव ! मनुष्यगण रक्षा और ज्ञान के निमित्त उत्तम बल वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं और ऋत्विगगण ! अपने तेज से प्रवृद्ध अग्नि को स्तुतियों से सन्तुष्ट करने के लिए यज्ञ में बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे धर्म का अनुष्ठान करने वाले स्तोतागण ! तुम्हारा यज्ञ-कार्य श्रेष्ठ है, जिन अग्नि का अद्भुत तेज है, जो स्तुति के योग्य हैं तथा जो सदा दुर्गों से दूर रहते हैं, उन अग्नि की तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धि और सुन्दर वचन द्वारा स्तुति करते हो ॥ २ ॥ जो संसार की रक्षा करने वाले बल से परिपूर्ण हैं, जो सूर्य के समान प्रकाशमान् हैं, जिनकी प्रदीप्ति संसार में व्याप्त है, जिन अग्नि की कान्ति संसार में प्रकाशित होती है, उन अग्नि के तेज से ही सूर्य भी प्रकाशमय होते हैं ॥ ३ ॥ श्रेष्ठ बुद्धि वाले ऋत्विगगण उन तेजस्वी अग्नि का ही पूजन करते हुए रथ युक्त धन-लाभ करते हैं । यज्ञ के लिए आहूत किये जाने वाले अग्नि आविर्भूत होते ही सब मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जिस धन को साधकगण तुम्हारी पूजा करते हुए प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमको भी शीघ्र प्रदान करो । हमको कामना किया हुआ अन्न दो । हमारी रक्षा करो । कल्याणकारी सुन्दर पशुओं की हम तुमसे कामना करते हैं । हे अग्ने ! युद्ध भूमि में उपस्थित रहते हुए तुम हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [६]

१८ सूक्त

(ऋषि—द्वितो आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।

विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५ ।१०

हे अग्ने! तुम बहुतों के प्रिय हो। यजमानों को धन देने के लिए उनके घरों में जाते हो। इन अग्नि को प्रातः सवन में प्रज्ज्वलित किया जाता है। अमरत्व गुण वाले अग्नि यजमानों में प्रतिष्ठित होकर हविरन्न की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने! अत्रि पुत्र द्वित तुम्हारे लिये पवित्र हवि पहुँचाते हैं। तुम उनको अपने समान बल दो। क्योंकि वे सदैव ही तुम्हारे लिए सोम-रस लेकर उपस्थित होते और तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम अश्व देने वाले, लम्बी चाल वाले तथा तेजस्वी हो। हम अपने सम्पन्न यज-मानों के लिए तुम्हें स्तोत्र द्वारा बुलाते हैं, जिससे उन यजमानों का रथ अहिंसित होता हुआ रणक्षेत्र में बढ़ता चला जाय ॥ ३ ॥ जो ऋत्विक् अनेक यज्ञ-कार्यों को सम्पन्न करते हैं, जो स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए उनकी रक्षा करते हैं (अर्थात् उन्हें भूलते नहीं), उन ऋत्विकों द्वारा यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में कुश के आसनों पर श्रेष्ठ हविरन्न स्थापित किया जाता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने! तुम अविनाशी हो। तुम्हारी स्तुति के पश्चात जो यज-मान मुझ स्तोता को पचास घोड़े दान स्वरूप दे, तुम उस दानी मनुष्य को दासादि से युक्त यशस्वी अन्न-धन दो ॥ ५ ॥　　[१०]

१६ सूक्त

(ऋषि—वव्रिरात्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप उष्णिक् पंक्तिः)

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥१

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३
प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४
क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५ ॥११

पृथिवी रूप माता के निकट अवस्थित होकर जो अग्नि पदार्थ मात्र को देखते हैं, वे अग्नि वत्रि ऋषि की संकटमय दशा को जानते हुए उनकी हवियाँ ग्रहण करें और उन पर कृपा करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो साधक तुम्हारे प्रभाव को जान कर यज्ञ के लिए तुम्हें बुलाते हैं एवं जो साधक हविरन्न देते हुए स्तुतियों द्वारा तुम्हारे बल को पुष्ट करते हैं, वे शत्रुओं के दुर्गम दुर्गों में निःशंक घुस जाते हैं ॥ २ ॥ स्तोत्र रचयिता मेधावीजन, अन्न की कामना करने वाले, कंठ में सुवर्ण-रत्नादि के अलंकार धारण करने वाले, जन्म लेने वाले विद्वान् मनुष्य अन्तरिक्ष में स्थित विद्युत रूप अग्नि की शक्ति को स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ दूध-मिश्रित हविरन्न को जठरस्थ करने वाले अग्नि, शत्रुओं द्वारा अहिंसित हैं और शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ हैं। आकाश और पृथिवी के सहायक वे अग्नि दूध के समान उज्ज्वल और दोष-रहित रहते हुए हमारी स्तुति श्रवण करें ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रदीप्तिमय हो। तुम अपने भस्म करने वाले गुण से वन में क्रीडा करते हो। तुम वायु के प्रेरण से प्रवृद्ध होकर हमारे सामने प्रतिष्ठित होओ। तुम्हारी जो ज्वालाएँ शत्रु का नाश करने वाली हैं, वे हम यजमानों के लिए शीतल हों ॥ ५ ॥ [११]

२० सूक्त

(ऋषि—प्रयस्वन्त आत्रेयाः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप, पंक्ति)

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।

तं नो गोभिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२
होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३
इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम
सधमादः ॥४ ।१२

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त अन्न-दान करने वाले हो । हमारा दिया हुआ जो हविरन्न तुम्हारे तुम्हारे पास है, उसे हमारी स्तुतियों सहित देवताओं के पास ले जाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो व्यक्ति पशु आदि धन से सम्पन्न होकर भी तुम को हवि नहीं देता वह अन्न और वल से विहीन होता है । जो व्यक्ति वेद-विरुद्ध कार्य करता है, वह तुम्हारा विरोधी बन कर तुम्हारे द्वारा विनष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम वल का साधन करने वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हो । हम अन्न से सम्पन्न हुए मनुष्य तुम्हारा वरण करते है । हम अपने यज्ञ-कर्म में तुम श्रेष्ठ अग्निदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो । जिस कार्य द्वारा हम नित्य प्रति तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते रहें, वही कार्य करो । हे सुन्दर कर्म वाले अग्निदेव ! जिससे हम यज्ञ कर सकें और धन-लाभ करें, वही कार्य करो । हम गौ तथा वीर पुत्रों को प्राप्त करें, ऐसी कृपा करो ॥ ४ ॥　　[१२]

२१ सूक्त

(ऋषि—सस आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१
त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२

त्वा विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३
देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्ध शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४ ।१३

हे अग्ने ! हम तुम्हें मनु के समान स्थापित करते हुए प्रज्वलित करते हैं । तुम देवताओं की कामना करने वाले मनुष्यों के निमित्त देव-यज्ञ को सम्पन्न करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा प्रज्वलित होते हुए मनुष्यों के लिए तेजस्वी बनते हो । घृत से युक्त हवियाँ तथा घृत युक्त पात्र तुमको निरन्तर पुष्ट करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्निदेव ! तुम सुन्दर कान्ति वाले हो । सब देवताओं ने प्रसन्नता-पूर्वक तुम्हें अपना दूत नियुक्त किया था, इसीलिए यज्ञानुष्ठान करने वाले साधक देवताओं का आह्वान करने के लिये तुम्हारा यज्ञ करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो । देवताओं के यज्ञ में तुम्हारी स्तुति की जाती है । तुम हव्य द्वारा बढ़ कर प्रदीप्ति युक्त होओ । "सस" ऋषि के स्वर्ग-कामना वाले यज्ञ में तुम प्रतिष्ठित होओ ॥४॥ [१३]

२२ सूक्त

(ऋषि-विश्वसामा आत्रेयः । देवता-अग्निः । छन्द-अनुष्टुप, उष्णिक्, बृहती)

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४ ।१४

हे विश्व भर के साम के ज्ञाता ऋषि ! तुम अत्रि के समान पवित्र दीप्ति

वाले अग्नि का पूजन करो। वे सब ऋत्विकों द्वारा यज्ञ में स्तुति के पात्र हैं। वे देवताओं को बुलाने वाले तथा पूजनीय हैं ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! सब ज्ञानों के ज्ञाता, तेजस्वी, यज्ञकर्त्ता अग्नि को वरण करो, जिससे देवताओं के लिए प्रिय तथा यज्ञ के साधन रूप हव्य को हम अग्नि के लिए प्रदान करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो। तुम ज्ञान से युक्त हो। हम तुम्हारी रक्षा की याचना के लिये उपस्थित हैं। हम तुम्हे संतुष्ट करने के लिए तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम बली हो। तुम हमारे सेवा रूप स्तोत्र को जानो। तुम सुन्दर ठोडी, नासिका से युक्त हो। तुम गृहपति के समान हो। तुम्हें अत्रि वंशज स्तोत्रों से बढ़ाते और वाणी से विभूषित करते हैं ॥४॥ [१४]

२३ सूक्त

(ऋषि—द्युम्नो विश्वचर्षणिः। देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति)

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ॥ २
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः।
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४ ।१५

हे अग्ने ! मुझ "द्युम्न" ऋषि को, शत्रुओं को जीतने वाला एक वीर पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र स्तुतियों से पूर्ण होकर रणक्षेत्र में समस्त शत्रुओं को वशीभूत करे ॥१ ॥ हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो। तुम सत्य के कारण रूप तथा गवादि युक्तधनों के देने वाले हो। तुम ऐसा एक पुत्र दो जो सभी सेनाओं को वश में कर सके ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले तथा सबका कल्याण करने वाले हो। कुश को उखाड़ने वाले, समान प्रीति वाले ऋत्विक् यज्ञ स्थान में तुम से, वरण करने योग्य धन माँगते

हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! विश्वचर्षणि ऋषि शत्रुओं का संहार करने वाले बल को धारण करें। हे तेजस्विन् ! तुम हमारे घर में धन से सम्पन्न तेज फैलाओ। हे अग्ने ! तुम पापों का नाश करने वाले हो। तुम तेज और यश से युक्त हुए सर्वत्र प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥ [१५]

२४ सूक्त

(ऋषि—बन्धु सुबन्धु । देवता—अग्नि । छन्द—बृहती)

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्य ॥१
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तम रयिं दा ॥२
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायत समस्मात् ॥ ३
त त्वा शोचिष्ठ दीदिव सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्य ॥४ ॥१६

हे अग्ने ! तुम हमारे समीप रहने वाले होओ। तुम सम्भजनीय हो। हमारी रक्षा करने वाले तथा हमारा कल्याण करने वाले हो। हे अग्ने ! तुम उत्तम घर और अन्न के देने वाले हो। तुम हमारे अनुकूल होओ। तुम अत्यन्त उज्ज्वल एव पशु युक्त सुन्दर धन हमको दो ॥ १-२ ॥ हे अग्ने ! हमको जानने वाले होओ। हमारे आह्वान को सुनो। सब पापाचार करने वाले दुष्टों से हमारी रक्षा करो। हे अग्ने ! तुम अपने ही तेज से प्रकाशमान हो। हम अपने सुख के लिए तथा सुन्दर पुत्र के लिए तुमसे याचना करते हैं ॥ ३-४ ॥ [१६]

२५ सूक्त

(ऋषि—वसूयव आत्रेया । देवता—अग्नि । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्)

अच्छा वो अग्निमवसे देव गासि स नो वसु ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विष ॥१
स हि सत्यो य पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतार मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२
स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।

अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४
अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५ ।१७

हे ऋषियो ! आश्रय-प्राप्ति के लिए अग्नि की स्तुति करो । यज्ञ के लिये यजमानों के गृह में निवास करने वाले अग्नि हमारी अभिलाषा पूरी करें । सत्य से युक्त अग्निदेव शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥ प्राचीन कालीन ऋषियों और देवताओं ने जिन अग्नि को प्रज्वलित किया था, जो अग्नि मोदन जिह्व, अत्यन्त आभा वाले, शोभायमान प्रकाश वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हैं, वे अग्नि सत्य संकल्प से परिपूर्ण हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा स्तुत तथा वरण करने योग्य हो । तुम हमारे अनुष्ठानादि श्रेष्ठ कर्म और स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ३ ॥ जो अग्नि देवताओं में देव-रूप से ही प्रकाशित होते हैं, जो मनुष्यों में आहूत हो कर आते हैं तथा जो हमारे यज्ञों में देवताओं को हवि पहुँचाते हैं, उन अग्नि की स्तुति द्वारा पूजा करनी चाहिये ॥ ४ ॥ वे अग्नि हविदाता यजमानों को ऐसा पुत्र दें, जो विभिन्न अन्नों से युक्त बहुत स्तोत्रों का कर्त्ता, शत्रुओं द्वारा हिंसित न होने वाला तथा अपने श्रेष्ठ कर्मों से पितृजनों के यश को फैलाने वाला हो ॥ ५ ॥ [१७]

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८
एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९ ।१८

अग्नि हमको सत्य-पालक, शत्रुओं को वशीभूत करने वाला तथा कुटुम्बियों का साथ निवाहने वाला एक पुत्र दें और शत्रुओं को जीतने वाला शीघ्रगामी एक अश्व भी प्रदान करें ॥ ६ ॥ अग्नि के निमित्त सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र ही निवेदन किया जाता है। हे अग्ने! तुम तेजोमय ऐश्वर्य से युक्त हो। हमको प्रचुर धन दो क्योंकि समस्त धन और अन्न तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी शिखायें प्रदीप्ति से युक्त हैं। तुम शत्रुओं को शिला के समान चूर्ण करने में समर्थ हो। तुम प्रकाश से पूर्ण हो। तुम्हारा शब्द मेघ के समान गर्जनशील है ॥ ८ ॥ धन की कामना करने वाले हम मनुष्य बलशाली अग्नि की भली प्रकार स्तुति करते हैं। सुन्दर कर्म वाले अग्नि हमको सब शत्रुओं से बचावें, जैसे नदी में नाव पार करती है ॥ ९ ॥ [१८]

२६ सूक्त

(ऋषि—वसूयव आत्रेयाः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥ २
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये। होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ । १९

हे अग्ने! तुम पवित्र करने वाले और दीप्तिमान् हो। तुम देवताओं को पुष्ट करने वाली जिह्वा और अपनी प्रदीप्ति सहित प्रकाशमान् होते हुए देवताओं को यज्ञ में लाओ तथा उनके निमित्त यज्ञ करो ॥ १ ॥ हे अग्ने! तुम घृत से प्रदीप्त होने वाली किरणों से युक्त हो। तुम सब के देखने वाले हो। हव्य-भक्षण करने के लिये देवताओं को बुलाने की हम तुमसे स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम ज्ञान से सम्पन्न, हवियों को भक्षण करने वाले, प्रदीप्तियुक्त एवं महान् हो। हम तुम्हें अपने यज्ञ स्थान में उत्तम प्रकार से प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम हविदाता साधक के यज्ञ में सब

देवताओं के साथ पधारो । तुम देवताओं को बुलाने में समर्थ हो, इसलिये हम तुम से देवाह्वान की याचना करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ करने वाले यजमान के लिए श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करो और विद्वज्जनों के मध्य श्रेष्ठ आसन पर आदरपूर्वक विराजमान होओ ॥ ५ ॥ [१६]

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६
न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता । देवमृत्विजम् ॥ ७
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८
एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥ ९ । १०

हे अग्ने ! तुम सहस्रों को पराजित करने में समर्थ हो । हव्य द्वारा प्रदीप्त और प्रवृद्ध होकर तथा देवताओं के दूत होते हुये तुम हमारे यज्ञानुष्ठान को सम्पुष्ट करने वाले हो ॥ ६ ॥ हे यजमानो ! अग्नि की स्थापना करो । वे जीव मात्र के ज्ञाता, यज्ञ के साधनभूत तथा युवा पुरुषों में श्रेष्ठ, अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥ ७ ॥ स्तोताओं द्वारा दी जाने हवियाँ आज देवताओं के पास पहुँचे । हे ऋत्विग्गण ! तुम उन अग्निदेव के विराजमान होने के लिये पवित्र कुश को बिछाओ ॥ ८ ॥ मरुद्गण, अश्विद्वय, मित्र, वरुण इस श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठित हों और सभी देवता अपने परिजनों सहित यहाँ आकर विराजमान हों ॥ ९ ॥ [२०]

२७ सूक्त

(ऋषि-त्र्यरुण, त्रसदस्यु, पौरुकुत्स, अश्वमेध । देवता-अग्निः ।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ २
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।

यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥ ३

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दहदृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ । २१

हे मनुष्यों में अग्र पुरुष अग्ने ! तुम सज्जनों के पालनकर्त्ता, ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् हो। "त्रिवृष्ण" के पुत्र "त्र्यरुण" नामक ऋषि ने दो बैल जुड़ी गाड़ी में दस हजार सुवर्ण मुद्रा रख कर मुझे दी थीं। इससे वे सब लोगों में प्रसिद्ध होगए थे ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मुझे जिस "त्र्यरुण" ने शत सुवर्ण, बीस धेनु और रथ संयुत दो सुन्दर अश्व प्रदान किये थे, उसके लिए, तुम हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हव्य द्वारा बढ़ते हुये सुख प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हम अधिक संतान वालों की स्तुतियों से प्रसन्न हुए त्र्यरुण ने हमको 'यह ले लो, वह ले लो' कहा था, उसी प्रकार तुम्हारी स्तुति की इच्छा करने वाले "त्रसदस्यु" ने भी 'यह ले लो, वह ले लो' कहते हुए दान ग्रहण करने की प्रार्थना की थी ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जब कोई भिक्षा माँगने वाला तुम्हारा स्तोत्र पढ़ता हुआ धन-दान देने वाले राजर्षि अश्वमेध से धन माँगता है, तभी वे उसे धन प्रदान करते हैं। हे अग्ने ! यज्ञ की कामना करने वाले अश्वमेध को तुम यज्ञ-कर्म में प्रेरित करो ॥ ४ ॥ राजर्षि अश्वमेध द्वारा दिये हुये सौ बैलों को पाकर हम प्रसन्न होगए। हे अग्ने ! दही, सत्तू और दुग्धादि तीनों द्रव्यों से युक्त सोम के समान वे बैल उपभोग करने के योग्य हों ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! हे अग्ने ! माँगने वाले को असीमित धन प्रदान करने वाले राजर्षि अश्वमेध को अन्तरिक्ष में अवस्थित आदित्य के समान सुन्दर पराक्रम, उज्ज्वल यश और कभी भी क्षीण न होने वाला धन देकर महान् बनाओ ॥ ६ ॥ [२१]

२८ सूक्त

(ऋषि—विश्ववारात्रेयी । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥ २
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३
समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४
समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५
आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६ । २२

भले प्रकार प्रकाशित हुये अग्निदेव उज्ज्वल अंतरिक्ष में अपने तेज से प्रकाश फैलाते हैं और उषा के सामने ही बढ़ते हुए अत्यन्त सुशोभित होते हैं । इन्द्रादि देवताओं को नमन करती हुई पुरोडाश आदि से युक्त, घृतादि पदार्थ को देह पर मलने के समान आभायुक्त उषा ऐश्वर्य से युक्त हुई प्राची की ओर से झाँकती हुई निकलती है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर अमृत पर प्रभुत्व करने वाले होते हो । तुम हवि प्रदान करने वाले यजमान के द्वारा सुखकारी कार्यों की इच्छा से बुलाये जाते हो । तुम जिस यजमान पर अनुग्रह करते हो उसके लिये पशु आदि से युक्त धन के धारण करने वाले हो । हे अग्ने ! तुम्हारे सत्कार के योग्य हविरन्न को यजमान तुम्हारे लिये अर्पित करता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे धन और ऐश्वर्य की रक्षा के लिये शत्रुओं को पराजित करो । तुम्हारा तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है । हे अग्ने ! तुम स्त्री-पुरुषों के दाम्पत्य-संबंध को सुदृढ़ करने के लिये श्रेष्ठ संस्कार करो । तुम शत्रुओं के तेज को पराभूत करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जब तुम प्रज्वलित होकर तेजोमय होते हो, तब मैं तुम्हारे उस तेज की सुन्दर स्तुति करती हूँ ।

तुम बलवान एवं प्रजाओं के निमित्त सुखों की वर्षा करने वाले हो। तुम हमारे यज्ञानुष्ठान में अत्यन्त प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने! तुम यज-मानों द्वारा बुलाये जाते हो, तुम श्रेष्ठ यज्ञों के साधक हो। तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर इन्द्रादि देवताओं के निमित्त यज्ञ करो। तुम हव्य-वहन करने में समर्थ हो ॥ ५ ॥ हे ऋत्विको! तुम हमारे यज्ञ-कार्य में लग कर हवि वहन करने वाले अग्नि के लिये यज्ञ करो, और उनकी सेवा करते हुए स्तुति करो। देवताओं को हवि पहुँचाने के लिये उन्हें वरण करो ॥ ६ ॥ [२२]

२९ सूक्त

(ऋषि–गौरिवीति । देवता–देवता–इन्द्रः उशना । छन्द–पंक्तिः त्रिष्टुप्)

अयंमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २
उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३
आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ ५ । २३

हे इन्द्र! सुन्दर बलवाले मरुद्गण तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम मेधावी हो। मनु-सम्बन्धी यज्ञ में जो तीन गुण और तीन साधन हैं, उनको देवताओं के कार्य में धारण करें ॥ १ हे जब इन्द्र सुसिद्ध सोम को पीकर तृप्त होगए, तब मरुद्गण ने उनकी स्तुति की। फिर इन्द्र ने वज्र उठाकर वृत्र का संहार किया और उसके द्वारा रोके गए महान् जल-समूह को स्वेच्छा से प्रवाहित होने के लिए छोड़ दिया ॥ २ ॥ हे महान् मरुद्गण! तुम सब और इन्द्र हमारे इस स्वच्छ सोम-रस को भले प्रकार पान करो। तुम इस

सोमयुक्त हवि का सेवन करते हुए यजमान को गौएं प्राप्त कराओ। इसी सोमरस का पान करके हृष्ट हुए इन्द्र ने वृत्र का संहार किया था ॥ ३ ॥ सोम पीने के पश्चात् ही इन्द्र ने आकाश और पृथिवी को अचल किया, इन्द्र ने मृग के समान भागते हुए वृत्र को डराया। उस समय वह छिपा हुआ, भयभीत होकर श्वास छोड़ रहा था। तब इन्द्र ने उसे माया रहित करके मार डाला ॥ ४ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तुम्हारे इस कर्म से प्रसन्न हुए देवताओं ने तुम्हें सोम-रस पीने को प्रदान किया। तुमने "एतश" के लिए, सामने आये हुए सूर्य के घोड़ों का चलना रोक दिया ॥ ५ ॥ [२३]

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥ ६
सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥ ७
त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८
उशना यत्सहस्यै रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥ १० । २४

जब महापराक्रमी इन्द्र ने "शम्बर" के निन्यानवे पुरों को एक समय में ही ध्वंस कर डाला, तब रणक्षेत्र में ही मरुद्गण ने त्रिष्टुप् छन्द में इन्द्र की स्तुति की। इस प्रकार मरुद्गण के स्तोत्र द्वारा पूजित होने पर इन्द्र ने "शम्बर" को वशीभूत किया ॥ ६ ॥ इन्द्र के सखा रूप अग्नि ने तीन सौ शक्तिशाली महिषों को कार्यक्षम बनाया और परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने वृत्र-नाश के लिए मनुष्यों द्वारा तीन पात्रों में रखे हुए सोम-रस को एक समय में ही पान कर लिया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! जब तुमने तीन सौ महिषों को स्वीकार किया और पराक्रम से युक्त होकर तीन पात्रों में रखे सोम-रस

का पान किया, तब तुमने वृत्र का हनन किया। उस समय सब देवताओं ने सोम-पान से हृष्ट हुए इन्द्र को युद्ध लिए बुलाया, जैसे स्वामी अपने कार्यकर्त्ता को बुलाते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम और "उशना" दोनों ही अब द्रुतगामी घोड़ों पर चढ़कर "कुत्स" के घर गए थे, तब तुमने शत्रुओं को मारा और "कुत्स" तथा देवताओं के साथ एक रथ पर चढ़े थे। हे इन्द्र ! तुमने ही दैत्य "शुष्ण" का हनन किया था ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने ही प्रथम सूर्य के रथ के दो पहियों में से एक को अलग किया और दूसरे पहिए को धन-प्राप्ति के निमित्त "कुत्स" को प्रदान किया। तुमने चुपचाप खड़े हुए हतप्रभ राक्षसों को युद्ध क्षेत्र में अपने वज्र से मार डाला ॥ १० ॥ [२४]

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११
नवग्वास. सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३
एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ । २५

हे इन्द्र ! "गौरिवीति" ऋषि के स्तोत्र से तुम बढ़ो। तुमने "विदथि-पुत्र ऋजिश्वा" के लिए "पिप्रु" नामक दैत्य को हराया। "ऋजिश्वा" ने तुम्हारी मित्रता के लिए पुरोडाश परिपक्व कर उपस्थित किया था और तुमने "ऋजिश्वा" द्वारा समर्पित सोम का पान किया था ॥ ११ ॥ नौ अथवा दश महीनों में सम्पूर्ण होने वाले यज्ञ के करने वाले अङ्गिरा ऋषि सोम सिद्ध कर के पूजन के योग्य स्तोत्र से इन्द्र का स्तवन करते हैं। स्तव करते हुए अङ्गि-राओं ने असुरों द्वारा छिपाई हुई गौओं को छुड़ाया था ॥ १२ ॥ हे इन्द्र !

तुम ऐश्वर्यशाली हो। तुमने जिस पराक्रम को प्रकट किया था, उसे जानते हुए भी हम किस वाणी से कहें ? तुम जिस नवीन बल को प्रकट करोगे, उसका कीर्तन हम अपने यज्ञ में करेंगे ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं द्वारा नहीं रोके जा सकते। तुमने अपनी शक्ति से लोकों को दृश्यमान किया है। तुम वज्रधारी हो शत्रुओं का नाश करते हुए जिस बल को दिखाते हो, उस बल का निवारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ १४ ॥ हे अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र ! हमने आज तुम्हारे लिए जिन नवीन स्तोत्रों की रचना की है, उन सब स्तोत्रों को स्वीकार करो। हम सुन्दर कर्म वाले स्तोता धन की अभिलाषा करते हैं। हम वस्त्र और रथ की तरह अपने सुन्दर स्तोत्रों को तुम्हारे निमित्त समर्पित करते हैं ॥ १५ ॥ [२५]

३० सूक्त

(ऋषि—बभ्रुरात्रेयः। देवता-इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, ।)

क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२
प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४
परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥२६

बहुतों द्वारा बुलाए जाने वाले वज्रधारी इन्द्र देने योग्य धनों के साथ सोम सिद्ध करने वाले यजमान की कामना करते हुए, रक्षा-साधनों सहित उसके घर में जाते हैं। वे बलवान इन्द्र कहाँ है ? अपने दोनों अश्वों को रथ में जोड़कर जाने वाले इन्द्र को कौन देखता है ? ॥ १ ॥ हमने इन्द्र के सब

स्थानों को देखा है। खोज करते हुए हम आश्रय रूप इन्द्र के स्थान में पहुँचे। हमने इन्द्र के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों से भी जानकारी प्राप्त की। ज्ञान की कामना करने वाले याज्ञिकों ने बतलाया कि हमने इन्द्र को प्राप्त कर लिया है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जिन कामों को किया, उनका वर्णन सोम सिद्ध करने पर हम स्तुति करने वाले करते हैं। तुमने हमारे निमित्त जिन कर्मों को किया है, उन कर्मों को भी सभी जान लें। जो जानते हैं, वह अन-जान व्यक्तियों को श्रवण करावें। मरु सेनाओं से परिपूर्ण हुए इन्द्र उन जानने वाले तथा सुनने वाले मनुष्यों के पास अश्व पर चढ़ कर पहुँचें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने प्रकट होते ही शत्रुओं को विजय करने का दृढ़ संकल्प किया और तुम अकेले ही असंख्य असुरों से संग्राम करने के लिए गए। गौओं को ढकने वाले पर्वत को तुमने अपने बल से चीर डाला और दुग्ध देने वाली गौओं को प्राप्त किया ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब में मुख्य और श्रेष्ठतम हो। जब तुम सुनने योग्य नाम को धारण कर प्रकट हुए तब अग्नि आदि देव भी भयभीत होगए। वृत्र द्वारा रक्षित जल को तुमने अपने अधिकार में किया था ॥ ५ ॥ [२६]

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९
समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०।२७

यह स्तुति करने वाले मरुद्गण स्तोत्र-पाठ करते हुए तुम्हें सुखी करते

हैं। हे इन्द्र ! यह तुम्हारी ही स्तुति करते हैं और सोम युक्त अन्न देते हैं। जो वृत्र समस्त जल राशि को छिपा कर सो रहा था, उस कपटी और देवताओं के कार्य में वाधक को इन्द्र ने अपनी शक्ति से वशीभूत किया था ॥ ६ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम देवताओं को दुःख देने वाले वृत्र को वज्र से दुःखी करो। तुमने उत्पन्न होते ही शत्रुओं का हनन किया था। इस संग्राम में हमारे कल्याण के लिए तुम "नमुचि नामक दस्यु के शीश को चूर्ण कर डालो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने गर्जन करते हुए गतिशील मेघ के समान "नमुचि के शीश को चूर्ण कर हमारे साथ मैत्री-भाव प्रदर्शित किया था, उस समय आकाश पृथिवी मरुद्गण के प्रभाव से चक्र के समान घूमने लगीं ॥ ८ ॥ "नमुचि" ने स्त्रियों को युद्ध का साधन वनाया। इन्द्र ने सोचा कि असुर की यह स्त्री-सेना मेरा क्या विगाड़ सकेगी ? और सेनाओं के वीच से दो स्त्रियों को पकड़ कर वन्दी वनाया और तव "नमुचि से युद्ध करने के लिए चल पड़े ॥ ९ ॥ जव गौओं को "नमुचि" ने चुराया, तव वे वछड़ों से विछुड़ी हुई गायें इधर उधर भटने लगीं। "वभ्र" ऋषि प्रदत्त सोमरस से जव इन्द्र पुष्ट हुए तव उन्होंने मरुतों की सहायता से "वभ्रु" की गायों को उनके वछड़ों से मिलाया ॥ १० ॥ [२७]

यदीं सोमा वभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११
भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो वभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४
चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥२८

जब "बभ्रु" के सोम-रस द्वारा इन्द्र हृष्ट होगए, तब उन्होंने रणक्षेत्र में घोर गर्जन किया। पुरन्दर इन्द्र ने सोम-पान के पश्चात् "बभ्रु" को दुग्ध देने वाली गायें पुनः लाकर दीं ॥ ११ ॥ हे अग्ने! "ऋणञ्चय" नामक राजा के सेवक "रुशम" देश वालों ने मुझे चार हजार गौएं देकर कल्याण-कारी कार्य किया था। अग्रगण्यों में भी अग्रणी "ऋणञ्चय राजा" द्वारा दिये गये गौ रूप धन को मैंने प्राप्त किया था ॥ १२ ॥ हे अग्ने! "ऋणञ्चय" राजा के सेवक "रुशम" देश वालों ने मुझे वस्त्रालंकार आदि से सजा हुआ घर तथा सहस्र धेनु प्रदान की हैं। रात्रि के अवसान काल में मधुर रस मिश्रित सोम द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया गया ॥ १३ ॥ "रुशम" देश के नरेश "ऋणञ्चय" के पास ही सर्वत्र जाने वाली रात्रि व्यतीत होगई। बुलाये जाने पर "बभ्रु ऋषि" ने वेग वाले अश्व के समान चार सहस्र द्रुतगामिनी धेनुओं को पाया ॥ १४ ॥ हे अग्ने! हम मेधावी हैं। हमने रुशम देश वालों से चार हजार धेनु प्राप्त की हैं। हमने सुन्दर सुवर्णमय कलश को रुशम देश वालों से यज्ञ-कर्म में दूध दुहने के निमित्त प्राप्त किया है ॥ १५ ॥ [२८]

३१ सूक्त

(ऋषि-अवस्युरात्रेय। देवता—इन्द्रः, कुत्सो वा। छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति)

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२
उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥२९

इन्द्र ऐश्वर्यशाली हैं। वे जिस रथ पर बैठते हैं, उसे चलाते भी हैं। गौओं को पालने वाले जैसे पशुओं को प्रेरणा देते हैं, वैसे ही इन्द्र सेनाओं को प्रेरणा देते हैं। देवताओं में उत्कृष्ट इन्द्र शत्रुओं द्वारा कभी भी हिंसित न होते हुए शत्रुओं के धन की इच्छा से जाते हैं ॥ १ ॥ हे अश्ववान् इन्द्र! तुम हमारे सामने से निकलो। परन्तु हमारे लिये मनोरथ से रहित मत बनो तुम विविध ऐश्वर्य वाले हो। हमारी सेवाओं को स्वीकार करो। तुम भार्या-हीनों को भार्या प्रदान करते हो। तुमसे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है ॥ २ ॥ उषा के प्रकाश से जब आदित्य का प्रकाश बढ़ जाता है, तब इन्द्र यजमानों को सभी धन देते हैं। वे छिपाने वाले पर्वत के बीच से दूध देने वाली गायों को निकालते और अपने तेज से सर्वत्र व्याप्त अन्धकार को हटा देते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा बुलाये जाते हो। तुम्हारे रथ को अश्वों से युक्त होने के योग्य ऋभुओं ने किया है। त्वष्टा ने तुम्हारे वज्र को तीक्ष्णता दी है। इन्द्र के पूजक मरुद्गण ने वृत्र का नाश करने के लिए इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा बढ़ाया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो। सेचन कर्म वाले मरुद्गण ने जब तुम्हारा स्तवन किया था तब सोम कूटने वाले पाषाण भी प्रसन्नता से मिल गये थे। इन्द्र द्वारा भेजे जाने पर घोड़े और रथ से विहीन मरुद्गण ने जाकर शत्रुओं को वशीभूत किया था ॥ ५ ॥ [२९]

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥३०

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे प्राचीन या नवीन कर्मों का कीर्तन करते हैं। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुमने जो कार्य किए हैं, हम उनका बखान करते हैं। हे वज्रिन् ! तुम आकाश और पृथिवी को अपने वश में रखते हुए मनुष्यों के निमित्त अद्भुत जलों को धारण करते हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी एवं दर्शनीय हो। तुमने वृत्र का हनन कर जो बल इस लोक को दिखाया है, वह तुम्हारे लिये ही संभव था। तुमने "शुष्ण" की युवती स्त्री को बन्दी बनाया और रणक्षेत्र में जाकर राक्षसों को नष्ट किया। ७ ॥ हे इन्द्र ! "यदु" और "तुर्वश" राजाओं को तुमने नदी किनारे अवस्थित होकर वनस्पतियों की वृद्धि करने वाला जल प्रदान किया था। "कुत्स" पर आक्रमण करने वाले विकराल असुर "शुष्ण" का हनन करके "कुत्स" को उसका गृह प्राप्त कराया। तब "उशना" और सब देवताओं ने तुम्हारी स्तुति की ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हे "कुत्स" ! तुम दोनों एक रथ पर सवार होओ और तुम्हें घोड़े यजमानों के समीप पहुँचावें। तुम दोनों ने "शुष्ण" को उसके आश्रय रूप जल से पृथक् किया। तुम दोनों ने धनिक यजमानों के अन्धकारयुक्त अन्तःकरण को शुद्ध किया था ॥ ९ ॥ मेधावी "अवस्यु" ऋषि ने रथ में उत्तम प्रकार से जोड़ने के योग्य तथा वायु के समान वेग वाले घोड़ों को प्राप्त किया। हे इन्द्र ! "अवस्यु" के सखा सभी स्तुति करने वालों ने अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारे पराक्रम को बढ़ाया ॥ १० ॥ [/३०]

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२
ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३।३१

प्राचीन काल में जब "एतश" ऋषि के साथ सूर्य का युद्ध हुआ था, तब सूर्य के वेगवान् रथ की गति को इन्द्र ने रोक दिया। उस रथ के दो पहियों में से एक पहिये को इन्द्र ने ले लिया। उसी पहिये के द्वारा इन्द्र

शत्रुओं का संहार करते हैं। हम पर प्रसन्न होने वाले इन्द्र हमारे यज्ञ की कामना करें ॥ ११ ॥ हे मनुष्यो! सोम सिद्ध करने वाले सखा के समान यजमानों की कामना करते हुए इन्द्र तुमको दर्शन देने के लिये पधारे हैं। अध्वर्यु लोग जिस प्रस्तर को उठाते हैं, वह सोम कूटने वाला प्रस्तर शब्द करता हुआ वेदी पर चढ़ता है ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम अविनाशी हो। जो तुमको चाहता है, शीघ्रता से तुम्हारी कामना करता है उसे मरणधर्म वाले मनुष्य का कोई अनिष्ट न हो। तुम यजमानों पर प्रसन्न होते हुए उनकी कामना करो। जिन मनुष्यों के मध्य हम स्तुति करने वाले बैठे हैं, वे सब मनुष्य यजमान तुम्हारे ही हैं। तुम उनको बल प्रदान करो ॥ १३ ॥ [३१]

३२ सूक्त

(ऋषि—गातुरात्रेयः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१
त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२
त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥४
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥३२

हे इन्द्र! तुमने वर्षा करने वाले मेघ को चीर कर उसमें अवस्थित जल के द्वार को बनाया है।। हे इन्द्र! तुमने मेघ को खोलकर जल वृष्टि की

और वृत्र का हनन किया ॥ १ ॥ हे वज्रिन्! वर्षा ऋतु में रुके हुए मेघों को छोड़ो। उनकी शक्ति को बढ़ाओ। तुम विकराल कर्म वाले हो। तुमने जल में सोने वाले वृत्र का हनन करके अपने बल को प्रसिद्धि की है ॥ २ ॥ इन्द्र का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं। उन्होंने वृत्र के द्रुतवेग वाले शस्त्रों को अपने पराक्रम से नष्ट कर दिया। उस समय वृत्र के देह से एक अत्यन्त बलवान दैत्य प्रकट हुआ ॥ ३ ॥ मेघ पर वज्र प्रहार करने वाले इन्द्र ने वज्र द्वारा पराक्रमी "शुष्ण" का संहार किया। वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न हुआ "शुष्ण" अँधेरे में घूमता हुआ मेघ की रक्षा करता था। वह असुर सभी प्राणियों के खाद्यान्न को स्वयं भक्षण कर पुष्ट हो जाता था ॥ ४ ॥ हे पराक्रमी इन्द्र! हर्षकारी सोम रस को पीकर हृष्ट हुए तुमने युद्ध की इच्छा वाले वृत्र को अँधेरे में ही खोज लिया। अपने को न मारा जाने योग्य समझने वाले वृत्र के प्राण कहाँ हैं, यह बात तुम उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों से जान सके थे ॥ ५ ॥ वह वृत्र जल में सोता हुआ अँधेरे में ही बढ़ रहा था। सुसिद्ध सोम को पीकर पुष्ट होने के पश्चात् कामनाओं के पूर्ण करने वाले इन्द्र ने वज्र प्रहार द्वारा उसका वध किया था ॥ ६ ॥ [३२]

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥८
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे।
स यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥३२

उस दैत्य-वृत्ति वाले वृत्र पर जब इन्द्र ने अपने विजयशील वज्र को प्रेरित कर उस पर प्रहार किया, तब सभी जीवों के सामने उसे नीचे गिरा दिया ॥ ७ ॥ विकराल कर्म वाले इन्द्र ने चलते हुए मेघ को रोक कर सोते हुए, जल की रक्षा करने वाले, शत्रुओं को मारने वाले, सब को ढक लेने वाले वृत्र को पकड़ लिया और फिर उस पैर-रहित एवं परिमाण रहित वृत्र को अपने वज्र प्रहार से छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ८ ॥ इन्द्र की शक्ति शत्रुओं का शोषण करने वाली है, उसका निवारण करने में कोई समर्थ नहीं। इन्द्र अकेले ही असंख्य शत्रुओं के धनों को छीन लेते हैं। आकाश और पृथिवी इंद्र के पराक्रम से प्रभावित हुई गति करती हैं ॥९॥ सबका धारक और प्रकाश से पूर्ण आकाश इन्द्र के सामने झुकता हुआ गति करता है। कामना वाली सुन्दरी के समान पृथिवी इन्द्र से लिये समर्पित होती है। जब वे इन्द्र सब प्राणियों में अपने बल को स्थापित करते हैं, तब सभी प्रजा उनके सामने नमस्कार पूर्वक झुक जाती है ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! ऋषियों द्वारा सुना है कि तुम मनुष्यों के स्वामी हो। तुम सज्जनों का पालन करने वाले हो। मनुष्यों के कल्याण के लिये ही तुम्हारा अविर्भाव हुआ है। रात-दिन स्तुति में लीन, अपनी अभिलाषाओं को प्रकट करती हुई हमारी संतति स्तुति के पात्र इन्द्र का आश्रय प्राप्त करे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राणियों को प्रेरित करते तथा स्तुति करने वालों को धन देते हो। हे इन्द्र ! जो स्तुति करने वाले अपनी अभिलाषा तुम्हारे प्रति निवेदन करते हैं, तुम्हारे वे अनन्य मित्र तुमसे क्या पाते हैं ? ॥१२ ॥ [३२]

३३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—संवरणः प्राजापत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप् ।

महि महे तवसे दीध्ये नृनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२

न ते त इन्द्राभ्य स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।

तिष्ठा रथमधि त वज्रहस्ता रश्मि देव यमसे स्वश्व ॥३
पुरु यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४
वय ते त इन्द्र ये च नर शर्धो जज्ञाना याताश्च रथा ।
आस्मञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्य प्रभृथेषु चारु ॥ ५ । १

जो इन्द्र पराक्रम सबन्धी कर्मों को करने में वीर पुरुषों से युक्त हैं एव श्रेष्ठ बुद्धि से सभी पर शासन करने में समर्थ हैं, ऐसे तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्र के स्तोता, निर्बल होते हुए भी महान् बल का कार्य सम्पादन करने में समर्थ हैं। वे इन्द्र अन्न लाभ के निमित्त स्तुत होकर हम पर कृपा करने वाले हों ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हे कामनाओं को पूर्ण करने वाले ! तुम हमारी कामना पूर्ण करते हुए प्रसन्न करने वाले स्तोत्रों से रथ में सयुक्त अश्वों की लगाम पकड़ते हो। हे इन्द्र ! हे मघवन् ! इस प्रकार तुम हमारे शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ हो ॥ २ ॥ हे तेजस्वी इन्द्र ! जो मनुष्य तुम्हारे भक्त नहीं हैं, जो तुम्हारे साथ नहीं रहते, वह मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों से हीन होने के कारण तुम्हारे नहीं हो सकते। हे वज्रिन ! तुम हमारे यज्ञ को प्राप्त होने के लिए उस रथ पर चढ़ो, जिस को तुम स्वय चलाते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अपने से सबधित बहुत स्तोत्र हैं। इसी कारण तुम उर्वरा भूखण्डों पर वर्षा करने की इच्छा से वृष्टि के अवरोधकों को छिन्न भिन्न करते हो। तुम कामनाओं को पूर्ण करने वाले हो। तुम सूर्य स्थान में वृष्टि को रोकने वाले दस्युओं से सग्राम करके उनके नाम को भी मिटा देते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम ऋत्विक् और यजमान आदि सब तुम्हारे ही हैं। यज्ञानुष्ठान द्वारा हम तुम्हारे बल को बढ़ाते हैं और आहुति देने के लिए तुम्हारे समीप जाते हैं। हे इन्द्र ! तुम्हारा बल सब में व्याप्त है। तुम्हारी कृपा से भग के समान प्रशसा करने योग्य ऐश्वर्य आदि हमको कार्य-क्षेत्र में प्राप्त हों ॥ ५ ॥ [१]

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्त ।
स न एनी वसवानो रयि दा प्रार्य स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७
उ त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥ १० । २

हे इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति पूजा करने के योग्य है, तुम अविनाशी एवम् सर्वत्र व्याप्त हो । तुम अपने तेज से संसार को आच्छादित करते हुए हमको उज्ज्वल धन प्रदान करो । हम ऐश्वर्यशाली दाता इन्द्र के दान के प्रशंसक हैं ।६। हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हारा स्तवन करते हैं और यज्ञ करते हैं । तुम अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा करो । युद्ध में तुम अपने आश्रय को प्रदान करते हुए हमारे सुसिद्ध सोमरस का पान करो और हृष्ट होओ ॥ ७ ॥ गैरिक्षित "पुरुकुत्स" के पुत्र "त्रसदस्यु" वीर, सुवर्णादि ऐश्वर्य के स्वामी हैं । उन्होंने जो दस घोड़े हमको दिए थे, वे श्वेत रङ्ग के हैं । वे घोड़े हमको वहन करें । उनको रथ में जोड़ कर हम शीघ्र ही चलें ॥ ८ ॥ "मरुताश्व" के पुत्र विदथ ने जो लाल रङ्ग के द्रुतगामी घोड़े हमको दिए थे, वे हमको वहन करने वाले हों । उन्होंने हमको पूजनीय मानकर असंख्य धन तथा शरीर के आभूषण प्रदान किए हैं ॥ ९ ॥ "लक्ष्मण" के पुत्र "ध्वन्य" ने हमको जो उज्ज्वल वर्ण का तथा अपने कर्म में क्षमतावान् घोड़ा दिया था, वह हमको वहन करे । गौओं द्वारा गौशाला को प्राप्त करने के समान "ध्वन्य द्वारा दिया हुआ महान् ऐश्वर्य सम्वरण" ऋषि के आश्रम को प्राप्त हो ॥ १० ॥ [२]

३४ सूक्त

(ऋषि—संवरणः प्राजापत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।

सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १
आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदी मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३
यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५।३

जिससे शत्रुता करने का कोई साहस नहीं करता तथा जो शत्रुओं का संहार करने वाले हैं, उनको कभी भी क्षीण न होने वाली, स्वर्गदायिनी, प्रचुर हवियाँ प्राप्त हों। हे ऋत्विगण! उन इन्द्र के निमित्त पुरोडाश परिपक्व करो और श्रेष्ठ कर्मों में लगो। इन्द्र बहुतों द्वारा पूजित तथा स्तोत्रों के वहन करने वाले हैं ॥ १ ॥ इन्द्र ने अपने उदर को सोम रस से परिपूर्ण कर लिया और सुमधुर सोम-रस को पीकर मुदित हो गए। फिर मृग नामक असुर को हनन करने की इच्छा से उन्होंने अपने अत्यन्त तेजस्वी वज्र को हाथ में उठा लिया ॥ २ ॥ जो यजमान इन्द्र के निमित्त दिन-रात सोम सिद्ध करते हैं, वे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। जो यजमान यज्ञ नहीं करते तो वे भी धर्म और संतान की इच्छा करते हैं सुन्दर आभूषणों को धारण करते हैं और विरुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों की सहायता करते हैं उन यजमानों को सामर्थ्यवान इन्द्र त्याग देते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र, तुम जिसके पिता, माता अथवा भाई को भी दण्ड देते हो, उससे भी भयभीत नहीं होते और उसे सदैव नियन्त्रण में रखने का प्रयत्न करते हो। अपने ऐश्वर्य को सब ओर से संग्रह करने में कुशल इन्द्र पापी से भी भयभीत नहीं होते वरन् सदैव उसके नाश को ही प्रस्तुत रहते हैं। शत्रुओं का संहार

करने के लिए इन्द्र, पाँच, दस सहायकों को भी नहीं चाहते। जो व्यक्ति सोम सिद्ध नहीं करता तथा कुटुम्बियों का भी पालन नहीं करता, उसके साथ इन्द्र मेल नहीं रखते। शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले इन्द्र उसका वध कर देते हैं। याज्ञिकों के गोष्ठ को इन्द्र गौओं से युक्त करते हैं ॥ ५ ॥ [३]

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥ ९ । ४

शत्रुओं को युद्ध में क्षीण करने वाले इन्द्र रथ के पहिए को तेज होने की शक्ति देते हैं। वे सोम सिद्ध न करने वाले से दूर रहते और सोमवान् को बढ़ाते हैं। वे इन्द्र संसार के प्रेरक तथा भय के उत्पादक हैं। वे दस्युओं को अपने वशीभूत करते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र वणिकों के समान धन-लाभ के लिए गमन करते हैं। मनुष्यों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले उस धन को वे यज्ञ करने वाले यजमानों को प्रदान करते हैं। जो इन्द्र को कुपित करता है, वह मनुष्य घोर सङ्कट में पड़ जाता है ॥ ७ ॥ सुन्दर धन वाले तथा महान् सामर्थ्य वाले दो व्यक्ति जब परस्पर विद्वेष करते हैं, तब उनमें जो यजमान यज्ञ करने वाला होता है, इन्द्र उसको सहायता करते हैं। मेघों को कम्पायमान करने वाले इन्द्र उस याज्ञिक यजमान को गौएं प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! असंख्य धनों के देने वाले "अग्निवेश-पुत्र शत्रि ऋषि" की हम प्रशंसा करते हैं। वे अनुपमेय तथा प्रसिद्ध हैं। जल-राशि उन्हें भले प्रकार पुष्ट करे। उनका धन बल तथा प्रकाश से पूर्ण हो ॥ ९ ॥ [४]

३५ सूक्त

(ऋषि-प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता-इन्द्रः । छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥ २

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ । ५

हे इन्द्र ! तुम्हारा अत्यन्त, कार्य साधक कर्म हमारी रक्षा करने वाला हो । तुम्हारा कर्म सब मनुष्यों को पवित्र करने वाला तथा शुद्ध है । युद्धस्थल में वह किसी के द्वारा फीका नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जो रक्षा-साधन चार वर्णों में हैं तथा जो रक्षा-साधन तीन लोकों में विद्यमान हैं, उन सब रक्षा-साधनों को तुम हमारे लिए भले प्रकार प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित फल के सिद्ध करने वाले हो । तुम्हारे रक्षा-साधन ग्रहण करने योग्य हैं, हम उनकी याचना करते हैं । उन्हें तुम मरुद्गण सहित हमको प्राप्त कराने वाले होओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित फलों की वर्षा करने वाले हो । तुम यजमानों को धन प्रदान करने के लिए ही उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा बल फलों की वृष्टि करने में समर्थ है । तुम स्वभाव से पराक्रमी हो । विरोधियों का तुम सदा दमन करते हो । तुम्हारा पुरुषार्थ शत्रु-संघ को भी नाश करने में समर्थ है ॥४॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे रथ की चाल कभी मन्द नहीं पड़ती । तुम शक्ति के स्वामी एवं सैकड़ों शुभ कर्मों के करने वाले हो । जो मनुष्य तुमसे शत्रुता का व्यवहार करने को उद्यत होता है, उसे लक्ष्य कर तुम अपने बल सहित प्रयाण करते हो ॥ ५ ॥ [५]

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
　　　　उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
　　　　सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७
अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ । ६

हे इन्द्र ! हे शत्रुओं के हननकर्त्ता ! युद्धकाल उपस्थित होने पर मनुष्य तुम्हारा ही आह्वान करते हैं, क्योंकि तुम्हारे शस्त्र युद्ध के लिए सदा उद्यत रहते हैं। तुम अपनी प्रजाओं में प्राचीन हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हमारे रथ के रक्षक होओ। यह रथ रणक्षेत्र में सब प्रकार के धनों की कामना करता है और दासों के साथ चलता है। उसे कोई रोक नहीं सकता। वह युद्ध क्षेत्र में घुसा चला जाता है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हमारे प्रति आत्मीयता का भाव रखते हुए पधारो। अपने श्रेष्ठ रक्षा-साधनों से हमारे रथ की रक्षा करो। तुम अत्यन्त बलवान् एवं प्रकाशमान् हो। तुम्हारी कृपा से हम वरण करने योग्य धनों को तुम्हारे द्वारा स्थापित करावें। तुम तेजस्वी हो। हम तुम्हारा भले प्रकार स्तवन करते हैं ॥ ८ ॥　　　　[६]

३६ सूक्त

(ऋषि—प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥ ३
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।

प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥ ६ । ७

इन्द्र हमारे यज्ञ स्थान में आवें। जो वे देवता धनों के ज्ञाता हैं, उनका स्वरूप कैसा है? वे इन्द्र ऐश्वर्य का दान करने वाले हैं और दानशील स्वभाव से युक्त हैं। धनुष सहित जाने वाले धनुर्धारी के समान साहस पूर्वक गमन करने वाले इन्द्र सोम-पीकर अपनी तृषा का निवारण करें ॥१॥ हे दो घोड़ों से युक्त इन्द्र! हमारे द्वारा प्रदत्त सोम पर्वत की चोटी के समान तुम्हारे मुख प्रदेश पर पहुँचे। हे इन्द्र! तुम सुशोभित हो। घास से जैसे अश्व तृप्त होते हैं, वैसे ही हम स्तुतियों से तुम्हें तृप्त करते हैं। तुम बहुतों द्वारा पूजित हो ॥ २ ॥ हे बहुस्तुत वज्रिन्! पृथिवी पर स्थित पहिए के समान हमारा मन दारिद्र्य की आशंका से काँपता है। तुम सदा प्रवृद्ध हो। स्तुति करने वाले "पुरुवसु" ऋषि तुम्हारी अत्यन्त स्तुति करते हैं। तुम रथ पर चढ़ कर उनके समक्ष पधारो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! प्राप्त फल को भोगने वाले स्तोता सोम कूटने के प्रस्तर के समान तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम अश्ववान् एवं धनवान् हो। तुम अपने बाँए तथा दाँए हाथों से धन प्रदान करते हो। तुम हमारे मनोरथ को निष्फल नहीं करना ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो। इच्छाओं की वर्षा करने वाली आकाश पृथिवी तुम्हें बढ़ावें। तुम वर्षा करने वाले हो। अश्व तुम्हें यज्ञ स्थान में लाते हैं। हे वज्रिन् तुम्हारा रथ मंगलों की वृष्टि करने वाला है। युद्ध में तुम हमारे रक्षक होओ ॥ ५ ॥ हे मरुद्गण! तुम इन्द्र के सहायक हो। ऐश्वर्यशाली राजा "श्रुतरथ" ने हमको लाल रङ्ग के दो घोड़े और तीन सौ गौएं प्रदान की थीं। उस सतत युवा श्रुतरथ को उसकी सम्पूर्ण प्रजा अभिवादन करती और उसकी आज्ञा का पालन करती है ॥ ६ ॥ [७]

३७ सूक्त

(ऋषि–अत्रि। देवता–इन्द्रः। छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१
समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४
पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥ ५ ।८

विधिवत् आह्वान किये हुए अग्नि में हवि देने से अग्नि प्रज्वलित होकर सूर्य-रश्मियों से युक्त होने का प्रयत्न करते हैं। जो व्यक्ति 'इन्द्र के लिये यज्ञ करो' ऐसा कहता है, उसके लिये उषा अहिंसक होकर विविध रूपों में प्रकट होती है ॥ १ ॥ जो यजमान अग्नि को प्रदीप्त करते तथा कुश की वृद्धि करते हैं, वे यज्ञ-कर्म में नियुक्त होकर प्रस्तर द्वारा सोमरस को निकालते हुये स्तुति करते हैं। जो अध्वर्यु हव्य पदार्थ संग्रह करते हैं, वे सिन्धु के समान विस्तृत एवं सम्पन्न होते हैं ॥२॥ जैसे किसी स्त्री को सौभाग्यवती और पत्नी बनने के योग्य जान कर पुरुष उससे विवाह करता है, और वैसे ही वह महिषी भी पति की कामना करती हुई उसे प्राप्त होती है, उसी प्रकार इन्द्र का रथ हमारी कामना करता हुआ हमको प्राप्त हो। वह शब्द करता हुआ सब ओर से धन लावे ॥ ३ ॥ जिन यजमानों के यज्ञ में इन्द्र दुग्धयुक्त सोम रस को पीते हैं, वे यजमान कभी दुःखी नहीं होते। वे अपने अनुचरों के साथ जाते हुए शत्रुओं को मारते और प्रजा-रक्षण में समर्थ होते हैं। वे अनेक सुखों का उपभोग करते हुये इन्द्र की पूजा करते हैं ॥ ४ ॥ जो इन्द्र के लिए सुसिद्ध

सोम-रस देता है, वह अपने कुटुम्बियों को सुखी रखता है। वह अप्राप्त धन को पाने में सफल होता हुआ प्राप्त धन की रक्षा करने में समर्थ होता है। वह शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ सूर्य और अग्नि दोनों का प्रिय होता है ॥ ९ ॥ [८]

३८ सूक्त

(ऋषि—अत्रि.। देवता—इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप्)

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी राति. शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १
यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३
उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन्।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४
नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपा ॥ ५ । ६

हे इन्द्र ! तुमने सैकड़ों कल्याणकारी कार्य किये हैं। तुम अपने ऐश्वर्य का महान् दान करते हो। हे सबके देखने वाले, हे श्रेष्ठ बल और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तुम हमको असंख्य धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे सुवर्ण के समान कांतिमान् ! हे अत्यन्त शक्तिशालिन् इन्द्र ! तुम यशदायक अन्न के धारण करने वाले हो, अत: दीर्घकाल तक शत्रुओं से अपराजित रहते हुए हम यशोजनक अन्न-बल की वृद्धि करने में समर्थ हों ॥ २ ॥ हे वज्रिन् ! पूजन के पात्र सुविख्यात बल वाले मरुद्गण तुम्हारे बल से युक्त हैं। तुम और ये दोनों ही सूर्य के समान पृथिवी का पालन करते हुए हमें महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हो ॥ ३ ॥ हे वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र ! हम तुम्हारे बल की स्तुति करते हैं। तुम हमको श्रेष्ठ धन लाकर देते हो, क्योंकि तुम हमारे लिये

धन की अभिलाषा करते हो ॥ ४ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय में रहते हुए हम शीघ्र ही सुख से सम्पन्न हों। हे इन्द्र तुम्हारे सुख का भाग हम प्राप्त करें। हे वीर ! हम उत्तम भूमि और कुटुम्ब से युक्त हों ॥ ५ ॥ [६]

३६ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्, बृहती)

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः।
रावस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २
यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम्।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४
अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम्।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ । १०

हे इन्द्र ! हे वज्रधारिन् ! तुम अत्यन्त अद्भुत रूप वाले हो। तुम्हारे पास जो दान देने योग्य अमूल्य धन है, उसे हमारे लिए अपने दोनों हाथों से प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जिस अन्न को तुम उत्तम मानते हो, अपना वह अन्न हमको प्रदान करो। हम तुम्हारे उस उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त करने के सर्वथा योग्य हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा मन दान देने के निमित्त विस्तीर्ण रहता है। हे वज्रिन् ! तुम हमको श्रेष्ठ पौष्टिक धन देने के लिए सदा इच्छा करते रहते हो ॥ ३ ॥ मनुष्यो ! इन्द्र हवि रूप धन से सम्पन्न हैं। वे तुम्हारे लिये अत्यन्त पूज्य तथा अखिल मनुष्यों के अधीश्वर हैं। स्तुति करने वाले पुरातन स्तोत्रों से उनकी स्तुति एवं परिचर्या करते हैं ॥ ४ ॥ उन्हीं महान्

इन्द्र के लिये यह काव्य वचन कहने योग्य हुआ है। वे स्तोत्रों को बढ़ाते हैं। अत्रिपुत्र ऋषिगण उनके समक्ष ही स्तोत्रों को उच्चारित करते हुए उन्हें सुशोभित करते हैं॥ ५॥ [१०]

४० सूक्त

(ऋषि–अत्रि। देवता—इन्द्र, सूर्यः। छन्द–उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब।

वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥ १

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः।

वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥ २

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः।

वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥ ३

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।

युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः॥ ४

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।

अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥ ५। ११

हे इन्द्र! हमारे यज्ञ में पधारो। हे सोमेश्वर इन्द्र! प्रस्तर द्वारा सुसिद्ध सोम-रस आकर पान करो। हे फलों की वर्षा करने वाले, हे शत्रुओं का अत्यन्त संहार करने-वाले इन्द्र! तुम फलों की वर्षा करने वाले मरुद्गण के साथ सोम पान करो॥ १॥ अभिषव करने वाला प्रस्तर माधुर्य वर्षक है। सोम-पीने से उत्पन्न हुआ हर्ष कामनाओं की वर्षा करने वाला है। यह सुसिद्ध सोम, रस की वर्षा करने में समर्थ। हे फलों की वर्षा करने वाले, शत्रुओं के उत्तम नाशक इन्द्र! तुम मरुद्गण के साथ सोम-पान करो॥ २॥ हे वज्रिन्! तुम सोम के सेचनकर्त्ता और अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। हम तुम्हारे अद्भुत रक्षा-साधनों की याचना करते हैं। हे फलों के वर्षक, हे शत्रुओं के उत्तम नाशक इन्द्र! तुम मरुतों के साथ सोम-पान करो॥ ३॥ इन्द्र वज्रधारी एवं अमणी हैं। वे अभीष्टों की वर्षा करने वाले, शत्रुओं का हनन

करने वाले, महाबली, सब के स्वामी, वृत्र के मारने वाले तथा सोम-रस के पीने वाले हैं। ऐसे इन्द्र अपने रथ में अश्वों को जोड़कर हमारे सामने आवें और मध्य सवन में सोम पीकर पुष्टि को प्राप्त हों ॥ ४ ॥ हे सूर्य, "स्वर्भानु" नामक दैत्य ने जब तुम्हें अन्धकार से ढक लिया था, उस समय सभी लोक एक सा दिखाई देता था। ऐसा लगता था कि वहाँ के निवासी विमूढ़ होगए हैं और अपने-अपने स्थान को भी वे नहीं जान रहे हैं ॥ ५ ॥ [११]

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६
मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ । १२

हे इन्द्र ! जब तुमने "स्वर्भानु" की तेजस्विनी माया का निवारण किया था, तब व्रत को नष्ट करने वाले अन्धकार द्वारा ढके हुए सूर्य को अत्रि की चार ऋचाओं द्वारा प्रकट कर दिया ॥ ६ ॥ सूर्य ने कहा—हे अत्रि ऋषि ! हम ऐसी अवस्था में तुम्हारी ही रक्षा चाहते हैं। अन्न की कामना वाला द्रोही राक्षस इस डरावने अंधकार के द्वारा मुझे निगल न ले। इसलिए तुम और वरुण दोनों ही हमारे रक्षक होओ। तुम सत्य के पालनकर्त्ता और हमसे मित्र-भाव रखने वाले हो ॥ ७ ॥ उस समय ऋत्विक् अत्रि ने सूर्य को नमस्कार कर स्तुति की, पत्थरों से कूट कर इन्द्र के लिए सोम सिद्ध किया, स्तोत्रों द्वारा अन्तरिक्ष में सूर्य के चक्षु को धारण किया। उस समय "स्वर्भानु" की सब माया उन्होंने दूर कर दी ॥ ८ ॥ जिस सूर्य को "स्वर्भानु" ने अपनी माया से अन्धकार द्वारा ढक दिया था, उन सूर्य को मुक्त करने में अत्रिपुत्र के सिवाय अन्य कोई भी समर्थ न हो सका ॥ ९ ॥ [१२]

४१ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति, जगती)

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा मह्नः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ १
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥ २
आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥ ३
प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४
प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥ ५ । १३

हे मित्रावरुण ! तुम्हारे निमित्त यजन करने की इच्छा करने वाला कौन-सा यजमान यज्ञ करने में समर्थ होता है ? तुम दोनों आकाश भूमंडल अथवा अन्तरिक्ष इनमें से किस स्थान में रहकर हमारा पालन करते तथा हवि-दाता को अन्न और पशु देते हो ? ॥ १ ॥ हे मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, ऋभुक्षा, आयु और मरुद्गण तुम मनुष्यों को स्नेह पूर्वक चाहने वाले हो । जो वर्षणशील, शत्रुओं को रुलाने वाले एवं उत्तम स्तुतियों के धारण करने वाले हैं वे सभी साधन और शक्ति से युक्त होकर हमारे प्रति स्नेह करें ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दमन करने में समर्थ हो । हम तुम्हारे रथ को वेगवान् करने के लिए बुलाते हैं । हे ऋत्विजो ! तुम तेजस्वी और प्राणों का अपहरण करने में समर्थ रुद्र के लिये हव्य और स्तुति प्रस्तुत करो ॥ ३ ॥ विद्वज्जन जिन्हें आहूत करते हैं, जो यज्ञानुष्ठान को स्वीकार करते हैं, जो शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हैं, वे वायु, अग्नि, पूषा प्रकट होकर सूर्य के समान प्रीति करने वाले हों । यह सभी देवता संहार के आश्रय रूप हैं । यह हमारे युद्ध में, वेगवान् अश्व के युद्ध में वेग से दौड़ने के समान, शीघ्र आवें ॥ ४ ॥

हे मरुद्गण ! तुम हमारे लिए अश्व युक्त धन प्राप्त कराओ । स्तुति करने वाले गौ-अश्वादि धन की कामना से तथा प्राप्त धन की रक्षा के लिए तुम्हारा स्तवन करते हैं । उशिज-पुत्र कक्षीवान् के होता अत्रि गमनशील अश्व पाकर सुखी हों ॥ ५ ॥ [१२]

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥ ६
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ७
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नृन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधी राय एषे ॥ ८
तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥ ९
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥ १०।१४

हे ऋत्विको ! उज्ज्वल, कामनाओं के पूर्ण करने वाले, ब्राह्मण के समान पूजनीय, स्तुति के पात्र एवं फल प्रदान करने वाले वायु देवता को यज्ञ स्थान पर बुलाने के लिए स्तोत्रों द्वारा रथ पर चढ़ाओ । यज्ञ को ग्रहण करने वाली, सुन्दर रूपवाली, प्रशंसा की पात्री देवांगनाएँ भी हमारे यज्ञ में आवें ॥ ६ ॥ हे दिन और रात्रि ! तुम दोनों महान् हो । हम, वन्दना के योग्य दिव्य लोक वासी देवताओं के साथ तुम दोनों को भी सुन्दर तेजस्वी स्तोत्र और हवि देते हैं । हे देवगण ! तुम कर्मों को जानते हुए यजमान के यज्ञ में पधारो ॥७॥ तुम सब देवता बहुतों के रक्षक और यज्ञ में अग्रगण्य रहते हो । स्तोत्र द्वारा अथवा हव्य प्रदान करते हुए धन प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं । त्वष्टा, वाणी, वनस्पति और औषधियों की हम स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ संसार के पालनकर्त्ता मेघ, असीमित दान के लिए हमारे अनुकूल हों । वे स्तुतियों के पात्र, यज्ञ के योग्य, मनुष्यों का हित-साधन करने वाले हमारी स्तुति के द्वारा

प्रसन्न होते हुए हमको हर प्रकार सुसम्पन्न करें ॥ ९ ॥ हम वृद्धिकारक, अन्तरिक्ष के गर्भ में स्थित के पालनकर्ता विद्युत रूप अग्नि की, पाप नाशक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। वे अग्नि तीन रूप वाले तथा तीन स्थानों में व्याप्त हैं। वे सुख देने वाले अग्नि मेरे चलने के समय मुझ पर क्रोधित नहीं होते, किन्तु अपनी तेजोमयी ज्वालाओं से वनों को भस्म करते हैं ॥ १० ॥ [१४]

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३
आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५।१५

हम अग्नि-वंशज, रुद्र के पुत्र मरुद्गण की किस भाँति उपासना करें? सर्वज्ञाता भगदेवता के लिए, धन प्राप्ति के निमित्त किस स्तोत्र का पाठ करें? जल, ओषधियाँ, आकाश, वन एवं वृक्ष जिन पर्वतों के केश समान हैं, वे हमारे रक्षक बनें ॥ ११ ॥ बल और अन्न के अधीश्वर और आकाश में विचरणशील वायु देवता हमारे स्तोत्र को श्रवण करें। नगरों के समान शुभ्र, जल की धारा हमारी स्तुति ग्रहण करें ॥१२॥ हे मरुद्गण! तुम महान् हो। हमारे स्तोत्रों को शीघ्र जानो। हम तुम्हारे स्तोता हैं। उत्तम हवियाँ एकत्र कर तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम हमारे अनुकूल होकर आओ। शत्रुओं को अस्त्रों द्वारा हनन करके हमारे पास पधारो ॥ १३ ॥ हम देवताओं के लिए, पृथिवी के लिए, जन्म और विजय-प्राप्ति के लिए शोभनकर्मा मरुद्गण की स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ बढ़ें। दिव्यलोक हमको समृद्ध बनावे।

नदियों को मरुद्गण जल से परिपूर्ण करें ॥ १४ ॥ जो सभी विघ्नों को शांत करके हमारी रक्षा करने में सक्षम हैं, वह सभी को जन्म देने वाली पृथिवी हमारी स्तुतियों को स्वीकार करे। हम सदा उनकी स्तुति करते हैं। समृद्ध वाणी से युक्त स्तुति करने वालों के प्रति अनुकूल होती हुई, कृपापूर्ण हाथ को उठाकर वह हमारा कल्याण करे ॥ १५ ॥ [१५]

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ।

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः।

अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥ १७

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः।

सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥ १८

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु।

उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥ २० । १६

उन दानशील मरुद्गण की स्तुति हम कैसे करें? कौन से स्तोत्र द्वारा उनकी पूजा करें? क्या वर्तमान् स्तोत्र से मरुद्गण की स्तुति करना संभव है? अहिर्बुध्न्यदेव हमारा अमंगल न करें, वरन् वे हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥ १६ ॥ हे देवताओ! यजमान लोग संतति और पशु-प्राप्ति निमित्त तुम्हारी पूजा करते हैं। वे सुखकारी अन्न से हमारे देह को पुष्ट करें और बुढ़ापे को हमसे दूर ही रखें ॥ १७ ॥ हे तेजस्वी वसुओ! हमारी धेनु रूपी सुन्दर बुद्धि द्वारा हम हृष्टकारी तथा पोषक अन्न को प्राप्त करें। वह दानमय स्वभाव वाली तथा सर्व सुखों के देने वाली बुद्धि रूप देवी हमारे कल्याण के लिए हमको शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ १८ ॥ गवादि समूह के देने वाली इडा और उर्वशी जल पूर्ण नदियों के साथ सुसंगत हुई हमारे अनुकूल हों।

उर्वशी हमारे यज्ञादि कार्यों की प्रशंसा करती हुई यजमानों को अपने तेज से परिपूर्ण करती हुई यहाँ पधारें ॥ १९ ॥ पोषण करने वाले "ऊर्जव्य" राजा का देश अत्यन्त शक्ति तथा समृद्धि को प्राप्त करे ॥ २० ॥ [१६]

४२ सूक्त

(ऋषि—अत्रि । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥ ५ । १७

दी हुई हवियों के साथ हमारे सुखदायक स्तोत्र वरुण, मित्र, भग सूर्य के पास पहुँचें । पञ्च वायु के साधनभूत, अन्तरिक्ष में रहने वाले, अप्रतिहत गति वाले, प्राणों के देने वाले, सुख के प्रवर्त्तक वायु हमारे स्तोत्र को सुनें ॥ १ ॥ हमारे अन्तःकरण से निकले हुए स्तोत्र को अदिति अपने पुत्र को ग्रहण करने के समान ग्रहण करें । हम उषा और रात्रि, मित्र और वरुण के लिए सुखदायक तथा देवताओं के ग्रहण करने योग्य स्तोत्र प्रदान करें ॥ २ ॥ हे ऋत्विगण ! तुम अत्यन्त तेजस्वी अग्नि को प्रदीप्त करो । मधुर सोम और घृत से इन्हें सींचो । वे आदित्य हमको शुद्ध, प्रसन्नताप्रद और हितकारी सुवर्ण दें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर गवादि धन देते हो । हे अश्विनीकुमारों से युक्त इन्द्र ! तुम हमको विद्वान् पुत्र, सुख, दिव्य अन्न तथा देवताओं की कृपा प्राप्त कराने वाले हो ॥ ४ ॥ ऐश्वर्यों के स्वामी सवितादेव

भग, वृत्र-संहारक इन्द्र, सर्व प्रकार धनों को वशीभूत करने वाले ऋभुक्षा, पुरन्धि आदि सभी अमरत्व प्राप्त देवता हमारे यज्ञ स्थान में आकर शीघ्र हमारे रक्षक हों ॥ ५ ॥ [१७]

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥ ६
उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥ ८
विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥ ९
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥ १० । १८

हम यजमान मरुद्गण से युक्त इन्द्र के कार्यों का बखान करते हैं। वे कभी युद्ध क्षेत्र से हटते नहीं। वे सदा विजय करने वाले तथा कभी भी वृद्ध न होने वाले हैं। हे इन्द्र! कोई भी पुरातन पुरुष तुम्हारे बल की समानता नहीं करते। उनके पश्चात् होने वाले व्यक्ति भी तुम्हारी समानता नहीं कर सके। कोई नवीन पराक्रमी भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ हे विज्ञ! तुम श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले बृहस्पति का स्तवन करो। वे हविरन्न के विभाजक हैं। वे स्तोता को अत्यन्त सुख देते हैं, बुलाने वाले यजमान के पास श्रेष्ठ धन लेकर पहुँचते हैं ॥ ७ ॥ हे बृहस्पते! तुम्हारे द्वारा पोषित होने पर मनुष्य विघ्नों से बचते तथा धन और पुत्रों से सम्पन्न होते हैं। तुम्हारी कृपा-प्राप्त कर जो धनिक गो-वस्त्रादि दान करे, उसे धन-प्राप्ति दो ॥ ८ ॥ हे बृहस्पते! जो स्तोता हमको दान-भाग न देकर स्वयं ही उसका उपभोग करता है, जो व्रतानुष्ठान नहीं करता, जो मंत्र से द्वेष करता है, उसको धन-

हीन बनादो। यदि वह मनुष्य सन्तान से युक्त हुआ वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, तो तुम उसे सूर्य-दर्शन न होने दो ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण! जो यजमान देवताओं के यज्ञ में आसुरी वृत्ति से कर्म करता है, जो अश्व, पशु आदि के द्वारा भोग-कामना से क्लेश में पड़ता है अथवा जो तुम्हारे स्तोता की निन्दा करता है, तुम उसे बिना पहिए के रथ में डालकर अन्धकूप में डाल देते हो ॥ १० ॥ [१८]

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ११
दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥ १२
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४
एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥ १५
प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १६
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १८ । १९

हे मित्र! रुद्र का स्तव करो। उनके बाण शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं। वे सभी औषधादि के स्वामी हैं। वे जन कल्याण करने वाले शक्तिमान् तथा देह धारियों को प्राण देने वाले हैं। उन रुद्रदेव का यजन तथा सेवा करो ॥ ११ ॥ सुन्दर, मनस्वी, भवन, अश्व, रथ, गौ आदि के कुशल निर्माता ऋभुगण, वृष्टिकारी इन्द्र की पत्नी रूप नदियाँ, तेजस्विनी रात्रि आदि

सभी हमको धन प्रदान करें ॥ १२ ॥ महान्, सुन्दर रक्षा करने वाले इन्द्र के लिए हम तुरन्त रची गई स्तुति भेंट करते हैं। वे इन्द्र वृष्टिकर्त्ता हैं। वे भूमि के हित-साधन के लिए नदियों का रूप निश्चित करते और हमको जल प्राप्त कराते हैं ॥ १३ ॥ हे मनुष्यो! तुम्हारी सुन्दर स्तुति गर्जन करने, शब्दवान् जल के स्वामी को प्राप्त हो। वे मेघों के धारण करने वाले हैं तथा वे जल वृष्टि करते हुए आकाश और पृथिवी को विद्युत के प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं ॥ १४ ॥ हमारी स्तुति रुद्र-पुत्र मरुद्गण के समक्ष ठीक प्रकार पहुँचें। धन की कामना हमको निरन्तर प्रेरणा देती है। चित्र विचित्र वर्ण वाले घोड़े पर चढ़कर जो मरुत् चलते हैं, उन मरुद्गण की स्तुति करो ॥१५॥ हमारे द्वारा प्रस्तुत यह स्तोत्र धन के निमित्त पृथिवी, आकाश, वृक्ष और ओषधियों के पास पहुँचे। हमारे निमित्त सब देवताओं का आह्वान किया जाय। पृथिवी माता हमको कुबुद्धि में ही न पड़ा रहने दें ॥ १६ ॥ हे देवताओ! हम सभी महान्, पीड़ा एवं विघ्न रहित, सुख से पूर्ण स्थान में में निवास करें ॥ १७ ॥ हम अश्विनीकुमारों के उन रक्षा-साधनों को प्राप्त करें, जिन्हें पहिले कोई जानता ही न था। वे रक्षा-साधन आनन्द के देने वाले तथा सुख को उत्पन्न करने वाले हैं। हे अविनाशी अश्विद्वय! तुम दोनों हमको वीर पुत्र, धन तथा सभी स्थिर सौभाग्यों को प्राप्त कराओ ॥१८॥ [१६]

४३ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम्।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता।

मध्वो रस सुगभस्तिर्गिरिष्ठा चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४
असावि ते जुजुषाणाय सोम क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमान ॥ ५ । २०

वेग से बहने वाली नदियाँ मधुर जल के सहित निर्बाध गति से हमारे पास आवें। अत्यन्त प्रीति वाले स्तोता श्रेष्ठ ऐश्वर्य के लिये, सुख के कारणभूत सप्त महा नदियों को आहूत करें ॥ १ ॥ धन प्राप्ति के लिये हम श्रेष्ठ स्तोत्र और हवि द्वारा अहिंसित रहते हुए आकाश-पृथिवी को प्रसन्न करना चाहते हैं। प्रिय वाणी, वरद हस्त और यश से युक्त माता पिता रूप आकाश-पृथिवी रणक्षेत्र में हर प्रकार हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥ हे अध्वर्युगण! तुम मधुर हवियाँ उपस्थित करो और तेजस्वी सोम को वायु की भेंट करो। हे वायो! इस सोम रस को अन्य देवताओं से पहले ही होता के समान पान कर लो। यह मधुर सोम रस तुम्हें प्रसन्न करने के लिए प्रस्तुत है ॥ ३ ॥ ऋत्विकों की सोम निचोड़ने वाली दसों अंगुलियाँ तथा सोम कूटने में चतुर दोनों भुजायें पत्थर को प्राप्त करती हैं। कुशल अंगुलियों वाले ऋत्विक् प्रसन्नता पूर्वक माधुर्यमय सोम से रस निकालते हैं तब उससे स्वच्छ रस प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे इष्ट होने के निमित्त तथा वृत्र हनन कार्य में प्रयुक्त करने के हेतु, तुम्हें बल और हर्ष प्राप्त कराने के लिये सोमरस भेंट करते हैं। हे इन्द्र हम तुम्हें इसीलिये बुलाते हैं। तुम अपने चतुर दोनों घोड़ों को रथ में जोड़कर हमारे पास आओ ॥ ५ ॥ [२०]

आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥ ६
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥ ७
अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८
प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।

या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥६
आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥ १०।२१

हे अग्ने ! तुम हम पर स्नेह करते हुए मधुर सोम रस को पीकर पराक्रमी होने के लिए देवों के लक्षित मार्ग से ज्ञान रूपिणी वाणी को हमें प्राप्त कराओ। वह सर्वशक्ति सम्पन्ना देवी सर्वत्र गमन करती हुई हमारे यज्ञ को जाने। उसकी प्रेरणा से स्तोत्र सहित हवियों को हम समर्पित करें ॥ ६ ॥ पिता की गोद में प्रिय पुत्र के बैठने के समान ज्ञानी अध्वर्युओं ने अग्नि के ऊपर हव्य पात्र रखा है। उस समय यह जान पड़ता है जैसे विशाल शक्ति से युक्त व्यक्ति अग्नि द्वारा तपाया जा रहा है ॥ ७ ॥ हमारा वह पूज्य, सुख प्रदान करने वाला महान् स्तोत्र अश्विनीकुमारों को यहाँ लाने के लिये दूत के समान उनके पास पहुँचे। हे सुखदाता अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों एक ही रथ पर चढ़ कर हमारे द्वारा भेंट किये जाने वाले सोम के पास आओ। जैसे बिना धुरे के रथ नहीं चलता, वैसे ही बिना तुम्हारे सोमयाग भी पूर्ण नहीं होता ॥ ८ ॥ हम वेगवान् तथा पराक्रमी पूषा और वायु का स्तवन करते हैं। यह दोनों देवता अन्न और धन के निमित्त बुद्धि का प्रेरण करें और जो देवता कर्मक्षेत्र में नियुक्त होते हैं, वे हमको धन दें ॥ ९ ॥ हे जन्म लेने वालों के ज्ञाता अग्निदेव ! हमारे द्वारा बुलाये जाकर तुम विभिन्न देवताओं को मरुद्गण सहित यज्ञ में लाते हो। हे मरुद्गण ! तुम अपने श्रेष्ठ रक्षा साधनों सहित यज्ञ-स्थान में पधारो और सुन्दर स्तुति युक्त उपासना को ग्रहण करो ॥ १० ॥ [२१]

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ ११
आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ १३

मातुष्पदे परमे शुक्रआयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥ १४
बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १५
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १६
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १७ । २२

प्रकाशमान् आकाश से देवी सरस्वती हमारे यज्ञ में पधारें। हमारी स्तुति से हर्ष को प्राप्त हुई वह अपने मन से हमारे मङ्गलकारी स्तोत्रों को श्रवण करें ॥ ११ ॥ रक्षा करने वाले पराक्रमी बृहस्पति को यज्ञ स्थान में स्थापना करो, वे घर के मध्य में विराजमान होकर ज्ञान को बढ़ाते हैं। वे सुवर्ण के समान वर्ण वाले तथा तेजस्वी हैं। हम उन महान् का उत्तम प्रकार से पूजन करते हैं ॥ १२ ॥ वे अग्निदेव सब के धारण करने वाले हैं। वे अत्यन्त प्रकाशमान्, कामनाओं की वर्षा करने वाले और औषधियों की वृद्धि करने वाले हैं। वे सुन्दर गतिवाले तथा त्रिविध (लाल, श्वेत, काली) ज्वालाओं से युक्त हैं। वे वृष्टिकारक एवं अन्न प्रदान करने वाले हैं। हम उनको बुलाते हैं, वे अपने पूर्ण रक्षा-साधनों सहित यहाँ आवें ॥ १३ ॥ होता, हव्य पात्र को धारण करने वाले ऋत्विक पृथिवी माता के सर्व श्रेष्ठ स्थान पर जाते हैं, जैसे पुष्ट करने के लिए बालक के देह का मर्दन करते हैं, वैसे ही नवोत्पन्न अग्नि को स्तुतियों के साथ हवियाँ देकर पुष्ट करती हैं ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम महान् हो। धर्म-कार्य करने वाले दम्पति तुम्हें एक साथ ही हविरन्न देते हैं। देवताओं का हम भले प्रकार आह्वान करें। माता पृथिवी हमारे प्रतिकूल न हों ॥ १५ ॥ हे देवताओ ! हम बाधाओं से रहित असीमित ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले हों ॥ १६ ॥ हम अश्विनीकुमारों के अभूतपूर्व रक्षा-साधनों को प्राप्त करें। वे आनन्दप्रद और कल्याणकारी कार्यों से सम्पन्न हैं। हे अविनाशी अश्विद्वय ! हमको श्रेष्ठ धन, बल, संतान और सभी सौभाग्यों को प्राप्त कराओ ॥ १७ ॥ [२२]

४४ सूक्त

(ऋषि-अवत्सारः । देवता—विश्वेदेवा ! छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ १
श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥ २
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥ ३
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥ ४
सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥ ५ २३

प्राचीन कालीन यजमान, हमारे पूर्वज तथा वर्तमान कालीन मनुष्य भी जैसे इन्द्र की स्तुति करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करते आये हैं, उसी प्रकार हम भी उनकी स्तुति करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करें। वे इन्द्र देवताओं में बड़े, सर्वज्ञ, कुश के आसन पर विराजमान होने वाले, पराक्रमी, शत्रु-विजेता तथा अत्यन्त वेग वाले हैं। उनको इस स्तुति द्वारा प्रसन्न करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा तेज स्वर्ग में भी विस्तृत रूप से फैला है। वर्षा को रोकने वाले मेघ में जो उज्ज्वल जल-समूह है, उसे तुम मानव-कल्याण के लिए सब दिशाओं में भेजते हो। तुम वर्षा आदि कर्मों द्वारा मनुष्यों का पालन करते हो। हे इन्द्र ! प्राणियों का हनन न करो। तुम शत्रुओं की माया दूर करने वाले हो। इसलिये तुम्हारा नाम सत्य पर आश्रित है ॥ २ ॥ नित्य जल का साधन करने वाले तथा जगत के आश्रय रूप हव्य को अग्नि सदा वहन करते हैं। वे निर्बाध गति वाले, बल के विधाता तथा यज्ञ-कर्म का निर्वाह करने वाले हैं। वे कुश पर विराजमान होते हैं। वे फलों की वर्षा करने वाले, बालक, युवा, साहसी तथा औषधों में निवास करते हैं ॥ ३ ॥

यजमानों के लिये यज्ञ की वृद्धि करने वाली सूर्य-रश्मियाँ परस्पर सुसंगत हुई यज्ञ-भूमि में आने की इच्छा से प्रकट करती हैं। वेग से जाने वाली और संसार को नियम में रखने वाली इन सब रश्मियों द्वारा सूर्य जल की वृष्टि करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा स्तोत्र सुन्दर है। जब छना हुआ सोम-रस काठ के पात्र में संचित किया जाता है और तुम उस मधुर रस को स्वीकार करते हुए स्तुतियाँ श्रवण कर प्रसन्न होते हो, तब साधकों में तुम अत्यन्त सुशोभित होते हो। हे प्राणदाता अग्ने तुम अपनी रक्षण-सामर्थ्य वाली शिखा को यज्ञ स्थान में बढ़ाओ ॥ ५ ॥ [२३]

याद्दृगेव दद्दृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६
वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥ ७
ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥ ८
समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥ ९
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा

चिदर्ध्यम् ॥ १० । २४

जो देखते हैं, वही वर्णन करते हैं। जैसे जलों द्वारा पुष्ट हुए वृक्ष अपनी छाया के नीचे प्राणियों को सुख देते हैं, वैसे ही देवगण भी अपनी प्रजाओं के लिए अपनी कल्याणकारिणी छाया द्वारा अत्यन्त सुखदायिनी पृथिवी का पालन करें और युद्ध क्षेत्र में कभी भी पीछे न भागने वाले वीरों के बल को भी पुष्ट करें ॥ ६ ॥ सब को देखने वाले अग्रणी आदित्य अपनी भार्या रूपिणी उषा से मिलते हुए असुरों से युद्ध की इच्छा करते हुए बढ़ते हैं। वे धन के आश्रयदाता हमको श्रेष्ठ, यशस्वी और रक्षा-साधन से युक्त

घर तथा सुख दें ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! यजमान तुम्हारे निकट जाते हैं। तुम प्रकट होने पर जाने जाते हो। ऋषिगण तुम्हारी स्तुति करते हैं, जिससे तुम्हारा नाम बढ़ता है। वे जिस कार्य की इच्छा करते हैं, उसे प्रयत्न द्वारा सिद्ध कर लेते हैं। जो उनकी उपासना करते हैं, वे इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ हमारे इन सभी स्तोत्रों में जो स्तोत्र श्रेष्ठ हो वह सूर्य के समक्ष पहुँचे। यज्ञ स्थान में उनके जिस स्तोत्र को बढ़ाया जाता है, वह स्तोत्र कभी नष्ट नहीं होता। जिस घर में सूर्य को हृदय समर्पित किया जाता है, उस घरके मनुष्यों की हार्दिक इच्छा कभी विफल नहीं होती ॥ ९ ॥ वे सूर्य सब के द्वारा पूजित तथा सभी के अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं। उनके पास से हम "क्षत्र" "मनस", "अवद", "सध्रि" और "अवत्सार" ऋषि विद्वानों द्वारा उपभोग्य अन्नों को अपने कार्यों द्वारा समृद्ध करते हैं ॥ १० ॥ [२४]

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ।। ११
सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ।। १२
सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ।। १३
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।। १४
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आहु तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।। १५।२५

"विश्ववार", "यजत" और "मायी" ऋषि का सोम-रस द्वारा उत्पन्न हर्ष बाज के समान उत्तम चाल वाला है। वह अदिति के समान विस्तृत और कसे हुए अश्व के समान सुशोभित हैं। वे परस्पर सोम पीने के लिए कहते हैं और सोम-पान के पश्चात् हृष्ट होते हैं ॥ ११ ॥ "सदापृण", "यजत", "बाहुयुक्त", "श्रुतवित्", और "तर्य" ऋषि तुम सब से मिलकर

शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। वे ऋषि, इहलौकिक और पारलौकिक सभी इच्छाओं की सिद्धि करते हुए तेजस्वी बनें। वे भले प्रकार से मिश्रित हव्य सामग्री द्वारा विश्वेदेवताओं की सुन्दर स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ "अवत्सार" नामक यजमान के अनुष्ठान में "सुतम्भर" ऋषि उत्तम फलों द्वारा पोषित हुए। सभी यज्ञ-कार्य को उत्तम रीति से पूर्ण किया गया। गौओं ने उत्तम, मधुर रस युक्त दुग्ध दिया। वह दुग्ध बाँटा गया। इस प्रकार से निरालस्य हुए "अवत्सार" प्रतिदिन पठन, अध्ययन आदि करते रहे ॥ १३ ॥ जो देवता सदा जागते हैं, ऋचाएं उनको चाहती हैं। जो देवता सदा चैतन्य रहते हैं, सामवेद की ऋचाएं उन्हें प्राप्त करती हैं। जो देवता सदा जागरित रहते हैं उनसे सोम कहे कि 'हमको ग्रहण करो।' हे अग्ने ! हम तुम्हारे मित्र-भाव में ही सदा आश्रित रहें ॥ १४ ॥ अग्नि सदा चैतन्य रहते हैं, ऋचाएं उन्हें चाहती हैं। अग्नि सदा जागते हैं, साम उन्हें प्राप्त करता है। अग्नि सदा जागरित रहते हैं उनसे यह सुसिद्ध सोम कहे कि 'हमको ग्रहण करो।' हे अग्ने ! हम सदा ही तुम्हारी मित्रता के आश्रित रहें ॥ १५ ॥ [२५]

४५ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-सदापृण आत्रेय । देवता-विश्वेदेवाः । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप)

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३
सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥ ४
एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ । २६

इन्द्र ने अङ्गिराओं के स्तव से, वज्र को गिरा कर पणियों द्वारा चुराई हुई, छिपी गायों को मुक्त किया, आने वाली उषा की रश्मियाँ व्याप्त होती हैं। अँधेरे का नाश करके सूर्य प्रकट होते तथा मनुष्यों के घरों के किवाड़ों को खोलते हैं ॥ १ ॥ जैसे विभिन्न पदार्थ अपने विभिन्न रूपों को प्रकट करते हैं, वैसे ही सूर्य अपने प्रकाश को बढ़ाते हैं । रश्मियों का जाल बुनने वाली उषा सूर्य के आने की बाट न देखती हुई अन्तरिक्ष से आविर्भूत होती है । किनारों को तोड़ती हुई नदियाँ वेगवान् जल से परिपूर्ण हुई बहती हैं । घर में बने हुए सुन्दर तथा दृढ़ स्तम्भ के समान सूर्य सुदृढ भाव से प्रजा-धारण में समर्थ होते हैं ॥ २ ॥ महान् स्तोत्रों के रचयिता प्राचीनकालीन ऋषियों के समान हम जब तक स्तुति करते हैं, तब तक मेघ के पेट में रहने वाला जल हमारे ऊपर बरसता है । मेघ से जल गिरता है और आकाश अपने कार्य में जुट जाता है । सर्वत्र उपासना करने वाले अङ्गिरा वंशीय ऋषि यज्ञ-कर्म द्वारा सदा सेवा करते रहते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हे अग्निदेव ! हम संकटों से मुक्त होने की इच्छा से देवताओं द्वारा ग्रहण करने योग्य स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं । उत्तम प्रकार से यज्ञ-कर्म करने वाले मरुद्गण के समान कर्मों में लगे रहने वाले मेधावी-जन सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम दोनों की पूजा करते हैं ॥ ४ ॥ हे इस यज्ञ के करने वाले ! दिन में आओ । हम सुन्दर कर्म करना चाहते हैं । हम शत्रुओं का संहार करते और सब ओर छाये हुए वैरियों को दूर भगाते हैं । हम यजमानों के पास शीघ्र जाते हैं ॥ ५ ॥ [२६]

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातॉं ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ६
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥ ८
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥ ९

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥ ११ । २७

हे मित्रो ! आगमन करो । हम स्तोत्रों का उच्चारण करें । उन स्तोत्रों से चुराई हुई गौओं के स्थान का पता लगा था, 'मनु' ने शत्रु पर विजय प्राप्त की थी और वणिक् के समान बहुत फलों को चाहने वाले "कक्षीवान्" ने वन में जाकर जल को प्राप्त किया था ॥ ६ ॥ इस यज्ञ स्थान में ऋत्विकों के हाथ से काम में लाये जाते हुए पत्थर का शब्द हो रहा है, उसी से "नवग्वों" और "दशग्वों" ने इन्द्र की उपासना की थी । उसी से यज्ञ में आकर सरमा ने गौएं पायीं और अङ्गिरा वशीय ऋषियों की सभी साधना सफल हो गई थी ॥ ७ ॥ जब अङ्गिरागण उषा के उदित होते समय प्राप्त गौओं से मिले थे, तब उस श्रेष्ठ यज्ञशाला में दूध गिरने लगा । क्योंकि सरमा ने सत्य मार्ग द्वारा गौओं को देख लिया था ॥ ८ ॥ सप्त अश्वों के स्वामी आदित्य हमारे अभिमुख पधारें । वे लम्बे प्रयाण करने के लिये वेगवान् बाज के समान शीघ्रगामी होते हुए आयें । वे सतत युवा तथा दूरदर्शी अपनी किरणों में विराजमान, प्रकाश को फैलाते हैं ॥ ९ ॥ अत्यन्त दीप्त जल को सूर्य ऊपर उठाते हैं । जब वे अपने सुन्दर पीठ वाले घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं तब यजमान उन्हें जल पर तैरती हुई नाव के समान बुलाते हैं । उनके आदेश पर ही जल-वृष्टि होती है ॥ १० ॥ हे देवताओ ! हम सुख देने वाली उस बुद्धि को धारण करें, जिसके द्वारा "नवग्वों" ने दश महीनों तक यज्ञानुष्ठान किया था । उसी धारणावती बुद्धि के द्वारा हम विद्वानों द्वारा धारण करने योग्य उत्तम गुणों को प्राप्त करें और पाप कर्मों और उनके परिणामों का अतिक्रमण करने में समर्थ हों ॥ ११ ॥ [२७]

४६ सूक्त

(ऋषि—प्रतिक्षत्र आत्रेय । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—जगती, पङ्क्ति)

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।

नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥ १
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥ २
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥ ३
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥ ४
उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५
उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥ ६
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य ग्नाय्यश्विनीराट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ८ । २८

"प्रतिक्षत्र" ने अपने को गाड़ी में घोड़े के समान जोड़ा। हम होता उस अलौकिक रक्षा का विधान करने वाले यज्ञ रूप बोझे को ढोते हैं। इस बोझे को वहन करने से मुक्त होना हम नहीं चाहते। इस भार को बारम्बार हम ढोते रहें, ऐसा भी नहीं चाहते। मार्गों के ज्ञाता, आगे आगे चलने वाले, सब के रहस्यों को जानने वाले पुरुष हमको समस्त मार्गों में सरलता पूर्वक ले जाने में समर्थ हैं ॥ १॥ हे अग्नि, इन्द्र, वरुण और मित्र आदि देवताओ! तुम सब हमको शक्ति दो। मरुद्गण और विष्णु हमको सहस्र बनावें। असत्याचरण न करने वाले दोनों, रुद्र, देवांगनाऐं, पूषा, भग और सरस्वती सभी हमारी स्तुति से प्रसन्न हों ॥ २ ॥ हम रक्षा-प्राप्ति के निमित्त इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, आकाश-पृथिवी, मरुद्गण, पर्वत, जल,

विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति और सवितादेव को आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ विष्णु, वायु, अहिंसक और धनदाता सोम हमको सुख प्रदान करें। ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, त्वष्टा और विभु हमको धन देने के निमित्त प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ स्वर्गगामी तथा पूज्य मरुद्गण कुश पर विराजमान होने के लिए हमारे पास आवें। बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा हमको सभी गृहस्थ-सम्बन्धी सुख प्राप्त करावें ॥ ५ ॥ सुन्दर स्तोत्र वाले पर्वत एवं उदार वृत्ति वाली नदियाँ हमारा पालन करें। धन देने वाले भग देवता अन्न तथा रक्षा साधनों सहित आवें। सब स्थानों पर रहने वाली अदिति हमारे स्तोत्र को सुनें ॥६॥ देवताओं की पत्नियाँ हमारी स्तुतियों की कामना करती हुई हमारी रक्षा करें। हम उनकी रक्षा द्वारा बलवान् पुत्र और उत्तम अन्न प्राप्त करें। हे देव पत्नियो! तुम सर्वत्र कर्मों में लीन रहो। हम तुम्हें आहूत करते हैं। तुम हमको सुखी बनाओ ॥ ७ ॥ देवांगनाएं हवियाँ ग्रहण करें। इन्द्राणी, अग्नानी, दीप्तिमती-अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि सभी देवियाँ हमारे स्तोत्रों को सुनें। यह देवियाँ हव्य ग्रहण करें। देवियों में ऋतुओं की अधिष्ठात्री देवी हमारे स्तोत्र को सुनें और हवि ग्रहण करें ॥ ८ ॥ [२८]

४७ सूक्त

(ऋषि—प्रतिरथ आत्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवासो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ३

चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥ ४

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।

द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सवन्धू ॥ ५
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ७ । १

सेवा-रत, नित्य युवती, पूज्या उषा बुलाई जाने पर शक्तिमती माता के समान कन्या स्वरूप पृथिवी को जागरित करती हैं। वे मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करती हुई रक्षा करने वाले देवताओं के साथ यज्ञ स्थान में आती है॥ १ ॥ सर्व व्याप्त और असीमित किरणें अपने प्राकट्य रूप कर्म का सम्पादन करती हुईं, अविनाशी सूर्य मण्डल के साथ एकत्र बैठकर आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष में जाती हैं॥ २॥ कामनाओं का सिंचन करने वाले, देवताओं के लिए सुख का विधान करने वाले, उज्ज्वल तथा तेज चलने वाले रथ ने पितृ-रूप पूर्व दिशा में गमन किया। फिर स्वर्ग में अवस्थित विभिन्न वर्ण वाले आदित्य अन्तरिक्ष में बढ़े और उन्होंने विश्व की रक्षा की ॥ ३ ॥ चार ऋत्विक् अपनी मंगल-कामना करते हुए सूर्य को हव्य से धारण करते हैं। दसों दिशाएं अपने गर्भ से उत्पन्न सूर्य को नित्यकर्म में प्रेरणा करती हैं। शीत, ग्रीष्म और वर्षा के भेद से सूर्य की तीन प्रकार की ऋतुएं अन्तरिक्ष की सीमा में घूमती रहती हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो ! यह शरीर अवश्य मनन और श्रवण करने योग्य है, जिसमें प्रवाहित होने वाली नाड़ियाँ पृथ्वी पर बहने वाली नदियों के समान हैं। स्त्री और पुरुष की दोनों प्रकृतियाँ इस शरीर के धारण करने वाले दिन-रात के समान परस्पर बँधी हैं॥ ५ ॥ सूर्य के निमित्त यजमान स्तोत्र तथा हव्य को बढ़ाते हैं। इसी पुत्र रूप सूर्य के लिए दिशाएं प्रकाश का जाल बुनती हैं। उन वृष्टिकारक सूर्य के द्वारा पुष्ट हुई पत्नी रूप किरणें आकाश द्वारा हमारे पास आगमन करें ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारी इस स्तुति को स्वीकार करो। हे अग्ने ! हम सब के कल्याण के निमित्त इस स्तोत्र को स्वीकार करो। हम प्रतिष्ठित हों। हम तेजोमय, पराक्रमी तथा सबको आश्रय देने वाले सूर्य को पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ [१]

४८ सूक्त

(ऋषि—प्रतिभानुरात्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप, जगती)

कद्‌ु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १
ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रज. ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जन ॥ २
आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥ ३
तामस्य रीति परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥ ४
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥ ५।२

हम सबकी कामना के योग्य, पूजा के पात्र उस तेज की कब पूजा करेंगे ? वह तेज अपने ही बल से प्रकाशमान है तथा सभी अन्न उसमें व्याप्त हैं। उसी तेज की शक्ति चैतन्य होकर अन्तरिक्ष में मेघ में वर्षा के जल को बढ़ाती है ॥ १ ॥ ऋत्विकों के प्राप्त करने योग्य ज्ञान को यह उषाएँ फैलाती हैं। अपनी आभा द्वारा सम्पूर्ण संसार को परिपूर्ण करती हैं। देवताओं की कामना करने वाले यजमान बीती हुई अथवा आने वाली उषाओं की चिन्ता छोड़ कर वर्तमान उषा के द्वारा अपनी बुद्धि को बढ़ाते हैं ॥ २ ॥ दिन और रात्रि में सिद्ध किए गए सोम से पुष्ट हुए इन्द्र मायावी वृत्र के लिए अपने विशाल वज्र को तेजोमय बनाते हैं। इन्द्रमय सूर्य की असंख्य किरणें दिनों को प्रवर्तित करती हुई अपने घर रूप आकाश में घूमती रहती हैं ॥ ३ ॥ फरसे के समान दमकते हुए अग्नि के उस स्वाभाविक रूप को हम देखते हैं। हम अपने सुख के निमित्त तेजोमय आदित्य की किरणों की स्तुति करते हैं। वे आदित्य आह्वान करने वाले यजमान के यज्ञ में सहायक होते और अन्न तथा रत्नादि से परिपूर्ण घर प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ अपने शोभन तेज से

चमकते हुए अग्निदेव अन्धकार तथा वैरियों का नाश करते हैं। वे सब ओर अपनी ज्वाला को फैलाते हुए घृतादि हव्य भक्षण करते हैं। हम उन अभीष्ट दायक अग्नि के उस पुरुपार्थ को नहीं जानते, जिसके द्वारा यह यजनयोग्य सवितादेव ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं॥ ५ ॥ [२]

४६ सूक्त

(ऋषि—प्रतिप्रभ आत्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥ १

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २

अदत्रया दयते वार्य्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥ ३

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन्।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥ ४

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ । ३

हम, यजमानों के लिए सविता और भग देवताओं की सेवा में जाते हैं। वे यजमानों को धन देते हैं। हे अग्रगण्य तथा बहुकर्मा अश्विनीकुमारो! हम तुम्हारी मित्रता को चाहने वाले तुम्हारे प्रतिदिन सामीप्य की याचना करते हैं॥ १ ॥ हे विद्वानो! शत्रुओं के शमनकर्त्ता सवितादेव को आते जान कर सूक्तों से उनका पूजन करो। वे मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले हैं। उनकी हविरन्न और नमस्कार द्वारा स्तुति करो॥ २ ॥ यजन योग्य, पालनकर्त्ता तथा कभी भी नाश को प्राप्त न होने वाले अग्नि ग्रहण करने योग्य काष्ठ को अपनी ज्वाला से वहन करते हैं और ग्रहण करने योग्य धन यजमानों को देते हैं। आदित्य अपने तेज को फैलाते हैं। इन्द्र, विष्णु, मित्र और अग्नि आदि देवता उत्तम कर्म वाले दिनों को प्रकट करते हैं॥ ३ ॥

जिन सविता देव का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, वे सवितादेव हमको अभीष्ट ऐश्वर्य दें। उस ऐश्वर्य को लाने के लिए उनकी किरणें गमन करें। इस कामना से हम होता गण स्तुति करते हैं। हम बहुत प्रकार के धन, अश्व और बल के स्वामी हों ॥ ४ ॥ जिन यजमानों ने गतिशील अन्न वसुओं को प्रदान किया है,तथा जिन्होंने मित्रावरुण के उद्देश्य से स्तुतियाँ की हैं, उन्हें महान् तेज मिले। हे देवगण ! उन्हें स्थिर सुख दो। हम आकाश और पृथिवी द्वारा पाले जाकर पुष्ट हों ॥ ५ ॥ [३]

५० सूक्त

(ऋषि—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्या पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५ । ४

सभी यजमान सवितादेव से मित्रता की याचना करते हैं। सब प्रजाएं उनसे धन माँगती हैं। उनकी कृपा से सब मनुष्य अपनी रक्षा के लिए प्रचुर धन-लाभ करते हैं ॥ १ ॥ हे प्रभो ! हम यजमान तुम्हारी उपासना करते हैं तथा इन्द्रादि देवताओं की उपासना करने वाले भी तुम्हारे ही हैं। हम तथा वे दोनों प्रकार के उपासक धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न हों और हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हों ॥ २ ॥ इस यज्ञ में हम ऋत्विजों के लिए अतिथि के समान पूजनीय देवताओं की सेवा करें। इस यज्ञ में हवि देकर देव-पत्नियों की सेवा

करें। हे देवताओ! तुम सभी अथवा सवितादेव दूरस्थ शत्रुओं को विनष्ट करें ॥ ३ ॥ जिस यज्ञ में यज्ञ वाहक, सर्वश्रेष्ठ पशु के समान आगे बढ़ने वाला मार्ग दर्शक कार्य-भार उठाता है, उस यज्ञ में सवितादेव चतुर गृहणी के समान गृह, पुत्र, सेवक तथा धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे सवितादेव! तुम्हारा यह ऐश्वर्य युक्त सब का रक्षक रथ हमारा कल्याण करने वाला हो। हम सब पूजा के पात्र सवितादेव की स्तुति करने वाले हैं। हम धन, सुख तथा अमरत्व प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [४]

५१ सूक्त

(ऋषि—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि। देवेभिर्हव्यदातये ॥ १
ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम्। अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि। देवेभिः सोमपीतये ॥ ३
अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते। प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४
वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ । ५

हे अग्ने! तुम इन्द्रादि सभी रक्षा करने वाले देवताओं के साथ सोम पीने के लिए हम हविदाता यजमानों के पास पधारो ॥ १ ॥ हे सत्य कर्म वाले देवताओ! तुम सब हमारे यज्ञ स्थान में पधारो और अग्नि की जिह्वा द्वारा सोम युक्त हवियों का भक्षण करो ॥ २ ॥ हे मेधावी अग्निदेव! तुम उषा काल में आगमन करने वाले मेधावी देवताओं के साथ सोम पीने के लिए पधारो ॥ ३ ॥ यह सोम अभिषवण फलक द्वारा सिद्ध किया और पात्र में एकत्रित किया है। यह इन्द्र और वायु के लिए अत्यन्त प्रिय है। हे इन्द्र और वायो! इस सोम-रस का पान करने के लिए आओ ॥ ४ ॥ हे वायो! हविदाता यजमान पर अनुग्रह करने के लिए, सोम पीने के निमित्त आओ इस सोम का सेवन करो ॥ ५ ॥ [५]

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७
सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० । ६

हे वायो ! तुम और इन्द्र दोनों ही सोम-पान करने के योग्य हो । तुम दोनों सोममय अन्न के सेवन के लिए यहाँ आओ ॥ ६ ॥ इन्द्र और वायु के उद्देश्य से गव्य युक्त सोम-रस तैयार है । हे इंद्र और वायो ! नीचे की ओर बहने वाली नदियों के समान यह सोम तुम्हारे प्रति गमन करता है ॥७॥ हे अग्ने ! तुम सभी देवताओं, अश्विनीकुमारों और उषा से सुसंगत हुए यहाँ आओ। यज्ञ में अत्रि के समान तुम भी अभिषुत सोम से पुष्टि को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र, वरुण, सोम और विष्णु के सहित यहाँ आओ और अत्रि के समान तुम भी अभिषुत सोम में विहार करो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम, आदित्य, वसुगण, इन्द्र और वायु सहित यहाँ आकर अत्रि के समान सोम से आनन्दित होओ ॥ १० ॥ [६]

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः-स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ।१२
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।

देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ १५ । ७

अश्विनीकुमार हमारे लिए कभी नष्ट न होने वाले सुख प्रदान करें। पराक्रमी, सत्य स्वरूप और शत्रुओं के हननकर्त्ता पूषा हमारा कल्याण करें। सुन्दर ज्ञान से युक्त आकाश-पृथिवी हमारे लिए सुखकारी हों ॥ ११ ॥ हम अपने कल्याण के लिए वायु तथा सोम की स्तुति करते हैं। सोम सम्पूर्ण जगत के पालनकर्त्ता हैं। हम अपने कल्याण के लिए सब देवताओं के साथ मन्त्र-पालक बृहस्पति की स्तुति करते हैं। अदिति के पुत्र देवता और अरुणादि द्वादश देव हमारे लिये मङ्गलकारी हों ॥ १२ ॥ सब देवता इस यज्ञ दिवस में हमारा कल्याण करें तथा हमारे रक्षक हों। मनुष्यों में प्रमुख तथा गृहदाता अग्निदेव हमारा कल्याण करें और रक्षक बनें। तेजस्वी ऋभुगण हमारा मङ्गल करें। रुद्र हमको पाप से बचाते हुए मंगलकारी हों ॥ १३ ॥ हे दिन रात्रि के देवता मित्रावरुण! तुम दोनों हमारा कल्याण करो। हे धन की देवी! हमारा मंगल करो। इन्द्र, अग्नि और अदिति हमारा कल्याण करें ॥ १४ ॥ सूर्य और चन्द्रमा बिना बाधा के जैसे परिभ्रमण करते हैं, वैसे ही हम भी मार्गों में सुख पूर्वक विचरें। प्रवास में दीर्घकाल तक रहने पर भी हमसे स्नेह करने वाले तथा हमारी याद करने वाले कुटुम्बियों और मित्रों से हम मिलें ॥ १५ ॥ [७]

५२ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः
उष्णिक्, बृहती)

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २
ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोम यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ । ८

हे श्यावाश्व ऋषि ! तुम धैर्य पूर्वक स्तुति के पात्र मरुद्गण की पूजा करो । यज्ञ के पात्र मरुद्गण नित्य प्रति हविरूप अन्न प्राप्त करते हुए प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥ उनका बल कभी विचलित नहीं होता । वे धीर जब मार्ग में चलते हैं, तब अपनी इच्छा से हमारे परिवार की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ जल वृष्टि करने में समर्थ मरुद्गण रात्रि को लाँघते हुए चलते हैं । वे जिस कारण यह कर्म करते हैं, उसी कारण हम उन मरुद्गण के आकाश और पृथिवी में व्याप्त तेज की उपासना करते हैं ॥ ३ ॥ हे होताओ ! अब तुम कर्म में लगे हुए किस लिए मरुद्गण की स्तुति करते और उन्हें हवियाँ देते हो ? इसीलिए हो कि वे मरणधर्मा मनुष्यों की हिंसकों से हर समय रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ हे होताओ ! जो पूजा के योग्य, सुन्दर दान से युक्त, कर्म करने में अग्रणी तथा अत्यन्त पराक्रमी हैं, ऐसे यज्ञ के पात्र उन मरुद्गण के लिए यज्ञ को सम्पन्न करने वाली हवियाँ दो ॥ ५ ॥ [८]

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० । ९

वृष्टि कर्म में समर्थ मरुद्गण शस्त्र विशेष से सजते हैं। वे मेघ को विदीर्ण करने के लिए शस्त्र विशेष को निकालते हैं। शब्द करने वाले जलों के समान विद्युत भी मरुद्गण का साथ देती है। तेजस्वी मरुद्गण का तेज स्वयं ही प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ जो मरुद्गण पृथिवी पर बढ़ते हैं तथा जो मरुद्गण अन्तरिक्ष में बढ़ते हैं, वे नदियों की जल-शक्ति तथा विस्तीर्ण आकाश में बढ़ें। इस प्रकार वर्षा-कार्य के लिए सर्वत्र बढ़ते हुए मरुद्गण मेघ को विदीर्ण करने के लिए अपने विशिष्ट अस्त्रों का उपयोग करते हैं ॥ ७ ॥ मनुष्यो ! मरुद्गण के श्रेष्ठ बल का स्तवन करो। वह अत्यन्त बढ़ा हुआ तथा सत्य का आश्रय रूप है। वर्षा-कार्य में अग्रगण्य मरुत् रक्षा करने वाली बुद्धि से जल के निमित्त गमन करने का श्रम करते हैं ॥ ८ ॥ मरुद्गण "परुष्णी" नदी में विद्यमान होते और सब को पवित्र करने वाले तेज को सर्वत्र फैलाते हैं। वे अपने बल से मेघ का खण्डन करते हैं ॥ ९ ॥ जो मरुत् हमारे सामने से जाते हैं, जो सर्वत्र गमनशील हैं, जो पर्वतों की गुफाओं में भी घुस जाते हैं तथा जो अनुकूल मार्गों पर चलते हैं, वे मरुद्गण वृद्धि को प्राप्त होकर हमारे यज्ञ के वहन करने में समर्थ हैं ॥ १० ॥   [९]

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११

छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥ १२

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।

दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभि ॥ १५

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरय पृश्नि वोचन्त मातरम् ।

अधा पितरमिष्मिणं रुद्र वोचन्त शिक्वस ॥ १६

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददु ।

यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ । १०

वे वृष्टि आदि के नेता संसार के आश्रय हैं । अन्तरिक्ष में ग्रह, तारे और मेघ को धारण करते हैं । इस प्रकार वे विविध रूप में देखने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥ जल की कामना से छन्दों द्वारा स्तुति करने वालों ने मरुद्गण की स्तुति की थी तथा प्यासे "गौतम" के पीने के लिए कूप को बुलाया था । उनमें कुछ मरुतों ने अदृश्य रह कर रक्षा की थी और कितनों ही ने प्रत्यक्ष होकर बल दिखाया था ॥ ११ ॥ हे "श्यावाश्व" ऋषि ! विद्युत रूप आयुध से सुसज्जित, मेधावी, सब के बनाने वाले, दर्शनीय मरुतों की सुन्दर श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा सेवा करो ॥ १३ ॥ हे ऋषि ! तुम हव्य देने तथा स्तुतियों के साथ मरुतों के समक्ष आदित्य के समान जाओ । हे शक्ति द्वारा हराने वाले मरुद्गण ! तुम आकाश या अन्य लोकद्वय से हमारे यज्ञ में पधारो । हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १४ ॥ स्तोतागण मरुतों की शीघ्रता से स्तुति करके अन्य देवताओं की स्तुति-कामना नहीं करते । ज्ञानी, द्रुतगामी तथा फल देने वाले मरुद्गण से स्तोतागण इच्छित दान पाते हैं ॥१५॥ -जिन ऐश्वर्यवान् मरुद्गण ने हम से बन्धुवत् वार्तालाप किया, उन्होंने पृथिवी को माता और पराक्रमी तथा शत्रु के रुलाने वाले रुद्र को अपना पिता बताया था ॥ १६ ॥ सात-सात शक्तिशाली मरुद्गण एक एक होकर हमको सैकड़ों ऐश्वर्य प्रदान करें । इनके द्वारा दिया गया प्रसिद्ध ऐश्वर्य हम "यमुना" तट पर प्राप्त करें । उनके दान को हम प्राप्त करने वाले हों ॥ १७ ॥ [१०]

५३ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्द—गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ १

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ । ११

मरुद्गण के जन्म का ज्ञाता कौन है ? मरुद्गण के पालन के समय कौन वर्तमान था ? जब इन्होंने पृथिवी को धुरे से जोड़ा था, तब इनके बल को कौन जानता था ? ॥ १ ॥ यह मरुद्गण रथ पर चढ़े हैं, इनके रथ के शब्द को किसने सुना ? यह किस प्रकार चलते हैं इस बात का कौन जानने वाला है ? किस उदार मनुष्य के लिए वृष्टिशील मरुद्गण बहुत से अन्न के सहित प्रकट होंगे ? ॥ २ ॥ सोम-पान से उत्पन्न होने वाले हर्ष के लिए तेजस्वी घोड़ों पर चढ़ कर जो मरुद्गण हमारे पास आए थे, उन्होंने कहा था कि ' वे मनुष्यों का हित करने वाले हैं । हे मनुष्य ! तू इसी प्रकार स्तुति किया कर' ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! जो तेज तुम्हारे आश्रित हैं, जो अस्त्रों में, माला में, आभूषण में, रथ तथा धनुष में स्थित हैं, उन सब तेजों को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ हे शीघ्र देने वाले मरुद्गण ! वृष्टि की सब ओर

गमनशील दीप्ति के समान तुम्हारे दर्शनीय रथ को देख कर हम प्रसन्न होते और तुम्हारा स्वागत करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

आ ये नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६
ततृदाना सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥ ८
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ ९
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० । १२

सुन्दर दान वाले मरुत हविदाता यजमान के लिए जल धारण करने वाले मेघ को बरसाते हैं । वे आकाश पृथिवी के लिए मेघ को छोड़ते हैं । फिर वे वर्षा करने वाले मरुद्गण सर्वत्र जाने वाले जल के साथ व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥ दूध देने वाली नव प्रसूता गौ के समान मेघ से गिरने वाला जल अन्तरिक्ष में बढ़ता है । मार्ग में गमन करने के लिए द्रुतगामी घोड़े के समान छोड़ी गई नदियाँ अत्यन्त वेग से बहती हैं ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम आकाश, अन्तरिक्ष अथवा इसी लोक से (जहाँ कहीं हो वहीं से) यहाँ आओ । तुम स्वर्ग आदि दूर देश के लिए मत जाओ ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! "रसा", "अनितभा" और "कुभा" तथा सर्वत्र जाने वाली "सिन्धु" नदी तुमको कभी भी न रोकें । जल से परिपूर्ण "सरयू" तुमको न रोकें । तुम्हारे आने से उत्पन्न सुख को हम सब प्राप्त करें ॥ ९ ॥ प्रेरणा देने वाले नवीन रथ की शक्ति के साथ तेजोमय मरुतों की हम स्तुति करते हैं । वर्षा मरुतों का अनुगमन करती और मरुद्गण सब स्थानों पर परिभ्रमण करते हैं ॥१०॥ [१२]

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः । एना यामेन मरुतः ॥ १२

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।

वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।

यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।

यत पूर्वां इव सखींरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ । १३

हे मरुद्गण ! हम सुन्दर स्तोत्र और हवि प्रस्तुत करते हुए उत्तम कर्म द्वारा तुम्हारे बल, समूह और गण का अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥ वे मरुद्गण आज किस हविदाता यजमान के पास, श्रेष्ठ रथ द्वारा जायेंगे ? ॥१२॥ जिस कृपापूर्ण हृदय से तुम पुत्र पौत्रादि को अनेक वार अन्न दान करते हो, उसी हृदय से हमको भी अन्न प्रदान करो। हम तुमसे उन्नतिप्रद, आयुष्य, सौभाग्य वर्द्धक धन को माँगते हैं ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! हम तुम्हारी रक्षा द्वारा पाप का त्याग करें। जब तुम वृष्टि को प्रेरित करो तब हम पाप के निवारण करने वाले सत्य, सुख, वनस्पति आदि लाभ करें ॥ १४ ॥ हे पूजनीय मरुद्गण ! तुम जिसकी रक्षा करना चाहते हो, वह देवताओं की कृपा पाकर सुन्दर पुत्र पौत्रादि प्राप्त करता है। हम भी उसी के समान तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने वाले हों। क्योंकि हम भी तुम्हारे ही हैं ॥ १५ ॥ हे विद्व ! तुम यजमान के इस यज्ञ में मरुद्गण का स्तवन करो। वे मरुद्गण घास आदि खाने के लिए प्रसन्नता से जाने वाली गौओं के समान ही प्रसन्न होते हैं। प्राचीन मित्रों के समान गतिवान् मरुतों को आहूत करो। स्तुति की कामना वाले मरुद्गण की श्रेष्ठ वाणी द्वारा स्तुति करो ॥ १६ ॥ [१३]

५४ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुज. परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुत. पर्वतच्युत' ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्लादुनीवृत. स्तनयदमा रभसा उदोजस. ॥ ३
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतय. ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४
तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ । १४

मरुद्गण के बल के लिए की जाने वाली स्तुति की प्रशंसा करो। ये स्वयं महान् पर्वतों को चीरने वाले, आकाश से आने वाले तथा तेज-युक्त अन्न वाले हैं। इनको आदर पूर्वक हविरन्न दो ॥ १ ॥ हे मरुद्गण! तुम्हारे गण प्रकट होते हैं। वे संसार की रक्षा के लिए जल की इच्छा करने वाले, अन्न के बढ़ाने वाले, चलने के लिए घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले, विद्युत से सुसंगित करने वाले एवं तेजस्वी हैं। जब मेघ गर्जन करते हैं, तब चारों ओर फिरने वाला जल समूह पृथिवी पर गिरता है ॥ २ ॥ प्रकाशमय तेज वाले, वृष्टि के स्वामी, आयुधधारी, पर्वत को तोड़ने वाले, बारम्बार जल प्रदान करने वाले, वज्र फेंकने वाले, शब्दवान् मरुद्गण वर्षा करने के लिए उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे रुद्रपुत्र मरुद्गण! तुम दिवस रात्रि को प्रकट करते हो। तुम सर्व सामर्थ्यों से युक्त हो तथा लोकों को उखाड़ फेंकने वाले हो। तुम कम्पायमान करने वाले हो अतः समुद्र में चलने वाली नौका के समान मेघ को कँपाओ। तुम शत्रु-पुरों को ध्वस्त करते हो, परन्तु स्वयं नष्ट नहीं होते ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण! जैसे सूर्य अपने प्रकाश को बहुत दूर तक फैलाते

हैं। अथवा देवताओं के घोड़े जैसे चलने में तेजी दिखाते हैं, वैसे ही तुम्हारे प्रसिद्ध पराक्रम की प्रशंसा स्तोतागण दूर दूर तक फैला देते हैं ॥ ५ ॥ [१४]

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानव ॥ ९
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नर ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १०।१५

हे वृद्धि विधायक मरुद्गण ! तुम जलसे परिपूर्ण मेघ पर आघात करते हो । तुम्हारा बल अत्यन्त शोभनीय है । तुम परस्पर समान प्रीति वाले हो । जैसे चक्षु मार्ग दिखाने में नेतृत्व करता है, वैसे ही तुम हमको श्रेष्ठ मार्ग द्वारा ऐश्वर्य के निकट पहुँचादो । हे मरुद्गण ! जिस मन्त्र द्वारा तुम मन्त्रद्रष्टा विद्वान को उत्तम कर्मों में लगाते हो, वह मन्त्र दूसरों के द्वारा जीता नहीं जाता और न उसकी कोई हिंसा ही कर सकता है । वह कभी क्षीण नहीं होता, कभी पीड़ित नहीं होता और न उसे कोई रोक ही सकता है । उसका दान तथा रक्षा साधन कभी नाश को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ नियुक्त अश्वों के स्वामी, एकत्रित पदार्थों के विश्लेषणकर्त्ता, नेता स्वरूप, ग्राम को जीत लेने वाले वीर पुरुष के समान, सूर्य के समान तेजस्वी मरुद्गण जलों से युक्त है । जब वे सम्पन्न होते हैं, तब मेघ को जल से परिपूर्ण करते हैं और गर्जन करते हुए सार रूप तथा मधुर रस से युक्त जल से भूमि को सींचते हैं ॥ ८ ॥ यह पृथिवी मरुद्गण के लिए विशाल हुई है । आकाश भी मरुद्गण के गमन के लिए विस्तृत हुआ है । अन्तरिक्ष का मार्ग मरुद्गण के लिए बढ़ता है । मेघ

मण्डल मरुद्गण के निमित्त ही वृष्टि करता है ॥ ९ ॥ हे अत्यन्त पराक्रमी मरुद्गण ! हे दिव्यलोक के नेता ! तुम सूर्य के प्रकट होने पर सोम पान के लिए इच्छा करते हो। उस समय तुम्हारे घोड़े चलने से रुकते नहीं। उस समय तुम लोकत्रय के मार्गों को पार करते हुए भी थकते नहीं ॥१०॥ [१५]

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्ष सु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११
तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवो स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४
तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५।१६

हे मरुद्गण ! तुम्हारे कन्धों पर अस्त्र सुशोभित होते हैं। पाँवों में रक्षा करने वाले कटक, वक्ष पर हार और रथ पर दीप्ति चमकती है। तुम्हारे दोनों हाथों में चमकती हुई किरणें तथा सिर पर सुवर्णमय मुकुट है ॥ ११ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम चलते हो तब दिव्य लोक और जल समूह सभी विचलित हो उठते हैं। जब तुम हमारे द्वारा दी हुई हवियों को भक्षण कर हृष्ट होते हो और अपना प्रकाश फैलाते हो तब जल वर्षा करने की इच्छा करते हुए घनघोर गर्जन करते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! हे विभिन्न मत वालो ! हम रथों से युक्त हैं। हम तुम्हारे द्वारा दिए जाने वाले अन्नयुक्त धनों के स्वामी हों। तुम्हारा दिया हुआ धन कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। वैसे ही—जैसे सूर्य आकाश से पृथक् नहीं होते। हे मरुद्गण ! तुम हमको असीमित धन देकर सुखी बनाओ ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन, पुत्र, भृत्यादि दो। तुम सोमवान ऋत्विक् की रक्षा करने वाले होओ। हे मरुतो !

तुम राजा "श्यावाश्व" को अन्न धन दो। वे देवताओं की कामना से यज्ञ करते हैं। हे मरुद्गण ! तुम उनको सुख प्रदान करो ॥ १४ ॥ हे तुरन्त रक्षा करने वाले मरुद्गण ! तुमसे हम धन माँगते हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणों को दूर तक फैलाते हैं, वैसे ही हम भी अपने संतान तथा सेवकों को इसी धन द्वारा बढ़ावें। हे मरुद्गण ! तुम हमारे इस स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको चाहो, जिससे हम अपनी आयु के सौ वर्ष सुखपूर्वक निकाल सकें ॥ १५ ॥ [१६]

५५ सूक्त

(ऋषि–श्यावाश्व । देवता—मरुतः । छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्य्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५।१७

चमकते हुए अस्त्रों से युक्त मरुद्गण युवा बनाने वाले अन्न को धारण करते हैं, उनके हृदय पर हार सुशोभित रहता है। सरलता से नियम पर चलने वाले द्रुतवेग वाले घोड़े उन्हें वहन करते हैं। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सब से पीछे जाते हैं ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! तुम जब जैसा उचित समझते हो, वैसा ही बल धारण करते हो। हे मरुद्गण ! तुम महान् होकर सुशोभित होओ। अपने पराक्रम से अन्तरिक्ष को व्याप्त करो। सुन्दर

विचार से गमन करने वाले मरुतों के रथ सब से पीछे चलते हैं ॥ २ ॥ मरुद्-गण महान् हैं । वे एक साथ ही जन्मे हैं । एक साथ ही वर्षा करने वाले होते हैं । वे अत्यन्त शोभा के लिए सब स्थानों पर बढ़ते हैं । सूर्य की किरणों के समान वे यज्ञादि उत्तम कार्यों के कराने वाले हैं । सुन्दर विचार से युक्त उन मरुद्गण के रथ सब से पीछे गमन करते हैं ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी महानता स्तुति के योग्य है । तुम्हारा तेज सूर्य के समान चमकता है । तुम हमको स्वर्ग लाभ कराने में सहायक बनो । सुन्दर विचारों से परि-पूर्ण मरुतों के रथ सब के रथों से पीछे चलते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम अन्तरिक्ष से वर्षा के जलों का प्रेरण करो । हे जलों के स्वामी मरुतो ! तुम वर्षा करो । हे शत्रुओं के नाश करने वालो ! तुमको प्रसन्न करने वाले मेघ कभी सूखते नहीं । सुन्दर विचार से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सब के पश्चात् गमन करते हैं ॥ ५ ॥ [१७]

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० । १८

हे मरुद्गण ! जब तुम रथ के अगले भाग में पृषती अश्व को जोड़ते हो, तब सुवर्ण के समान दमकते हुए अपने कवच को उतार देते हो । तुम सभी युद्धों में विजय पाते हो । सुन्दर भाव से युक्त होकर गमनशील मरुतो के रथ सब के पीछे गमन करते हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! पर्वत और नदियाँ

तुम्हारे मार्ग को न रोकें। तुम जिस यज्ञादि कर्म में जाना चाहते हो, वहाँ जाते ही हो। तुम आकाश और पृथिवी में वर्षा के लिए व्याप्त होते हो। सुन्दर विचार से युक्त मरुद्गण के रथ सबके पश्चात् चलते हैं॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! जो यज्ञादि कर्म पहिले सम्पन्न हुए तथा जो कर्म अब हो रहे हैं उनमें जो स्तुतियाँ गायी जाती हैं, तुम उन्हें जानो। सुन्दर भाव से युक्त मरुतों का रथ पीछे पीछे चलता है ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! हमको सुखी बनाओ। हमसे यदि कोई अपराध हुआ है, उससे जो तुम क्रुद्ध हुए हो, उससे हमारे कार्य में विघ्न न डालो। तुम हमको अत्यन्त सुख दो। स्तुति को जानकर हमारे साथ सख्य भाव रखो। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सबके पीछे जाते हैं ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमें धन के सामने ले आओ। हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमको पापों से छुड़ाओ। हे मरुद्गण ! हमारे द्वारा दिए गये हविरन्न को स्वीकार करो, जिससे हम बहुत प्रकार के धनों के स्वामी हो ॥ १० ॥

५६ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्वः। देवता—मरुतः। छन्द—बृहती, पंक्तिः)

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥२

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५ ॥१९

हे अग्ने ! कान्तियुक्त आभरणों वाले, शत्रुओं को जीतने वाले मरुद्गण

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।

दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।

अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।

यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ । १०

वे वृष्टि आदि के नेता संसार के अग्रणि हैं। अन्तरिक्ष में मद, वारि और मेघ को धारण करते हैं। इस प्रकार वे विविध रूप में देखने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥ जल की कामना से छन्दों द्वारा स्तुति करने वालों ने मरुद्गण की स्तुति की थी तथा प्यासे "गौतम" के पीने के लिए कूप को बुलाया था। उनमें कुछ मरुतों ने अदृश्य रह कर रक्षा की थी और कितनों ही ने प्रत्यक्ष होकर बल दिखाया था ॥ ११ ॥ हे "श्यावाश्व" ऋषि! विद्युत रूप आयुध से सुसज्जित, मेधावी, सब के बनाने वाले, दर्शनीय मरुतों की सुन्दर श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा सेवा करो ॥ १३ ॥ हे ऋषि! तुम हव्य देने तथा स्तुतियों के साथ मरुतों के समक्ष आदित्य के समान जाओ। हे शक्ति द्वारा हराने वाले मरुद्गण! तुम आकाश या अन्य लोकद्वय से हमारे यज्ञ में पधारो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १४ ॥ स्तोतागण मरुतों की शीघ्रता से स्तुति करके अन्य देवताओं की स्तुति-कामना नहीं करते। ज्ञानी, द्रुतगामी तथा फल देने वाले मरुद्गण से स्तोतागण इच्छित दान पाते हैं ॥१५॥ -जिन मेधावान् मरुद्गण ने हम से बन्धुवत् वार्तालाप किया, उन्होंने पृथिवी को माता और पराक्रमी तथा शत्रु के रुलाने वाले रुद्र को अपना पिता बताया था ॥ १६ ॥ सात-सात शक्तिशाली मरुद्गण एक-एक होकर हमको सैकड़ों ऐश्वर्य प्रदान करें। इनके द्वारा दिया गया प्रसिद्ध ऐश्वर्य हम "यमुना" तट पर प्राप्त करें। उनके दान को हम प्राप्त करने वाले हों ॥ १७ ॥ [१०]

५३ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्द—गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ १

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ । ११

मरुद्गण के जन्म का ज्ञाता कौन है ? मरुद्गण के पालन के समय कौन वर्तमान था ? जब इन्होंने पृथिवी को धुरे से जोड़ा था, तब इनके बल को कौन जानता था ? ॥ १ ॥ यह मरुद्गण रथ पर चढ़े हैं, इनके रथ के शब्द को किसने सुना ? यह किस प्रकार चलते हैं इस बात का कौन जानने वाला है ? किस उदार मनुष्य के लिए वृष्टिशील मरुद्गण बहुत से अन्न के सहित प्रकट होंगे ? ॥ २ ॥ सोम-पान से उत्पन्न होने वाले हर्ष के लिए तेजस्वी घोड़ों पर चढ़ कर जो मरुद्गण हमारे पास आए थे, उन्होंने कहा था कि ' वे मनुष्यों का हित करने वाले हैं । हे मनुष्य ! तू इसी प्रकार स्तुति किया कर' ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! जो तेज तुम्हारे आश्रित है, जो अस्त्रों में, माला में, आभूषण में, रथ तथा धनुष में स्थित हैं, उन सब तेजों को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ हे शीघ्र देने वाले मरुद्गण ! वृष्टि की सब ओर

गमनशील दीप्ति के समान तुम्हारे दर्शनीय रथ को देख कर हम प्रसन्न होते और तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवु ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६
ततृदाना सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥ ८
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ ९
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० । १२

सुन्दर दान वाले मरुत हविदाता यजमान के लिए जल धारण करने वाले मेघ को बरसाते हैं । वे आकाश पृथिवी के लिए मेघ को छोड़ते हैं । फिर वे वर्षा करने वाले मरुद्गण सर्वत्र जाने वाले जल के साथ व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥ दूध देने वाली नव प्रसूता गौ के समान मेघ से गिरने वाला जल अन्तरिक्ष में बढ़ता है । मार्ग में गमन करने के लिए द्रुतगामी घोड़े के समान छोड़ी गई नदियाँ अत्यन्त वेग से बहती हैं ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम आकाश, अन्तरिक्ष अथवा इसी लोक से (जहाँ कहीं हो वहीं से) यहाँ आओ । तुम स्वर्ग आदि दूर देश के लिए मत जाओ ॥ ८ । हे मरुद्गण ! "रसा", "अनितभा" और "कुभा" तथा सर्वत्र जाने वाली "सिन्धु" नदी तुमको कभी भी न रोकें । जल से परिपूर्ण "सरयू" तुमको न रोकें । तुम्हारे आने से उत्पन्न सुख को हम सब प्राप्त करें ॥ ९ ॥ प्रेरणा देने वाले नवीन रथ की शक्ति के साथ तेजोमय मरुतों की हम स्तुति करते हैं । वर्षा मरुतों का अनुगमन करती और मरुद्गण सब स्थानों पर परिभ्रमण करते हैं ॥१०॥ [१२]

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः । एना यामेन मरुतः ॥ १२

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।

वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।

यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।

यत पूर्वाँ इव सखींरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ । १३

हे मरुद्गण ! हम सुन्दर स्तोत्र और हवि प्रस्तुत करते हुए उत्तम कर्म द्वारा तुम्हारे बल, समूह और गण का अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥ वे मरुद्गण आज किस हविदाता यजमान के पास, श्रेष्ठ रथ द्वारा जायेंगे ? ॥१२॥ जिस कृपापूर्ण हृदय से तुम पुत्र पौत्रादि को अनेक बार अन्न दान करते हो, उसी हृदय से हमको भी अन्न प्रदान करो। हम तुमसे उन्नतिप्रद, आयुष्य, सौभाग्य वर्द्धक धन को माँगते हैं ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! हम तुम्हारी रक्षा द्वारा पाप का त्याग करें। जब तुम वृष्टि को प्रेरित करो तब हम पाप के निवारण करने वाले सस्य, सुख, वनस्पति आदि लाभ करें ॥ १४ ॥ हे पूजनीय मरुद्गण ! तुम जिसकी रक्षा करना चाहते हो, वह देवताओं की कृपा पाकर सुन्दर पुत्र पौत्रादि प्राप्त करता है। हम भी उसी के समान तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने वाले हों। क्योंकि हम भी तुम्हारे ही हैं ॥ १५ ॥ हे विज्ञ ! तुम यजमान के इस यज्ञ में मरुद्गण का स्तवन करो। वे मरुद्गण घास आदि खाने के लिए प्रसन्नता से जाने वाली गौओं के समान ही प्रसन्न होते हैं। प्राचीन मित्रों के समान गतिवान् मरुतों को आहूत करो। स्तुति की कामना वाले मरुद्गण की श्रेष्ठ वाणी द्वारा स्तुति करो ॥ १६ ॥ [१३]

५४ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेय । देवता—मरुत । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्) ।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४
तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ । १४

मरुद्गण के बल के लिए की जाने वाली स्तुति की प्रशंसा करो। वे स्वयं महान् पर्वतों को चीरने वाले, आकाश से आने वाले तथा तेज युक्त अन्न वाले हैं। इनको आदर पूर्वक हविरन्न दो ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे गण प्रकट होते हैं। वे संसार की रक्षा के लिए जल की इच्छा करने वाले अन्न के बढ़ाने वाले, चलने के लिए घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले, विद्युत से सुसंगत करने वाले एवं तेजस्वी हैं। जब मेघ गर्जन करते हैं, तब चारों ओर फिरने वाला जल समूह पृथिवी पर गिरता है ॥ २ ॥ प्रकाशमय तेज वाले, वृष्टि के स्वामी, आयुधधारी, पर्वत को तोड़ने वाले, बारम्बार जल प्रदान करने वाले, वज्र फेंकने वाले, शब्दवान् मरुद्गण वर्षा करने के लिए उपस्थित होते हैं ॥ ३ ॥ हे रुद्रपुत्र मरुद्गण ! तुम दिवस रात्रि को प्रकट करते हो। तुम सर्व सामर्थ्यों से युक्त हो तथा लोकों को उखाड़ फेंकने वाले हो। तुम कम्पायमान करने वाले हो अतः समुद्र में चलने वाली नौका के समान मेघ को कँपाओ। तुम शत्रु पुरों को ध्वस्त करते हो, परन्तु स्वयं नष्ट नहीं होते ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश को बहुत दूर तक फैलाते

हैं। अथवा देवताओं के घोड़े जैसे चलने में तेजी दिखाते हैं, वैसे ही तुम्हारे प्रसिद्ध पराक्रम की प्रशंसा स्तोतागण दूर दूर तक फैला देते हैं ॥ ५ ॥ [१४]

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानव ॥ ९
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १०॥१५

हे वृष्टि विधायक मरुद्गण! तुम जलसे परिपूर्ण मेघ पर आघात करते हो। तुम्हारा बल अत्यन्त शोभनीय है। तुम परस्पर समान प्रीति वाले हो। जैसे चक्षु मार्ग दिखाने में नेतृत्व करता है, वैसे ही तुम हमको श्रेष्ठ मार्ग द्वारा ऐश्वर्य के निकट पहुँचादो। हे मरुद्गण! जिस मन्त्र द्वारा तुम मन्त्रद्रष्टा विद्वान को उत्तम कर्मों में लगाते हो, वह मन्त्र दूसरों के द्वारा जीता नहीं जाता और न उसकी कोई हिंसा ही कर सकता है। वह कभी क्षीण नहीं होता, कभी पीड़ित नहीं होता और न उसे कोई रोक ही सकता है। उसका दान तथा रक्षा साधन कभी नाश को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ नियुक्त अश्वों के स्वामी, एकत्रित पदार्थों के विश्लेषणकर्त्ता, नेता स्वरूप, ग्राम को जीत लेने वाले वीर पुरुष के समान, सूर्य के समान तेजस्वी मरुद्गण जलों से युक्त हैं। जब वे सम्पन्न होते हैं, तब मेघ को जल से परिपूर्ण करते हैं और गर्जन करते हुए सार रूप तथा मधुर रस से युक्त जल से भूमि को सींचते हैं ॥ ८ ॥ यह पृथिवी मरुद्गण के लिए विशाल हुई है। आकाश भी मरुद्गण के गमन के लिए विस्तृत हुआ है। अन्तरिक्ष का मार्ग मरुद्गण के लिए बढ़ता है। मेघ

मण्डल मरुद्गण के निमित्त ही वृष्टि करता है ॥ ९ ॥ हे अत्यन्त पराक्रमी मरुद्गण ! हे दिव्यलोक के नेता ! तुम सूर्य के प्रकट होने पर सोम पान के लिए इच्छा करते हो। उस समय तुम्हारे घोड़े चलने से रुकते नहीं। उस समय तुम लोकत्रय के मार्गों को पार करते हुए भी थकते नहीं ॥१०॥ [१६]

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११
तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४
तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄंरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५।१६

हे मरुद्गण ! तुम्हारे कन्धों पर शस्त्र सुशोभित होते हैं। पाँवों में रक्षा करने वाले कटक, वक्ष पर हार और रथ पर दीप्ति चमकती है। तुम्हारे दोनों हाथों में चमकती हुई किरणें तथा सिर पर सुवर्णमय मुकुट हैं ॥ ११ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम चलते हो तब दिव्य लोक और जल समूह सभी विचलित हो उठते हैं। जब तुम हमारे द्वारा दी हुई हवियों को भक्षण कर हृष्ट होते हो और अपना प्रकाश फैलाते हो तब जल वर्षा करने की इच्छा करते हुए घनघोर गर्जन करते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! हे विभिन्न मत वालो ! हम रथों से युक्त हैं। हम तुम्हारे द्वारा दिए जाने वाले अन्नयुक्त धनों के स्वामी हों। तुम्हारा दिया हुआ धन कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। वैसे ही—जैसे सूर्य आकाश से पृथक् नहीं होते। हे मरुद्गण ! तुम हमको असीमित धन देकर सुखी बनाओ ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन, पुत्र, भृत्यादि दो। तुम सोमपान ऋत्विक् की रक्षा करने वाले होओ। हे मरुतो !

तुम राजा "श्यावाश्व" को अन्न धन दो। वे देवताओं की कामना से यज्ञ करते हैं। हे मरुद्गण! तुम उनको सुख प्रदान करो ॥ १४ ॥ हे तुरन्त रक्षा करने वाले मरुद्गण! तुमसे हम धन माँगते हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणों को दूर तक फैलाते हैं, वैसे ही हम भी अपने संतान तथा सेवकों को उसी धन द्वारा बढ़ावें। हे मरुद्गण! तुम हमारे इस स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको चाहो, जिससे हम अपनी आयु के सौ वर्ष सुखपूर्वक निकाल सकें ॥ १५ ॥ [१६]

५५ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व । देवता—मरुतः । छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्य्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५।१७

चमकते हुए अस्त्रों से युक्त मरुद्गण युवा बनाने वाले अन्न को धारण करते हैं, उनके हृदय पर हार सुशोभित रहता है। सरलता से नियम पर चलने वाले द्रुतवेग वाले घोड़े उन्हें वहन करते हैं। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सब से पीछे जाते हैं ॥ १ ॥ हे मरुद्गण! तुम जब जैसा उचित समझते हो, वैसा ही बल धारण करते हो। हे मरुद्गण! तुम महान् होकर सुशोभित होओ। अपने पराक्रम से अन्तरिक्ष को व्याप्त करो। सुन्दर

विचार से गमन करने वाले मरुतों के रथ सब से पीछे चलते हैं ॥ २ ॥ मरुद्-गण महान् हैं। वे एक साथ ही जन्मे हैं। एक साथ ही वर्षा करने वाले होते हैं। वे अत्यन्त शोभा के लिए सब स्थानों पर बढ़ते हैं। सूर्य की किरणों के समान वे यज्ञादि उत्तम कार्यों के कराने वाले हैं। सुन्दर विचार से युक्त उन मरुद्गण के रथ सब से पीछे गमन करते हैं ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण! तुम्हारी महानता स्तुति के योग्य है। तुम्हारा तेज सूर्य के समान चमकता है। तुम हमको स्वर्ग लाभ कराने में सहायक बनो। सुन्दर विचारों से परि-पूर्ण मरुतों के रथ सब के रथों से पीछे चलते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण! तुम अन्तरिक्ष से वर्षा के जलों का प्रेरण करो। हे जलों के स्वामी मरुतो! तुम वर्षा करो। हे शत्रुओं के नाश करने वालो! तुमको प्रसन्न करने वाले मेघ कभी सूखें नहीं। सुन्दर विचार से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सब के पश्चात् गमन करते हैं ॥ ५ ॥ [१७]

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ९
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० । १८

हे मरुद्गण! जब तुम रथ के अगले भाग में पृषती अश्व को जोड़ते हो, तब सुवर्ण के समान दमकते हुए अपने कवच को उतार देते हो। तुम सभी युद्धों में विजय पाते हो। सुन्दर भाव से युक्त होकर गमनशील मरुतों के रथ सब के पीछे गमन करते हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण! पर्वत और नदियाँ

तुम्हारे मार्ग को न रोकें। तुम जिस यज्ञादि कर्म में जाना चाहते हो, वहाँ जाते ही हो। तुम आकाश और पृथिवी में वर्षा के लिए व्याप्त होते हो। सुन्दर विचार से युक्त मरुद्गण के रथ सबके पश्चात् चलते हैं॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! जो यज्ञादि कर्म पहिले सम्पन्न हुए तथा जो कर्म अब हो रहे हैं उनमें जो स्तुतियाँ गायी जाती हैं, तुम उन्हें जानो। सुन्दर भाव से युक्त मरुतों का रथ पीछे पीछे चलता है ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! हमको सुखी बनाओ। हमसे यदि कोई अपराध हुआ है, उससे जो तुम क्रुद्ध हुए हो, उससे हमारे कार्य में विघ्न न डालो। तुम हमको अत्यन्त सुख दो। स्तुति को जानकर हमारे साथ सख्य भाव रखो। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सबके पीछे जाते हैं ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमें धन के सामने ले आओ। हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमको पापों से छुड़ाओ। हे मरुद्गण ! हमारे द्वारा दिए गये हविरन्न को स्वीकार करो, जिससे हम बहुत प्रकार के धनों के स्वामी हों ॥ १० ॥

५६ सूक्त

(ऋषि–श्यावाश्वः। देवता–मरुतः। छन्द–बृहती, पंक्तिः)

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥२

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५ ॥१९

हे अग्ने ! कान्तियुक्त आभरणों वाले, शत्रुओं को जीतने वाले मरुद्गण

को आहुत करो। हम श्रान उज्ज्वल दिव्यलोक से मरुद्गण को सम्मुख आने की कामना से बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जैसे तुम मरुद्गण को पूजनीय जानकर उनका सम्मान करते हो, वैसे ही वे हमारे पास कल्याणकारी भावों से पधारें। जो हमारे आह्वान को सुनते ही चले आते हैं, उन विकराल मरुतों को हवि देकर बढ़ाओ ॥ २ ॥ पृथिवी पर रहने वाला एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से आकर्षित होने पर उसके सामने जाता है, वैसे ही मरुद्गण प्रसन्न होते हुए हमारे सामने आते हैं। हे मरुद्गण ! तुम अग्नि के समान कार्य में क्षमतावान और वृषभ के समान साहसी हो ॥ ३ ॥ कठिनाई से पकड़े जा सकने वाले अश्व के समान मरुद्गण अपने पराक्रम से बिना परिश्रम के ही शत्रुओं को मारते हैं। वे चलने में शब्द करने वाले जगत को परिपूर्ण करने वाले जल युक्त मेघ को वृष्टि के लिए गिराते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम उच्च आसन पर विराजमान होओ। स्तोत्र द्वारा बढ़े हुए जल समूह के समान सम्पन्न, बल से युक्त और अतुल मरुद्गण को हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥ [१६]

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६
उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८
तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९ ।२०

हे मरुद्गण ! तुम रथ में अरुषी को जोड़ो। रथों में लाल रंग के घोड़ों को जोड़ो। बोझा ढोने के लिए द्रुतगामी दो घोड़ों को योजित करो। जो बोझा ढोने में मजबूत हैं उन घोड़ों को बोझा ढोने के लिए जोड़ो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! रथ में जुड़े हुए, तेजस्वी, ध्वनि करने वाले और दर्शन योग्य

वह घोड़ा यात्रा में देर न करे । रथ में जुड़े उस घोड़े को तुम इस प्रकार से हाँको, जिससे वह देर न कर पावे ॥ ७ ॥ हम मरुतों के उस अन्न युक्त रथ को बुलाते हैं जिस पर सुमधुर जल को धारण करती हुई मरुद्गण की माता विराजमान हैं ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! हम तुम्हारे सुशोभित, तेजस्वी और स्तुति के योग्य उस रथ को बुलाते हैं । उसके बीच में सुजाता मीह्लुषी मरुद्गण के साथ पूजी जाती हैं ॥ ९ ॥ [२०]

५७ सूक्त (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि-श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२
धुनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ।५ ।२१

हे परस्पर दयायुक्त मन वाले, सुवर्णिम रथ में चढ़े हुए, इन्द्र के अनुगामी रुद्र पुत्रो ! तुम हमारे सरलता से प्राप्त यज्ञ में पधारो । हम तुम्हारे निमित्त ही स्तोत्र पढ़ते हैं । तुम प्यास से पीड़ित तथा जल की कामना करते हुए गौतम के पास जैसे स्वर्ग से जल लाये थे, वैसे ही हमारे पास आओ ॥१॥ हे सुन्दर मति वाले मरुद्गण ! तुम्हारे पास विविध आयुध, श्रेष्ठ अश्व तथा शोभित रथ है । तुम अस्त्रों से सुसज्जित हो । हमारे मङ्गल के लिए यहाँ आओ ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! तुम अन्तरिक्ष में मेघों को कँपाओ और हवि

वाले अन्न दो। तुम्हारे आने के डर से जंगल भी काँप जाते हैं। हे महान् पराक्रम वालो! जब तुम जल के उद्देश्य से अश्व योजित करते हो, तब पृथिवी पर वृष्टि करते हो ॥ ३ ॥ मरुद्गण तेजस्वी, वृष्टि के शुद्ध करने वाले, समान रूप वाले, दर्शन के योग्य, काले और लाल रङ्ग के घोड़ों के स्वामी, पाप रहित तथा शत्रु का नाश करने वाले हैं। वे आकाश के समान अत्यन्त विस्तृत हैं ॥ ४ ॥ जल वृष्टि करने वाले, ज्ञानमय, तेजस्वी, कभी क्षीण न होने वाले धन से युक्त, श्रेष्ठ जन्म वाले, हृदय पर हार धारण करने वाले, और पूजन के पात्र मरुद्गण आकाश से आकर अमृत गुण वाला रस प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ॥२२

हे मरुद्गण! तुम्हारे कन्धे पर विशिष्ट आयुध, दोनों भुजाओं में शत्रु का संहार करने वाली शक्ति, शिर पर मुकुट, रथ पर ध्वज और शरीर अत्यन्त सुशोभित हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण! तुम हमको गौ घोड़े, रथ, पुत्र, सुवर्ण तथा बहुत-सा अन्न दो। हे रुद्रपुत्रो! तुम हमारी सम्पन्नता की वृद्धि करो। हम तुम्हारी दिव्य रक्षा को प्राप्त करें ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण! तुम हमारे अनुकूल होओ। तुम असीमित ऐश्वर्य वाले, कभी भी नष्ट न होने वाले, सत्य फल देने वाले, वर्षणशील, तरुण, ज्ञानी, स्तोत्रवान् तथा वृष्टि गुण से युक्त हो ॥ ८ ॥ [२२]

५८ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।

य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४
अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्त्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ।२३

आज इस यज्ञ-दिवस में हम स्तुति योग्य तेजस्वी मरुद्गण की स्तुति करते हैं वे द्रुतगामी अश्वों के स्वामी, अपनी शक्ति से सर्वत्र पहुँचने वाले, जलों के स्वामी तथा अपने तेज से तेजस्वी हैं ॥ १ ॥ हे होता ! कान्तिमान्, कँपकँपी उत्पन्न करने वाले, धनों के प्रदान करने वाले तथा मेधावी मरुद्गण की परिचर्या करो । वे मरुत् सुखों के देने वाले हैं, उनकी महिमा का पार नहीं और वे असीमित ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उन मरुद्गण को नमस्कार करो ॥ २ ॥ वे मरुद्गण संसार में व्याप्त हैं, वे वर्षा को प्रेरण करने वाले हैं । वे जल को वहन करने वाले अभी तुम्हारे समक्ष पधारें । हे युवा और ज्ञानवान् मरुद्गण ! तुम्हारे निमित्त जो अग्नि प्रदीप्त हुए हैं, तुम उन्हीं के द्वारा हमारी साधना को स्वीकार करो ॥ ३ ॥ हे पूज्य मरुद्गण ! तुम यजमान को एक पुत्र दो । वह पुत्र तेजस्वी, शत्रुओं का नाश करने वाला हो ।

हे मरुद्गण ! तुम्हारी ही कृपा द्वारा अपने बाहु बल से शत्रु का संहार करने वाले तथा अमत्र्य घोड़ों स्वामी पुत्र प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! रथ-चक्र में लगे डंडों के समान तुम सब एक साथ ही आविर्भूत हुए हो। तुम दिनों के सदृश एक समान हो। पृश्नि के पुत्र एक से ही हुए हैं, उनमें कोई कम तेज वाला नहीं है। वे वेगवान् हैं और स्वयं ही जल-वर्षा कर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ ५ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम अश्व योजित कर दृढ़ पहिये वाले रथ पर चढ़कर आते हो, तब जल-धारा गिरती है। सूर्य किरणों द्वारा जल वृष्टि करने वाला पर्जन्य नीचे की ओर मुख करके शब्द करता है ॥ ६ ॥ मरुद्गण के आने से पृथिवी को उर्वराशक्ति मिलती है। जैसे पति द्वारा पत्नी में गर्भ स्थापित होता है, वैसे ही मरुद्गण पृथिवी पर अपने जल रूप गर्भांश को स्थापित करते हैं। वे रुद्र पुत्र द्रुतगामी घोड़ों को रथ के आगे जोड़ कर वर्षा-कार्य करते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हम पर कृपा करो। तुम सब में प्रमुख, महान् ऐश्वर्य के स्वामी, अविनाशी, सत्य फल वाले, ज्ञानी, जलवर्षक, युवा, बहुत स्तुतियों के पात्र तथा वृष्टि के करने वाले हो ॥ ८ ॥　　[२३]

५६ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व । देवता—मरुत । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र व स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्या इव सुभ्व श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४

अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः।

मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८ ।२४

हे मरुद्गण ! मङ्गल की आकांक्षा से हविदाता होता भले प्रकार तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे होता ! तुम प्रकाशमान सूर्य की स्तुति करो । हम पृथिवी को नमस्कार करते हैं । सर्वत्र व्याप्त होने वाली वर्षा को मरुद्गण गिराते हैं । वे अन्तरिक्ष में सर्वत्र सींचने वाले मेघों के साथ अपने तेज को दिखाते हैं ॥ १ ॥ जैसे मनुष्यों को जल पर ले जाती हुई नौका काँपती हुई चलती है, वैसे ही मरुद्गण के डर से पृथिवी काँपती है । वे दूर से दिखाई पड़ते हैं और गति द्वारा जाने जाते हैं । वे नेता के समान मरुद्गण आकाश और पृथिवी के मध्य अधिक हवि प्राप्त करने का यत्न करते हैं ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! तुम गौओं के सींगों के समान ऊँचे मुकुटों को सिर पर शोभा के लिए धारण करते हो । जैसे दिवसों के स्वामी सूर्य अपनी किरणों को फैलाते हैं, वैसे ही तुम वृष्टि के लिए अपना देदीप्यमान तेज फैलाते हो । तुम अश्वों के समान द्रुतगति वाले तथा सुन्दर हो । यजमान आदि के समान तुम भी यज्ञादि उत्तम कर्मों के ज्ञाता हो ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम पूज्य हो । कौन तुम्हारी पूजा करने तथा तुम्हारे उद्देश्य से स्तोत्र-पाठ करने में समर्थ होगा ? कौन तुम्हारी वीरता का कीर्त्तन करेगा ? क्योंकि जब तुम वृष्टिजल को गिराते हो तब रश्मियों के समान पृथिवी भी काँपने लगती है ॥ ४ ॥ अश्वों के समान द्रुतगामी, तेजस्वी, मैत्री-भाव से युक्त मरुद्गण वीरों के समान कर्मों में लगे हुए हैं । ऐश्वर्यमान् पुरुषों के समान वे अत्यन्त पराक्रमी होते हुए वृष्टि के द्वारा सूर्य को भी ढक लेते हैं ॥ ५ ॥ इन मरुद्गण में कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है । उन शत्रुओं का नाश करने वालों में कोई भी मध्यम श्रेणी का नहीं

है। सभी अपने तेज मे बढ़े हुए हैं। हे उत्तम जन्म वाले, मनुष्यों का कल्याण करने वाले मरुद्गण ! तुम आकाश-मार्ग से हमारे सामने पधारो ॥६॥ हे मरुद्गण ! तुम पंक्तिबद्ध पक्षियों के समान बल पूर्वक बढ़े हुए और ऊँचे उठकर अन्तरिक्ष तक जाते हो। तुम्हारे घोड़े मेघ से वर्षा का जल गिराते हैं, यह बात देवता और मनुष्य सभी को ज्ञात है ॥ ७ ॥ हमारा पालन करने के लिए आकाश और पृथिवी वर्षा को प्रकट करें। अत्यन्त दानमय स्वभाव वाली उषा हमारे कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो। हे ऋषियो! तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हुए यह रुद्रपुत्र दिव्य जल की वर्षा करें ॥ ८॥ [२४]

६० सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेय । देवता-मरुत अग्निः छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

ईळे अग्नि स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं न. ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१

आ ये तस्थु: पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८ ।२५

हम "श्यावाश्व" ऋषि रक्षा करने वाले अग्नि का सुन्दर स्तोत्र से स्तवन करते हैं। वे इस यज्ञ में पधार कर हमारे स्तोत्र को जानें। जैसे रथ अपने लक्ष्य पर पहुँचता है, वैसे ही हम अन्न की कामना वाले स्तोत्रों द्वारा अपने अभीष्ट की याचना करते हैं। हम प्रदक्षिणा करने के पश्चात् अपने स्तोत्र को बढ़ावें ॥ १ ॥ हे रुद्र पुत्रो ! तुम प्रसिद्ध अश्वों से जुते हुए, सुन्दर, सुसज्जित रथ पर चढ़कर चलो। जब तुम रथ पर चढ़ते हो तब तुम्हारे डर से जङ्गल भी काँप जाते हैं॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे भयङ्कर गर्जन को सुनकर विशाल पर्वत भी डर जाते हैं और अन्तरिक्ष के ऊँचे प्रदेश भी कम्पायमान होते हैं। हे मरुतो ! तुम शस्त्रधारी हो, जब तुम क्रीड़ा विशिष्ट होते हो तब जल के समान दौड़ते हो ॥ ३ ॥ जैसे विवाह की कामना वाला वैभवशाली युवक सुवर्णाभूषणों से सुसज्जित होता है, वैसे ही सर्वोत्कृष्ट एवं पराक्रमी मरुद्गण रथ पर चढ़ कर अपने तेज से सुसज्जित होते हैं ॥४॥ यह मरुद्गण एक साथ ही जन्मे हैं। इनमें छोटा-बड़ा कोई नहीं है। यह परस्पर बन्धु भाव रखते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। यह श्रेष्ठ अनुष्ठानों को करने वाले, नित्य युवा मरुद्गण के पिता रुद्र और माता रूपिणी पृथिवी मरुद्गण के लिए सुन्दर दिन प्रकट करें ॥ ५ ॥ हे भाग्यवान् मरुद्गण ! तुम उत्कृष्ट आकाश में, मध्याकाश अथवा नीचे के आकाश में अवस्थित रहते हो। हे रुद्रपुत्रो तुम उन स्थानों से हमारे पास आओ। हे अग्ने ! हमारे द्वारा आज दी जाने वाली हवि को तुम जानो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम सब जानते हो। तुम और अग्नि आकाश के सर्वोच्च भाग में रहते हो। तुम हमारी हवि और स्तुति से प्रसन्न होते हुए शत्रुओं का वध करो और सोम सिद्ध करने वाले यजमानों को उनका इच्छित ऐश्वर्य दो ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम प्राचीन-काल से ही ज्वालाओं से युक्त रहते हुए सुन्दर शोभामान्, पूज्य, शोधनकर्त्ता तथा प्रीति के देने वाले हो। तुम दीर्घायुष्य मरुद्गण के साथ आकर सोम-रस पियो ॥ ८ ॥ [२५]

६१ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व। देवता—मरुतः, तरन्त राजा की महिषी शशीयसी प्रभृति। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप, बृहती)

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय। परमस्याः परावतः ॥१

क वोऽश्वा क्वा भीशव कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यम ॥२
जघने चोद एषा वि सक्थानि नरो यमु । पुत्रकृथे न जनय ॥३
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानय । अग्नितपो यथासथ ॥४
सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।

श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५ ।२६

हे मनुष्य नेताओं ! तुम कौन हो ? तुम अन्तरिक्ष से एक-एक बार यहाँ पधारो ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारे घोड़े कहाँ हैं ? लगाम कहाँ है ? तुम्हारा गमन कैसा है ? अश्वों की पीठ पर आस्तरण और दोनों नाकों में रस्सी दिखाई देती है ॥ २ ॥ शीघ्र चलने के लिए घोड़ों की जाँघों पर चाबुक लगाई जाती है । मनुष्य अश्वों को अपनी जाँघों को चौड़ा करके तेजी से दौड़ने के लिये प्रेरित करते हैं ॥ ३ ॥ हे शत्रुओं का नाश करने वालो ! हे वीरो ! हे मनुष्यों का मङ्गल करने वालो तथा उत्तम जन्म वालो ! हे मरुतो ! तुम अग्नि में तपाए गए ताम्रपात्र के समान वर्ण वाले दिखाई देते हो ॥ ४ ॥ "श्यावाश्व" ने जिस का स्तवन किया, जिसने वीर "तरन्त" को अपने बाहु-बन्धन में बाँध लिया, वही "तरंत महिषी शशीयसी" हमारे लिए घोड़े, गौ तथा पशु-धन देती है ॥ ५ ॥ [२६]

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥६
वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ॥७
उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥८
उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।

वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥१० २७

जो मनुष्य देवताओं की उपासना नहीं करता और दान नहीं करता उस मनुष्य से "शशीयसी" पूर्णतः श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ यह "शशीयसी" दुःखी, प्यासे तथा धन की कामना करने वाले को जानती है । वह देवताओं की प्रीति में अपनी बुद्धि लगाती है ॥ ७ ॥ "शशीयसी" के अर्द्धाङ्ग

रूप पति 'तरन्त' की स्तुति करके भी हम कहते हैं कि इनकी स्तुति ठीक प्रकार से नहीं हो पाई। वे दान के बारे में सब समय एक समान ही हैं ॥ ८ ॥ युवती शशीयसी ने प्रसन्न हृदय से "श्यावाश्व" को मार्ग दिखाया था। उसके दिए हुए लाल रंग के दोनों घोड़े हमको मेधावी, तेजस्वी "पुरुमीह्ल" के पास पहुँचाते हैं ॥ ९ ॥ "विददश्व" के पुत्र "पुरुमीह्ल" ने भी "तरन्त" के समान ही हमको सौ गायें तथा महान् ऐश्वर्य प्रदान किया था ॥ १० ॥ [२७]

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्म इवोपरि ॥१२
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१३
को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥१४
यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ।१५ ।२८

जो मरुद्गण द्रुतगमी घोड़ों पर चढ़कर हर्षोत्पादक सोमरस को पीते हुए इस स्थान पर आए थे, वे मरुद्गण यहाँ विविध प्रकार की स्तुतियों को ग्रहण करते हैं ॥ ११ ॥ जिन मरुतों के तेज से आकाश-पृथिवी व्याप्त होते हैं। ऊपर दिव्य लोक में तेजस्वी सूर्य के समान वे मरुद्गण रथ पर चढ़े हुए विशिष्ट तेज से युक्त होते हैं ॥ १२ ॥ वे मरुद्गण नित्य युवा, तेजोमय रथ वाले, अनिंद्य, सुन्दर गति से चलने वाले और कभी न रुकने वाले हैं ॥ १३ ॥ जल वर्षा के निमित्त उत्पन्न, शत्रुओं को कँपाने वाले और पाप से रहित मरुद्गण जिस स्थान पर पुष्टि को प्राप्त हुए, उस स्थान का ज्ञाता कौन है ? ॥ १४ ॥ हे स्तुति की कामना वाले मरुद्गण ! जो मनुष्य तुम्हें अपने कर्म द्वारा प्रसन्न करता है, उसे तुम स्वर्गादि की प्राप्ति कराते हो। यज्ञ में बुलाए जाने पर तुम आह्वान को सुनते हो ॥ १५ ॥ [२८]

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ।१६
एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥१७
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥१८

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१६ ।२६

हे शत्रुओं का नाश करने वाले, पूज्य, ऐश्वर्यवान मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन प्रदान करो ॥ १६ ॥ हे रात्रिदेवी ! तुम हमारे पास से मरुतों को स्तुति को उनके पास पहुँचाओ । यह स्तोत्र मरुद्गण के लिए है । हे देवी ! जैसे रथ वाला रथ पर विविध वस्तुएं रख कर लक्ष्य पर पहुँचाता है, वैसे ही तुम हमारे इस सम्पूर्ण स्तोत्र को पहुँचाओ ॥ १७ ॥ हे रात्रिदेवी ! सोमयाग की समाप्ति पर "रथवीति" को यह बताना कि मेरी अभिलाषा अभी न्यून नहीं हुई है ॥ १८ ॥ वे "रथवीति "गोमती" तट पर रहते हैं । उनका स्थान हिमयुक्त पर्वत पर अवस्थित है ॥ १६ ॥ [२६]

६२ सूक्त

(ऋषि-श्रुतविदात्रेयः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-त्रिष्टुप्)

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥ २
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३
आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४
अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वी बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥ ५ । ३०

हम तुम्हारे आश्रयभूत, जल द्वारा ढके हुए, अनादिकालीन, सत्य रूप सूर्य मण्डल को देखते हैं । उस स्थान में अवस्थित घोड़ों को स्तोता छोड़ते हैं । उस सूर्य मंडल में सहस्रों किरणें रहती हैं । तेजस्वी अग्नि आदि देवताओं के बीच हमने सूर्य के उस उत्तम मंडल के दर्शन किए ॥ १ ॥ हे

मित्रावरुण ! तुम्हारी महिमा अत्यन्त प्रशस्त है, जिसके द्वारा गतिशील सूर्य के तेज को बढ़ाते हो। तुम्हारा एक मात्र रथ अनुक्रम से घूमता है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! स्तुति करने वाले यजमान तुम्हारी कृपा से राज्य प्राप्त करते हैं। तुम दोनों अपने पराक्रम से आकाश-पृथिवी को धारण करते हो। हे शीघ्र देने वाले मित्रावरुण ! तुम औषधियों और गौओं की वृद्धि के लिए जल वृष्टि करो ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारे अश्व रथ में भले प्रकार जुतकर तुम दोनों को वहन करें। वे सारथि के नियन्त्रण में चलें। साकार जल तुम्हारा अनुगमन करता है। तुम्हारी कृपा से ही प्राचीन नदियाँ बहती हैं ॥ ४ ॥ हे अन्न तथा बल से युक्त मित्रावरुण ! तुम दोनों शरीर के तेज को बढ़ाते हो। यज्ञ की रक्षा जैसे मन्त्र से होती है, वैसे ही तुम पृथिवी की रक्षा करो। तुम दोनों यज्ञ स्थान में रथ पर चढ़ो ॥ ५ ॥ [३०]

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षेत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणाविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९ ।३१

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों जिस यजमान की यज्ञ में रक्षा करते हो उस सुन्दर स्तुति करने वाले यजमान को देने वाले बनो। तुम दोनों ऐश्वर्य-शाली क्रोध से रहित होकर सहस्र स्तंभ युक्त मकान के धारण करने वाले हो ॥ ६ ॥ इनका रथ तथा कील आदि सभी सुवर्ण के हैं। यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत के समान सुशोभित होता है। हम कल्याणकारी स्थान में सोमरस स्थापित करें ॥ ७ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम उषाकाल में सूर्योदय होने पर यज्ञ में आते समय सुवर्णमय रथ पर चढ़ो और अखंड भूमि तथा इधर-उधर बिखरी हुई प्रजा को देखो ॥ ८ ॥ हे दानमय तथा संसार की रक्षा

करने वाले मित्रावरुण ! जो सुख न टूटने योग्य, कभी क्षीण न होने वाला तथा महान् है, उस सुख को तुम धारण करने वाले हो। हमारा उसी सुख द्वारा पालन करो। हम इच्छित धन पावें और शत्रुओं को जीतें ॥ ६ ॥ [३१]

६३ सूक्त

(ऋषि—अर्चनाना आत्रेय । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—जगती)

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७ ॥१

हे जल रक्षक, सत्य धर्म से युक्त मित्रावरुण ! हमारे यज्ञ में आने के लिए तुम दोनों रथ के ऊपर चढ़ते हो। इस यज्ञ में तुम जिस यजमान की रक्षा करते हो, उस यजमान के लिए आकाश से मधुर जल की वर्षा होती है ॥ १ ॥ हे स्वर्गद्रष्टा मित्रावरुण ! इस यज्ञ में विराजकर तुम विश्व का शासन करते हो। हम तुमसे वर्षा रूप अन्न तथा दिव्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं। तुम दोनों की महती किरणें आकाश और पृथिवी के बीच घूमती

हैं ॥ २ ॥ हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों अत्यन्त सुशोभित, जल की वर्षा करने वाले, पराक्रमी, आकाश-पृथिवी के स्वामी तथा सर्वद्रष्टा हो। तुम दोनों अद्भुत रूप वाले मेघों के साथ स्तोत्र सुनने के लिए आओ। फिर वर्षाकारी पर्जन्य के बल से आकाश से जल-धाराओं को गिराओ ॥ ३ ॥ हे मित्रा-वरुण ! जब ज्योतिर्मय भास्कर अन्तरिक्ष में घूमते हैं, तब तुम दोनों की माया स्वर्ग में रहती है। तुम दोनों आकाश में मेघ तथा वर्षा द्वारा सूर्य का पालन करते हो। हे पर्जन्य ! मित्रावरुण के प्रेरण से मधुर जलधार गिरती है ॥४॥ हे मित्रावरुण ! जैसे वीर पुरुष युद्ध में जाने के लिए अपने रथ को सजाता है, वैसे ही तुम दोनों के सहयोग से वृष्टि के निमित्त मरुद्गण अपने कल्याणकारी रथ को सजाते हैं। जल वर्षा के लिए मरुद्गण विभिन्न लोकों में घूमते हैं। हे शोभनीय देवताओ ! तुम मरुतों के साथ हम पर जल-वृष्टि करो ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों की प्रेरणा से ही मेघ अन्न साधन करने वाला अद्भुत गर्जन करता है। उन मेघों की रक्षा मरुद्गण अपनी बुद्धि से करते हैं। तुम दोनों भी उनके साथ अरुण वर्ण वाले पाप-रहित आकाश से वर्षा करते हो ॥ ६ ॥ हे मेधावी मित्रावरुण ! तुम दोनों, संसार का उपकार करने वाले वर्षा आदि कर्म द्वारा यज्ञ का पालन करते हो। जल वर्षा करने वाले पर्जन्य की शक्ति द्वारा जल को उज्ज्वल बनाते हो। तुम पूजनीय तथा तेजस्वी सूर्य को सूर्य-मंडल में स्थापित करो ॥ ७ ॥ [१]

६४ सूक्त

(ऋषि-अर्चनाना आत्रेयः। दे०—मित्रावरुणौ। छन्द अनु०, उष्णिक्, पंक्तिः)

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।

यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥७।२

हे मित्रावरुण ! हम मन्त्र द्वारा हम, तुम दोनों को आहूत करते हैं। तुम अपने भुजबल से शत्रुओं को हटाओ और स्वर्ग के मार्ग को दिखाओ ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों बुद्धिमान हो। हम स्तोताओं को तुम दोनों ही इच्छित धन दो। हम सुन्दर हाथ द्वारा तुम दोनों को प्रणाम करते हैं। तुम दोनों का दिया हुआ प्रशंसनीय सुख सभी स्थानों में व्याप्त है ॥ २ ॥ हम अभी चलें। मित्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हम चलें। अहिंसक मित्र का श्रेष्ठ कल्याण हमको घर में प्राप्त हो ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों की स्तुति करते हुए हम ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे, जिससे सभी स्तुतिकर्त्ता हमारे धन के प्रति ईर्ष्यालु होंगे ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम सुन्दर तेज से युक्त होकर हमारे यज्ञ में पधारो। तुम धनवान् यजमानों के घर में तथा मित्रों के घर में ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारी स्तुतियों के लिए तुम असीमित अन्न बल धारण करते हो। तुम दोनों ही हमको अन्न और सुख प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! हे स्वामिन् ! तुम दोनों उषाकाल में, सुन्दर रश्मियुक्त प्रातः वेला में यज्ञगृह में पूजे जाते हो। उस गृह में हमारे द्वारा सुसिद्ध सोमरस को देखो। तुम दोनों स्तोता के ऊपर प्रसन्न होते हुए गतिशील घोड़े पर चढ़ कर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥ [२]

६५ सूक्त

(ऋषि-रातहव्य आत्रेय। दे०-मित्रावरुणौ। छन्द-अनु०, उष्णिक, पंक्ति)

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।

वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥२

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः । ५

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६ ।३

हे मित्रावरुण ! जो मनुष्य देवताओं में तुम दोनों के स्तोत्र को जानता है, वह उत्तम अनुष्ठान करने वाला है। वह सुन्दर कर्म करने वाला स्तोता हमको स्तुति बतावें, जिन स्तुतियों को सुन्दर रूप वाले मित्रावरुण स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥ अत्यन्त तेजस्वी, ईश्वर रूप मित्रावरुण सुदूर निवास करते हुए भी हमारे आह्वान को सुन लेते हैं। यजमानों के ईश्वर और यज्ञ की वृद्धि करने वाले यह दोनों देवता प्रत्येक यजमान का मङ्गल करने के लिए घूमते फिरते हैं ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों प्राचीन हो। हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित हुए अपनी रक्षा कामना करते हुए तुम्हारी पूजा करते हैं। हम द्रुतगति वाले घोड़ों के स्वामी होकर अन्न के निमित्त सुन्दर ज्ञान वालों का स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ मित्रदेवता अधम स्तोता को भी उत्तम घर में रहने का उपाय बताते हैं। हिंसक स्वभाव वाला भी यदि उनकी प्रीति करे तो वे उसके प्रति भी कल्याण-भावना रखते हैं ॥ ४ ॥ दुःखों का निवारण करने वाले मित्र देवता की महान् रक्षा को हम यजमान प्राप्त कर सकें। हे मित्र ! हम तुम्हारे द्वारा पापों से बचाये जाते हुए, तुम्हारे आश्रय में एक समय में ही वरुण देवता के प्रजा रूप माने जाँय ॥ ५ ॥ हे मित्र ! हे वरुण ! हम स्तोता तुम दोनों का स्तवन करते हैं। तुम दोनों ही हमारे समीप पधारो।

यहाँ आकर हमको सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कराओ। हे मित्रावरुण! हम अन्न के स्वामी हैं। तुम हमको त्यागना नहीं। तुम हमारे पुत्रों से विमुख मत होना। हमारे सोमयाग में तुम दोनों सर्व प्रकार हमारे रक्षक होना ॥ ६ ॥ [३]

६६ सूक्त

(ऋषि-रातहव्य आत्रेयः। देवता-मित्रावरुणौ। छन्द-अनुष्टुप)

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यं माशाते।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम्।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४
तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम्।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६ ।४

हे स्तुतियों के जानने वाले मनुष्यो! तुम शत्रुओं का संहार करने वाले तथा अनेक उत्तम कर्मों के करने वाले दोनों देवताओं का आह्वान करो। हवि रूप अन्न तथा रस पूज्य वरुण को अर्पण करो जो अन्नों के स्वामी हैं ॥ १ ॥ तुम दोनों का पराक्रम कभी भी नष्ट न होने वाला तथा राक्षसों का नाश करने वाला है। जैसे सूर्य अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हैं, वैसे ही तुम दोनों का प्रकाशित बल यज्ञ-स्थान में देदीप्यमान होता है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण! हविरन्न युक्त श्रेष्ठ स्तुति द्वारा शत्रुओं को वशीभूत करने वाला

सामर्थ्य लाभ करते हुए तुम दोनों हमारे इस रथ के आगे मार्ग की रक्षा के लिए चलते हो। उस समय हम, तुम दोनों का स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तुति के पात्र, अत्यन्त बल वाले दोनों देवताओ! हमारी परिपूर्ण करने वाली स्तुति द्वारा तुम दोनों अत्यन्त अद्भुत होते हो। क्योंकि तुम दोनों ही प्रीति-युक्त हृदय से हमारे स्तोत्र के जानने वाले हो ॥ ४ ॥ हे भूमिदेवी! हम ऋषियों का अभीष्ट साधन करने के लिए तुम्हारे ऊपर जल स्थापित करते हैं। वे गतिवान् दोनों देवता अपने नियम और गति द्वारा बहुत जल की वर्षा करते हैं ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण! तुम दूरदर्शी हो। हम स्तुति करने वाले तुम दोनों को बुलाते हैं। हम तुम्हारे अत्यन्त विशाल और बहुतों के द्वारा जाने हुए आश्रय को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [४]

६७ सूक्त

(ऋषि–यजत आत्रेयः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द- अनुष्टुप्)

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत्।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥१
आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्रसदथः।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२
विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम्।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५ ।५

हे तेजस्वी अदिति पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमा! तुम सब यजन योग्य, वर्द्धमान, बृहद् बल के तत्काल धारण करने वाले हो और अत्यन्त क्षमतायुक्त हो ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण! तुम मनुष्यों की रक्षा करने वाले और शत्रुओं का नाश करने वाले हो। जब तुम इस सुन्दर यज्ञ स्थान में आते हो,

सब हमारा मङ्गल करते हो ॥ २ ॥ सब के जानने वाले मित्र, वरुण और अर्यमा अपने-अपने स्थान के अनुरूप हमारे इस यज्ञ-गृह में विराजमान होते हैं और हिंसा करने वाले पापी असुरों से मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥३॥ वे मित्रा-वरुण सत्य मार्ग के दिखाने वाले, जल की वर्षा करने वाले तथा यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं। वे प्रत्येक मनुष्य को सत्य मार्ग दिखाते और धन देते हैं। वे निम्न कोटि के स्तोता को भी ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारे द्वारा तुम दोनों की स्तुतियाँ करने पर भी कौन ऐसा है जिसकी स्तुति नहीं हुई ? अर्थात् तुम दोनों ही स्तुत्य हो। हम अल्प बुद्धि वाले अत्रि वंशीय स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [५]

६८ सूक्त

(ऋषि—यजत आत्रेय । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—गायत्री)

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ । ६

हे ऋत्विजो ! तुम मित्रावरुण की भले प्रकार स्तुति करो। हे महान् पराक्रमी मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे इस श्रेष्ठ महायज्ञ में आगमन करो ॥ १ ॥ मित्रावरुण दोनों ही सब के अधीश्वर, जल के उत्पन्न करने वाले, तेजस्वी और देवताओं में अत्यन्त स्तुतियों के पात्र हैं। हे ऋत्विजो ! उन दोनों की परिचर्या करो ॥ २ ॥ वे दोनों देवता हमको पार्थिव तथा दिव्य दोनों प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों प्रशंसित परा-क्रमी देवताओं में प्रसिद्ध हैं। हम उस पराक्रम का गान करते हैं ॥ ३ ॥ वे दोनों देवता जल द्वारा यज्ञ का स्पर्श करते हुए यजमान को सम्पन्न करते हैं। हे मित्रावरुण ! तुम्हारा कोई द्रोही नहीं है। तुम दोनों अत्यन्त बढ़े हुए हो ॥ ४ ॥ जिन दोनों की प्रेरणा से अन्तरिक्ष जल-वर्षा करता है, जो दोनों

इच्छित फल का सम्पादन करने वाले हैं, जो वृष्टिदायक होने के कारण अन्नों के स्वामी हैं और जो दानशील व्यक्ति पर सदा अनुग्रह करते हैं, वे दोनों देवता मित्र और वरुण यज्ञ में आने के लिए रथ पर चढ़ते हैं ॥ ५ ॥ [६]

६९ सूक्त

(ऋषि—उरुचक्रिरात्रेयः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्री रोचना वरुण त्रीरुँत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १
इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ २
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४।७

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों ज्योतिर्मान तीनों दिव्य लोकों के धारण करने वाले हो । तुम तीनों अन्तरिक्ष और तीनों भू मंडलों के धारण करने वाले हो । तुम दोनों यजमान के क्षात्र-कर्म की सदा रक्षा करते हो ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारी प्रेरणा से ही गौऐं दूध देती हैं । तुम्हारी प्रेरणा से ही मेघ जल प्रदान करते हैं । तुम्हारी प्रेरणा से ही जलों की वर्षा करने वाले, जल धारक तथा ज्योतिर्मान् अग्नि, वायु और सूर्य नामक तीनों देवता पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य मंडल के अधिपति रूप से प्रतिष्ठित होते हैं ॥२॥ प्रातः सवन और दिन के मध्य सवन में हम ऋषिगण देवताओं की तेजस्विनी माता अदिति का आह्वान करते हैं । हे मित्रावरुण ! हम धन, पुत्र-पौत्रादि, सुख-लाभ तथा अनिष्टों के शमनार्थ तुम दोनों की इस यज्ञ में स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे सौर लोक में उत्पन्न हुए अदिति के दोनों पुत्रों ! तुम दोनों ही स्वर्ग और पृथिवी के धारण करने वाले हो । हम, तुम दोनों की स्तुति करते

हैं। हे मित्रावरुण ! तुम्हारे कार्य सदा स्थिर रहते हैं। इन्द्रादि देव भी तुम्हारे कार्यों को विनष्ट नहीं कर सकते ॥ ४ ॥ [७]

७० सूक्त

(ऋषि—उरुचक्रि रात्रेय । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २
पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३
मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ॥४।८

हे मित्रावरुण ! तुम्हारे रक्षा-साधन अत्यन्त ही दृढ़ हैं। हम तुम दोनों की कृपा बुद्धि की याचना करते हैं ॥ १ ॥ हे दोनों देवताओं ! तुम द्रोह से शून्य हो। हम तुम्हारे द्वारा अपने भोजन के लिए अन्न पावें। हे रुद्रो ! हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। हम तुम्हारे ही सेवक हैं। हम समृद्धि को प्राप्त करें ॥ २ ॥ हे देवद्वय ! अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो। सुन्दर आश्रय में हमारा पालन करो। हम अभीष्ट पावें, और हमारे अनिष्ट दूर हों। हम अपने पुत्रों द्वारा या स्वयं ही शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हों ॥ ३ ॥ हे अद्भुतकर्मा मित्रावरुण ! हम किसी अन्य के प्रशंसनीय धन का अपने लिए उपभोग नहीं करते हैं। हम तुम्हारी कृपा से ही पुष्ट हैं। किसी के धन से शरीर को पुष्ट नहीं करते। हम अपनी सन्तान के साथ तथा हमारे कुटुम्बी भी अन्य किसी के धन का उपयोग नहीं करते अर्थात् हम तुम्हारी कृपा द्वारा प्राप्त धन सम्पत्ति से ही सन्तुष्ट रहते हैं ॥ ४ ॥ [८]

७१ सूक्त

(ऋषि—बाहुवृक्त आत्रेय । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—गायत्री)

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् ॥१
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २
उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥३ । ६

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों ही शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो। हमारे

यज्ञ में हिंसा नहीं होती । तुम दोनों ही हमारे यज्ञ में पधारो ॥ १ ॥ हे मेधावी मित्रावरुण ! तुम दोनों सब मनुष्यों के स्वामी हो । तुम दोनों हमारे लिए ईश्वर रूप हो । तुम हमको फल देते हुए हमारे कर्मों को पुष्ट करो ॥२॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे सुसिद्ध सोमरस के निमित्त आओ । हम हव्य प्रदान करते हैं । हमारे सोमरस का पान करने के लिऐ यहाँ पधारो ॥३॥ [६]

७२ सूक्त

(ऋषि-बाहुवृक्त आत्रेयः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द—उष्णिक्)

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ । १०

जिस प्रकार हमारे मूल पुरुष अत्रि ने तुम्हारा आह्वान किया था, हे मित्रावरुण ! उसी विधि से मन्त्र द्वारा हम भी तुम को बुलाते हैं । वे दोनों देवता कुशासन के ऊपर बैठ कर सोमरस को स्वीकार करें ॥ १ ॥ मित्र और वरुण जगत के आधार स्वरूप हैं और सदैव अपने स्थान पर सुस्थिर बने रहते हैं । यज्ञ में ऋत्विकगण इन को हविर्दान करते हैं । अतः ये दोनों देवता कुशासन पर विराजमान हों ॥ २ ॥ मित्र और वरुण से हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे यज्ञ में सोत्साह भागलें और सोम को ग्रहण करने के लिए कुशासन पर आकर विराजें ॥ ३ ॥ [१०]

७३ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—पौर आत्रेयः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्)

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसासि विभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३

तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४

आ यद्वां सूर्य्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥११

हे अश्विनीकुमारो ! तुम असंख्य यज्ञों में हव्य ग्रहण करते हो। यद्यपि तुम इस समय सुदूर स्वर्ग में, अन्तरिक्ष में, अथवा किसी अन्य दूरस्थ लोक में वर्तमान होगे, तो भी उन लोकों से हमारे यज्ञ में पधारो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों ही, यजमानों को उत्साहित करने वाले, विविध अनुष्ठानों के धारण करने वाले, वरण करने योग्य, श्रेष्ठगति तथा कर्मों वाले हो। हम तुम्हारा रक्षा के निमित्त आह्वान करते हैं। तुम दोनों हमारे इस यज्ञ में पधारो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! सूर्य को प्रकाशित करने के लिए तुमने रथ के एक ज्योतिर्मान पहिये को योजित किया। तुम अपने पराक्रम से प्राणियों के लिए दिवस रात्रि आदि को प्रकट करने के लिए अन्य पहिए द्वारा लोकों में घूमते हो ॥ ३ ॥ हे सर्वव्यापक अश्विद्वय ! हम जिस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम दोनों का वह स्तोत्र सुसम्पादित हो। हे पाप से रहित दोनों देवताओ ! हमको असीमित धन दो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम्हारी नारी रूपिणी सूर्या तुम्हारे द्रुतगामी रथ पर चढ़ती है, तब तुम दोनों के चारों ओर अत्यन्त तेजोमय प्रकाश फैल जाता है ॥ ५ ॥ [११]

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० । १२

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारी स्तुति करके जब अग्नि के ताप को सुख से सहन करने योग्य समझा तब अग्नि के दाहक प्रभाव का शमन होने के कारण वे तुम्हारे उपकार को याद करते हुए कृतज्ञ हुए ॥६॥ तुम्हारा ऊँचा, दृढ़, गतिशील रथ यज्ञ में प्रख्यात है। हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे कृपापूर्ण कार्यों से ही हमारे पिता अत्रि दुःखों से छुटकारा पा सके थे ॥ ७ ॥ हे मधुर सोम के मिलाने वाले देवताओ ! हमारी बलकारक स्तुति तुम्हारे ऊपर मधुर सोम रस को सींचती है। तुम अन्तरिक्ष की सीमा को भी लाँघ जाते हो। परिपक्व हविरन्न तुम दोनों देवताओं को पुष्ट करता है ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! ज्ञानीजन तुम दोनों को सुख का देने वाला कहते हैं, वह अवश्य ही सत्य है। हमारे यज्ञ में सुख प्रदान करने के लिए बुलाए जाने पर तुम हमारी हार्दिक अभिलाषा की पूर्ति कर हमें सुखी करो ॥ ९ ॥ जैसे कलाकार शिल्पी रथों का निर्माण करता है, वैसे ही हम अश्विनीकुमारों को पुष्ट करने के लिए स्तुतियाँ अर्पित करते हैं। वे स्तुतियाँ उनको स्नेहदायिनी बनें ॥ १० ॥ [१२]

७४ सूक्त

(ऋषि—पौर आत्रेयः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १
कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २

कं याथः कं ह गच्छथ कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथ ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथ ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ । ९३

हे स्तुति के योग्य, धन का दान करने वाले अश्विद्वय ! आज इस यज्ञ दिवस में तुम दोनों आकाश से आकर इस पृथिवी पर रुको और अत्रि ऋषि जिस स्तोत्र का तुम्हारे लिए पाठ करते थे, उस स्तोत्र को सुनो ॥ १ ॥ वे तेजस्वी दोनों कहाँ हैं ? वे इस यज्ञ-दिन में आकाश के किस स्थान पर वर्तमान रहकर स्तुतियाँ सुन रहे हैं ? हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों किस यजमान के पास आते हो ? कौन स्तुति करने वाला यजमान तुम्हारी स्तुति करता है ? ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों किसके यज्ञस्थान में जाते हो ? तुम किससे जाकर मिलते हो ? तुम किसके सामने जाने के लिए अपने रथ में घोड़े जोड़ते हो ? किस स्तोता के स्तोत्र तुम्हारी भक्ति करते हैं ? हम तुम दोनों को प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों जल-वाहक मेघ को प्रेरणा करो । जैसे वन में सिंह को शिकारी ललकारता है, वैसे ही यज्ञ-कर्म में तुम दोनों अनिष्टों को ताड़ना दो ॥ ४ ॥ तुम दोनों ने बुढ़ापे से जीर्ण हुए च्यवन के पुराने शरीर की कुरूपता को कवच के समान दूर किया था । जब उनको दुबारा युवावस्था दी तब उन्होंने सुन्दर स्त्री के रूप में इच्छित भार्या को प्राप्त किया था ॥ ५ ॥ [१२]

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६
को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥ ७
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।

पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥ ८
शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० । १४

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों की स्तुति करने वाले इस यज्ञ-मण्डप में उपस्थित हैं । हम समृद्धि के लिए तुम्हारे दर्शन के लिए चलें । तुम हमारे आह्वान को आज सुनो । तुम अन्न से युक्त हो । अपने रक्षा साधनों सहित यहाँ पधारो ॥ ६ ॥ हे अन्नवान् अश्विनीकुमारो ! असंख्य मरणधर्मा प्राणियों में कौन आज तुम्हें अधिक प्रसन्न करता है ? हे ज्ञानीजनों द्वारा नमस्कृत अश्वियो ! कौन ज्ञानी तुमको और सब की अपेक्षा अधिक तृप्त करता है ॥ ७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! अन्य सभी देवताओं के रथों में सब की अपेक्षा अधिक वेग से चलने वाला तथा असंख्य शत्रुओं को हनन करने वाला और सभी के द्वारा स्तुत हुआ तुम दोनों का सुन्दर रथ हम यजमानों की मङ्गल-कामना करता हुआ, हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ-स्थान में आवे ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे निमित्त सम्पादन किए गए स्तोत्र हमारे लिए सुखों का उत्पादन करें । हे ज्ञानवान् अश्विद्वय ! तुम दोनों बाज पक्षी के समान सर्वत्र जाने वाले अपने रथ पर चढ़ कर हमारे सामने आने की कृपा करो ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम जहाँ कहीं भी हो, हमारे आह्वान को अवश्य सुनो । तुम्हारे पास पहुँचने की इच्छा करता हुआ यह हविरन्न तुम दोनों को प्राप्त हो ॥ १० ॥ [१४]

७५ सूक्त

(ऋषि—अवस्युः । देवता-अश्विनौ । छन्द—पंक्ति ।)

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥१५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारी स्तुति करने वाले श्यावाश्व ऋषि तुम दोनों के, फलों की वर्षा करने वाले और धन से परिपूर्ण रथ को सजाते हैं। हे ज्ञानियो ! हमारे आह्वान को सुनो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सब यजमानों को लाँघकर यहाँ आओ। जिससे हम सब वैरियों को वशीभूत कर सकें। हे शत्रु-हन्ता अश्विद्वय ! तुम स्वर्णिम रथ पर चढ़ने वाले, महान धन वाले, नदियों के प्रवाहित करने वाले हो। तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे लिए रत्न-धन लेकर आओ। हे स्वर्णिम रथ पर चढ़ने वाले, स्तुत्य, अन्नवान्, यज्ञ में प्रतिष्ठित होने वाले ज्ञानी अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे सुन्दर आह्वान को श्रवण करो ॥ ३ ॥ हे धन की वर्षा करने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों की स्तुति करने वाले का स्तोत्र तुम्हारे निमित्त पढ़ा जाता है। तुम्हारा यजमान एकाग्र मन से तुम दोनों को हविरन्न प्रदान करता है। हे ज्ञानियो ! तुम हमारे आह्वान को सुनो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों विवेक बुद्धि वाले, रथ पर चढ़ने वाले वेगवान् और स्तोत्र के सुनने वाले हो। तुम दोनों निष्कपट अन्तःकरण वाले च्यवन ऋषि के पास शीघ्र ही घोड़े पर चढ़ कर गए थे। हे ज्ञानवान् ! तुम हमारे आह्वान को सुनो ॥ ५ ॥ [१५]

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूपथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९।१६

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के अश्व सुशिक्षित, वेगवान् और अद्भुत रूप वाले हैं । वे इस यज्ञ मंडप में सोम पीने के लिए तुम दोनों को शोभन ऐश्वर्य सहित ले आवें । हे मधुविज्ञान-विशारद अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ-गृह में आओ । तुम दोनों हमसे विरुद्ध नहीं होना । हे स्वामिन् तुम अजेय हो । तुम हमारे यज्ञ-गृह में आओ । हे मधुविद्या के जानने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ ७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम जल के स्वामी हो । तुम दोनों इस गृह में स्तोता पर अनुग्रह करो । हे मधुविद्या के ज्ञाता अश्विद्वय ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ ८ ॥ उषा फैल गई है । कान्तिमती किरणों से युक्त अग्नि वेदी पर विराजमान हुए हैं । हे धन की वर्षा करने वाले तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के दृढ़तर रथ में घोड़े जुड़ जाँय । हे मधुविद्या के ज्ञाताओ ! हम दोनों का आह्वान सुनो ॥ ९ ॥ [१६]

७६ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २
उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।

आ नो दिवो बृहत. पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ । १७

उषाकाल में चैतन्य अग्नि प्रकाशमान हो रहे हैं। ज्ञानी स्तोताओं के देवताओं की कामना वाले स्तोत्र गाये जाते हैं। हे रथों के स्वामी अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ-गृह में प्रकट होकर इस सोम-रस से युक्त यज्ञ में आओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे इस संस्कारयुक्त यज्ञ की हिंसा न करो और यज्ञ के पास शीघ्र आकर स्तुति के पात्र बनो। तुम अपने रक्षा-साधनों सहित प्रातःकाल आओ, जिससे अन्न का अभाव न हो। तुम हविर्दाता यजमान का कल्याण करो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम रात्रि के अन्त में, गौओं को दोहने के समय, प्रात काल में, जब आदित्य अत्यन्त चढ़े हुए होते हैं, सायंकाल और रात्रि में अथवा किसी भी समय अपने मङ्गलकारी रक्षा-साधनों सहित यहाँ आओ। अश्विनीकुमारों के अतिरिक्त अन्य देवता सोम-रस पीने को शीघ्र प्रस्तुत नहीं होते ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! इस उत्तर वेदी पर तुम प्राचीन काल से विराजमान होते आए हो। यह सभी घर तुम दोनों के ही हैं। तुम दोनों जल से परिपूर्ण मेघ द्वारा अन्तरिक्ष से अन्न और पराक्रम के साथ हमारे पास आओ ॥ ४ ॥ हम सब अश्विनीकुमारों के उत्तम रक्षा-साधनों तथा सुख से पूर्ण आगमन से प्रसन्न हों। हे अमरत्व प्राप्त अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको धन, संतान और सभी सुख दो ॥ ५ ॥ [१७]

७७ सूक्त

(ऋषिः—अत्रिः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २
हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।

मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ । १८

हे ऋत्विको ! दोनों अश्विनीकुमार प्रातःकाल ही सब देवताओं से पहले ही पहुँचते हैं, तुम सब उनका यज्ञ करो । वे दिन के पूर्व काल में ही हव्य ग्रहण करते हैं । वे प्रातःकाल ही यज्ञ को धारण करते हैं । प्राचीन-कालीन ऋषिगण उनकी प्रातः सवन में ही स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! प्रातः काल ही अश्विनीकुमारों की पूजा करो । उन्हें हवियाँ दो । सायंकाल दिया जाने वाला हव्य देवताओं के पास नहीं पहुँचता । उस असेवनीय हव्य को देवता ग्रहण नहीं करते । हमारे सिवाय जो कोई व्यक्ति सोम द्वारा उनका यज्ञ करता है और हवि देकर उन्हें सन्तुष्ट करता है तथा जो व्यक्ति हमसे पूर्व ही उनकी पूजा करता है, वह देवताओं का प्रीति भाजन होता है ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों का सुवर्ण जटित, सुन्दर वर्ण वाला, जल वर्षक मन के समान द्रुतगति वाला, वायु के समान वेग वाला और अन्नों का धारक रथ आता हैं । तुम दोनों ही उस रथ के द्वारा सब दुर्गम मार्गों को लाँघ जाते हो ॥ ३ ॥ जो यजमान अश्विनीकुमारों के लिए यज्ञ में हविर्दान करता है, वह अपने संतान आदि की रक्षा प्राप्त करता है । जो अग्नि को प्रदीप्त नहीं करते, वे हानि सहन करते हैं ॥ ४ ॥ हम अश्विनीकुमारों के श्रेष्ठ रक्षा-साधनों तथा शुभ आगमन से सुख प्राप्त करें । हे अविनाशी अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको धन, सन्तान तथा सुख दो ॥ ५ ॥ [१८]

७८ सूक्त

(ऋषि—सप्तवध्रिरात्रेयः । देवता-अश्विनौ । छन्द-उष्णिक्, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥ ४ । १९

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ में आओ । जैसे दो हंस स्वच्छ जल के पास जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों सिद्ध सोम-रस के लिए पधारो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे हरिण घास के लिए दौड़ते हैं और दो हंस स्वच्छ जल के लिए जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों हमारे छने हुए सोम-रस के लिए आओ ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न और श्रेष्ठ निवास के देने वाले हो । तुम दोनों हमारे यज्ञ में कामनाएं पूर्ण करने के लिए आओ । जैसे दो हंस स्वच्छ जल के पास जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों इस सिद्ध सोम-रस के पास आओ ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे स्त्री अपने पति को विनयता से प्रसन्न कर लेती है, वैसे ही हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारा स्तवन करते हुए तुषाग्नि कुण्ड से छुटकारा पाया था । तुम दोनों श्येन के नवोत्पन्न वेग के समान वेग वाले सुखदायक रथ द्वारा हमारी रक्षा के निमित्त पधारो ॥ ४ ॥ [१९]

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ । २०

हे काष्ठ निर्मित पेटिके ! प्रसव करने वाली स्त्री का अङ्ग जैसे सन्तानोत्पति के समय तदनुकूल हो जाता है वैसे ही तुम भी विस्तृत होकर सुविधा जनक बन जाओ । तुम सप्तवध्रि ऋषि को मुक्त करने के लिए हमारा आह्वान सुनो ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों भयभीत तथा निकलने के लिए प्रार्थना करते हुए सप्तवध्रि ऋषि के लिए माया की पेटी को पृथक् करते हो ॥ ६ ॥ वायु जैसे सरोवर आदि के जल को चलाती है, वैसे ही तुम्हारा गर्भस्थ शिशु स्पन्दन करने वाला हो और वह दश मास में पूर्ण होकर बाहर निकल आवे ॥ ७ ॥ वायु, वन और समुद्र जैसे कांपते हैं, वैसे दस मास तक गर्भस्थ शिशु जरायु में लिपटा हुआ निकलता है ॥ ८ ॥ जननी के गर्भ में दश मास तक अवस्थित शिशु जीवित ही, अक्षत रूप से जीवित माता से जन्म ले ॥ ९ ॥ [२०]

७९ सूक्त

(ऋषि—सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता—उषा । छन्द—गायत्री, बृहती, पंक्तिः)

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ । २१

हे कान्तिमती उषे ! तुमने जैसे हमको पहिले श्रेष्ठ बुद्धि दी थी, उसी प्रकार आज भी धन्न-साधन प्राप्त करने के लिए बुद्धि दो। हे सुन्दर प्राकट्य वाली उषे ! घोड़ों की प्राप्ति के लिए स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम "सत्यश्रवा" पर कृपा करो ॥ १ ॥ हे सूर्य की पुत्री उषे ! तुमने "शुचद्रथ" के पुत्र "सुनीथि" के लिए अन्धकार को नष्ट किया था। हे सुन्दर उत्पत्तिवाली उषे ! अश्व लाभ के लिए स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुमने "वय्य" के पुत्र पराक्रमी "सत्यश्रवा" का अन्धकार दूर किया था ॥२॥ हे सूर्य-कन्ये ! तुम धन लेकर आती हो। आज तुम हमारे अन्धकार को दूर करो। हे उत्तम जन्म वाली, अश्व-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुमने "वय्य पुत्र" पराक्रमी "सत्यश्रवा" का अन्धकार मिटाया था ॥ ३ ॥ हे ज्योतिर्मती उषे ! जो ऋत्विक् स्तोत्र से तुम्हारी परिचर्या करते हैं, वे ऐश्वर्य से सम्पन्न और दानी होते हैं। हे ऐश्वर्यशालिनी उषे ! तुम उत्तम जन्म वाली हो। स्तोतागण अश्व-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हे उषे ! धन के लिए तुम्हारी सेवा में उपस्थित यह साधक अक्षय हविरन्न देकर हमारे अनुकूल हुए थे। हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तोतागण अश्व-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६
तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७
उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९
एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १०।२२

हे ऐश्वर्यमती उषे ! जिसने हमको अश्वों और गौओं से युक्त धन दिया था, उस यजमान को तुम धन और अन्न दो। हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तोतागण अश्व प्राप्ति के लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ हे सूर्य की पुत्री उषे ! तुम सूर्य रश्मियों और अग्नि की प्रज्वलित ज्वालाओं के सहित हमारे पास अन्न और गौओं को लाओ। हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तुति करने वाले यजमान अश्व-प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ हे सूर्य-पुत्री उषे ! तुम प्रकाश को फैलाओ। हमारे प्रति देर मत करो। राजा जैसे चोर अथवा शत्रु को पीड़ित करता है, वैसे सूर्य तुम्हें अपनी रश्मियों से पीडित न करें। हे उत्तम जन्म वाली देवी उषे ! स्तुति करने वाले यजमान सुन्दर अश्वों की प्राप्ति के निमित्त तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ हे उषे ! जो माँगा गया है और जो नहीं माँगा गया, तुम वह सब हमको देने की सामर्थ्य से परिपूर्ण हो। हे ज्योतिर्मती ! तुम स्तुति करने वालों का अन्धकार दूर करती हो, परन्तु उनका अनिष्ट नहीं करतीं। हे उत्तम जन्म वाली उषा, स्तुति करने वाले यजमान अश्वों की प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥ [२२]

८० सूक्त

(ऋषि-सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता-उषा । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।

अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नृन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ । २३

तेजस्वी रथ पर चढ़ी हुई, सर्व व्यापिनी, यज्ञों में उत्तम प्रकार से पूजनीय, अरुण वर्ण वाली, सूर्य के पहिले आने वाली उषा की ऋत्विगण स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ दर्शनीय रूप वाली उषा सोते हुए प्राणियों को चैतन्य करती है और मार्गों को दिखाती हुई विस्तृत रथ पर चढ़ कर सूर्य के पुरोभाग में चलती है । अत्यन्त महिमामयी तथा संसार में व्याप्त होने वाली उषा दिन के आरम्भकाल में अपना प्रकाश फैलाती है ॥ २ ॥ लाल किरणों में संयोग करती हुई उषा सुख से जाने के लिए मार्गों को चमकाती है तथा सबके लिए वरणीय होती हुई स्वयं प्रकाशित होती हैं । यह देवी अनुरागयुक्त वाणियों से स्तुत होती हुई अक्षय ऐश्वर्यों को स्थिर करती है ॥ ३ ॥ वह शुभ्र प्रकाश वाली होती हुई रात्रि और दिवस दोनों से ही आगे बढ़ती हुई अपने आगे प्रकाश को विस्तृत करती है । वह नित्य प्रति सूर्य का अनुगमन करती हुई दिशाओं को मापती है । यह देवी अपने रूप को प्राची में प्रकट करती है ॥ ४ ॥ स्नान करके सुन्दर अलंकारों में सजी हुई रमणी के समान अपने रूप को दिखाती हुई उषा प्राची में प्रकट होती है । सूर्य की पुत्री उषा अपने वैरी अन्धकार को भागने के लिए बाध्य करती हुई अपने प्रकाश के सहित आती है ॥ ५ ॥ अपने प्रकाश से संसार को परिपूर्ण करने वाली सूर्य की पुत्री उषा पश्चिम की ओर मुख करके शरीर विन्यास करने वाली रमणी के समान अपने रूप को प्रकट करती है । यह देवी हवि-दाता यजमान के लिए वरण करने योग्य धन देती है । नित्य तरुणी उषा बारम्बार अपने प्रकाश को दिखाती है ॥ ६ ॥ [२३]

८१ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—सविता । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ३
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५।२४

विद्वान् लोग अपने चित्त को श्रेष्ठ कर्मों में लगाते हैं । वे सभी महान्, स्तुति के पात्र और मेधावी सवितादेव की प्रेरणा से यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं । वे होताओं के कार्यों के ज्ञाता हैं, वही उन्हें यज्ञ कार्य में लगाते हैं । उन सर्वैश्वर्यवान सवितादेव की महिमा स्तुति के योग्य है ॥ १ ॥ वे मेधावी सवितादेव स्वयं ही सब रूपों के धारण करने वाले हैं । वे मनुष्य, पशु आदि सब प्राणियों के कल्याण के ज्ञाता हैं । वे सब के द्वारा वरण करने योग्य, सब को प्रेरणा देने वाले तथा स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले हैं । वे उषा के आविर्भूत होने के पश्चात् उदित होते हैं ॥ २ ॥ अग्नि आदि सभी देवता ज्योतिर्मान् सवितादेव का अनुगमन करते हुए महिमावान् होते हैं । जो सवितादेव अपनी महिमा से पृथिवी आदि लोकों को परिपूर्ण करने में समर्थ हैं, वे अपने तेज से ही अत्यन्त महिमा वाले हैं ॥ ३ ॥ हे सवितादेव ! तुम तीनों लोकों में गमन करते हुए अपनी रश्मियों से सुसंगति करते हो । तुम ही रात्रि को दोनों ओर से व्याप्त करते हो । हे सवितादेव ! तुम संसार के धारण करने वाले होकर सब के मित्र बनते हो ॥ ४ ॥ हे सवितादेव ! तुम एक ही इस जगत को उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ हो और तुम एक ही अपने नियमों द्वारा सब की रक्षा करते हो । तुम ही इस सम्पूर्ण भुवन को प्रकाशित करते हुए उस पर शासन करते हो ! हे सवितादेव श्यावाश्व ऋषि तुम्हारी स्तुति के योग्य सामर्थ्य से युक्त हैं ॥ ५ ॥ [२४]

८२ सूक्त.

(ऋषि-श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—सविता । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री)

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।

श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।

न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥३

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।

परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।

यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ । २५

हम साधक सवितादेव से भोग के योग्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं। उनकी कृपा से हम भग देवता के पास से श्रेष्ठ ऐश्वर्य तथा उपभोग्य और शत्रुओं का नाश करने वाला धन प्राप्त करें ॥ १ ॥ उन सवितादेव के सर्वप्रिय, असाधारण, ज्योतिर्मान ऐश्वर्य को कोई राक्षस भी नष्ट करने में समर्थ नहीं हैं ॥ २ ॥ वह सवितादेव तथा यजन के योग्य भग देवता हम हवि देने वालों के लिए रमणीय ऐश्वर्य देते हैं। अतः हम उन भग देवता से भी रमणीय ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥ हे सवितादेव! इस यज्ञ-दिवस में आज तुम हमको संतानयुक्त ऐश्वर्य को प्रदान करते हुए दुःस्वप्न से उत्पन्न शंका तथा दारिद्र्य के दुःख को दूर करो ॥ ४ ॥ हे सवितादेव! हमारे सभी अनिष्टों को दूर करते हुए प्रजा, पशु और सुन्दर घर रूप सौभाग्य तथा ऐश्वर्य को हमारे सम्मुख उपस्थित करो ॥ ५ ॥ [२५]

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ७

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ९ । २६

हम साधकगण प्रेरणा देने वाले सवितादेव की प्रेरणा से अखंडनीया देवी अदिति का कोई अपराध न करें । हम सभी रमणीय और अभीष्ट धनों को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ आज हम इस यज्ञ-दिवस में स्तोत्रों द्वारा सर्व देवताओं के स्वामी साधकों के रक्षक सवितादेव की सब प्रकार से उपासना करने में समर्थ हों ॥ ७ ॥ जो सवितादेव भले प्रकार ध्यान करने के योग्य तथा उत्तम कर्म वाले हैं, जो निरालस्य हुए दिन और रात्रि के संधिकाल में गमन करते हैं। हम उन सवितादेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ जो सवितादेव सभी उत्पन्न प्राणियों को अपने यश से अवगत कराते हैं, जो सब जीवों को प्रेरणा देते हैं, उन सवितादेव की इस यज्ञ-दिवस में हम स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ [२६]

८३ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः देवता—पर्जन्यः छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति)

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २
रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥ ३
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ । ५ । २७

हे स्तोताओ ! तुम शक्तिशाली पर्जन्य के सम्मुख उपस्थित होकर उनकी स्तुति करो । सुन्दर स्तोत्र रूप वाली स्तुति से उनका स्तवन करो । हविरूप

अन्न से उनकी सेवा करती । जल वृष्टि करने वाले, उदारचेता, गर्जन शब्द वाले पर्जन्य वर्षा द्वारा वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करते हैं, फलप्रद बनाते हैं ॥ १ ॥ पर्जन्य देव वृक्षों को भूमिसात् करते, असुरों का संहार करते और विकराल होते हुए जगत को डरा दिखाते तथा पापियों को विनष्ट करते हैं। इसलिए जो व्यक्ति पापी नहीं है वे भी डर जाते हैं और उन वर्षा करने वाले पर्जन्य के सामने से भाग जाते हैं ॥ २ ॥ जैसे रथी चाबुक मार कर घोड़ों को उत्तेजित करते हुए वीरों को उत्साहित करते हैं, वैसे ही पर्जन्य मेघों को प्रेरित करके जल वृष्टि के लिए उत्साहित करते हैं। जब तक पर्जन्य मेघों को अन्तरिक्ष में एकत्र करते हैं, तब तक शेर के समान गरजने वाले मेघों का शब्द दूर से ही सुनाई देता है ॥ ३ ॥ जब तक पर्जन्यदेव वर्षा द्वारा पृथिवी का पालन करते हैं, तब तक वर्षा के कार्य में योग देने वाली वायु प्रवाहित रहती है। सब ओर विद्युत चमकती, अन्तरिक्ष वृष्टि करता और वनस्पतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं। तब पृथिवी सबका हित-साधन करने में सक्षम हो जाती है ॥ ४ ॥ हे पर्जन्य! तुम्हारे कर्म के सामने पृथिवी झुकती है, तुम्हारे ही कर्म द्वारा वनस्पतियाँ विभिन्न वर्ण तथा रूप वाली होती हैं। हे पर्जन्यदेव! हमको अत्यन्त सुख दो ॥ ५ ॥ [२७]

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८
यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१०।२८

हे मरुद्गण हमारे निमित्त तुम अन्तरिक्ष से वृष्टि को प्रेरित करो।

वर्षा करने वाले तथा सर्वत्र व्याप्त मेघों से जल गिराओ। हे पर्जन्य तुम ! जल सींचने वाले गर्जनयुक्त मेघ सहित हमारे सामने आओ। क्योंकि तुम जल की वर्षा द्वारा हमारा पालन करने वाले हो ॥ ६ ॥ हे पर्जन्य ! तुम गर्जनशील होओ। जल वृष्टि द्वारा वनस्पतियों को गर्भवती फलप्रद बनाओ। अपने जल युक्त रथ से अन्तरिक्ष में घूमो। जल युक्त मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करो। ऊँचे नीचे प्रदेशों को समतल करो ॥ ७ ॥ हे पर्जन्य ! जल के कोष रूप मेघ को उत्तेजित कर वृष्टि कराओ। वेगवती नदियाँ प्रवाहित हों। जल द्वारा आकाश और पृथिवी को भिगो दो। गौओं के पीने के लिए मधुर जल की कमी न रहे ॥ ८ ॥ हे पर्जन्य ! जब तुम गम्भीर गर्जन द्वारा मेघों को चीरते हो, तब यह सम्पूर्ण संसार और पृथिवी के सभी जीव बल को प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥ हे पर्जन्य तुमने जल-वृष्टि द्वारा मरुभूमि को उर्वरा बनाने के लिए उसे जल से परिपूर्ण कर दिया। मनुष्य के लाभार्थ वनस्पतियों को प्रकट कर स्तोताओं द्वारा पूजे गए ॥ १० ॥　　[२८]

८४ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—पृथिवी । छन्द—अनुष्टुप्)

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवी ।
　　प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
　　प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २

दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
　　यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३।२९

हे पृथिवी ! तुम उत्तम गुण वाली हो। तुम पर्वतों के बल से प्राणियों का पालन करती हो। हे पूजनीया ! तुम पर्वतों के समान उदार और अपनी उर्वरा भूमि को उत्तम रीति से सींचने वाली होओ ॥ १ ॥ हे गतिमती पृथिवी ! स्तोतागण अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अर्जुनी ! तुम हिनहिनाते हुए अश्व के समान मेघ को उसके उत्तम कर्म में प्रेरित करती हो ॥ २ ॥ हे पृथिवी ! तुम अपने दृढ़ सामर्थ्य से बड़े-बड़े वृक्षों

को धारण करती हो और तेजोमय अन्तरिक्ष से विद्युत की चमक के साथ तुम पर वर्षा होती है। इसलिए तुम अत्यन्त पूजनीया हो ॥ ३ ॥ [२९]

८५ सूक्त

(ऋषि-अत्रिः । देवता—वरुण । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रिय वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवी सूर्याय ॥ १
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २॥
नीचीनवारं वरुणः कवन्ध प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्त श्रथयन्त वीराः ॥४
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ । ३०

हे अत्रि ऋषि ! तुम भले प्रकार विराजमान, सर्वविख्यात और विघ्नों के शमन करने वाले वरुण देवता के लिए सुन्दर और प्रिय स्तोत्र का पाठ करो। जैसे पशुओं का वध करने वाला, पशु-चर्म को बढ़ाता है, वैसे ही वरुण सूर्य के विचरण के लिए अन्तरिक्ष को विस्तीर्ण करते हैं ॥ १ ॥ वृक्षों के ऊपरी भाग में वरुण अंतरिक्ष को फैलाते हैं। वे अश्वों में बल, गौओं में दूध और मनुष्यों में सद्भाव प्रेरित करते हैं। वे जल में अग्नि, अन्तरिक्ष में आदित्य तथा पर्वतों पर सोमादि औषधियों की स्थापना करते हैं ॥ २ ॥ वरुणदेव स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष के हित-साधनार्थ मेघ के निम्न भाग को चीरते हैं। जैसे वृष्टि अनाजों को सींचती है, वैसे ही वरुणदेव सम्पूर्ण पृथिवी को गीली कर देते हैं ॥ ३ ॥ वरुणदेव जब वृष्टि की इच्छा करते हैं, तब वे अन्तरिक्ष और दिव्यलोक को भिगोते हैं। फिर मेघों के द्वारा पर्वत शिखरों को

ढक लेते हैं। मरुद्गण अपने पराक्रम से हृष्ट हुए मेघों को ढीला करते हैं ॥४॥ हम प्रसिद्ध तथा राक्षसों का संहार करने वाले वरुण की बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। वे वरुणदेव अन्तरिक्ष में स्थित होकर सूर्य द्वारा पृथिवी और अंतरिक्ष को व्याप्त करते हैं ॥ ५ ॥   [३०]

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चतीरवनयः समुद्रम् ॥ ६
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ८ । ३१

तेजस्वी, ज्ञानी और महान् वरुणदेव की प्रसिद्ध बुद्धि का कोई खंडन नहीं कर सकता। केवल जल सींचने वाली उज्ज्वल नदियाँ जल द्वारा इकले समुद्र को भी पूर्ण करने में समर्थ नहीं हो सकतीं। यह केवल वरुण की ही महान् सामर्थ्य का फल है ॥ ६ ॥ हे वरुण! यदि हम कभी किसी भी मित्र, साथी, दुष्टों के शासक, भ्राता, पड़ौसी, हमसे युद्ध न करने वाले व्यक्तियों के प्रति कोई अपराध कर बैठें तो तुम उन अपराधों के पाप को नष्ट कर दो ॥७॥ हे वरुण! जुआ खेलने वाले के समान यदि हम जानते हुए या अनजाने में भी कोई अपराध करें तो तुम ढीले बंधन के समान उन्हें छोड़ दो। इसके पश्चात् हम तुम्हारे प्रिय हों ॥ ८ ॥   [३१]

८६ सूक्त

(ऋषि–अत्रिः। देवता–इन्द्राग्नि। छन्द–उष्णिक्, अनुष्टुप्)

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४
ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥ ५
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६ । ३१

हे इन्द्राग्ने ! तुम मरणधर्मा मनुष्यों की रणक्षेत्र में रक्षा करो। तुम्हारी रक्षा को पाकर वह बड़े-बड़े दुर्गों से पार हो जाता है और वैरियों के वाक्यों को ज्ञानमयी वाणियों द्वारा खण्डन करता हुआ तीनों स्थानों में व्याप्त होता है ॥ १ ॥ जो इन्द्राग्नि युद्ध में किसी के द्वारा वशीभूत नहीं होते जो रणभूमि में सदा प्रशंसा प्राप्त करते हैं। जो पाँचों प्रकार के प्राणियों की रक्षा करते हैं, उन इन्द्राग्नि की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र और अग्नि का बल शत्रुओं को हराता है। जब यह दोनों एक रथ पर चढ़ कर गौओं के छुड़ाने के लिए तथा वृत्र का हनन करने के लिए चलते हैं, तब इन दोनों पराक्रमियों के हाथों में तीक्ष्ण वज्र स्थित रहता है ॥ ३ ॥ हे वैभव के स्वामी गतिशील, सबों के जानने वाले, अत्यन्त पूजनीय इन्द्र और अग्निदेव ! युद्ध में तुम्हारे रथ को लाने के लिए हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों अजेय हो। हम अश्व-प्राप्ति के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं। तुम दोनों ही मनुष्यों के समान बढ़ते तथा सूर्य के समान प्रकाशमान रहते हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुमको पाषाणों से कूटे हुए सोम-रस के समान पुष्टि वर्द्धक हव्य दिया गया है। तुम दोनों मनुष्यों को अन्न दो। स्तुति करने वालों को अन्न-धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ [३१]

८७ सूक्त

(ऋषि-एवयामरुदात्रेय । देवता-मरुतः । छन्द-जगती)

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।

प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ १
प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥ २
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्यन्द्रासो
धुनीनाम् ॥ ३
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति
शेवृधो नृभिः ॥ ४
स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास
इष्मिणः ॥ ५ । ३३

"एवया" ऋषि की वाणी से निकले हुए स्तोत्र मरुद्गण के सहित विष्णु के समीप पहुँचें और वे ही स्तोत्र पूज्य, पराक्रमी, उत्तम प्रकार से सजे हुए, स्तुतियों की कामना करने वाले, मेघों को प्रेरित करने वाले तथा सशक्त और सामर्थ्यवान् मरुद्गण के समीप उपस्थित हों ॥ १ ॥ जो मरुद्गण महान देवता इन्द्र के साथ प्रकट हुए, जो यज्ञ में जाने सम्बन्धी भाव सहित उत्पन्न हुए उन मरुद्गण की "एवया" ऋषि स्तुति करते हैं। हे मरुद्गण! तुम्हारा बल अभीष्ट फल प्रदान करने के कारण महान् हो गया है। तुम पर्वतों के समान दृढ़ हो ॥ २ ॥ जो तेजस्वी स्वच्छन्द गमनशील स्वर्ग से आह्वान सुनते हैं, अपने घर में प्रतिष्ठित करके जिन्हें हटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है, जो अपने तेज से तेजस्वी तथा अग्नि के समान नदियों को प्रवाहित करते हैं, उन मरुतों की एवया ऋषि स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ अपनी इच्छा से जाने वाले मरुद्गण के घोड़े जब रथ में जोड़े जाते हैं, तब एवया मरुत् उनकी कामना करते हैं। वे मरुद्गण सर्वत्र व्याप्त होने वाले और अन्तरिक्ष से आने वाले हैं। परस्पर स्पर्द्धा करने वाले, महान् पराक्रमी तथा कल्याण-

कारी मरुद्‌गण अपने स्थान से निकल पड़ते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्‌गण ! तुम अपने ही तेज में स्थित, सदा एक सी कांति वाले, दिव्य अलंकारों से सुसज्जित तथा अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए जिस शब्द द्वारा शत्रुओं को वशीभूत करते हो, वह जल की वृष्टि करने वाला, तेजोमय, विशाल, पराक्रमी और गर्जन "एवयामरुत्" को कम्पित करने वाला न हो ॥ ५ ॥ [३३]

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ । ३४

हे समान शक्ति वाले मरुद्‌गण ! तुम्हारी महिमा का पार नहीं पाया जा सकता। तुम्हारे आश्रय में एवयामरुत् की रक्षा हो। यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के नियामक तुम्हीं हो। तुम प्रदीप्त अग्नि के समान प्रकाशमान हो। हमको दुष्ट, निन्दा करने वालों की निन्दा से बचाओ ॥ ६ ॥ अग्नि के समान प्रदीप्ति वाले पूज्य मरुद्‌गण ! तुम्हारे द्वारा विस्तीर्ण स्थान के समान अन्तरिक्ष प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। तुम पाप से रहित हो तथा अपने गमन समय अपना महान् तेज प्रकट करते हो। तुम एवयामरुत् के रक्षक होओ ॥ ७ ॥ हे मरुद्‌गण ! तुम द्वेष से रहित हो। तुम हमारे स्तोत्र के प्रति सुसंगत होओ और स्तुति करने वाले एवयामरुत् का आह्वान सुनो। तुम इन्द्र के साथ मिल कर यज्ञ भाग प्राप्त करते हो। हे मरुद्‌गण ! जैसे वीर पुरुष शत्रुओं को दूर

भगाता है, वैसे ही तुम हमारे घोर शत्रुओं दूर भगाओ ॥ ८ ॥ हे यज्ञादि कार्यों में बुलाये जाने वाले मरुतो ! तुम हमारे यज्ञ में आओ, जिससे यह यज्ञ पूर्ण हो। तुम विघ्नों से दूर रहते हो। हमारे आह्वान को सुनो। हे श्रेष्ठ ज्ञानी मरुद्गण ! तुम विन्ध्यादि पर्वतों के समान अत्यन्त बढ़े हुए हो। तुम अन्तरिक्ष में रहते हुए उदारचेता तथा श्रेष्ठ शासक बनो ॥ ६ ॥ [३४]

॥ इति पञ्चम मण्डलम् समाप्तम् ॥

॥ अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १
अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥ २
वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥ ४
त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५ । ३५

हे अग्ने ! तुम देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हो। देवताओं का चित्त तुम में लगा है। तुम दर्शन करने के योग्य हो। इस यज्ञ में देवगण के बुलाने वाले तुम ही हो। हे कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्निदेव ! सभी बलवान् शत्रुओं को हराने के लिए हमको शक्ति दो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञानुष्ठानों के अत्यन्त करने वाले हो। तुम हवियों का भक्षण करते हुए

स्तुतियों के पात्र होते हो। तुम इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ। धर्म रूप अनुष्ठान के करने वाले ऋत्विगगण दिव्य धन-लाभ की कामना से देवताओं में में सर्व प्रथम तुमको ही प्रदीप्त करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम अत्यन्त तेजस्वी, दर्शनीय, हवियों के भक्षण करने वाले तथा सदा ही ज्योतिर्मान् रहते हो। तुम वसुओं के श्रेष्ठ मार्ग से गमन करते हो। धन की कामना करने वाले यजमान तुम्हारा ही अनुगमन करते हैं ॥ ३ ॥ अन्न की कामना करने वाले यजमान अग्नि के आह्वान योग्य स्थान में जाकर स्तोत्रों द्वारा उसे प्रसन्न करते हैं और अभिलाषित अन्न प्राप्त करते हैं। वे अग्नि के दर्शन होने पर प्रसन्न होते हुए स्तोत्र उच्चारित करते और तुम्हारे नामों का कीर्तन करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने! यजमान वेदी पर प्रतिष्ठित कर तुम्हारी वृद्धि करते हैं। तुम पशु तथा अन्य धनों को यजमानों के लिए वृद्धि करते हो। अध्वर्यु आदि भी दोनों धनों की कामना करते हुए तुम्हें बढ़ाते हैं। हे दुःखों के नाश करने वाले अग्निदेव! तुम स्तुतियों के पात्र होकर मनुष्यों की माता पिता रूप रक्षा करते हो ॥ ५ ॥ [२१]

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६
तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥ ९
अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ १०
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य स्तरुत्र ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजानि त्वे ॥ १३ । ३६

कामनाओं की वर्षा करने वाले, पूजन के पात्र, प्रजाओं में यज्ञ-कर्म संपादन करने वाले, अत्यन्त यजन के योग्य अग्नि वेदी पर स्थापित किये जाते हैं। हे अग्ने ! तुम गृह में प्रज्ज्वलित होते हो। हम स्तुति करने वाले अपने घुटने टेक कर स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए तुम्हारी वन्दना करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति के पात्र हो। हम विवेक बुद्धि वाले मनुष्य सुख की इच्छा करते हुए तुम्हारी कामना करते तथा तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अग्ने ! तुम प्रदीप्त तेज वाले हो। तुम अत्यन्त प्रकाश वाले सूर्य के समान प्रकाशमान् होते हुए दिव्यलोक की प्राप्ति कराओ ॥ ७ ॥ मनुष्यों के स्वामी, ज्ञान से परिपूर्ण, शत्रुओं का नाश करने वाले, अभीष्ट को पूर्ण करने वाले, सदा वर्तमान, अन्नों के धारणकर्त्ता, पवित्रता के सम्पादन करने वाले, धन चाहने वालों द्वारा कामना किये जाते हुए तेजस्वी अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा यजन स्तवन करने वाला अथवा हविदाता यजमान जो स्तुति युक्त आहुति देता है, वह तुम्हारी कृपा से सभी इच्छित धनों को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे अग्ने हम हव्य देते हुए तथा नमस्कार पूर्वक तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम महान् हो। हम स्तोत्र सहित तुम्हारी पूजा करते हैं। हम तुम्हारी सुन्दर कृपा पाने के लिए यत्नशील हैं, इस कार्य में हमको सफलता मिले ॥ १० ॥ हे अग्ने ! तुमने अपने तेज से आकाश-पृथिवी को बढ़ाया है। तुम संकटों से छुड़ाने वाले तथा स्तुतियों से पूजन करने योग्य हो। तुम हमारे पास बहुत अन्न और महान् धन के साथ प्रज्ज्वलित होओ ॥ ११ ॥ हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव ! हमको संतानयुक्त धन दो। हमारे पुत्र पौत्रों को पशु आदि धन दो। हमको हमारी इच्छा पूर्ण करने वाला, पाप से शून्य अन्न तथा ऐश्वर्य सुख प्रदान करो ॥ १२ ॥ हे ज्योतिर्मान् अग्निदेव ! हम तुम्हारे पास से अश्व तथा गवादि पशुओं से युक्त धन-लाभ करें। हे अग्ने ! तुम

सब के लिए वरण करने योग्य, ऐश्वर्यवान् तथा रमणीय हो। तुम प्रचुर धनों के स्वामी हो ॥ १३ ॥ [३५]

२ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-अग्नि । छन्द-उष्णिक् अनुष्टुप्, जगती)

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १

हे अग्ने ! तुम मित्र के समान अन्न और तेज के स्वामी हो। हे सर्वदर्शी, तुम अन्न और पोषण योग्य पदार्थों द्वारा हमको पुष्ट बनाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! स्तोतागण हवियों के साधन रूप हव्य और स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं। अहिंसित, जल को प्रेरणा देने वाले और प्राणियों को व्याप्त करने वाले आदित्य तुम्हें प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! समान प्रीति वाले ऋत्विक् तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। तुम यज्ञ के ध्वज रूप हो। मनु के संतान रूप यजमान सुख की कामना वाले होकर यज्ञ में तुम्हें बुलाते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम उदार मन वाले हो। जो मरणधर्मा यजमान अनुष्ठान में लग कर तुम्हारी स्तुति करे, वह सम्पन्न हो। हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो। वह यजमान तुम्हारे रक्षा साधनों को पाकर शत्रुओं को नष्ट करे ॥ ४ ॥ हे अग्ने जो यजमान तुमको मन्त्र युक्त आहुति से पुष्ट करता है, वह संतानवान होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता हुआ सुन्दर घर में निवास करता है ॥ ५ ॥ [१]

त्वे पस्ते धूम ऋण्वति दिवि-षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६
अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८
त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥
वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १०
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम
तवावसा तरेम ॥ ११ । २

हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । तुम्हारा उज्ज्वल धूम अंतरिक्ष में फैलता है और मेघ के रूप में बदल जाता है । हे पवित्र करने वाले अग्निदेव ! तुम स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए आदित्य के समान प्रकाशमान होते हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुतियों के पात्र हो । हमारे लिए तुम अतिथि के समान पूज्य हो । तुम ग्राम में रहने वाले जन-कल्याणार्थ उपदेश करने वाले वृद्ध पुरुष के समान आश्रय योग्य तथा पुत्र के समान पालन करने योग्य हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अरणि मन्थन द्वारा ही तुम्हारा विद्यमान होना सिद्ध होता है । जैसे घोड़ा अपने सवार को ले जाता है, वैसे ही तुम हव्य को ले जाने वाले होओ । वायु के समान तुम सर्वत्र जाते हो, हमको अन्न और घर दो । तुम बालक के समान शुद्ध भाव वाले हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! घास आदि के निमित्त छोड़ा गया पशु जैसे सब घास को खा लेता है, वैसे ही तुम प्रौढ़ काष्ठों को तुरन्त खा जाते हो । हे अग्ने ! तुम अविनाशी एवं तेजस्वी हो । तुम्हारी ज्वालाएं वनों को भस्म कर डालती हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ कर्म की इच्छा करने

वाले यजमान के घर होता बन कर प्रवेश करते हो। तुम मनुष्यों का पालन करने वाले हो। हमारे लिए समृद्धि की कामना करो। हे अग्ने ! तुम हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥ १० ॥ हे सुन्दर तन वाले अग्ने ! तुम शांत और विकराल गुणों से युक्त तथा आकाश और पृथिवी में व्याप्त हो। तुम हमारे स्तोत्र को देवताओं के निकट पहुँचाओ। हम स्तुति करने वालों को सुन्दर आवासयुक्त सौभाग्य प्राप्त कराओ। हम शत्रुओं, संकटों और पापों से दूर हो जाय, हम अन्य जन्मों में भी पापों से बचें। हे अग्ने ! तुम्हारे रक्षा साधनों के बल पर हम शत्रुओं से मुक्त हों ॥ ११ ॥ [२]

३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अग्ने स क्षेपदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥ ३
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ । ३

हे अग्ने ! जो यजमान यज्ञ के निमित्त उत्पन्न हुआ है और यज्ञानुष्ठानों को करता है, वह दीर्घायु प्राप्त करे। तुम वरुण और मित्र से समान प्रीति वाले होकर अपने तेज द्वारा जिस यजमान को पापों से बचाते हो, वह देवताओं की कामना करने वाला यजमान तुम्हारी महती रक्षा प्राप्त करता है ॥ १ ॥ सर्वश्रेष्ठ वैभव से सम्पन्न अग्नि के लिए जो साधक हवि देता है। उसे पुत्रों का अभाव नहीं होता और मिथ्याभिमान तथा पाप उसके पास

नहीं पहुँचते ॥ २ ॥ सूर्य के समान ही अग्नि का दर्शन भी पाप से बचाता है । हे अग्ने ! तुम्हारी प्रज्ज्वलित ज्वाला पापियों को भयकारी एवं सर्वत्र गमन करने वाली है । रात्रि में रँभाने वाली गौ के समान अग्निदेव बढ़ते हुए शब्द-वान् होते हैं । सबको निवास देने वाले अग्नि वनयुक्त पर्वत के अग्रभाग में क्रीड़ा करते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि का रूप प्रकाश से उज्ज्वल है । इनका मार्ग तीक्ष्ण है । यह अश्व के समान मुख से तृणादि का भक्षण करते हैं । कुठार की तीक्ष्णधार काष्ठ को काट डालती है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को वृक्षादि पर डालते हैं । जैसे स्वर्णकार सोने आदि को पानी बना देता है, वैसे ही अग्नि सम्पूर्ण जङ्गल को द्रवीभूत कर डालते हैं ॥ ४ ॥ जैसे बाण संधान करने वाला लक्ष्य पर बाण चलाता है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को चलाते हैं । जैसे कुठार का स्वामी अपने कुठार की धार तेज करता है, वैसे ही अग्नि भी अपनी ज्वाला को तीक्ष्ण करते हैं । वृक्ष के ऊपर रहने वाले पक्षी के समान अद्भुत गति वाले अग्नि रात्रि को लाँघ जाते हैं ॥ ५ ॥ [२]

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६
दिवो न अस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥ ७
धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥ ८ । ४

अग्निदेव स्तुति योग्य आदित्य के समान प्रज्ज्वलित ज्वाला को फैलाते हैं । सब के अनुकूल रहने वाले प्रकाश को फैलाते हुए तेज से शब्दवान् होते हैं । रात में प्रदीप्त हुए अग्नि दिन के समान ही मनुष्यों को कर्म में प्रेरित करते हैं । वे अमरत्व से युक्त दर्शनीय अग्नि अपने चमकते हुए तेज से ज्वालाओं को प्रेरित करते हैं ॥ ६ ॥ जिन अग्नि का प्रकाशमान् रश्मि फैलाने वाला प्राकट्य हुआ है, वे कामनाओं की वर्षा करने वाले ज्योतिर्मान अग्नि औषधि रूप काष्ठ में महान् शब्द करते हैं । जो तेजस्वी ऊपर की ओर अपने तेज से उठते हैं, वे हमारे शत्रुओं को हराते हुए दिव्यलोक और भूलोक

को ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥ जो अग्नि अश्व के समान नियुक्त हुए पूजनीय तेज सहित गमन करते हैं, वे अपने तेज से ही विद्युत के समान दीप्तिमान होते हैं। जो अग्नि मरुद्गण के बल को घटाते हैं, वे अत्यन्त तेजस्वी, सूर्य के समान प्रकाशमान तथा अत्यन्त वेगवान् होते हैं ॥ ८ ॥ [४]

४ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ १
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ २
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ३
वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥ ४
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥ ५ । ५

हे देवताओं के बुलाने वाले बल के पुत्र अग्निदेव ! जैसे विद्वानों के यज्ञ में तुमने हवि द्वारा देवताओं का यजन किया, वैसे ही हमारे इस यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं को तुम अपने ही समान बल वाला समझते हुए उनका ही यजन करो ॥ १ ॥ जो सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, सब के लिए सरलता से जानने योग्य, दिन के प्रकाशक, आश्रयभूत, अविनाशी, अतिथि रूप मेधावी तथा उषा वेला में चैतन्य होने वाले हैं, वे अग्नि हमको प्रशंसित धन-धान्य करावें ॥ २ ॥ स्तुति करने वाले जिस अग्निदेव के महान् कर्मों का संकीर्तन करते हैं, वे उज्ज्वल वर्ण वाले अग्नि सूर्य के समान अपने तेज को फैलाते हैं। अजर तथा पवित्र करने वाले अग्नि अपने तेज से ही सब पदार्थों

को दिखाते हैं और असुरादि का वध करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सब को प्रेरणा देने वाले तथा स्तुति के योग्य हो। तुम हवियों से प्रसन्न होते हुए उपासकों को अन्न युक्त घर देते हैं। हे अन्नदाता अग्ने ! हमको अन्न दो। हमारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और हमारी यज्ञ-वेदी में विराजमान होओ ॥ ४ ॥ जो अग्नि अपने तेज को बढ़ाते हैं, जो अन्धकार को दूर करते हैं, जो हवि ग्रहण करते और वायु के समान सब पर शासन करते हैं, वे अग्नि रात्रि को पार करते हैं। हे अग्ने ! हम तुम्हारी कृपा से हवि न देने वाले पर विजय प्राप्त करें। तुम अश्व के समान वेगवान् होते हुए हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु का संहार करो ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　[५]

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा।

चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।

इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।

ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ । ६

हे अग्ने ! तुम आकाश-पृथिवी को सूर्य के समान आच्छादित करते हो। अपने मार्ग पर नियमित रूप से चलने वाले सूर्य के समान अद्भुत गति वाले अग्नि अँधेरे को नष्ट करें ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त पूजनीय एवं तेजस्वी हो। हम तुम्हारा गुणगान करते हैं। तुम हमारे महान् स्तोत्र को सुनो। हे अग्ने ! ऋत्विग्गण तुम्हें हवियों से प्रसन्न करते हैं। तुम वायु के समान बली और इन्द्र के समान दिव्य गुणों से युक्त हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम चोरों से शून्य मार्ग द्वारा शीघ्र ही हमारे लिए श्रेष्ठ ऐश्वर्य के पास पहुँचाओ। हमको पापों से छुड़ाओ। स्तुति करने वालों को तुम जो सुख देते हो, वही सुख हमको दो। हम सुन्दर संतान वाले होकर सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवें ॥ ८ ॥　　　　　　　　　　　　　[६]

५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥ १
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥ २
त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ३
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ४
यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥ ५
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥ ६
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ७

हे अग्ने ! हम स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं। तुम बल के पुत्र, सतत युवा, महान् स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य, मेधावी तथा द्रोह से शून्य हो। ऐसे गुण वाले अग्नि स्तुति करने वाले मनुष्यों को उनका इच्छित ऐश्वर्य देते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम बहुत ज्वालाओं से युक्त तथा देवताओं के बुलाने वाले हो। यज्ञ करने वाले यजमान दिनरात तुमको हविरन्न प्रदान करते रहते हैं। जैसे देवताओं ने सभी प्राणियों को पृथिवी पर स्थापित किया था, वैसे ही अग्नि में सभी धनों को धारण कराया था ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ कामनाओं को प्राप्त करते हो और श्रेष्ठ सम्पत्ति को प्राप्त करने वालों में तुम्हीं प्रधान हो। हे मेधावी ! तुम अपने उपासकों को विभिन्न ऐश्वर्य

निरन्तर देते रहो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जो शत्रु छिपा रह कर हमारा नाश करना चाहता है अथवा जो शत्रु हमारे भीतर घुस कर हमारा नाश करने की इच्छा करता है, इन दोनों प्रकार के शत्रुओं को तुम अपने तेज से भस्म कर डालो। तुम्हारा तेज अजर, वृष्टि का कारण रूप सामर्थ्य से युक्त है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जो यजमान यज्ञ-कर्म से तुम्हारी सेवा करता है अथवा जो यजमान स्तवनीय स्तोत्र और हवियों द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह यजमान मनुष्यों में उत्तम ज्ञानी है तथा वह श्रेष्ठ धन अन्न को प्राप्त करता हुआ सुशोभित होता है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम जिस कर्म में नियुक्त हुए हो उसे शीघ्र सम्पन्न करो। तुम शक्तिशाली हो, अतः दूसरों को वश में करने वाली शक्ति से शत्रुओं को नष्ट करो। यह स्तोता, स्तुतियों से तुम्हारी अर्चना करता है। तुम इस स्तोत्र को स्वीकार करो। वे अग्निदेव प्रकाशमान तेज से परिपूर्ण हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रय में हमको इच्छित फल-लाभ हो। हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हम सुन्दर संतान से पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त करें। अन्न की कामना करते हुए हम तुम्हारे द्वारा दिए हुए अन्न को पावें। हे अग्ने ! तुम अजर हो। हम तुम्हारे अत्यन्त तेजस्वी और जरा रहित यश से यशस्वी बनें ॥ ७ ॥ [७]

६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १
स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥ ३
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥ ४

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥ ५
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥ ६
स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥ ७ । ८

अन्न की कामना करने वाले यजमान स्तुति के पात्र एवं बल के आधार अग्नि के पास यज्ञ कर्म से युक्त होकर जाते हैं। वे अग्नि जङ्गलों को भस्म करने वाले, उज्ज्वल, कामना के योग्य एवं दिव्य होता स्वरूप हैं ॥ १ ॥ वे सब के पवित्र करने वाले एवं महान् हैं। उज्ज्वल वर्ण वाले, अन्तरिक्ष में व्याप्त, जरा रहित, शब्दकारी हैं। वे मरुद्गण से सुसंगत होते हैं। वे अगम्य कठोर काष्ठों को भक्षण करते हुए चलते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालाएं वायु के योग से असंख्य काष्ठों को भस्म करती हुई सर्वत्र व्याप्त होती हैं। प्रज्वलित अग्नि से उत्पन्न ज्वालाएं अपनी गमनशील कान्ति से जङ्गलों को भस्मीभूत करती हैं ॥ ३ ॥ हे तेजोमय अग्ने! तुम्हारी जो प्रदीप्त ज्वालाएं वनों को जलाती हैं, वे छोड़े हुए घोड़ों के समान इधर-उधर जाती हैं। तुम्हारी गतिशील ज्वालाएं पृथिवी पर अद्भुत रूप से क्रीड़ा करती हुई विराजमान होती हैं ॥ ४ ॥ वृष्टि के कारणभूत अग्नि की ज्वालाएं बारम्बार उठती हैं, उसी प्रकार, जैसे गौओं के लिए संग्राम करने वाले इन्द्र का वज्र बारम्बार उठता है। वीर पुरुषों के पराक्रम के समान अग्नि की ज्वालाओं को कोई रोक नहीं सकता। वे अपने विकराल रूप से जंगलों को भस्म कर डालती हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम अपनी सशक्त ज्वालाओं द्वारा अपने ऐश्वर्य को सम्पूर्ण पृथिवी पर फैलाओ। तुम सब संकटों को मिटाओ और अपने तेज की सामर्थ्य से हमसे द्वेष करने वालों को वश में करते हुए शत्रुओं का नाश कर डालो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम अद्भुत तेज वाले हो। हम प्रसन्न करने वाले स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अत्यन्त विचित्र रूप वाले,

यशस्वी, अन्नों के देने वाले हो। हमको पुत्र-पौत्रादि से युक्त महान् ऐश्वर्य दो ॥ ७ ॥ [८]

७ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता-वैश्वानरः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २
त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ॥ ३
त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ ४
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥ ७ । ९

वैश्वानर अग्नि, आकाश के मूर्धा के समान, पृथिवी पर गमन करने वाले, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिए उत्पन्न, ज्ञानी, भले प्रकार सुशोभित तथा यजमानों के लिए अतिथि के समान हैं, वे रक्षा साधनों से युक्त तथा देवताओं के मुख रूप हैं। उपासकगण उन्हीं अग्निदेवता को प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ स्तुति करने वाले यजमान हवियों के पालनकर्त्ता और यज्ञ स्वरूप अग्नि की श्रद्धा सहित स्तुति करते हैं। यज्ञ के द्रव्यों को वहन करने वाले तथा यज्ञ के ध्वजस्वरूप वैश्वानर अग्नि को देवताओं ने उत्पन्न किया है ॥ २ ॥ हे अग्नि-

देव ! हविरन्न से सम्पन्न यजमान तुमसे ही ज्ञान प्राप्त करता है। वीर पुरुष तुम्हारी कृपा से ही शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ होते हैं। हे प्रकाशमान् वैश्वानर अग्ने ! तुम हमको अभीष्ट धन दो ॥ ३ ॥ हे अमरत्वगुण युक्त अग्ने ! तुम दो अरणियों से पुत्र के समान प्रकट हुए हो। सभी देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे वैश्वानर अग्ने ! जब तुम आश्रय देने वाली आकाश और पृथिवी के मध्य प्रज्वलित होते हो, तब यजमान तुम्हारे यज्ञीय कर्म द्वारा अविनाशी पद प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे वैश्वानर अग्ने ! तुम्हारे प्रख्यात कर्मों में कोई विघ्न नहीं डाल सकता। माता पिता के समान आकाश पृथिवी की आश्रित अरणियों में उत्पन्न होकर तुमने दिनों के दिखाने वाले सूर्य की स्थापना की ॥ ५ ॥ वैश्वानर अग्नि के तेज से दिव्यलोक के उच्च स्थान बने हैं। वैश्वानर के मूर्धा रूप मेघ में जल-राशि चलती है और उसमें सात नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥ ६ ॥ पवित्र करने वाले जिन वैश्वानर ने जलों की रचना की थी तथा तेज से सम्पन्न होकर जिन्होंने आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों को बनाया था और जिन्होंने सभी प्राणियों के लिए चारों दिशाएं प्राप्त की थीं, वे अग्नि जलों के रक्षक, तथा किसी के द्वारा न जीते जाने योग्य हैं ॥ ७ ॥ [६]

८ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता-वैश्वानर। छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सह प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचि सोमइव पवते चारुरग्नये ॥ १
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥ २
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥ ३
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥ ४

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥ ५
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥ ६
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥ ७।१०

जलों के वर्धक, जन्म से ही मेधावी, प्रकाशमान्, सर्वत्र व्याप्त अग्नि के तेज की हम इस यज्ञ में हार्दिक स्तुति करते हैं। उनके समक्ष पवित्र, अभिनव तथा सुन्दर स्तोत्र सोमरस के समान उपस्थित होता है ॥ १ ॥ सत्य-कर्मों की रक्षा करने वाले वैश्वानर अग्नि श्रेष्ठ आकाश में प्रकट होकर दैविक और लौकिक दोनों प्रकार के कर्मों का पालन करते हैं। वे ही अन्तरिक्ष की सीमा का निर्धारण करते हैं। श्रेष्ठ कर्मों वाले वैश्वानर अग्नि अपने तेज से आकाश तक पहुँचते हैं ॥ २ ॥ मित्र के समान हितकारी एवं अद्भुत रूप वाले वैश्वानर अग्नि ने आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थान पर टिका कर स्थिर किया। उन्होंने अपने तेज से अन्धकार को छुपाया और आश्रयभूत आकाश पृथिवी को पशुओं के चमड़े के समान बढ़ाया। वे अग्नि समस्त परा-क्रमों के धारण करने वाले हैं ॥ ३ ॥ महान् कर्म वाले मरुद्गण ने अन्तरिक्ष में अग्नि को स्थापित किया था और मनुष्यों में उनका स्वामी बना कर इनकी पूजा की। देवताओं के दूत रूप मातरिश्वा इन वैश्वानर अग्नि को सूर्य मंडल से इस भूलोक पर ले आए ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ के योग्य हो। जो साधक तुम्हारे लिए अभिनव स्तोत्रों को कहते हैं, उन्हें तुम यशस्वी संतान तथा सुन्दर ऐश्वर्य देते हो। हे अग्ने ! तुम अजर तथा उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हो। अपने तेज से शत्रु को उसी प्रकार गिरा दो जैसे वज्र वृक्ष को गिरा देता है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! हम हविरन्न से सम्पन्न हैं। तुम हमको अक्षुण्ण धन और ऐश्वर्य तथा जरावस्था से रहित एवं शत्रु को भगा देने वाला श्रेष्ठ बल-वीर्य धारण कराओ। हे वैश्वानर अग्ने ! हम तुम्हारे रक्षा-साधनों के भरोसे सैकड़ों और हजारों संख्या वाले ऐश्वर्य को जीत लें ॥ ६ ॥

हे तीनों लोकों के स्वामी अग्निदेव ! तुम किसी के द्वारा भी नष्ट न किये जाने योग्य तथा रक्षा करने वाले बल से स्तुति करने वालों की रक्षा करो। हे वैश्वानर अग्ने ! तुम हवि देने वाले यजमान के बल-वीर्य की रक्षा करो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम हमको दुःखों से पार करो ॥ ७ ॥ [१०]

९ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-वैश्वानर । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ १
नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २
स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥ ३
अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः ॥ ४
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ५
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ ६
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ । ११

काले रंग की रात और उज्ज्वल वर्ण वाला दिन संसार को रंगते हुए, नियमित रूप से बदलते रहते हैं। वैश्वानर अग्नि राजा के समान देदीप्यमान होते हुए अँधेरे को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥ मैं ताना या बाना कुछ नहीं जानता तथा प्रयत्न द्वारा जो वस्त्र बुना जाता है, उसके संबन्ध में भी मुझे कुछ ज्ञान

नहीं है । इस लोक में निवास करने वाले पिता के उपदेश को सुनने वाला पुत्र अन्य लोक की वाणी में उपदेश कर सकता है ? ॥ २ ॥ ताना या वाना के सम्बन्ध में केवल वैश्वानर ही जानते हैं । वे समय-समय पर उपदेश देते हैं । जल की रक्षा करने वाले तथा पृथिवी पर गमन करने वाले अग्नि अंतरिक्ष में आदित्य के रूप में चमकते हैं और संसार को प्रकाश देते हैं ॥३॥ हे विज्ञजनो ! यह वैश्वानर अग्नि प्रथम होता हैं, इनसे साक्षात् किया करो । वह मरणधर्मा मनुष्यों के मध्य रहने वाली अमर ज्योति के समान हैं । वह कभी भी न मरने वाले नित्य होते हुए शरीर से सदा बढ़ते हैं ॥ ४ ॥ मन से भी अधिक वेग वाले वैश्वानर अग्नि की स्थिर ज्योति सुख रूप मार्गों को दिखाने के लिए प्राणियों के भीतर निवास करती है । सभी देवता समान मति वाले होकर, श्रद्धा सहित मुख्य कर्मों के करने वाले वैश्वानर के सम्मुख आते हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे गुण को सुनने के लिए हमारे दोनों कान और तुम्हारे दर्शन करने के लिए हमारे नेत्र उपस्थित होते हैं । हमारे अन्तःकरण में जो ज्योति निवास करती है, वह भी तुम्हारे रूप को जानने की इच्छा करती है । हमारा मन भी दूरस्थ ज्योति का ध्यान करता हुआ विचार मग्न रहता है । फिर हम वैश्वानर के रूप को वाणी द्वारा कैसे कहें ? ॥ ६ ॥ हे वैश्वानर अग्ने ! समस्त देवता तुम्हें प्रणाम करते हैं । तुम अन्धकार में रखे दीपक के समान चमकने वाले हो । अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो । हम तुम्हारी शरण में आते हैं । वे अमरत्व गुण वाले अग्नि हमारी रक्षा करने वाले हों ॥ ७ ॥   [११]

१० सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, बृहती)

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्ति प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥ १

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥ ३
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥ ४
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ५॥
इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६
वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ७ । १२

हे विज्ञजनो ! प्रयत्न से साध्य इस यज्ञ में विघ्नादि से बचे रहने के लिए सब प्रकार के दोषों से रहित अग्नि की स्तोत्रों द्वारा सम्मुख स्थापना करो, क्योंकि वे सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता यज्ञ में हमारे लिए कल्याण-कारी कर्मों का सम्पादन करते हैं ॥ १ ॥ हे अमंदन ज्वालाओं से प्रकाशमान् अग्ने ! तुम देवताओं को आहूत करने में समर्थ हो। तुम अपने अंश रूप अग्नियों सहित बढ़ते हुए, स्तुति करने वालों के स्तोत्र को सुनो। ममता के समान यह स्तुति करने वाले यजमान अग्नि के निमित्त सुन्दर स्तोत्र को घृत के, समान निवेदन करते हैं ॥ २ ॥ अग्नि में जो मनुष्य स्तोत्र के सहित हव्य देता है, वह अग्नि की कृपा से सभी मनुष्यों में समृद्धिशाली हो जाता है। वे अग्निदेव अद्भुत ज्वालाओं से युक्त एवं अद्भुत रक्षा-साधनों सहित उस स्तोता को गोशाला से युक्त गौएं प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि ने उत्पन्न होकर दूर से ही दिखाई देने वाले अपने तेज से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण किया। वह अग्नि रात्रि के घोर अँधेरे को अपने प्रकाश से दूर करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हम हविरन्न वाले हैं। तुम शीघ्र ही हमको अपने रक्षा-साधनों से युक्त अद्भुत धन दो। जो पुत्र अन्य मनुष्यों को अपने वश में कर सके ऐसा अन्न, धन से युक्त तथा वीर्यवान् पुत्र हमको प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जो हवियों से सम्पन्न मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, तुम उसकी हवि की कामना करते हुए यज्ञ के साधन रूप उस अन्न को ग्रहण करो। हे

अग्ने ! उन पर पूर्ण कृपा करो, जिससे वे यजमान विभिन्न अन्नों को प्राप्त कर सकें ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! द्वेष करने वाले शत्रुओं को दूर करो। तुम हमारे अन्न को बढ़ाओ। हम सुन्दर सन्तानों से सम्पन्न हुए साधक सौ हेमंतों तक सुख से रहें ॥ ७ ॥ [१२]

११ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता-अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥ १
त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम् ॥२
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥ ३
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥ ४
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ ५
दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥ ६ । १३

हे होता रूप-अग्ने ! तुम यज्ञ करने वालों में महान् हो। तुम हमारे द्वारा पूजित होकर मरुतों को मनुष्यों को कुमार्ग से रोकने और उत्तम कर्म रूप मार्ग में लगाने वाला बल प्राप्त कराओ। तुम मित्र, वरुण तथा असत्य कार्य न करने वाले दोनों देव और आकाश-पृथिवी को हमारे यज्ञ-कार्य में लगाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त पूजनीय हो। तुम हमसे द्वेष नहीं करते। तुम सदा हमारे प्रति दानशील रहते हो। हे अग्ने ! तुम हवियों के वाहक हो। तुम्हीं पवित्र करने वाले हो तथा देवताओं की मुख रूप ज्वालाओं

द्वारा अपने देह को प्राप्त करने वाले हो ॥२॥ हे अग्ने! धन की कामना करने वाली स्तुति तुम्हें चाहती है। तुम्हारे प्रज्ज्वलित होने पर ही इन्द्रादि देवताओं का यज्ञ करने में यजमान लोग सफलता प्राप्त करते हैं। सब ऋषियों में अंगिरा ऋषि अत्यन्त स्तुति करते हैं और विद्वान् भरद्वाज प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का पाठ करते हैं ॥ ३ ॥ मेधावी एवं तेजस्वी अग्नि भले प्रकार शोभायमान होते हैं। हे अग्ने! तुम अत्यन्त विस्तृत आकाश-पृथिवी की हवियों से परिचर्या करो। तुम सुन्दर हविरन्न से युक्त हो। हविदाता ऋत्विक्, यजमान के समान ही हव्य द्वारा अग्नि को सतुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि के पास जब हव्ययुक्त कुश लाया जाता है और शुद्ध घृत से युक्त स्रुक कुश पर रखा जाता है, तब अग्नि के लिए पृथिवी पर वेदी बनाई जाती है। जैसे सूर्य अपने तेज से स्थित होते हैं, वैसे ही यजमान का यज्ञ अग्नि के आश्रित होता है ॥ ५ ॥ हे देवताओं को बुलाने वाले तथा असंख्य ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव! तुम तेजस्वी हो। तुम अन्य अग्नियों सहित अपने तेज को बढ़ाते हुए हमको धन दो। हम तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं। हम इस शत्रु रूपी पाप के बन्धन से छूट जाँय ॥ ६ ॥ [१२]

१२ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥ १
आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ २
तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत्।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३
सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४
अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम्।

सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥ ५
स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीरा ॥ ६ । १४

देवताओं का आह्वान करने वाले एवं यज्ञ के स्वामी अग्निदेव आकाश पृथिवी को पूर्ण करने के लिए यज़मान के घर में स्थापित होते हैं। वे यज्ञ-कर्म से युक्त, बल के पुत्र अग्नि अपने प्रकाश द्वारा सूर्य के समान इस अखिल विश्व को दूर से ही प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥ हे यज्ञशील, तेजोमय अग्नि-देव ! तुम मेधावी हो। तुम तीनों लोकों में व्याप्त होकर मनुष्यों द्वारा दिए गए उत्तम हव्य पदार्थ को देवताओं के पास पहुँचाने में सूर्य के समान तेजस्वी होओ। हे अग्ने ! सभी यजमान श्रद्धा सहित बहुत हव्य भेंट करते हैं ॥ २ ॥ जिन अग्निदेवता की सर्वत्र व्याप्त होने वाली एवं अत्यन्त दीप्तिमती ज्वालाएं जङ्गल में प्रज्वलित होती हैं, वे समृद्धि को प्राप्त हुए अग्नि सूर्य के समान अन्तरिक्ष के मार्ग में व्याप्त होते हैं। वे सब का कल्याण करने वाले, कभी भी क्षीण न होने वाली वनस्पतियों में वायु के समान वेग से जाते तथा अपने प्रकाश से सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥ ज्ञानवान् अग्नि यज्ञ करने वालों के सुखकारी स्तोत्र के समान हमारे स्तोत्र से यज्ञ-स्थान में पूजे जाते हैं। यजमान, उन जङ्गल में रह कर वनस्पतियों के भक्षण करने वाले, बछड़ों के जनक बैल के समान, शीघ्र कर्म करने वाले अग्नि की स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ अकस्मात् जब अग्नि जङ्गलों को भस्म कर भूमि पर फैल जाते हैं, तब स्तुति करने वाले मनुष्य इस लोक में अग्नि की ज्वालाओं की स्तुति करते हैं। अलक्षित भाव से पृथिवी को भोगने वाले अग्नि तेजस्वी होकर विराजते हैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुओं का नाश करने वाले अग्निदेव ! तुम अपनी ज्वालाओं सहित प्रकट होकर हमको निन्दाओं से बचाओ। तुम हमको ऐश्वर्य दो। दुःख देने वाली शत्रु-सेनाओं का नाश करो। हम उत्तम वीरों से युक्त होकर सौ हेमन्त ऋतुओं तक सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें ॥ ६ ॥   [१४]

१२ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ २
स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३
यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ । १५

हे सुन्दर ऐश्वर्य से युक्त अग्निदेव ! इन विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्यों को तुमने ही उत्पन्न किया है। वृक्ष से जैसे विभिन्न आकार वाली शाखाऐं उपजती हैं, वैसे ही तुमसे पशु उत्पन्न होते हैं। रणस्थल में शत्रुओं पर विजय पाने वाला बल भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है। अन्तरिक्ष से होने वाली वर्षा के उत्पत्तिकर्त्ता भी तुम ही हो, इसलिए तुम सभी के लिए पूजनीय हो ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम उपासना के योग्य हो, हमको सुन्दर धन दो। तुम्हारा तेज देखने योग्य है, तुम सर्वत्र व्याप्त वायु के समान सर्वत्र विद्यमान हो। हे तेजस्विन् ! तुम मित्र के समान प्रचुर ज्ञान के देने वाले होओ तथा उपभोग के योग्य सुन्दर ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ हे उत्तम ज्ञान से युक्त, यज्ञ के लिए प्रकट हुए अग्ने ! तुम जलधाराओं को व्याप्त करने वाले विद्युत रूप अग्नि के साथ मिलकर जिस मनुष्य को धन की प्रेरणा देते

हो, वह सज्जनों का पालक मेधावी मनुष्य तुम्हारे बल से ही शत्रुओं को नष्ट करता है और पणि के बल को घटाता है ॥ ३ ॥ हे बल के पुत्र एवं तेजोमय अग्ने ! जो मनुष्य उपासना, यज्ञ-कर्म एवं स्तुतियों से तुम्हारे तीक्ष्ण तेज को आकर्षित कर लेता है, वह हर प्रकार से समृद्ध होता हुआ अन्न आदि लाभ करता है तथा ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥ ४ ॥ हे बल के पुत्र अग्ने ! तुम हमारा पालन करने के लिए श्रेष्ठ पुत्रों सहित सुन्दर अन्न दो । जो पशु आदि से उत्पन्न दही आदि खाद्य तुम हमारे विरोधियों से लाते हो, वह खाद्य हमको प्रचुर परिमाण में दो ॥ ५ ॥ हे बल के पुत्र अग्निदेव, तुम पराक्रमी हो । हमको उपदेश देने वाले होओ । हमें अन्न सहित सन्तान दो । हम स्तुतियाँ करके अपने अभीष्ट को पूर्ण कर पावें । हम सुन्दर सन्तानों के सहित सौ हेमन्तों तक उपभोग के योग्य सुख पाते हुए जीवें ॥ ६ ॥ [१५]

१४ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक्, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती)

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥ ४
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम
तवावसा तरेम ॥ ६ । १६

जो साधक यज्ञादि कर्म करता हुआ स्तोत्र द्वारा अग्नि की सेवा करता है, वह मनुष्यों में प्रमुख एवं तेजस्वी होता है तथा अपने पुत्र आदि का पालन करने के लिए वह शत्रुओं के पास से बहुत अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥ एक मात्र अग्नि ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं, उनके समान अन्य कोई भी नहीं है। वे यज्ञ कर्म का निर्वाह करने वाले तथा सर्वद्रष्टा हैं। यजमानों के पुत्रादि अग्नि को यज्ञ में देवताओं का आह्वान करने वाले मान कर स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं का धन उनके पास से हट कर तुम्हारी स्तुति करने वालों की रक्षा करता है। शत्रुओं को जीतने वाले तुम्हारे उपासक तुम्हारा यज्ञ करते हुए यज्ञ न करने वालों को वश में करने की कामना करते हैं ॥ ३ ॥ स्तुति करने वालों को अग्नि उत्तम कर्म वाला, शत्रु को जीतने वाला तथा श्रेष्ठ कार्यों की रक्षा करने वाला पुत्र देते हैं, जिसके देखने से ही शत्रु उससे डर कर काँपने लगते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि ही अपने ज्ञान के बल से तेजस्वी होकर निन्दा करने वालों को वशीभूत करते हुए मनुष्यों की रक्षा करते हैं। वह स्वयं तथा उनका परकीय बल युद्ध काल में किसी पर अप्रकट नहीं रहता ॥ ५ ॥ हे सुन्दर तेजवाले, दानशील, आकाश और पृथिवी में व्याप्त अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियों को देवताओं से कहो। हम स्तुति करने वालों को सुन्दर निवासप्रद सुख-लाभ कराओ। हम शत्रुओं, पापों तथा कष्टों से रक्षित रहें। हे अग्ने ! हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से शत्रुओं से पार हो जाँय ॥ ६ ॥ [१६]

१५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, शक्वरी, पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्)

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥ २
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।

राय: सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथ: ॥ ३

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुष: स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजर: ॥५॥१७

हे वीतहव्य, हे विज्ञ ! तुम उषाकाल में चैतन्य होने वाले, लोकों के पालक, स्वभाव से ही निर्मल, अतिथि के समान पूज्य अग्नि की सेवा करो । वे अग्निदेव दिव्यलोक से प्रकट होते हुए हविरन्न का सेवन करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम विचित्र हो । तुम अरणियों में व्याप्त, स्तुतियों के वहन करने वाले और ऊपर को उठती हुई ज्वालाओं से युक्त हो । तुमको भृगुवंशीय ऋषिजन घर में मित्र के समान रखते हैं । वीतहव्य नित्य प्रति अपने श्रेष्ठ स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे अग्ने ! तुम उन ऋषियों पर कृपा करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! यज्ञादि कर्मों में चतुर व्यक्ति को तुम सम्पन्न करते हुए दूर के या पास के शत्रु से उसकी रक्षा करते हो । हे अग्ने ! तुम अत्यन्त महान् हो । मनुष्यों में श्रेष्ठ भरद्वाज वंशीय को ऐश्वर्य युक्त घर लाभ कराओ ॥ ३ ॥ हे वीतहव्य ! तुम सुन्दर स्तुति से हव्यों को वहन करने वाले तेजस्वी, स्वर्ग प्राप्त कराने वाले, अतिथि के समान पूजनीय, देवताओं का आह्वान करने में समर्थ, यज्ञ-कार्य का सम्पादन करने वाले, ज्ञानी एवं ओजमयी वाणी से युक्त अग्नि देवता की स्तुति करो ॥ ४ ॥ उषा जैसे प्रकाश से ही अच्छी लगती, वैसे ही पृथिवी को पवित्र करने वाले और चैतन्य करने वाले अग्नि अपने तेज से सुशोभित होते हैं । जो एतश ऋषि की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में शत्रु का नाश करने वाले वीर के समान शीघ्र ही चैतन्य हुए, जो सब पदार्थों के भक्षण करने में समर्थ तथा कभी क्षीण न होने वाले हैं, हे वीतहव्य ! उन अग्नि की परिचर्या करो ॥ ५ ॥ [१७]

अग्निमग्निं व: समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं ।

देवो देवेषु वनते हि नि ध्रुवः ॥ ६
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ७
त्वा दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१०।१८

हे स्तुति करने वालो ! अतिथि के समान आदरणीय एवं अत्यन्त प्रीतिदायक अग्नि की समिधा-द्वारा परिचर्या करो । वे अग्नि सभी देवताओं में दानशील स्वभाव के हैं और समिधाओं के ग्रहण करने वाले हैं । वे हमारी पूजा को स्वीकार करते हैं, अतः उन अविनाशी अग्नि के समक्ष स्तोत्रों द्वारा स्तुतियाँ करो ॥ ६ ॥ समिधाओं से प्रज्वलित हुए अग्नि की हम स्तोत्रों से पूजा करते हैं । वह स्वयं पवित्र हैं तथा सब को पवित्र करने वाले हैं । हम उन दृढ़ विचार वाले अग्नि को श्रेष्ठ यज्ञ-स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं । हम मेधावी देवताओं के आह्वाक, सब के द्वारा वरण करने योग्य, उत्तम स्वभाव वाले एवं सर्वदर्शी अग्नि की सुन्दर स्तोत्रों द्वारा उपासना करते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! देवता और मनुष्य दोनों ही तुम्हें दूत नियुक्त करते हैं । तुम अविनाशी, रक्षक, हव्य-वाहक एवं स्तुतियों के पात्र हो । वे दोनों ही प्रजा-पालक, सर्वव्यापक एवं चैतन्य रहने वाले अग्निदेव को नमस्कार और हव्य सहित प्रतिष्ठापित करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! देवता और मनुष्यों को विशेष प्रकार से अनुगृहीत करते हुए तुम देवताओं के दूत होकर आकाश-पृथिवी में घूमते हो । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों और सुन्दर यज्ञानुष्ठान द्वारा तुम्हारी उपासना करते हैं । तुम तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले होते हुए हमको सुखी बनाओ ॥ ९ ॥ हम अल्प बुद्धि वाले मनुष्य सुन्दर अङ्ग वाले, मनोहर

स्वरूप वाले, सब के ज्ञाता, गमनशील अग्नि की सेवा करते हैं। जानने योग्य सभी वस्तुओं के ज्ञाता अग्नि देवताओं के लिए यज्ञ करें और हमारी हवियों को देवताओं को बतावें ॥ १० ॥　　　　[१८]

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ १२

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ १३

अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥ १४

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम
तवावसा तरेम ॥ १५ । १९

हे वीरता से युक्त अग्ने ! तुम क्रांतदर्शी हो। जो साधक तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम उसकी रक्षा करते हुए उनका अभीष्ट सिद्ध करते हो। जो यजमान यज्ञानुष्ठान करता हुआ हविदान करता है, उसको तुम धन और ऐश्वर्य देते हो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं से हमारी रक्षा करो। हे पराक्रमी अग्नि, तुम हमको पापों से बचाओ। हमारे द्वारा दिया हुआ हव्य तुमको प्राप्त हो। तुम्हारे द्वारा दिया हुआ सहस्रों प्रकार का सुन्दर ऐश्वर्य हम स्तोताओं को प्राप्त हो ॥ १२ ॥ देवताओं का आह्वान करने वाले, तेजस्वी एवं सर्वज्ञाता अग्नि हमारे घर के स्वामी हैं। वे सब प्राणियों के जानने वाले हैं। जो अग्नि देवताओं और मनुष्यों में अत्यन्त यज्ञ करते हैं, वे सत्यवान् अग्नि सुन्दर विधिपूर्वक यज्ञ करें ॥ १३ ॥ हे पवित्र ज्वालाओं वाले एवं यज्ञ का सम्पादन करने वाले अग्ने ! इस समय यजमान जो यज्ञ-कर्म करता है, उसकी तुम इच्छा करो, तुम देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले हो, अतः इस यज्ञ में देवताओं का यज्ञ करो। हे सतत तरुण अग्ने ! तुम अपनी महत्ता

से ही महान् हो। आज हम जो हवियाँ देते हैं, उन्हें ग्रहण करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! वेदी पर विधिपूर्वक रखे हुए हव्य-पदार्थ का अवलोकन करो। यज-मान ने आकाश-पृथिवी के निमित्त यज्ञ करने के लिए तुम्हारी स्थापना की है। हे अग्ने तुम ऐश्वर्यवान् हो, रण-क्षेत्र में हमारी रक्षा करो, जिससे हम सभी दुःखों से छूट जाँय ॥ १५ ॥ [१६]

अग्ने विश्वेभि. स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथम: सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६
इममु त्यमथर्ववदग्नि मन्थन्ति वेधस. ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्य: ॥ १७
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृतॉं ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृश: ॥ १८
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा संशिशाधि ॥ १९।२०

हे सुन्दर ज्वालाओं से युक्त अग्ने ! तुम सभी देवताओं में आगे रह कर ऊन युक्त एवं घृत युक्त उत्तर वेदी पर विराजमान होओ और हविदाता यजमान के यज्ञ को भले प्रकार देवताओं को प्राप्त कराने वाले होओ ॥ १६ ॥ कर्म-विधायक ऋत्विगगण मेधावी अथर्वा ऋषि के समान मंथन करते हुए अग्नि को प्रकट करते थे। इधर उधर विचरणशील ज्ञानी अग्नि को रात्रि के अँधेरे में प्रदीप्त करते थे ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं की कामना करने वाले यजमान के सुख को स्थायी बनाने के लिए यज्ञ में मंथन द्वारा उत्पन्न होओ। तुम यज्ञ के बढ़ाने वाले तथा अमरधर्मा देवताओं को यज्ञ में लाओ। फिर हमारे यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे यज्ञ की रक्षा करने वाले अग्निदेव ! प्राणियों के बीच हम अपनी समिधाओं से तुम्हें प्रवृद्ध करते हैं। हमारे गार्हपत्य अग्नि पुत्र, पशु और विविध ऐश्वर्य सम्पन्न करें। तुम हमको अपने सुन्दर तेज से युक्त करो ॥ १९ ॥ [२०]

१६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता–अग्निः । छन्द—उष्णिक्, गायत्री, त्रिष्टुप, पंक्तिः, अनुष्टुप)

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५।२१

हे अग्ने ! तुम होम सम्पादक अथवा देवताओं के बुलाने वाले हो। तुम मनु के वंशजों के द्वार किए जाने वाले यज्ञ में देवताओं द्वारा होता बनाए गए हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम आनन्ददायक ज्वालाओं सहित हमारे यज्ञ में देवताओं की स्तुति करो। यहाँ इन्द्रादि देवों को बुलाओ और उन्हें हविरन्न प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर कर्म करने वाले तथा दानादि गुण से युक्त हो। तुम यज्ञ में विस्तृत और छोटे दोनों प्रकार के मार्गों के जानने वाले हो। इस मार्ग-भ्रष्ट साधक को फिर अच्छे मार्ग पर लाओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! "दुष्यन्त" के पुत्र "भरत" हवि देने वाले ऋत्विकों सहित सुख के निमित्त तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे द्वारा कामनाओं की पूर्ति एवं अनिष्टों की शांति होती है, तुम यज्ञ के योग्य हो। हम स्तुति करने के पश्चात् तुम्हारा यज्ञ करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! सोम सिद्ध करने वाले "दिवोदास" को तुमने जैसे बहुत प्रकार का सुन्दर धन दिया था, वैसे ही हविदाता "भरद्वाज" को बहुतसा श्रेष्ठ धन दो ॥ ५ ॥ [२१]

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६
त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७
तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥९

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० । २२

हे अग्ने ! तुम अमृत्व गुण से युक्त हो । तुम दौत्य गुण से सम्पन्न हो । विद्वान् भरद्वाज ऋषि की स्तुतियाँ सुन कर हमारे यज्ञ में देवताओं को लाओ ॥ ६ ॥ हे ज्योतिर्मान् अग्ने ! तुम्हारा चिन्तन करने वाले मनुष्य देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करते हैं और तुमसे अभीष्टों की प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारे तेज को भले प्रकार पूजते हैं तथा तुम्हारे श्रेष्ठ दानमय कर्म की स्तुति करते हैं । केवल हम ही नहीं, अन्य यजमान भी तुम्हारी कृपा में सफलता की कामना करते हुए यज्ञानुष्ठान में लगते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुमको मनु ने होता के कार्य में नियुक्त किया । तुम ज्वालायुक्त मुख से हवियों वहन करने वाले अत्यन्त मेधावी हो । तुम देवताओं के लिए यज्ञ करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम हवि-सेवन के लिए आओ और देवताओं के पास हवि पहुँचाने के लिए स्तुतियाँ ग्रहण करते हुए होता रूप से कुश पर विराजमान होओ ॥ १० ॥ [२२]

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत. ॥ १३
तमु त्वा दध्यङ्ङृषि' पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥१४
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ । २३

हे अग्ने ! हम समिधाओं से तुम्हें बढ़ाते हैं । हे सतत तरुण अग्ने तुम अत्यन्त प्रकाश वाले होओ ॥ ११ ॥ हे ज्योतिर्मान् अग्ने ! तुम हम को विस्तृत, महान् एवं प्रशंसा के योग्य ऐश्वर्य दो ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! मूर्धा के समान संसार के धारण करने वाले तुम्हें अरणिद्वय से "अथर्वा" ऋषि ने प्रकट किया ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! "अथर्वा" के पुत्र "दध्यङ्" ऋषि ने तुम्हें प्रदीप्त किया था । तुम शत्रुओं को मारने तथा उनके नगरों को ध्वंस करने

धाले हो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! "पाथ्य वृषा" नामक ऋषि ने तुम्हें चैतन्य किया था। तुम राक्षसों के मारने वाले तथा धनों के जीतने वाले हो ॥ १५ ॥ [२३]

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७
नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥ १८
अग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना ।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० । २४

हे अग्ने ! तुम यहाँ आओ । हम तुम्हारे निमित्त जिस स्तोत्र को कहते हैं, उसे सुनो । यहाँ आकर इन सोम-रसों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा कृपापूर्ण हृदय जिस देश तथा जिस साधक की ओर आकृष्ट होता है, वह उत्कृष्ट बल तथा अन्न का धारण करने वाला है । तुम्हारा स्थान उसी यजमान के हृदय में है ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा तेज पुञ्ज नेत्र हमारे लिए संहारक नहीं है । वह हमको सदा देखने की सामर्थ्य दे । हे गृहदाता अग्ने ! तुम हम साधकों द्वारा की जाने वाली सेवा को स्वीकार करो ॥ १८ ॥ हम स्तुतियों से अग्नि को बुलाते हैं । वे अग्नि हवियों के स्वामी तथा "दिवोदास" के शत्रुओं को मारने वाले हैं । वे यजमानों की रक्षा करने वाले एवं सर्वज्ञाता हैं ॥ १९ ॥ वे अग्नि अपनी कृपा से हमको पृथिवी पर प्राप्त होने वाले सभी धन दें । वे अपने तेज से शत्रुओं को भस्म करते हैं । उनकी हिंसा करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ २० ॥ [२४]

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः । दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४
वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५।१५

हे अग्ने तुम प्राचीन के समान ही नवीन तेज से इस विस्तृत अन्तरिक्ष को बढ़ाते हो ॥ २१ ॥ हे ऋत्विकों ! तुम शत्रु के संहारक और ईश्वर के समान शक्तिमान् अग्नि की स्तुति करते हुए हवियाँ दो ॥ २२ ॥ वे अग्नि हमारे यज्ञ में कुश पर विराजमान हों। जो अग्नि देवताओं का आह्वान करने वाले हैं, वे अत्यन्त मेधावी, यज्ञकर्म में देवताओं के दूत तथा हवियों को वहन करते हैं ॥ २३ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम निवास देते हो। तुम इस यज्ञ में विराजमान आदित्य, सुन्दर कर्म वाले मित्रावरुण, मरुत् और आकाश-पृथिवी के निमित्त यज्ञ करो ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो। तुम्हारा विस्तृत तेज यजमानों को अन्न-लाभ कराता है ॥ २५ ॥ [१५]

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० । २६

हे अग्ने ! हविदाता तुम्हारी सेवा करते हुए आज सुन्दर कर्म से युक्त हों। वे सदा तुम्हारी स्तुति करते रहें ॥ २६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी स्तुति करने वाले तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते हैं। वे सब कामना करते हुए पूर्ण आयु भोगते और अन्न-लाभ करते हैं। वे आक्रमण करने वालों को हराते और नष्ट करते हैं ॥ २७ ॥ वे अपने तीक्ष्ण तेज से सब पदार्थों का भक्षण करने में समर्थ हैं वे राक्षसों के हन्ता और हमारे लिए धनदाता हैं ॥ २८ ॥

हे सबके जानने वाले अग्नि तुम सुन्दर अपत्ययुक्त ऐश्वर्य लेकर आओ और दुष्टों को नष्ट करो ॥ २६ ॥ हे सर्वज्ञाता अग्ने ! हमको पापों से बचाओ। हे स्तुतियों के स्वामी अग्निदेव, वैरियों से हमारी रक्षा करो ॥३०॥ [२६]

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः ३१
त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् ।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ । २७

हे अग्ने ! जो मनुष्य कुविचार से हमारी हिंसा के लिए शस्त्र चमकाता है, उस मनुष्य से तथा पापों से हमको बचाओ ॥ ३१ ॥ हे अग्ने ! जो दुष्ट हमको हिंसित करना चाहे उस पापी के लिए तुम अपने तेज को बढ़ाओ ॥३२॥ हे अग्ने ! तुम शत्रुओं को वश करने में समर्थ हो। तुम हमको सुन्दर गृह तथा वरण करने योग्य धन दो ॥ ३३ ॥ हे तेजस्वी अग्ने ! हव्य द्वारा बुलाए गए अग्नि स्तुति से प्रसन्न होकर हवि-कामना करते हैं। वे अग्नि हमारे शत्रुओं का संहार करने वाले हों ॥ ३४ ॥ सुन्दर वेदी पर वह अग्नि विराजते हैं। वे आकाश की रक्षा करने वाले उत्तर वेदी पर विराज कर दुष्टों का नाश करते हैं ॥ ३५ ॥ [२७]

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६
उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७
उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥ ३८
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३९
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।
विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ४० । २८

हे अग्ने ! तुम सर्वदर्शी हो। तुम पुत्र-पौत्रों सहित सुन्दर धन को प्राप्त कराओ। वह अन्न आकाश में, देवताओं में प्रशंसित तथा सुशोभित हो ॥ ३६ ॥ हे बल के पुत्र अग्नि ! तुम्हारा तेज अत्यन्त रमणीय है। हव्य रूप अन्न सहित स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३७ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा तेज सुवर्ण के समान प्रकाशमान है। जैसे थका हुआ मनुष्य छाया के आश्रय में बैठता है, वैसे ही हम तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ ३८ ॥ वे अग्नि महा बलवान् धनुषधारण करने वाले पुरुष के समान बाणों से शत्रु को मारने वाले हैं। उनके तीक्ष्ण सींग बैल के समान हैं। हे अग्ने ! तुमने त्रिपुरासुर के तीनों नगर नष्ट किये हैं ॥ ३९ ॥ अरणि के मथने से प्रकट हुए अग्नि को अध्वर्युगण पुत्र के समान धारण करते हैं, हे ऋत्विको ! उस हवि भक्षण करने वाले यज्ञ संपादक अग्नि की सेवा करो ॥ ४० ॥ [२८]

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥४२
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३
अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥४५॥२६

हे अध्वर्युओ ! तुम देवताओं के सेवन के लिए अग्नि में हव्य डालो। अग्नि प्रकाशवान् एवं ऐश्वर्यों के जानने वाले हैं। वे आह्वान करने योग्य स्थान पर विराजमान हों ॥ ४१ ॥ हे अध्वर्युओ ! अतिथि के समान सम्माननीय और निवास देने वाले अग्नि की सुन्दर वेदी में स्थापना करो ॥ ४२ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान् हो। अपने रथ में उन सभी सुन्दर घोड़ों को जोड़ो जो तुम्हें यज्ञ में पहुँचाते हैं ॥ ४३ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे सामने पधारो। हव्य भक्षण करने और सोम पीने के लिए देवताओं को लाओ ॥ ४४ ॥ हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले हो। तुम ऊपर को उठते हुए बढ़ो। तुम अजर हो। तुम अपने उत्कृष्ट तेज से प्रकाशमान् होओ। तुम चैतन्य होकर समस्त संसार को चैतन्य करो ॥ ४५ ॥ [२९]

वीति यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६
आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ४७
अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥ ४८ । ३०

जो हविर्वान् यजमान अपनी हवियों से जिस किसी देवता की उपासना करता है, उस यज्ञ में अग्नि की पूजा होती है। वे आकाश-पृथिवी में व्याप्त देवताओं के बुलाने वाले और सत्यरूप हवियों से यजनीय हैं। यजमान इन अग्नि की नमस्कार पूर्वक सेवा करते हैं ॥ ४६ ॥ हे अग्ने! हम सुन्दर रूप से तैयार हव्य तुम्हें देते हैं। वह हव्य सामर्थ्य वाले बैल के ओज और गौ के दुग्ध में परिवर्तित होवे ॥ ४७ ॥ जिस पराक्रमी अग्नि ने यज्ञ में बाधा देने वाले राक्षसों को मारा, जिस अग्नि ने दुष्टों के धन को छीन लिया, उस वृत्र का संहार करने वाले अग्नि को मेधावी जन चैतन्य करते हैं ॥४८॥ [३०]

१७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १
स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥ २
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ ३
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४

येभि सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ । १

हे पराक्रमी इन्द्र ! अंगिरा द्वारा स्तुत होकर तुमने सोम पीने के लिए पणियों द्वारा चुराई गई गायों को खोज निकाला । हे इन्द्र ! हे वज्रिन् ! तुमने अपने पराक्रम से सब शत्रुओं का हनन किया है । तुम सोम-पान करो ॥ १ ॥ हे सोमपायें ! तुम शत्रुओं से रक्षा करने वाले हो । स्तुति करने वाले के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हो । हे इन्द्र ! तुम पर्वतों को तोड़ने वाले तथा घोड़ों को जोड़ने वाले हो । तुम हमारे लिए अद्भुत धन प्रकट करो और सोम पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने पूर्वकाल में सोमरस पिया था, इसी प्रकार हमारे सोम-रस को भी पिओ । यह रस तुम्हें हृष्ट बनावे । तुम हमारी स्तुतियों को सुनते हुए वृद्धि को प्राप्त होओ । हमको अन्न प्राप्त कराने के लिए सूर्य को प्रकट करो । हमारे शत्रुओं का संहार करो और पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को प्रकट करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नवान् एवं तेजस्वी हो । यह पान किया हुआ सोमरस तुम्हें हृष्ट करे । तुम अत्यन्त गुणी प्रवृद्ध तथा महान् हो । हमारे शत्रुओं को हराओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र सोमरस से हृष्टि को प्राप्त कर तुमने अन्धकार को मिटाया और सूर्य तथा उषा को अपने अपने स्थान पर नियुक्त किया । तुमने अविचल पर्वत को ध्वस्त किया । उस पर्वत में पणियों द्वारा चुराई गई गौयें उपस्थित थीं ॥ ५ ॥ [1]

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद् गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥ ६
पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८
अध द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥ ९

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १० । २

हे इन्द्र ! तुमने अपनी प्रज्ञा, कर्म और पराक्रम से गौओं को दुग्ध-वती बनाया । तुमने गौओं के निकलने को शिलाओं को हटाया । अंगिराओं से मिल कर गौओं को मुक्त कराया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने कर्म से विस्तृत पृथिवी को परिपूर्ण किया । तुम महान् हो । तुमने दिव्य लोक को गिरने से बचाने के लिए धारण किया है । तुमने पालन करने के लिए आकाश पृथिवी को धारण किया है । उन आकाश-पृथिवी के देवता पुत्र हैं । वे यज्ञ कर्म करने वाली तथा महत्ववती हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र वृत्रासुर से युद्ध करने जब देवता चले तब सभी देवताओं ने मिलकर तुम्हें ही नेता बनाया । तुमने मरुद्गण को युद्ध में सहायता दी थी । तुम अत्यन्त पराक्रमी हो ॥ ८ ॥ प्रचुर अन्न सम्पन्न इन्द्र ने आक्रमणकारी वृत्र को जब मारा तब उनके क्रोध और वज्र से भयभीत स्वर्ग भी सन्न रह गया ॥ ९ ॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! त्वष्टा ने तुम्हारे सौ गांठ तथा सहस्रधार वाले वज्र को बनाया था । हे सोम पायी इन्द्र ! उसी वज्र से तुमने वृत्र को मारा था ॥ १० ॥ [२]

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥ ११
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥ १२
एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १३
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ । ३

हे इन्द्र ! मरुद्गण तुम्हें अपने स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं और तुम्हारे लिए पूषा तथा विष्णु सौ महिष प्रस्तुत करते हैं । तीन पात्रों को पूर्ण करने के लिए

सोम गिरता है। सोम पीकर इन्द्र वृत्र का नाश करने में समर्थ होते हैं ॥११॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र द्वारा रोकी गई नदियों के जल को छोड़ा जिससे वे बहने लगीं। तुमने इन नदियों को नीचे मार्ग की ओर प्रवाहित कर जल की तरङ्गों को उन्मुक्त किया। फिर तुमने उस वेगवान् जल को समुद्र में मिलाया ॥१२॥ हे इन्द्र ! तुम ऐसे सभी कार्यों के कर्त्ता, ओजस्वी, अजर, बलों के देने वाले, ऐश्वर्यवान् एवं वज्रधारी हो। हमारा अभिनव स्तोत्र तुम्हें हमारी रक्षा के निमित्त बढ़ावे ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त पुष्टि, बल, अन्न और ऐश्वर्य धारण करो। हम ज्ञानी हैं। हमको सेवकों से युक्त करो। तुम स्तुति करने वाले पुत्रों, पौत्रों को प्राप्त कराओ। हे इन्द्र ! आगामी दिनों में हमारी रक्षा करना ॥ १४ ॥ हम इस स्तुति को करते हुए इन्द्र से अन्न-लाभ करें। हम सुन्दर पुत्र-पौत्रों से युक्त हुए सौ वर्ष तक सुख भोग करें ॥१५॥ [१]

१८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य। देवता—इन्द्रः। छन्द-त्रिष्टुप, पंक्तिः, उष्णिक्)

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ २
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥३
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४
तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥

हे भरद्वाज ! तुम तेजस्वी, शत्रु नाशक, बहुतों द्वारा बुलाए गए इन्द्र की स्तुति करो। तुम इन स्तोत्रों से मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले

इन्द्र को बढ़ाओ ॥ १ ॥ इन्द्र युद्ध में रत, सहानुभूति से युक्त, बलवान्, दाता, उपकार करने वाले, सोमपायी तथा मनुष्यों के रक्षक हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र कर्म न करने वाले मनुष्यों को वश में करो। एकमात्र तुम्हीं ने यज्ञ कर्म करने वालों को पुत्रों और सेवकों से युक्त किया था। हे इन्द्र ! तुम में अब भी वह सामर्थ्य है या नहीं ? समय-समय पर अपना बल दिखाओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी हो। तुम बहुत से यज्ञों में प्रकट हुए हो। तुमने हमारे शत्रुओं को नष्ट किया है। तुम ओजस्वी, बली, अजेय एवं शत्रुओं के हननकर्त्ता हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र हमारी बहुत दिनों से चली आती मित्रता चिरस्थायी हो। तुमने स्तुति करने वाले अंगिराओं से युद्ध करने वाले "बल" नामक दैत्य को मारा था और उसके नगरों के द्वारों को खोला था ॥ ५ ॥ [४]

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥ ६
स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥ ८
उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९
अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च ॥ १० । ५

स्तोताओं को सामर्थ्यवान् बनाने वाले इन्द्र स्तुतियों द्वारा बुलाए जाते हैं। वे पुत्र-प्राप्ति के लिए बुलाए जाते हैं। युद्धस्थल में, वे वज्रधारी इन्द्र नमस्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र ने शत्रुओं को पराजित करने वाले बल से मनुष्यों को पराक्रमी बनाया है। इन्द्र यशस्वी तथा धन, सामर्थ्य से युक्त एवं समान स्थान वाले हैं ॥ ७ ॥ जो इन्द्र युद्ध क्षेत्र में अकर्मण्य नहीं होते, वे वृथा वस्तुओं को उत्पन्न नहीं करते। वे प्रसिद्ध नाम वाले इन्द्र शत्रु-

नगरों को नष्ट करने और शत्रुओं के हनन करने के लिए तुरंत उद्यत होते हैं। हे इन्द्र! तुमने राक्षसों को नष्ट किया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम शत्रुओं का हनन करने वाले हो। तुम प्रशंसनीय बल वाले अपने रथ पर शत्रु-नाश के लिए चढ़ते हो। तुम अपने दाहिने हाथ में वज्र धारते हो। हे इन्द्र! तुम प्रचुर धन से युक्त हो। दुष्टों की माया को दूर करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र! जैसे अग्नि को जलाते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं को नष्ट करो। तुम वज्र के समान भयंकर हो। तुम राक्षसों को जलाओ। इन्द्र ने वज्र से शत्रुओं को चीर डाला। इन्द्र युद्ध में गर्जन करते हुए सभी संकटों को दूर करते हैं ॥ १० ॥　　[९]

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२
प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरु सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं घृषता निनेथ ॥ १३
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४
अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ । ६

हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गये हो। कोई भी दुष्ट तुम्हें बल-हीन नहीं बना सकता। तुम ऐश्वर्य से युक्त होकर असंख्य वाहनों द्वारा हमारे सामने आओ ॥ ११ ॥ अत्यन्त यश और धन वाले, शत्रु-हन्ता तथा महान् इन्द्र की महिमा आकाश और पृथिवी से भी बड़ी हुई है। शत्रुओं के हराने वाले मेधावी इन्द्र अजातशत्रु हैं, उनका प्रतिद्वन्द्वी कोई भी नहीं है ॥१२॥ हे इन्द्र! तुमने "शुष्ण" से "कुत्स" की तथा शत्रुओं से "आयु" और "दिवोदास" की रक्षा की। तुमने "शम्बर" के पास से "अतिथिग्व" को

बहुत धन दिलाया। हे इन्द्र! तुमने वज्र से "शम्बर" का वध किया और पृथिवी पर रहने वाले, शीघ्र चलने वाले "दिवोदास" की संकटों से रक्षा की ॥ १३ ॥ हे ज्योतिर्मान् इन्द्र! सभी स्तोता मेघ को नष्ट करने के लिए तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। तुम सभी विद्वानों में श्रेष्ठ हो। स्तुति करने वालों की स्तुति से प्रसन्न होकर तुम दरिद्रता से दुखी यजमानों और उनकी संतान को सुखी करो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र! आकाश-पृथिवी और स्वर्ग तुम्हारी शक्ति को स्वीकार करते हैं। हे इन्द्र! तुम यज्ञादि कर्मों को अनुष्ठित करो और उसके पश्चात् यज्ञ में अभिनव स्तोत्र को प्रकट करो ॥१५॥ [६]

१६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानाम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२
पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३
तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ । ७

स्तुति करने वाले मनुष्यों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले इन्द्र आवें। दोनों लोकों पर अपना पराक्रम फैलाने वाले एवं शत्रुओं द्वारा अहिंसित इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं। वे प्रशंसनीय कर्मों से युक्त तथा यजमानों के जानने वाले हैं ॥ १ ॥ इन्द्र उत्पन्न होते ही बढ़ते हैं। हमारी स्तुति दान के लिए इन्द्र को आकर्षित करती है। इन्द्र अजर, महान्, युवा, गमनशील तथा शत्रुओं से न हारने वाले बल से बढ़े हुए हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! अन्न देने के लिए हमारे सामने अपने अत्यन्त दानशील हाथों को लाओ। तुम शान्त चित्त

वाले हो। जैसे पशु स्वामी अपने पशुओं को चलाता है, वैसे ही तुम रण क्षेत्र में हमको चलाओ ॥ ३ ॥ हम अन्नों की कामना वाले स्तोता इस यज्ञ में सहायक मरुद्गण के साथ शत्रु-संहारक इंद्र की स्तुति करते हैं। हे इन्द्र! तुम्हारे प्राचीन कालीन स्तुति करने वालों के समान हम भी पाप से रहित अहिंसित तथा अनिन्द्य हों ॥ ४ ॥ जैसे बहती हुई नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, वैसे ही स्तोताओं का अन्न इन्द्र की ओर बढ़ता है। वे इन्द्र धनों के स्वामी, कर्मवान् तथा सोम-रस से पुष्ट होने वाले हैं ॥ ५ ॥ [७]

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६
यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९
नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १०
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११
जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२
वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ । ८

हे इन्द्र! हमको श्रेष्ठ बल प्रदान करो। तुम हमको अत्यन्त तेज दो। तुम शत्रुओं के हराने वाले हो। हे अश्ववान् इन्द्र! तुम हमको वीर्यवान्, तेज से युक्त तथा मनुष्यों के उपभोग्य ऐश्वर्य दो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम

हमको शत्रुओं को वश में करने वाला बल दो। हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से विजय प्राप्त करें। पुत्र-पौत्र की प्राप्ति के लिए उसी रक्षा से हम तुम्हारी स्तुति करें ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! हमको कामनाओं का पूरक सैन्यशक्ति से युक्त बल दो। धन की रक्षा करने वाला, बढ़ा हुआ और सुन्दर बल दो। हे इन्द्र! तुम्हारे रक्षा-साधन से हम युद्धस्थल में उस बल से ही शत्रुओं का संहार करें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारा कामना-पूरक बल चारों दिशाओं से हमारी ओर आवे। यह प्रत्येक दिशा से हमारे पास आवे। तुम हमको हर प्रकार का श्रेष्ठ धन दो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे आश्रय में हम सेवकों युक्त, सुनने योग्य यज्ञ वाले धन का उपभोग करते हैं। हे इन्द्र! तुम दिव्य और पार्थिव धनों के स्वामी हो। तुम हमको महान् धन दो ॥१०॥ अभिनव रक्षा के लिए हम इस यज्ञ में इन्द्र को बुलाते हैं, जो मरुद्गण के साथ अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी, अभीष्टवर्षी, समृद्ध, विकराल एवं शासन करने वाले हैं ॥ ११ ॥ हे वज्रिन! हम जिन मनुष्यों में रहते हैं, उन सबसे अपने को महान् समझने वाले को तुम अपने वश में करो। हम युद्ध-काल में तथा पशु, पुत्र और जल की प्राप्ति के लिए तुम्हें आहूत करते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। हम इन स्तोत्र रूप मित्रता-कार्य के द्वारा तुम्हारी सहायता से शत्रुओं को मारें और उनसे बलवान बनें। हे इन्द्र! तुम पराक्रमी हो, हम तुम्हारे आश्रय में अत्यन्त धन-लाभ कर सुखी हों ॥ १३ ॥ [८]

२० सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः त्रिष्टुप्)

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान्।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥२

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधै: शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ । ६

हे इन्द्र ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से पृथिवी को भर देते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं पर छा जाने वाला पुत्र और ऐश्वर्य दो । वह पुत्र असंख्य धन वाला, उर्वरा भूमि का स्वामी तथा शत्रुओं का नाश करने वाला हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले ने सूर्य के समान बल अपने स्तोत्र द्वारा तुमको भेंट किया था । हे सोमपाये ! तुमने विष्णु से मिलकर जलों के रोकने वाले वृत्र को मारा था ॥ २ ॥ जब इन्द्र ने भी सभी पुरियों को ध्वस्त करने वाले वज्र को पाया था, तब वे मधुर सोम-रस के प्राप्त करने वाले हुए थे । वे इन्द्र हिंसा करने वालों के हिंसक, पराक्रमी, अन्नदाता, अत्यन्त ओजस्वी तथा बढ़े हुए तेज से युक्त हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध में बहुत अन्न देने वाले तुम्हारे सहायक "कुत्स" से डर कर सौ सेनाओं सहित पणि भाग गया । तुमने "शुष्ण" की माया को अस्त्रों से छिन्न भिन्न कर उसके सम्पूर्ण अन्न को छीन लिया ॥ ४ ॥ वज्र की मार से गिर कर "शुष्ण" मर गया । उस समय उस द्रोही शुष्ण का सभी बल नष्ट होगया था । इन्द्र ने सूर्य की उपासना के लिए अपने सारथि रूप "कुत्स" को रथ बढ़ाने के लिए कहा ॥ ५ ॥ [६]

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥६
वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८
स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १०
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य र्कैः ॥ १३ । १०

इन्द्र ने जीवों की रक्षा के लिए "नमुचि" के मस्तक को चूर चूर कर दिया और "सप" के पुत्र "निद्रित" नामी ऋषि की रक्षा करते हुए उन्हें पशु, धन तथा अन्नवान् बनाया। उस समय श्येन पक्षी उनको हृष्ट बनाने वाले सोम को लेकर आया॥ ६ ॥ हे वज्रिन्! तुमने मायावी "पिप्रु" के दृढ़ दुर्गों को तोड़ डाला। हे सुन्दर दान वाले, तुमने हवि रूप अन्न प्रदान करने वाले ऋजिश्वा को धन दिया था ॥ ७ ॥ सुन्दर सुख देने वाले इन्द्र ने अनेक असुरों को "द्योतन" के पास सदा जाने के लिए ऐसे ही वश में किया, जैसे माता के पास जाने के लिए पुत्र वश में रहते हैं ॥ ८ ॥ शत्रुओं द्वारा न हारने वाले इन्द्र अपने हाथ में शत्रुओं के मारने वाले अस्त्रों को धारण कर वृत्रादि का नाश करते हैं। जैसे वीर पुरुष रथ पर चढ़ता है, वैसे ही वे अपने घोड़ों पर चढ़ते हैं। वे हमारी वाणी से पूजित हुए घोड़े इन्द्र को यहाँ लावें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! हम उपासकगण तुम्हारे आश्रय में अभिनव धन की प्राप्ति के लिए उपासना करते हैं। स्तोतागण यज्ञों को करते हुए स्तुति करते हैं। हे इन्द्र! तुमने शरदासुर की सात पुरियों को वज्र से चूर्ण कर दिया ॥ १० ॥ हे इन्द्र! धन की कामना करते हुए उशना के निमित्त तुम कल्याणकारी हुए थे। तुमने नववास्त्व नामक राक्षस को मारा था और सामर्थ्यवान् उशना के सामने उसके देयपुत्र को उपस्थित किया था ॥११॥ हे इन्द्र! तुम शत्रुओं को कम्पायमान करते हो। तुमने निरुद्ध जल को प्रवाहमान बनाया। हे वीर पुरुष! जब तुम समुद्र

लाँघने में सफल होते हो, तब समुद्र के पार रहने वाले "तुर्वश" और "यदु" को समुद्र के पार लगाते हो ॥१२॥ हे इन्द्र ! युद्ध में यह सब कार्य तुम्हारे ही बल के हैं। तुमने ही "धुनी" और "चुमुरी" नामक दो असुरों को मारा। हे इन्द्र ! हव्य परिपक्व करने वाले, सोमाभिष करने वाले, समिधावान् राजर्षि "दभीति" ने हव्य से तुम्हें बढ़ाया ॥ १३ ॥ [१०]

२१ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती)

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १
तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥ २
स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ । ११

हे पराक्रमी इन्द्र ! बहुत कामना वाले भरद्वाज की सुन्दर स्तुतियाँ तुम्हें बुलाती हैं। तुम रथवान्, अजर एवं अभिनव रूप वाले हो। हविरन्न तुम्हारा अनुगमन करते हैं ॥ १ ॥ सर्व ज्ञाता, स्तुतियों द्वारा प्राप्य, यज्ञ द्वारा बढ़ने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। वे अत्यन्त मेधावी इन्द्र आकाश और पृथिवी की महिमा से भी अधिक महान् हैं ॥ २ ॥ इन्द्र ने ही वृत्र द्वारा फैलाए गए अन्धकार को सूर्य के तेज से नष्ट किया। हे पराक्रमी इन्द्र ! तुम कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होते। मनुष्य तुम्हारे स्थान की सदा कामना करते हैं। वे मनुष्य सदा अहिंसक रहते हैं ॥ ३ ॥ जिन इन्द्र ने वृत्रादि राक्षसों के हनन जैसे प्रसिद्ध कार्य किए हैं, वे इस समय कहाँ हैं?

किस देश में और किन उपासकों के मध्य में है ? हे इन्द्र ! तुम किस प्रकार के यज्ञ से सुखी होते हो ? तुम्हें वरण करने में कौन सा मन्त्र उपयुक्त है ? तुम्हारे वरण करने में समर्थ कौन है ? ॥ ४ ॥ हे बहुकार्य वाले इन्द्र ! प्रचीन कालीन अंगिरा आदि ऋषि वर्तमान कालीन ऋषियों के समान साधक थे। मध्यकाल में भी तुम्हारे स्तोता हुए हैं। परन्तु हे इन्द्र ! तुम मुझ इस काल के साधक की स्तुति श्रवण करो ॥ ५ ॥ [११]

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥ ६
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्या पिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥८
प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ ९
इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १०
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११
स नो बोधि पुर एता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥ १२ । १२

हे इन्द्र ! इस काल में मनुष्य तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम्हारे प्राचीन एवं श्रेष्ठ महान् कर्मों को स्तुति रूप वाणी में प्रवृद्ध करते हैं। हम तुम्हारे जिन कार्यों के जानने वाले हैं, उन्हीं से हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! राक्षसों का बल तुम्हारे सामने है। तुम भी उस बल का सामना करो। हे शत्रुओं के पीड़क इन्द्र ! तुम अपने बल को वज्र द्वारा प्रेरित करो। तुम्हारा वज्र प्राचीन काल से ही योजना के योग्य तथा

सहायक रहा है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति करने वालों के पालक हो। तुम हम स्तोताओं की प्रार्थना को शीघ्र श्रवण करो। हम वर्तमान कालीन स्तोता अभिनव स्तोत्र की इच्छा करते हैं। हे इन्द्र ! तुम सुन्दर आह्वान वाले होकर प्राचीन अंगिराओं के मित्र हुए थे। अब हमारी स्तुति भी श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे भरद्वाज ! हमारी अभीष्ट पूर्ति एव रक्षा के निमित्त वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत्, पूषा, विष्णु, अग्नि, सविता वनस्पतिया के देवता और पर्वतों की स्तुति करो ॥ ९ ॥ हे अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र ! यह स्तोता उपासना के योग्य स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अविनाशी, तुम मेरी स्तुति को श्रवण करो, क्योंकि तुम्हारे समान अन्य कोई देवता नहीं है ॥ १० ॥ हे सर्वज्ञ इन्द्र ! तुम सब देवताओं सहित मेरे स्तुति योग्य स्तोत्र के सामने आओ। जो देव अग्नि की जिह्वा रूप हैं, जो यज्ञ में हव्य सेवन करते हैं, जिन्होंने शत्रुओं का नाश करने के लिए राजर्षि मनु को सर्वोपरि बनाया, तुम उन्हीं के साथ यहाँ आओ ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम मथारी तथा मार्ग नियत करने वाले हो। तुम सुखपूर्वक जाने योग्य मार्ग में एव दुर्गम मार्ग में भी हमारे अग्रणी बनो। तुम अपने महान् एव श्रम रहित घोड़ों के द्वारा हमारे लिए अन्न लेकर आओ ॥ १२ ॥ [१२]

२२ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता-इन्द्र । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ । १३

मनुष्यों पर विपत्ति पड़ने पर एक मात्र इन्द्र आह्वान करने के योग्य हैं, वे स्तुति करने वाले के पास आते हैं । जो कामनाओं के वर्षक, पराक्रमी, बहुत विद्वान, सत्यवक्ता एवं शत्रुओं को पीड़ित करने वाले हैं, हम उन इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ नौ महीने के यज्ञानुष्ठान के करने वाले, प्राचीन हमारे अंगिरा आदि पूर्वज सात ऋषियों ने इन्द्र को पराक्रमी और प्रवर्द्धमान् बनाते हुए उनकी स्तुति की थी । वे इन्द्र शत्रुओं के हननकर्त्ता, गमनशील एवं सभी पर शासन करने वाले हैं ॥ २ ॥ हम बहुत से पुत्रों-पौत्रों, परिजनों, सेवकों और पशुओं के साथ सुखदायक धन की इन्द्र से याचना करते हैं । हे अश्वों के स्वामी इन्द्र ! तुम हमको सुखी करने के लिए वह ऐश्वर्य लेकर यहाँ आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जिस सुख को प्राचीन स्तोताओं ने प्राप्त किया था, उसी सुख को हमें दो । हे शत्रुओं के विजेता, बहुतों द्वारा बुलाये गये, पराक्रमी, ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुम दुष्ट राक्षसों का संहार करने में समर्थ हो । तुम्हारे निमित्त यज्ञ में कौन-सा हव्यभाग प्राप्त हुआ है ? ॥ ४ ॥ यज्ञादि कर्मों से युक्त तथा गुणगाथा पूर्वक स्तुति करने वाले यजमान वज्रधारी एवं रथरूढ़ इन्द्र की पूजा करते हैं । वे इन्द्र बहुतों को आश्रय देते हैं । वे बहुकर्मा एवं बल प्रदान करने वाले हैं । उनका स्तोता सुख प्राप्त करता एवं शत्रु के सामने वीरता पूर्वक डट जाता है ॥ ५ ॥ [१३]

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळहा धृषता विरप्शिन् ॥ ६
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।

धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १०
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ । १४

हे इन्द्र ! तुम अपने बल से बलवान् हो । तुमने मन के वेग के समान जाने वाले और असंख्य गाँठों वाले वज्र से उस माया द्वारा बढ़े हुए वृत्र को मार डाला । हे सुन्दर तेज वाले इन्द्र ! तुमने असुरों की सुन्दर सुदृढ़ पुरियों को ध्वस्त किया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम प्राचीन कालीन ऋषियों के समान ही अभिनव स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बढ़ाते हैं । तुम पुरातन एवं अत्यन्त पराक्रमी हो । वे सुन्दर रूप वाले इन्द्र हमारे रक्षक हों ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम सज्जनों से वैर करने वाले दुष्टों के लिए आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को शोषक तेज से भर देते हो । तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले एवं अपने तेज से सर्वत्र व्याप्त हो उन दुष्टों को भस्मसात् करो ॥ ८ ॥ हे अत्यन्त तेजस्वी दिखाई पड़ने वाले इन्द्र ! तुम दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों के स्वामी हो । तुम अत्यन्त पूजनीय हो । अपने दाहिने हाथ में वज्र ग्रहण कर राक्षसों की माया को छिन्न-भिन्न करते हो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको महान्, अहिंसित और सुख देने वाला ऐश्वर्य दो, जिससे शत्रुओं का सामर्थ्य बढ़ने न पावे । हे वज्रिन् ! जिस कर्म-साधन से तुमने अकर्मण्यों को कर्मों में लगाया उसी साधन से मनुष्यों के शत्रुओं को मारे जाने योग्य बनाते हो ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पूजनीय एवं बहुतों के द्वारा बुलाए गए हो । तुम सभी के द्वारा कामना किए जाने वाले घोड़ों के द्वारा हमारे पास आओ । जिन घोड़ों की गति को देवता या राक्षस कोई भी नहीं रोक सकता, उन घोड़ों के साथ शीघ्र ही हमारे सामने पधारो ॥ ११ ॥ [१४]

२३ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।

यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १
यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४
अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ । १५

हे इन्द्र ! सोम के सुसिद्ध होने पर और महान् स्तोत्र के उच्चारित किए जाने पर तथा शास्त्र सम्मत विधि द्वारा आहूत होने पर तुम अपने रथ में घोड़ों को जोड़ते हो। हे ऐश्वर्यशालिन् ! तुम अपने दो घोड़ों से युक्त रथ पर दोनों हाथों में वज्र लेकर आते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में स्तुति करने वाले यजमान के साथी होकर उसकी रक्षा करते हो और भय रहित होकर धर्मवान् तथा भयग्रस्त यजमान के कार्य में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों को पराजित करते हो ॥ २ ॥ इन्द्र सिद्ध सोम रस को पीते हैं। वे स्तुति करने वाले को सुगम मार्ग प्राप्त कराते हैं। वे सोमाभिषव करने वाले को सुन्दर निवास स्थान देते हैं। वे स्तोता को धन देते हैं ॥ ३ ॥ वे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों सहित तीनों सवनों में जाते हैं। वे वज्र के धारण करने वाले हैं। वे सुसिद्ध सोम को पीते हैं। वे गौओं का दान करने वाले को पुत्र देते और स्तोत्र करने वाले के स्तोत्र को सुनते हैं ॥ ४ ॥ जो प्राचीन इन्द्र हमारे रक्षण-कार्यों को करते हैं, उन्हीं इन्द्र के इच्छित स्तोत्र को हम उच्चारित करते हैं। सोम सिद्ध होने पर हम इन्द्र की स्तुति करते हैं। स्तोत्र उच्चारण करते हुए साधक उनको प्रवृद्ध करने के लिए हवियाँ देते हैं ॥ ५ ॥   [१५]

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि राण्ड्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६

स नो वोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवास पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८
तं व सखाय स यथा सुतेषु सोमेभिरी पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९
एवेदिन्द्र सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १०।१६

हे इन्द्र ! जिस उद्देश्य से तुमने स्तोत्रों को बढ़ाया है, उसी उद्देश्य से, वैसे ही स्तोत्रों का उच्चारण हम तुम्हारे लिए करते हैं। हे सोमपायी इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम छन कर तैयार होने पर सुन्दर, सुख देने वाले हवियुक्त स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होते हुए हमारे पुरोडाश को ग्रहण करो। दही आदि मिश्रित सोम का पान करो। यजमान के कुश पर विराजमान होओ । फिर जो यजमान तुम्हारी कामना करता है, उसके स्थान को बढ़ाओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपनी इच्छानुसार हृष्टि को प्राप्त होओ। यह सोम तुम्हें प्राप्त हो। तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। हमारे स्तोत्र तुम्हारे समक्ष पहुँचें। यह स्तुति हमारी रक्षा के लिए तुम्हें प्रेरित करें ॥ ८ ॥ हे स्तुति करने वालो ! सोम सिद्ध होने पर धनदाता इन्द्र को परिपूर्ण करो। यह सोम बहुत परिमाण में इनको अर्पित करो। वह इन्द्र हमको पुष्ट करें और हमारी सन्तुष्टि में बाधक न हों ॥ ९ ॥ सोम छनने पर हविरन्न युक्त यजमान के स्वामी इन्द्र स्तुति करने वाले के लिए श्रेष्ठ मार्ग दिखाने वाले तथा वरणीय धनों के देने वाले हैं, यह जान कर भरद्वाज ने स्तुति की है ॥ १० ॥ [१६]

२४ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्, बृहती)

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।

अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३
शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ । १७

सोमयाग में इन्द्र का सोम जनित हर्ष यजमान की इच्छाओं को पूर्ण करे। वे इन्द्र स्तोताओं की स्तुति से पूजे जाते तथा वे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ वे शत्रुओं की हिंसा करने वाले, बुद्धिमान, पराक्रमी इन्द्र हमारे स्तोताओं के रक्षक, घर देने वाले, प्रशंसित और अन्न प्रदान करने वाले हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! पहियों की धुरी के समान तुम्हारी महिमा आकाश-पृथिवी को स्थिर करती है। तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। तुम्हारे रक्षण-साधन वृक्षों की शाखाओं के समान बढ़ते है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो। तुम्हारे कर्म गौओं के मार्ग के समान विस्तृत हैं। हे सुन्दर कर्म वाले इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति बछड़ों की रस्सी के समान वैरियों को बाँधती हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र उत्तरोत्तर अद्भुत कार्य करते हैं। वे सत्यासत्य कार्यों को बारम्बार देखते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा और सवितादेव इस यज्ञ में हमारी कामनाएं पूर्ण करें ॥ ५ ॥ [१७]

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६
न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७
न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।

अत्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥ ८
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्वं ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ६
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १० । १८

हे इन्द्र ! स्तोत्र और हव्य द्वारा स्तोतागण तुमसे अभीष्ट पाते हैं, जैसे पर्वत के ऊँचे भाग से जल प्राप्त होता है। हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों द्वारा पूजनीय हो। जैसे घोड़े वेग से रणक्षेत्र में जाते हैं, वैसे भरद्वाज आदि अभिलाषी तुम्हारे पास जाते हैं ॥ ६ ॥ जिस इन्द्र को वर्ष और महीने बूढ़ा नहीं बना सकते, दिन जिसे दुर्बल नहीं कर सकते, उस सशक्त इन्द्र का शरीर हमारे स्तोत्रों से पूजित होकर बढ़े ॥ ७ ॥ हम इन्द्र की स्तुति के प्रभाव से दुष्टों के चंगुलमें नहीं फँस पाते। इन्द्र के लिए बड़े-बड़े पर्वत भी तुच्छ हैं और अगाध स्थान भी उनके लिए नगण्य हैं ॥ ८ ॥ हे पराक्रमी एवं सोमपायी इन्द्र ! तुम उदार हृदय वाले हो। हमको अन्न और बल दो। तुम हमारी रक्षा के लिए दिन में तथा रात्र में भी तैयार रहो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में स्तोता की रक्षा के लिए उस पर कृपा करो। पास से या दूर से, जहाँ भी हो, वहीं से उसकी रक्षा करो। घर या जङ्गल में उसे सर्वत्र शत्रुओं से बचाओ। हम सुन्दर पुत्रादि से युक्त होकर सौ वर्ष तक सुख-पूर्वक जीवन यापन करें ॥ १० ॥ [१८]

२५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥ १
आभि. स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २
इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।

त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ ३
शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ । १९

हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में उत्तम, मध्यम और लघु रक्षाओं से हमारी भले प्रकार रक्षा करो । हे इन्द्र ! तुम महान् हो । हमको उपभोग्य अन्न से युक्त करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारी स्तुतियों के द्वारा शत्रु-सेना को मारने वाली हमारी सेनाओं की रक्षा करते हुए शत्रु के आक्रमण को निष्फल करो । यज्ञादि कार्य करने वाले मनुष्यों के कर्मों में विघ्न डालने वालों को नष्ट करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! पास या दूर से जो शत्रु हमारे सामने न आकर हिंसा करना चाहते हैं, उन शत्रुओं को अपने बल से नष्ट करो । इनके पराक्रम को नष्ट कर इन्हें भगा दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा कृपापात्र पुरुष वीर शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ होता है । ये दोनों पक्ष वाले संतान, गाय, जल और उपजाऊ पृथिवी के लिए संग्राम करते हैं ॥ ४ ॥ हे इंद्र ! तुम्हारे साथ युद्ध कर सकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है चाहे वह कैसा ही शत्रुओं का सामना करने वाला, विजय प्राप्त करने वाला योद्धा क्यों न हो । हे इन्द्र ! इनमें तुम्हारा प्रतिद्वन्दी कोई नहीं है । तुम इनमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥५॥ [१९]

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८
एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ ९ । २०

जो व्यक्ति शत्रुओं के रोकने को, अथवा दासों से युक्त श्रेष्ठ घर के निमित्त परस्पर लड़ते हैं, उन दोनों में वही व्यक्ति धन पाता है, जिसके यज्ञ में ऋत्विगगण इन्द्र के लिए यज्ञ करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोता जब कांपने लगें तभी तुम उनकी रक्षा करो । हे इन्द्र ! हमारे जो श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हें प्राप्त करने वाले हों तुम उन्हें दुःख से बचाओ । हे इन्द्र ! जिन स्तुति करने वालों ने हमको पुरोभाग में स्थापित किया, तुम उनकी रक्षा करने वाले बनो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो । शत्रुओं को मारने के लिए सभी शक्ति तुम में केन्द्रित हुई है । हे इन्द्र ! देवताओं ने तुम्हें शत्रुओं के हराने वाला तथा संसार का धारण करने वाला बल दिया है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! इस प्रकार स्तुति की जाने पर तुम युद्ध में शत्रुओं का वध करने के लिए हमको उत्साहित करो । हिंसा करने वाली राक्षसी-सेना को तुम हमारे निमित्त वशीभूत करो । हे इन्द्र ! हम तुम्हारे स्तोता भरद्वाज अन्न युक्त गृह प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [२०]

२६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २
त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४
त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥ ५ । २१

हे इन्द्र ! अन्न लाभ के लिए हम स्तुति करने वाले तुम्हें सोम-रस

से सींचते हुए, तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम हमारे आह्वान को सुनो । जब वीरगण युद्ध के लिए जाँय, तब तुम उनकी भले प्रकार रक्षा करना ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! महान् अन्न की प्राप्ति के लिए अन्नवान् होकर भरद्वाज तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तुम सज्जनों के रक्षक और दुष्टों के मारने वाले हो । भरद्वाज तुम्हारा आह्वान करते हैं । वे मुष्टिका द्वारा ही शत्रुओं का नाश कर देते हैं । जब वे गौओं के लिए संग्राम करते हैं, तब तुम्हारे भरोसे रहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! अन्न प्राप्ति के लिए तुम "भार्गव ऋषि" को प्रेरणा दो । हविदाता "कुत्स" के निमित्त तुमने "शुष्णासुर" को मारा था । तुमने "अतिथिग्व" को सुख देने के लिए "शम्बरासुर" का सिर काट डाला था, वह अपने को अमर समझता था ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "वृषभ" नामक राजा को युद्ध साधक रथ दिया । जब वे दस दिनों तक शत्रुओं से युद्ध करते रहे, तब तुमने उनकी रक्षा की थी । "वेतस" के सहायक होकर तुमने "तुग्रासुर" का वध किया था । तुमने स्तुति करने वाले "तुजि" राजा को समृद्ध किया था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रु-संहारक हो । तुमने प्रशंसनीय कार्यों का संपादन किया है । हे वीर इन्द्र ! तुमने सौ-सौ और हजार-हजार "शम्वर' की सेनाओं को चीर डाला । तुमने यज्ञादि के हिंसक "शम्बरासुर"! का हनन किया और अद्भुत रक्षा से तुमने "दिवोदास" की रक्षा की ॥५॥ [२१]

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ ७
वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥ ८ ।२२

हे इन्द्र ! श्रद्धा पूर्वक किये गए अनुष्ठान कर्मों द्वारा सोम रस से मुदित होकर तुमने "दभीति" राजा के निमित्त "चुमुरि" का संहार किया । हे इन्द्र ! तुमने "पिठीनस" को "रजि" नामक कन्या दी थी । तुमने अपनी बुद्धि से साठ सहस्र वीरों को एक समय में ही नष्ट किया था ॥ ६ ॥ हे वीरों

के साथी इन्द्र ! तुम तीनों लोकों के रक्षक और शत्रुओं के विजेता हो। स्तुति करने वाले तुम्हारे द्वारा दिए गए सुख और बल की याचना करते हैं। हे इन्द्र ! हम भरद्वाज तुम्हारे द्वारा दिए गए श्रेष्ठ सुख और बल को अपने स्तुति करने वालों के साथ पावें ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप स्तुति करने वाले हैं। धन-लाभ के लिए किए गए इन स्तोत्रों से हम तुम्हारे प्रीति-पात्र हों। "प्रातर्दन" के पुत्र "क्षत्रश्री" शत्रुओं का हनन कर तथा धन प्राप्त कर सब से अधिक ऐश्वर्यवान् बनें ॥ ८ ॥ [२२]

२७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ १
सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २
नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म।
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३
एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥ ५।२३

सोम से पुष्ट होकर इन्द्र ने क्या किया ? सोम-पान करके और सोम-रस से मैत्री करके उन्होंने क्या किया ? प्राचीन और नवीन स्तोताओं ने तुमसे क्या पाया ? ॥ १ ॥ सोम पान से पुष्ट होकर इन्द्र ने सुन्दर कर्मों को किया था। सोम-पान के पश्चात् उन्होंने श्रेष्ठ कार्य किया। सोम से मैत्री होने पर शुभ कर्म किया। हे इन्द्र ! प्राचीन और नवीन स्तोताओं ने तुमसे श्रेष्ठ

कर्मों को प्राप्त किया था॥ २ ॥ हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य किसी की महिमा का हमको ज्ञान नहीं। तुम्हारे समान वैभव और धन को भी हम नहीं जानते। हे इन्द्र ! तुम्हारे जितनी सामर्थ्य कोई भी प्रदर्शित नहीं कर सकता॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जिस पराक्रम से "वरशिख" नामक राक्षस के पुत्रों को मारा था, तुम्हारे उस पराक्रम को क्या हम नहीं जानते? हे इन्द्र ! वल पूर्वक उद्यत तुम्हारे वज्र के घोर शब्द से ही वलवान "वरशिख" के पुत्र विदीर्ण होगए॥ ४ ॥ इन्द्र ने राजा "चायमान" के पुत्र "अभ्यवर्ती" को इच्छित धन प्रदान करते हुए "वरशिख" के पुत्रों को मार डाला। "हरियूपिया" नगरी के मध्य स्थिति "वरशिख" के वंशज "वृचीवान्" के पुत्रों को इन्द्र ने मारा। तव "वरशिख" के पुत्र मारे गए थे॥ ५ ॥ [२३]

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।

वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्था न्यायन् ॥ ६

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।

स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमन्तो मघवा मह्यं सम्राट्।

अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ ८ । २४

हे इन्द्र ! तुम वहुत मनुष्यों द्वारा आहूत हो। तुम्हें युद्ध में पराजित कर अन्न-यश प्राप्त करने की आशा वाले, यज्ञ-पात्रों के तोड़ने वाले तथा कवच धारण करने वाले "वरशिख" के एक सौ तीस पुत्र आक्रमण करते हुए एक साथ ही नाश को प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ जिनके अश्व आकाश-पृथिवी के वीच चलते हैं, वे इन्द्र "सृञ्जय" राजा के आगे "तुर्वश" राजा को समर्पित करते हैं। उन्होंने "देववाक वंशीय" राजा "अभ्यवर्ती" के निकट "वरशिख" के पुत्रों को वश में कर लिया था॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अत्यन्त धन दान करने वाले, राजसूय यज्ञकर्ता "चायमान" के पुत्र "अभ्यवर्त्ती" ने हमें दासियों सहित रथ और वीस गौऐं प्रदान कीं। पृथु-वंशीय राजा अभ्यवर्त्ती की इस दक्षिणा का कोई विनाश नहीं कर सकता॥ ८ ॥ [२४]

२८ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता-गाव , गाव इन्द्रो वा । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावती पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहाना ॥१
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्व मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभि सचते गोपति सह ॥ ३
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभय तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वन ॥ ४
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गाव सोमस्य प्रथमस्य भक्ष ।
इमा या गाव स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५
यूय गावो मेदयथा कृश चिदश्रीर चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्र गृह कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६
प्रजावती सूयवस रिशन्ती शुद्धा अप सुप्रपाणे पिबन्ती ।
मा व स्तेन ईशत माघशस परि वो हेती रुद्रस्य वृज्या ॥ ७
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ । २५

गौएं हमारे गृह मे आकर हमारा मङ्गल करें। वे हमारे गोष्ठ में प्रवेश करती हुई प्रसन्न हों। इस गोष्ठ में विभिन्न रङ्ग की गौएं सन्तानवती होकर इन्द्र के लिए उषाकाल में दूध दें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञकर्ता और स्तोता की आशा किया हुआ धन देते हो। तुम उनको सदा धन देते और उनके अपने धन को कभी नहीं लेते हो। वे इन्द्र लगातार धन वृद्धि करते हैं और धन की कामना करने वालों को शत्रुओं द्वारा न मार सकने

योग्य स्थान में आश्रय देते हैं ॥ २ ॥ हमारी गौऐं नष्ट न हों। उन्हें चोर न चुरावें। शत्रुओं के हथियार उन पर न गिरें। गौओं के स्वामी जिन गौओं को इन्द्र के निमित्त देते हैं, उन गौओं सहित वे चिरकाल तक सुखी रहें ॥ ३ ॥ युद्ध के लिए आए अश्व उन गौओं न पा सकें। यज्ञ करने वाले यजमान की गौऐं स्वाधीनता से घूमती रहें ॥ ४ ॥ गौऐं हमारे लिए धन रूप हों। इन्द्र हमको गौऐं दें। गौऐं हवियों में प्रमुख सोम रूप भोजन दें। गौऐं ही इन्द्र रूप होता है, जिन्हें श्रद्धा सहित हम चाहते हैं ॥ ५ ॥ हे गौओ ! हमको पुष्ट करो। तुम हमारे कृश और रोगी शरीर को सुन्दर बनाओ। तुम कल्याणमय शब्द करने वाली हो, हमारे घर को कल्याणकारी बनाओ। हे गौओ ! यज्ञ मण्डप में तुम्हारा महान् अन्न ही यश प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे गौओ ! तुम संतानवती होओ। सुन्दर घास खाओ और सुख-प्राप्य तालाब आदि का स्वच्छ जल पीओ। तुम्हारा स्वामी चोर न हो ! हिंसक तुम्हारा शासन न करे। परमात्मा का काल रूप अस्त्र तुमसे दूर ही रहे ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे बल के लिए गौओं की पुष्टि स्वीकार हो और गौओं में गर्भ धारण करने वाले बैलों का बल स्वीकार हो ॥ ८ ॥ [२५]

२६ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १
आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४

न ते अन्त: शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ । १

हे मनुष्यो ! तुम्हारे ऋत्विग्गण मैत्री-भाव से इन्द्र की सेवा करते हैं। वे श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं। उनकी बुद्धि सुन्दर तथा उदार है, क्योंकि हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्र महान् धन देते हैं, इसलिए रक्षा के निमित्त उन महान् इन्द्र का पूजन करो ॥ १ ॥ जिस इन्द्र के द्वारा मनुष्यों का हित करने वाला धन एकत्र है, जो इन्द्र स्वर्ण रथ पर आरूढ़ होते हैं, जिनके हाथों में रश्मियाँ नियमित रहती हैं, जिन्हें सेचन समर्थ अश्व रथ में जुड़ कर वहन करते हैं, उन इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए भरद्वाज तुम्हारे चरणों में अपनी सेवा भेंट करते हैं। तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को हराते हो और वज्रधारण करते हो। तुम्हीं स्तोताओं को धन प्रदान करने वाले हो। हे सब में प्रमुख इन्द्र ! तुम सब के दर्शन के लिए सुन्दर और सदा चलने योग्य रूप धारण करके सूर्य के समान घूमते हो ॥ ३ ॥ अभिषुत होने पर सोम को भले प्रकार मिश्रित किया गया है, उसके तैयार होने पर पकाने योग्य पुरोडाश का पाक किया जाता है। भुने हुए जौ हव्य के लिए तैयार होते हैं। हवि रूप अन्न के तैयार करने वाले ऋत्विग्गण स्तोत्रों से इन्द्र की स्तुति करते हैं। वे स्तोत्र-उच्चारण करते हुए इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे बल का पार नहीं पाया जाता। आकाश और पृथिवी उस महान् बल से डर जाते हैं। जैसे गौओं का पालने वाला जल से गौओं को तृप्त करता है, वैसे ही स्तुति करने वाली तृप्तिदायक हवियों द्वारा हम विधिवत् यज्ञ करते हुए तुम्हें तृप्त करते हैं ॥ ५ ॥ वे हरी नासिका वाले महान् इन्द्र इस प्रकार सुख से आहूत किये जा सकते हैं। इन्द्र स्वयं पधारें या न भी पधारें, तो भी स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं। इस प्रकार महान् पराक्रम वाले इन्द्र प्रकट होकर अनेकों वृत्र जैसे राक्षसों और शत्रुओं का संहार कर डालते हैं ॥ ६ ॥ [१]

३० सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः उष्णिक्)

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २
अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३
सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ५ । २

वृत्र आदि राक्षसों का हनन कार्य करने के निमित्त इन्द्र पुनः उत्तेजित हुए हैं। वे श्रेष्ठ एवं अजर इन्द्र स्तुति करने वालों को धन दें। इन्द्र आकाश-पृथिवी का अतिक्रमण करते हैं। इन्द्र का अर्द्ध भाग सम्पूर्ण आकाश-पृथिवी के बराबर है ॥ १ ॥ अभी हम इन्द्र की शक्ति की स्तुति करते हैं। वह शक्ति असुरों को दग्ध करने में समर्थ है। इन्द्र जिन कर्मों के धारण करने वाले हैं, उन्हें रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है। वे नित्य प्रति वृत्र द्वारा ढके हुए सूर्य को दर्शन देने योग्य बनाते हैं। इन श्रेष्ठ-कर्मा इन्द्र ने ही लोकों को विस्तृत किया है ॥२॥ हे इन्द्र ! पूर्व के समान आज भी तुम्हारा नदियों को प्रवाहमान रखने वाला कार्य जारी है। नदियों के प्रवाहित होने के लिए तुमने मार्ग निर्मित किया है। भोजन के लिए बैठे हुए मनुष्य के समान पर्वत भी तुम्हारी आज्ञा से स्थिर होकर बैठे हैं। हे श्रेष्ठ कर्मा इन्द्र ! सभी लोकों को तुमने ही स्थिर किया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! अन्य कोई देवता तुम्हारे समान नहीं है, यह नितान्त सत्य है। तुम्हारे समान कोई मनुष्य भी नहीं है। तुमसे बढ़

कर कोई देवता या मनुष्य नहीं है, यह भी नितान्त सत्य ही है। जल-राशि को ढक कर शयन करने वाले वृत्र का तुमने वध किया था और जल राशि को समुद्र में गिरने के लिए छोड़ा था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! वृत्र द्वारा ढके हुए जल को सब ओर बहने के लिए तुमने छोड़ा था। तुमने मेघ के बन्धनों को काट डाला। सूर्य स्वर्ग और उषा को एक समय में ही प्रकाशित करने वाले तुम अखिल विश्व के स्वामी होओ ॥ ५ ॥ [२]

३१ सूक्त

(ऋषि—सुहोत्र । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, शक्वरी)

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४
स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥ ५ । ३

हे वैभव के प्रदानकर्त्ता इन्द्र! तुम ही धनों के मुख्य स्वामी हो। तुम अपने भुजबल से प्रजाओं के धारण करने वाले हो। मनुष्यगण पुत्र, शत्रु के जीतने वाले पौत्र एवं वृष्टि के उद्देश्य से तुम्हारी विविध स्तुतियाँ करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे डर से, अन्तरिक्ष में उत्पन्न जल गिरने योग्य न होने पर भी मेघ द्वारा गिराये जाते हैं। हे इन्द्र! आकाश, पृथिवी, पर्वत, वृक्ष तथा सभी स्थावर जंगम जीव तुम्हारे आगमन से भय भीत होते हैं ॥२॥ हे इन्द्र! "कुत्स" की सहायता के लिए तुमने "शुष्ण" से युद्ध किया था।

युद्ध में तुमने "कुयव" को मारा था। तुमने संग्राम में सूर्य के रथ के पहिए का हरण किया, उस समय से सूर्य का रथ एक ही पहिए का रह गया। पापी राक्षसों का तुमने वध किया था ॥ ३॥ हे इन्द्र ! तुमने "शम्बर" नामक राक्षस के सौ पुरों को ध्वस्त किया था। हे मेधावी इन्द्र ! तुमने सोम अभिषुत करने वाले "दिवोदास" को तथा स्तुति करने वाले भरद्वाज को धन दिया था ॥४॥ हे अजेय वीरों वाले एवं अत्यन्त धन वाले इन्द्र ! तुम भीषण युद्ध के लिए अपने विकराल रथ पर चढ़ो। हे श्रेष्ठ मार्गगामी इन्द्र ! तुम अपने रक्षा-साधनों रहित हमारे सामने आओ। हमको सब मनुष्यों में प्रसिद्ध करो ॥ ५ ॥ [३]

३२ सूक्त

(ऋषि—सुहोत्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥ १
स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४
स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ । ४

महान्, शत्रुहन्ता, वेगवान्, स्तुत्य, वज्रधारी एवं बढ़े हुए इन्द्र के निमित्त हमने अपने मुख से सुविस्तृत, सुखप्रद एवं अपूर्व स्तोत्रों का उच्चारण किया है ॥ १ ॥ मेधावी अङ्गिराओं के लिए इन्द्र ने स्वर्ग और पृथिवी को सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित किया और उन अङ्गिराओं द्वारा स्तुत होकर

पर्वतों को चूर्ण कर डाला। स्तुति करने वाले अङ्गिराओं के द्वारा बारम्बार याचना करने पर इन्द्र ने गौओं को बन्धन से छुड़ा दिया ॥ २ ॥ उन बहु-कर्मा इन्द्र ने यज्ञ करने वाले अङ्गिराओं से मिल कर शत्रुओं को हराया तथा राक्षस नगरियों को ध्वस्त किया ॥ ३ ॥ हे स्तुति द्वारा उपास्य एवं अभीष्टों के पूर्ण करने वाले इन्द्र ! तुम महान् अन्न, बल और बहुत बछड़े वाली युवती अथवा गौ सहित अपने स्तोताओं को सुखी करने के लिए, उनके सामने पधारो ॥ ४ ॥ दुष्टों को वशीभूत करने वाले इन्द्र सदा अपने बल से गमन-शील तेज द्वारा सूर्य के दक्षिणायन होने पर जल को छोड़ते हैं। इस प्रकार जल-राशि उस युगान्त समुद्र में नित्य प्रति गिरती है, जिससे वह फिर नहीं लौटती ॥ ५ ॥ [४]

३३ सूक्त

(ऋषि—शुनहोत्र। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ । ५

हे कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र ! तुम हमको सुन्दर स्तुति करने वाला, हव्यदाता एक पुत्र दो। वह पुत्र श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़ कर युद्ध में सुन्दर घोड़ों वाले विरुद्धाचारी शत्रुओं को पराजित करे ॥ १ ॥ हे इन्द्र !

स्तुति रूप वाणी वाले मनुष्य, युद्ध में रक्षा के निमित्त तुम्हें बुलाते हैं तुमने अङ्गिराओं के साथ पणियों को मारा था। तुम्हारा उपासक तुम्हारा आश्रय प्राप्त करता हुआ अन्न पाता है ॥ २ ॥ हे वीर इन्द्र ! तुम दस्यु और आर्य दोनों प्रकार के शत्रुओं को दण्ड देते हो। जैसे काठ के काटने वाला कुल्हाड़ी से वृक्षों को काटता है, वैसे ही युद्ध क्षेत्र में तुम भले प्रकार प्रयुक्त हथियारों से शत्रुओं को काटते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब ओर जाने वाले हो। तुम अपने उत्तम रक्षा-साधनों से हमारे ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले सखा रूप होओ। कुछ पुरुषों सहित संग्राम करने वाले हम धन प्राप्ति के लिये तुम्हें बुलाते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम इस समय तथा अन्य समयों में हमारे होओ। हमारी अवस्था के अनुसार हमको सुख दो। इस प्रकार के हम स्तोता गौओं के इच्छुक होकर तुम्हारे उज्ज्वल सुख में रहें। हे इन्द्र ! तुम महान् हो ॥ ५ ॥ [५]

३४ सूक्त

(ऋषि–शुनहोत्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो स्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३
अस्मा एतद्दिव्य र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ । ६

हे इन्द्र ! तुममें अगणित स्तोत्र मिलते हैं। तुमसे स्तुति करने वालों की प्रशंसा काफी होती है। पूर्व समय में तथा अब भी ऋषियों में स्तोत्र, साधना और मन्त्रादि युक्त इन्द्र के पूजन में परस्पर स्पर्द्धा होती है ॥ १ ॥

हम सदा इन्द्र को प्रसन्न करते हैं। वे बहुतों के द्वारा बुलाए गए, महान्, अद्वितीय एवं यजमानों द्वारा भले प्रकार पूजित हैं। हम रथ के समान इन्द्र के प्रति प्रीतियुक्त होकर लाभ के लिए सदा उनकी स्तुति करें ॥ २ ॥ सम्प श्रद्धा का विधान करने वाले स्तोत्र इन्द्र के सामने जाँय। कर्म और स्तुतियाँ इन्द्र को बाध्य नहीं करतीं। सौ हजार स्तुति करने वाले स्तुत्य इन्द्र की स्तुति करते हुए उनकी भक्ति करते हैं ॥ ३ ॥ इस यज्ञ दिवस में स्तोत्र के समान पूजा सहित इन्द्र के लिए मिश्रित सोमरस उपस्थित है। जैसे मरुभूमि के लिए गमन करने वाला जल प्राणियों का पालन करता है, वैसे ही हवियों के साथ अर्पित स्तोत्र इन्द्र की वृद्धि करते हैं ॥ ४ ॥ सर्वत्र गमनशील इन्द्र भीषण युद्ध में हमारे रक्षक और समृद्धि के करने वाले हों। इसलिए स्तुति करने वालों के स्तोत्र आग्रह सहित इन्द्र के निमित्त उच्चारित होते हैं ॥ ५ ॥ [६]

३५ सूक्त

(ऋषि–नरः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप, पंक्तिः)

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ ३
स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा, वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ॥।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४
तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥ ५ । ७

हे इन्द्र ! तुम रथारूढ हो। तुम्हारे स्तोत्र कब पहुँचेंगे ? मुझ स्तोता को तुम सहस्र पुरुषों युक्त गौएं कब प्रदान करोगे ? मुझ स्तुति करने वाले के

स्तोत्र को धन से कब पुरस्कृत करोगे ? तुम हमारे यज्ञादि कर्मों को अन्न से कब सुशोभित करोगे ? ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे पुरुषों से शत्रुओं के पुरुषों को और हमारे पुत्रों से शत्रुओं के पुत्रों को कब मिलाओगे ? रणक्षेत्र में तुम हमको कब विजय-लाभ कराओगे ? तुम गमनशील शत्रुओं से दूध, दही और घृतादि धारण करने वाली गौओं को कब जीतोगे ? हे इन्द्र ! हमको धन-प्राप्ति कब कराओगे ? ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले को तुम कब विविध प्रकार के अन्न दोगे ? तुम कब अपने यज्ञ में स्तोत्र को सुसंगत करोगे ? तुम स्तुति करने वालों को कब गो प्रदान करने के योग्य बनाओगे ? ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम गो प्रदान करने वाला, अश्वों द्वारा प्रसन्न करने वाला और बल से प्रसिद्ध अन्न हम भरद्वाज वंशीय स्तोताओं को प्रदान करो । तुम अन्नों को और सरलता से दुहने योग्य गौओं को पुष्ट करो । वे गौऐं जिससे सुन्दर कान्ति वाली हों, तुम वैसी ही कृपा करो ॥४ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रु को भिन्न प्रकार से युक्त करो । तुम अत्यन्त पराक्रमी और शत्रु का संहार करने वाले हो । हम स्तोता इस प्रकार स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ पदार्थों के देने वाले हो । हम तुम्हारे स्तोत्र का उच्चारण करने में पीछे नहीं हटते । हे इन्द्र ! तुम अंगिराओं को अन्न द्वारा प्रसन्न करो ॥ ५ ॥   [७]

३६ सूक्त

(ऋषि–नरः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १

अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ २

तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥ ३

स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ५ ।८

हे इन्द्र ! तुम्हारा सोम पीने से उत्पन्न हुआ आह्लाद हमारे लिए कल्याणकारी होता है। तीनों लोकों में स्थित तुम्हारे धन अवश्य ही सब का मङ्गल करने वाला है। हे इन्द्र ! तुम सत्य ही अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम देवताओं में अधिक बल धारण करने वाले हो। १ ॥ वीरत्व लाभ के निमित्त यजमान इन्द्र को पुरोभाग में धारण करते हुए इन्द्र के बल की विशेष प्रकार पूजा करते हैं। वे शत्रुओं के दलों के रोकने वाले तथा उनका हनन करने वाले और उन पर आक्रमण करने वाले इन्द्र वृत्र को मारेंगे, इसीलिए यजमान उनकी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ मरुद्गण सुसंगत होकर इन्द्र की सेवा करते हैं और वीर्य, बल एवं रथ में जुड़ने वाले उनके घोड़े भी इन्द्र की सेवा करते हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं, वैसे ही उपासना-रूप एवं बल से युक्त स्तुतियाँ इन्द्र से मिलती हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति की जाने पर तुम बहुतों को अन्न प्रदान करने और गृह दिलाने वाले अन्न को प्रवाहित करो। तुम सब प्राणियों के मुख्य स्वामी तथा सभी उत्पन्न जीवों के एक मात्र ईश्वर हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुनने योग्य स्तोत्रों को सुनो। हमारी सेवा की कामना करते हुए सूर्य के समान, शत्रुओं के धन के जेता बनो। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बली हो। तुम हर समय में स्तुत होकर और हव्यरूप अन्न से प्रकाशमान होकर पहले के समान ही हमारे पास रहो ॥ ५ ॥ [८]

३७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।

अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः पारयास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ ५ । ६

हे इन्द्र ! तुम्हारे रथ में योजित अश्व हमारे सामने आवें । भरद्वाज तुम्हें आहूत करते हैं । हम तुम्हारे साथ पुष्ट होते हुए वृद्धि को प्राप्त हों ॥१॥ हमारे यज्ञ में सोमरस प्रवाहित होता है । वह कलश में जाता है । हर्षदायक सोम के स्वामी इन्द्र इस सोमरस को पीवें ॥ २ ॥ रथ में योजित अश्व बलशाली इन्द्र को हमारे सामने लावें । सोम रूप हवि को वायु नष्ट न करें । इसके गुण हीन होने से पूर्व ही इन्द्र ही उसका पान करें ॥ ३ ॥ हविर्वान् यजमान को बलवान इन्द्र धन देते हैं । हे वज्रिन् ! तुम पाप को नष्ट करो । तुम्हारे दान से हमें धन और पुत्र प्राप्त हो ॥ ४ ॥ इन्द्र श्रेष्ठ अन्न और बल दें । वे हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध हों । शत्रु-हन्ता इन्द्र शत्रुओं को मारें और हमें सभी धन दें ॥ ५ ॥ [६]

३८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप)

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३
वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।

महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ । १०

अद्भुत इन्द्र सोम पान करें। वे हमारे आह्वान को सुनें। यजमान के यज्ञ में इन्द्र स्तुति और हव्य ग्रहण करें ॥ १ ॥ इन्द्र के दोनों कान स्तोत्र सुनने को दूर से भी आते हैं। उस समय स्तोता उच्च स्वर से स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को हमारे सामने लावें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन और अक्षुण्ण हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। स्तोत्र और हव्य इन्द्र में ही लीन होते हैं। स्तोत्र वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ यज्ञ और सोमरस, जिन इन्द्र का बढ़ाते हैं तथा हव्य, स्तुति और पूजन जिन इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं, जिन्हें दिन और रात की गति बढ़ाती है और जिन्हें मास, दिन और संवत्सर बढ़ाते हैं हे इन्द्र ! ऐसे तुम अत्यन्त बलवान् हो। हम आज धन, यश, रक्षा और शत्रु हनन कर्म के लिए तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ४-५ ॥ [१०]

३९ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २
अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३
अयं रोचयदरुचो रुचानोऽयं वासयद् व्यृतेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥ ५ । ११

हे इन्द्र ! हमारे सोम का पान करो। वह सोम फल देने वाले, हर्ष प्रदायक और दिव्य हैं। हे इन्द्र ! हमें श्रेष्ठ अन्न दो ॥ १ ॥ अङ्गिराओं को साथ ले इन्द्र ने पर्वत में छिपी गौओं के उद्धार के लिए पणियों को पराजित

किया ॥२॥ हे इन्द्र ! इस सोम ने रात्रि, दिवस और वर्ष सब को तेज दिया । देवताओं ने इसी सोम को दिवस के केतु रूप से स्थापित किया । सोम ने अपने तेज से उषाओं को प्रकाशित किया ॥ ३ ॥ सूर्यात्मक इन्द्र ने अन्धकारयुक्त लोकों को प्रकाशित किया और अपनी दीप्ति से उषाओं को भी तेजोमयी बनाया । यह इन्द्र मनुष्यों को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । इन्होंने स्तोत्र द्वारा योजित अश्वों वाले धनयुक्त रथ पर चढ़ कर गमन किया ॥ ४॥ हे इंद्र ! तुम स्तोता को अपरिमित धन प्रदान प्रदान करो । जल, औषधि, अश्व, गौ और मनुष्यादि दो ॥ ५ ॥ [११]

४० सूक्त

(ऋषि–भरद्वाज बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्रः छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे मदाय अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दु समह्यन्पीतये समस्मै ॥ २
समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥ ३
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे वयो धात् ॥ ४
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ ५।१२

हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्ष के लिए जो सोम निष्पन्न हुआ है उसे पीओ । अपने अश्वों को रथ में योजित करो और यज्ञ के पास छोड़ स्तोताओं के मध्य विराजो । हमारी स्तुतिओं के साथी होकर स्तोता को अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही जैसे सोम-पान किया, वैसे ही अब भी करो । गौएं, ऋत्विज्, अभिषवण प्रस्तर आदि सब तुम्हारे लिए एकत्र हुए हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! अग्नि प्रदीप्त हुए हैं, सोम का अभिषव हुआ है । तुम्हारे अश्व तुम्हें

यहाँ लावें । हम तुम्हारा मन से आह्वान करते हैं । तुम हमें समृद्ध करने को आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! सोमपान के लिए तुम अनेक बार आए हो । इस समय सोमपान के लिए यज्ञ में आगमन करो और हमारी स्तुति सुनो । यह यजमान इस सोम को तुम्हारी पुष्टि के निमित्त अर्पित करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम जहाँ कहीं हो, वहीं से मरुद्गण के सहित आओ और हमारे यज्ञ का पालन करो ॥ ५ ॥ [१२]

४१ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दव सुताम् ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्यु ॥ २
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोम ।
एतं पिब हरिव. स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् । ३
सुत सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुपे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ४
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङ्र ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेपु प्रास्मॉ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५ ॥१३

हे इन्द्र ! तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो । अभिषुत सोम तुम्हारे लिए रखा है । हे वज्रिन् ! गौऐं जैसे गोष्ठ में जाती हैं, वैसे ही सोम कलश में जाता है । यज्ञीय देवताओं में प्रमुख इन्द्र ! तुम यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस जिह्वा से सोमरस का सदा पान करते हो, उसी से हमारे सोम-रस को पीओ । सोमवाला ऋत्विज् तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है । हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र शत्रुओं को मारे ॥ २ ॥ इन्द्र के लिए यह अभीष्टवर्षक सोम अभिषुत हुआ है । हे इन्द्र ! तुमने जिस सोमरस पर शासन किया, जिसे तुम अन्न रूप मानते हो, उसी सोम-रस का पान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र !

निष्पन्न सोम अशोधित सोम से अत्यन्त श्रेष्ठ है। तुम्हें वह हर्ष प्रदान करता है। यज्ञ के साधन रूप इस सोम के पास आगमन करो और इससे अपने शरीर के सब अवयवों की वृद्धि करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें आहूत करते हैं। तुम हमारे समक्ष आगमन करो, यह सोम तुम्हारे देह के लिए पर्याप्त हो । तुम इसके द्वारा आनन्द प्राप्त करते हुए हम सब की रक्षा करो ॥ ५ ॥ [१३]

४२ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द– उष्णिक्, अनुष्टुप्)

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद् दघ्वने नरे ॥१
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३
अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ । १४

हे ऋत्विजो ! इन्द्र के लिए सोम रस अर्पित करो । वे यज्ञ के स्वामी, सर्वगन्ता और सब के जानने वाले हैं। सर्व प्रथम गमनशील है ॥ १ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम सोमरस के सहित सोमपायी इन्द्र के समक्ष उपस्थित होओ । निष्पन्न सोमरस से परिपूर्ण पात्र के सहित आओ ॥ २ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम तेजोमय और निष्पन्न सोमरस के सहित इन्द्र की सेवा में पहुँचो। इन्द्र तुम्हारी कामना के ज्ञाता हैं। वे तुम्हारे अभीष्ट को पूर्ण करते हुए, शत्रु को मारते हैं ॥ ३ ॥ हे ऋत्विजो ! इन्द्र को अभिषुत सोम-रस अर्पित करो। वे इन्द्र हमारे सभी दुर्धर्ष शत्रुओं के क्रोध से हमें बचावें ॥ ४ ॥ [१४]

४३ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इंद्र ते सुतः पिब ॥ २
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृज ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ । १५

हे इन्द्र ! तुमने जिस सोम-रस के पीने की कामना में दिवोदास के लिए शम्बर को पराभूत किया, वही सोम-रस तुम्हारे लिए निष्पीडित हुआ है, तुम इसी का पान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब सोमरस यज्ञ के तीनों सवनों में अभिषुत होता है, तब तुम इसे ग्रहण करते हो। यह सोम तुम्हारे निमित्त ही संस्कृत हुआ है, इसका पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! यह वही सोम अभिषुत हुआ है, जिसे पीकर तुमने पर्वत में छिपी हुई गौओं को मुक्त किया था। तुम इसका पान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस सोम रूप अन्न के रस को पीकर आनन्दित होते हो और असाधारण शक्ति से युक्त हो जाते हो वही सोम तुम्हारे निमित्त निष्पीडित हुआ है। तुम इसका पान करो ॥ ४ ॥ [१५]

४४ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १
यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २
येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इंद्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४
यं वर्धयंतीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमि न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ । १६

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् और सोम के रक्षक हो। जो सोम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् और तेज से यशस्वी है, वही इस समय अभिषुत हुआ है। यह तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बल-वर्द्धक सोम की रक्षा करने वाले हो। जो सोम तुम्हें हर्ष प्रदान करता और स्तोताओं को वैभवशाली बनाता है, वह सोम अभिषुत होकर तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम रूप अन्न की रक्षा करने वाले हो। तुम जिस सोम को पीकर बलधारण करते और मरुद्गण को साथ लेकर शत्रुओं को मारते हो, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ॥ ३ ॥ हे यजमानो ! जो इन्द्र उपासकों पर कृपा करने वाले, बल के अधिपति, संसार के जीतने वाले, यज्ञादि कर्मों के स्वामी, श्रेष्ठ दाता और सबके देखने वाले हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हमारी स्तुतियों से इन्द्र का शत्रु के धन को हर लेने वाला बल बढ़ता है, उस बल की सेवा द्युलोक और पृथिवी करती है ॥ ५ ॥ [१६]

तद्व उक्थस्य वर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६
अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससावान्त्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९
इंद्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।

नकिरापिदंहृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहु ॥ १० । १७

हे स्तोताओ ! इन्द्र के निमित्त अपने स्तोत्र को प्रवृद्ध करो, क्योंकि इन्द्र तुम्हारे रक्षक हैं ॥ ६ ॥ यज्ञादि कर्मों में कुशल यजमानों की बातों को इन्द्र भले प्रकार जानते हैं। सोम के रस पीने वाले इन्द्र स्तोताओं को उत्कृष्ट धन देते हैं। अपने प्रवृद्ध अश्वों के सहित आकर वे स्तोताओं के रक्षक होते हैं। ७ ॥ जो सोम यज्ञ कर्म में पिया जाता है, उसी सोम को ऋत्विग्गण इन्द्र को आकृष्ट करने के लिए प्रस्तुत करते हैं। वही विस्तीर्ण देह वाले, शत्रु पराभवकारी इन्द्र हमारी स्तुति के कारण हमारे अभिमुख हों ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमें तेज और बल दो। अपने शत्रुओं को दूर भगाओ। तुम हमें प्रचुर अन्न प्रदान करो धन का उपभोग करने के लिए हमारे देह की रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें हवि प्रदान करते हैं। तुम हमारे विरुद्ध मत होना। हम तुमसे अन्य किसी को अपना मित्र नहीं समझते। यदि तुम्हारी ऐसी महिमा नहीं होती तुम 'धनदाता' क्यों कहे जाते ? ॥ १० ॥ [१७]

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥ ११
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥ १२
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
य पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३
अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥ १४
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥ १५ । १८

हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के वर्षक हो। तुम हमें हिंसक राक्षसों के आधीन मत करना। तुम धनवान हो। हम तुम्हारी मित्रता में रह कर दुःख न पावें। तुम्हारे कर्म में शत्रुगण अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं। जो सोमा-

भिषव-कर्म नहीं करते, अथवा जो तुम्हें हवि नहीं, तुम उन्हें नष्ट कर डालो ॥ ११ ॥ जैसे गर्जनशील पर्जन्य मेघ के उत्पत्तिकर्त्ता हैं, वैसे ही इन्द्र स्तोताओं के देने के लिए अश्व और गौएँ उत्पन्न करने वाले हैं। हे इन्द्र ! तुम स्तोताओं के रक्षक हो। धनवान् व्यक्ति तुम्हारे हव्यादि प्रदान कर्मों में न लग कर कहीं मिथ्याचरण न करने लगें ॥ १२ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम इन्हीं महान् कर्मा इन्द्र के लिए सोम सिद्ध करो, क्योंकि यह सोम के अधिपति हैं। यह इन्द्र स्तोताओं के प्राचीन तथा अभिनव स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥ ज्ञानवान इन्द्र ने सोम-पान द्वारा हर्षित होकर विपरीत आचरण करने वाले अनेक शत्रुओं का वध किया है ॥ १४ ॥ इन्द्र इस निष्पीडित सोम को पीकर हर्षित हों और वज्र द्वारा वृत्र को मारें। वे इन्द्र स्तुतियों के रक्षक, यजमान के पालक और गृह-प्रदाता हैं। वे हमारे यज्ञ में दूर देश से भी आगमन करें ॥ १५ ॥ [१८]

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद् द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥ १६
एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ १७
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ १८
आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९
आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥ २०।१९

इन्द्र के पान-योग्य और प्रिय सोम को इन्द्र इस प्रकार पीवें कि हर्षित होकर हमारे अनुकूल हों और हमसे पाप को और शत्रु को दूर भगावें ॥१६॥ हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी हो। सोम-पान द्वारा हर्षित होकर हमसे विरोध करने वाले दुष्टों को नष्ट कर डालो। तुम हमारे सामने आए हुए शत्रुओं को पीछे-

लौटाओ ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! इस सम्पूर्ण युद्ध मे हमें अपरिमित धन प्राप्त कराओ। तुम हमें विजय प्राप्ति मे समर्थ करो। पुत्र-पौत्रादि तथा जल-वृष्टि द्वारा समृद्ध करो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व कामनाओं के पूर्ण करने वाले, रथ के वहन करने वाले, वृष्टिकारक, वेगवान्, नित्य युवा और वज्र के वहन करने वाले हैं। वे तुम्हें सोम पानार्थ हमारे यज्ञ में ले आवें ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम्हारे अश्व समुद्र की तरङ्गों के समान उल्लम्बित होते हुए रथ में योजित हैं। ऋत्विग्गण तुम्हारे लिए अभिषुत सोम-रस अर्पित करते हैं ॥ २० ॥ [१६]

वृषासि दिवो वृषभ: पृथिव्या वृषा सिन्धूना वृषभ: स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥ २१
अयं देव. सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य माया. ॥ २२
अयमकृणोदुषस. सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ २३
अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्त: सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ । २०

हे इन्द्र ! तुम नदियों को जल से पूर्ण करने वाले और प्राणियों के अभीष्टों के सिद्ध करने वाले हो। यह मधु के समान मधुर सोमरस तुम्हारे लिए प्रस्तुत है ॥ २१ ॥ इन्द्र के साथ जल लेकर इस तेजस्वी सोम ने पणि का बल पूर्वक स्तोत्र किया था। इसी सोम ने उन गौओं के हरणकर्त्ता असुरों के आयुधों और माया को नष्ट कर दिया था ॥ २२ ॥ सोम ने ही सूर्य को तेजस्वी बनाया। इसी ने सूर्य मण्डल को ज्योतिमान् किया। इसी ने तीनों लोकों मे स्थित स्वर्ग से तीन प्रकार के अमृतों को पाया ॥ २३ ॥ सोम ने ही आकाश पृथिवी को अपने स्थान पर टिकाया और सप्तरश्मि वाले रथ को जोता, इसी ने गौओं में अनेक धारों वाले दुग्ध प्रस्रवण कर्म को स्थापित किया ॥ २४ ॥ २०)

४५ सूक्त

(ऋषि—शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १
अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३
सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४
त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ॥ ५ । २१

जो तुर्वश और यदु को दूर देश से लाए थे, वे इन्द्र हमारे मित्र हों ॥ १ ॥ जो इन्द्र का स्तोता नहीं है, वह भी इन्द्र से अन्न पाता है । वे अश्वारूढ़ होकर शत्रुओं की सम्पत्ति को जीत लेते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र की स्तुतियाँ विविध प्रकार की हैं । उनका रक्षा का वचन कभी असत्य नहीं होता ॥ ३ ॥ हे मित्रो ! उन इन्द्र की स्तुति करो, उन्हीं का पूजन करो । वही हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करने वाले हैं ॥ ४ ॥ हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम स्तोताओं की रक्षा करते हो । तुम ही हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥　　　　[२१]

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ६
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ॥ ७
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनाषहः ॥ ८
वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥ ९
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १०।२२

हे इन्द्र ! वैरियों को दूर कर, स्तोताओं को समृद्ध करो । तुम सुन्दर अपत्य प्रदाता हो । इसीलिए तुम्हारी स्तुति की जाती है ॥६ ॥ धेनु के समान अपने अभीष्टों को दुहने के निमित्त मैं इन्द्र का आह्वान करता हूँ ॥७॥ शत्रुओं के हराने वाले इन्द्र के हाथों में दिव्य और पार्थिव सम्पति है—यह ऋषिगण कहा करते हैं ॥ ८ ॥ हे वज्रिन् ! तुम शत्रु-नगरों के ध्वंसक हो और उनकी माया

के भी नाशक हो ॥ ९ ॥ हे सोमपायी ! हे इन्द्र ! हम अन्न की कामना करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १० ॥ [२२]

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हि ते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ॥११

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥ १४

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना ।

जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५।२३

हे इन्द्र ! तुम जैसे प्राचीन काल में आह्वान-योग्य थे, वैसे ही अब भी शत्रुओं के धन की प्राप्ति के लिये आहूत किए जाते हो। तुम हमारे आह्वान को सुनो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारी स्तुति से प्रसन्न होओ। हम तुम्हारे अनुकूल होने पर शत्रु-धन के जीतने वाले हों ॥ १२॥ हे इन्द्र ! तुमने शत्रुओं के धन की प्राप्ति के लिए, शत्रुओं पर विजय पाई है ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त वेग वाले हो। तुम शत्रु को जीतने के लिए उसी वेग से रथ को चलाओ ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने शत्रु-जेता रथ के द्वारा शत्रुओं की सम्पत्ति पर विजय प्राप्त करो ॥१५॥ [२३]

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा । स त्वं न इंद्र मृळय ॥ १७

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते ।

गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० । २४

जो इन्द्र मनुष्यों के स्वामी होकर प्रकट हुए हैं और जो सब के देखने वाले हैं, उन इन्द्र का स्तव करो ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुखदाता और रक्षक मित्र हो। तुमने हमारी स्तुति पर मित्रता की थी। अब भी हमें सुख देने वाले होओ ॥१७॥ हे वज्रिन् ! तुम असुरों के वध के निमित्त वज्र धारण करते

हो और प्रतिस्पर्द्धियों को हराते हो ॥ १८ ॥ जो इन्द्र धनदाता, मित्र, आह्वान योग्य और स्तोताओं को उत्साह देने वाले हैं, मैं उन इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥ १६ ॥ जो इन्द्र स्तुति द्वारा वन्दना करने योग्य हैं, वे सब पार्थिव धनों के अधीश्वर हैं ॥ २० ॥   [२४]

स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः ।

गोमद्भिर्गोपते घृषत् ॥ २१

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥ २२

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद् गिरः ॥२३

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।

इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ । २५

हे गौओं के स्वामी ! तुम हमारी कामनाओं को असंख्य गौ, अश्व आदि से पूर्ण करो ।। २१ ॥ हे स्तोताओ ! गौ के लिए तृण जैसे सुख देता है, वैसे ही सोम के संस्कृत होने पर इन्द्र की स्तुति भी सुख देने वाली होती है । तुम शत्रुजेता इन्द्र का यश गाओ ॥ २२ ॥ इन्द्र जब स्तुतियों को सुनते हैं, तब गौओं सहित अन्न देने में नहीं रुकते ॥ २३ ॥ कुवित्स के असंख्य गौओं वाले गोष्ठ में जब इन्द्र पहुँचे तब उन्होंने अपनी बुद्धि से ही गौओं को प्रकट कर दिया ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! गौएं जैसे अपने बछड़ों की ओर बारम्बार जाती हैं, वैसे ही यह स्तुतियाँ भी बारम्बार तुम्हारी ओर गमन करती हैं ॥ २५ ॥   [२५]

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥ २६

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ २७

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।

अस्मान्राये महे हिनु ॥ ३०

अधि बृबु पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१
'यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः' नो सहस्रिणी ।
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ । ३६

हे इन्द्र ! तुम्हारा बंधुत्व नष्ट नहीं होता । तुम गौ, अश्व की कामना वालों को इच्छित देते हो ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम रस द्वारा अपने को तृप्त करो । अपने उपासक को निन्दाकारी दुष्ट के आधीन मत करना ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! पयस्विनी गौएं जैसे बछड़ों के पास जाती हैं, वैसे ही सोमाभिषव होने पर हमारे स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करते हैं ॥ २८ ॥ स्तोताओं के असंख्य स्तोत्र, तुम्हें असंख्य शत्रुओं का नाश करने वाला बल प्रदान करें ॥ २९ ॥ हे इन्द्र ! हमारे स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करें । तुम हमारी ओर अपने महान् धन को प्रेरित करो ॥३०॥ बृबु ने गङ्गा के उच्च कगारों के समान, प्राणियों के मध्य उच्च स्थान पर अधिष्ठान किया ॥ ३१ ॥ मैं धन चाहता हूँ । बृबु ने मुझे एक सहस्र गौएं तुरन्त प्रदान की थीं ॥ ३२ ॥ सहस्र गौओं का दान करने वाले बृबु की स्तुति करते हुए हम सदा उनकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ ३३ ॥ [२६]

४६ सूक्त

(ऋषि-शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः प्रगाथं वा । छन्द-अनुष्टुप्, बृहती, गायत्री, पंक्तिः)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३

बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ।२७

हम स्तोता तुम्हें अन्न के निमित्त आहूत करते हैं। तुम साधु-जन की रक्षा करने वाले हो। शत्रु को जीतने के लिए तुम्हारा ही आह्वान किया जाता है ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! युद्ध में जीतने वाले को जैसे तुम प्रचुर धन प्राप्त कराते हो, वैसे ही हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमें गौ और रथ वाहक अश्व दो, क्योंकि तुम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हो ॥ २ ॥ शत्रु हन्ता इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। हे इन्द्र ! संग्राम भूमि मेंह में समृद्ध करो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम ऋचा में कहे अनुसार रूप वाले हो। तुम घोर संग्राम में शत्रुओं पर वृषभ के समान आक्रमण करो और हमारे रक्षक होओ। हम सन्तान सहित बहुत समय तक सूर्य दर्शन करते रहें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग और पृथिवी के पोषक हो। तुम हमारे पास अत्यन्त बल बढ़ाने वाला श्रेष्ठ धन लाओ ॥५॥ [२७]

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि । ६
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७
यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥ ८
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ १० । २८

हे इन्द्र ! शत्रु से रक्षा के लिए तुम्हें आहूत करते हैं। तुम सब से बली और शत्रुजेता हो। सब राक्षसों को हमसे दूर कर विजय प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! जो बल और धन तथा अन्न मनुष्यों में विद्यमान है, वह हमें प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध में हम शत्रुओं पर विजय पावें । तुम वसु, द्राह्य और पुरु का समस्त बल हमें दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हविदाता यजमानों को और मुझे शीत, ताप, वर्षा से सुरक्षित रखने वाला घर दो और शत्रुओं के सब हिंसक आयुधों को मुझ से दूर रखो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जिन्होंने गौएं छीनने के लिए हम पर शत्रु के समान आक्रमण किया, उनसे रक्षा करने को आओ ॥ १० ॥ [२८]

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥ १३
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ । २९

। हे इन्द्र ! धन दो । शत्रु के आक्रमण करने पर उनके बाणों को हमारे जो वीर रोकते हैं, तुम उनकी रण-क्षेत्र में रक्षा करना ॥ ११ ॥ शत्रु के आक्रमण के कारण जब लोग अपने पैतृक स्थानों को छोड़ कर भागते हैं, उस समय तुम हमें और हमारी संतान को रक्षार्थ कवच प्रदान करना और शत्रुओं को भगाना ॥ १२॥ जब महायुद्ध हो तब तुम हमारे अश्वादि को श्येन के समान रणक्षेत्र में ले जाना ॥ १३ ॥ अश्व भय से हिनहिनाते हैं, फिर भी वे नदियों के समान संग्राम भूमि में गौओं की प्राप्ति के लिए बारम्बार दौड़ते हैं ॥ १४ ॥ [२९]

४७ सूक्त

(ऋषि-गर्गः । देवता—सोमः, इन्द्रः, रथः, दानस्तुति,दुन्दुभिः ।
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, बृहती, गायत्री)

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।

उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्वरस्य वि नवतिं नव च देह्यो हन् ॥ २
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥ ४
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५।३०

यह सोम सुमधुर और रसयुक्त है। इन्द्र इसे पीते हैं। उनके सामने रणक्षेत्र में कोई नहीं टिकता ॥ १ ॥ इस यज्ञ में पीने के पश्चात् सोम ने शक्ति प्रदान की और वृत्र-नाश के लिये बल दिया। शम्वर के निन्यानवे नगरों को भी नष्ट किया ॥ २ ॥ यह सोमरस मेरे वाक्य को स्फूर्तिमय बनाता है। यह इच्छित बुद्धि देता है। इसी सोम ने स्वर्ग, पृथिवी, दिवस, रात्रि, जल और औषधि की रचना की है ॥ ३ ॥ इसी सोम ने पृथिवी को विस्तृत और स्वर्ग को दृढ़ किया है। इसी ने औषधि, जल और गौ में रस उत्पन्न किया। इसी ने अन्तरिक्ष को धारण किया है ॥४ ॥ उषा के पूर्व यही सोम सूर्य की ज्योति को प्रकट करता और मरुद्गण के साथ स्वर्ग लोक को धारण करता है ॥ ५ ॥ [३०]

धृषत्पिव कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८
वरिष्ठे न इंद्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।

इपमा वक्षीपा वर्षिष्ठा मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ६
इन्द्र मृळ मह्य जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ १०।३१

हे इन्द्र ! धन के लिए आरम्भ किए युद्ध में तुम शत्रुओं को मारो। इस कलश में रखे सोम-रस का पान करो। हे धन के पात्ररूप इन्द्र ! हमें धन प्रदान करो ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम मार्ग-रक्षक के समान आगे बढ़ कर हमको देखना और धन लेकर आना। तुम शत्रु से हमारी रक्षा करो और हमें इच्छित धन में प्रतिष्ठित करो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम ज्ञानी हो। हमें विस्तीर्ण लोक में बाधाओं से निकाल कर लेजाओ। हम तुम्हारी भुजाओं पर रक्षा के निमित्त आश्रित हुए हैं ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम अपने विस्तृत रथ पर हमें चढ़ाओ तुम हमारे लिए श्रेष्ठ अश्व प्राप्त कराओ। अन्य कोई धनी धन में हमसे न बढ़ सके ॥९॥ हे इन्द्र ! मेरा मङ्गल करो। मेरी आयु वृद्धि के लिए प्रसन्न होओ। मेरी बुद्धि को तीव्र करो। मेरी प्रार्थना को ग्रहण करो। सब देवता मेरे रक्षक हों ॥ १० ॥ [३१]

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३
अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरु न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४
क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ । ३२

इन्द्र शत्रुओं से रक्षा करने वाले और अभीष्ट पूर्ण करने वाले हैं। सब कर्मों में समर्थ उन्हीं इन्द्र का यज्ञों में आह्वान करता हूँ। वे इन्द्र मेरी

वृद्धि करें ॥११॥ ऐश्वर्यवान् इन्द्र अपने रक्षा-साधनों से हमारा कल्याण करते हैं, वही हमारे शत्रुओं को मार कर हमारा भय दूर करते हैं। उनके प्रसन्न होने पर हम अत्यन्त बलवान बनें ॥१२॥ उन इन्द्र के हम कृपा-पात्र हों। हमारे रक्षक इन्द्र हमारे वैरियों को दूर ले जाँय ॥ १३॥ हे इन्द्र ! नीचे की ओर जाने वाले जल के समान तुम्हारी ओर स्तुतियाँ और सोम गमन करते हैं। तुम जल, दूध और सोम-रस को भले प्रकार मिश्रित करते हो ॥ १४ ॥ कौन मनुष्य इन्द्र की स्तुति करने में समर्थ हैं ? इन्द्र अपनी शक्ति को स्वयं जानते हैं। जैसे मार्ग गामी पुरुष के गमनकाल में पैर आगे पीछे होते हैं, वैसे ही इन्द्र अपने बुद्धि-बल से स्तोता को आगे-पीछे रहने वाला करते हैं ॥ १५ ॥ [४२]

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७
रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९
अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २०।३३

इन्द्र शत्रु का दमन करते और स्तोता के स्थान को परिवर्तित करते हैं। वे अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। वे ऐश्वर्यवान् इन्द्र रक्षा के निमित्त अपने उपासकों को बारम्बार आश्वस्त करते हैं ॥ १६॥ इन्द्र, अपनी उपासना न करने वालों को त्याग कर अपने उपासकों के पास रहते हैं ॥१७॥ इन्द्र के तीन रूप पृथक्-पृथक् प्रकट होते हैं। वे अनेक रूप धारण कर यजमानों के पास जाते हैं। इन इन्द्र के रथ में सहस्र अश्व योजित होते हैं ॥१८॥ अपने

रथ में अश्वों को योजित कर इन्द्र तीनों लोकों में प्रकट होते हैं। प्रतिदिन कौन-सा स्तोता अन्य स्तोताओं के मध्य आकर उनकी रक्षा करता है ? ॥१९॥ हे देवताओ ! हम गौओं से हीन देश में आ पहुँचे हैं। विस्तीर्ण पृथिवी दस्युओं को भी आश्रय प्रदान करती है। हे बृहस्पते ! तुम हमें गौओं की खोज में प्रेरित करो। हे इन्द्र ! अपने मार्ग से हटे हुए उपासक को श्रेष्ठ मार्ग पर लाओ ॥ २० ॥ [३१]

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥ २१
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इंद्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध. शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२
दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३
दश रथान्प्रष्टिमत. शतं गा अथर्वभ्य. । अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४
महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो
अभ्ययष्ट ॥ २५ । ३४

सूर्यात्मक इन्द्र दिन में प्रकाश कर, अन्धकार को नष्ट करते हैं। इन्द्र ने शम्बर और वर्ची नामक दस्युओं को मारा था ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं को प्रस्तोक ने दश स्वर्ण कोश और दश अश्व दिए थे। अतिथिग्व ने शम्बर के जिस धन को जीता था, वही धन हमने दिवोदास से प्राप्त किया है ॥२२॥ दिवोदास से मैंने दश स्वर्ण-कोश, दश अश्व, वस्त्र और अभीष्ट अन्न सहित सोने के दस पिण्ड प्राप्त किए हैं ॥२३॥ पायु के लिए मेरे भ्राता अश्वथ ने अश्वों सहित दश रथ तथा अथर्वाओं को एक सौ गौएं दीं ॥२४॥ सब के हित के लिए भरद्वाज के पुत्र ने सब धन ग्रहण किये और सृञ्जय के पुत्र ने उनका पूजन किया ॥२५॥ [३२]

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ २६

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २७
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ २८
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निःष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥ ३०
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३१ । ३५

हे रथ ! तुम्हारे अवयव दृढ़ हों । तुम हमारी रक्षा करने वाले मित्र होओ । तुम पर चढ़ने वाला वीर रणक्षेत्रों में विजय पाने वाला हो ॥ २६ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम रथ के लिए हव्य दो । यह रथ दिव्य और पार्थिव सारों से निर्मित हुआ है । यह जल के समान वेग वाला और वज्र के समान दृढ़ है ॥२१॥ हे दिव्य रथ ! हमारे यज्ञ में प्रसन्नता पूर्वक हवि ग्रहण करो । तुम मरुद्गण के आगे चलने वाले, मित्र के गर्भ रूप, वरुण के नाभि रूप और इन्द्र के वज्र के समान हो ॥ २८ ॥ हे दुन्दुभे ! तुम अपने शब्द से आकाश पृथिवी को गुंजित करो । तुम इन्द्र और अन्य सब देवताओं की अनुगामिनी होकर हमारे शत्रुओं को दूर कर दो ॥२६॥ हे दुन्दुभे ! हमें बल प्रदान करो । हमारे शत्रुओं को रुलाओ तुम्हारे घोर शब्द से शत्रु काँप उठें । हमारा अनिष्ट कर हर्षित होने वालों को भगा दो । तुम इन्द्र की मुष्टिका के समान होकर हमें दृढ़ बनाओ ॥ ३० ॥ हे इन्द्र ! सब गौओं को हमें प्राप्त कराओ । यह दुन्दुभि घोषणा रूप उच्च स्वर करती है । हमारे वीर अश्वों पर सवार हैं । हे इन्द्र ! हमारे रथी और सैनिक युद्ध को जीतें ॥३१॥ (३५)

४८ सूक्त

(ऋषि—शंयुर्बार्हस्पत्य । देवता—अग्निः मरुतः मरुतां लिङ्गोक्ता वा पूषा, पृश्निर्द्यावाभूमी । छन्द-बृहती, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२
वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभि. सु दीदिहि ॥३
महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सी कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५ ।१

हे स्तोताओ ! अग्नि की बारम्बार स्तुति करो । वे सर्वद्रष्टा, मित्र के समान अनुकूल और अविनाशी हैं ॥ १ ॥ हम हव्य वाहक अग्नि को हवि देते हैं । वे रणक्षेत्र में हमारी रक्षा करें, हमारे पुत्रों की रक्षा करें और हमारी समृद्धि करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अभीष्ट दायक, महान् एवं तेजस्वी हो । तुम अपने प्रकाश से हमें भी प्रकाशित करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले हो । अतः हमारे यज्ञ में भी देवताओं को हवि दो । अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा हमारे रक्षक देवताओं को यहाँ लाओ तुम हमें अन्न दो और हमारे हव्य का भक्षण करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ के गर्भ रूप हो । तुम्हें सोम में मिश्रित करने वाले जल, अभिषवण प्रस्तर और अरणि पुष्ट करते हैं । ऋत्विजों द्वारा तुम्हारा मन्थन होता है तब तुम पृथिवी के अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान यज्ञ में उत्पन्न होते हो ॥ ५ ॥ [१]

'म्र. ग्द. प्प्रे. भातुरा. ग्रेदसी. उर्वे. प्रूर्त. ष्पत्से. र्दिह '.

तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठय रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥७
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१० ।२

जो अग्नि अपने तेज से स्वर्ग और पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं, जो धुँए के साथ अन्तरिक्ष में उठते हैं, वे अग्नि रात्रि के अन्धकार को दूर करते हैं। वही तेजस्वी अग्नि कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम हमारे भ्राता भरद्वाज द्वारा प्रदीप्त होकर हमें धन दो ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम गृह स्वामी हो, मैं तुम्हें सौ हेमन्त ऋतुओं तक प्रदीप्त करूँगा। तुम पाप से मेरी रक्षा करो और अपने स्तोता को अन्न देने वाले यजमान की भी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! तुम हमारे प्रति धन प्रेरित करो और हमारे पुत्रादि को यशस्वी बनाओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने! हमारे पुत्र-पौत्रादि का पालन करो। हमारे प्रति देवताओं का जो क्रोध हो अथवा मनुष्यों का रोष हो उसे दूर करो ॥ १० ॥ [२]

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११
यः शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ।१३
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४

त्वेष शर्धो न मारुत तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं स यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो
वसू करत् ॥१५
आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातय ॥१६।३

हे बन्धुओ ! अपने स्तोत्रों के सहित पयस्विनी गौ के पास आगमन करो। फिर उस इस प्रकार दुहाओ जिससे उसकी उमकी हानि न हो ॥ ११ ॥ जो धेनु मरुद्गण की रक्षा के लिए दुग्ध रूप अन्न देती है, जो स्वाधीन तेज वाली और वृष्टि के जलों के साथ सुख की वर्षा करती हुई अंतरिक्ष में विचरण करती है, उसी गौ के पास जाओ ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! भरद्वाज को पयस्विनी गौ और यथेष्ट अन्न के साथ मङ्गल प्रदान करो ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! इन्द्र के कर्मों का तुम अनुष्ठान करते हो, वरुण के समान स्तुत्य हो। विष्णु के समान धनदाता होने से मैं तुम्हारी धन के लिए स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥ मरुद्गण हमें असंख्य धन प्राप्त करावें ॥ १५ ॥ हे पूषन् ! मेरे पास आगमन करो। शत्रुओं को व्यथित करो। मैं भी तुम्हारा यश-गान करता हूँ ॥ १६ ॥ [३]

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दध्नवतः ॥१८
परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२०
सद्यश्चिद्यस्य चर्कृति परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१
सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।

पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२ ।४

हे पूषन् ! वनस्पति का नाश मत करना । मेरे निन्दकों को मारो । मेरे शत्रु मुझे व्याध के समान न बाँध सकें ॥ १७ ॥ हे पूषन् ! तुम्हारी मित्रता सदा बनी रहे ॥ १८ ॥ हे पूषन् ! तुम धन-दान में सब देवताओं के समान हो । युद्ध में हम पर अनुग्रह-दृष्टि रखना । पहले जैसे तुमने हमारी रक्षा की थी, वैसे ही अब भी रक्षा करो ॥ १९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी जो वाणी यजमानों को इच्छित धन प्रदान करती है, वही वाणी हमारा पथ-प्रदर्शन करे ॥ २० ॥ सूर्य के समान ही मरुद्गण के सब कार्य अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं। वे मरुद्गण पूजनीय और शत्रु हननकारी बल धारण करते हैं ॥ २१ ॥ स्वर्ग और पृथिवी एक बार ही उत्पन्न हुए। मरुद्गण की माता गौ से एक बार ही दूध दुहा गया। उस समय अन्य कुछ उत्पन्न नहीं हुआ ॥ २२ ॥ [४]

४९ सूक्त

(ऋषि—ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्, जगती)

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१
विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५ ।५

मैं अभिनव स्तोत्र द्वारा मित्रावरुण की स्तुति करता हूँ। वे इस यज्ञ में हमारे आह्वान को सुनें ॥ १ ॥ अग्नि प्रत्येक यज्ञ में पूजनीय हैं, वे निरहंकार, स्वर्ग पृथिवी के स्वामी, यज्ञ के ध्वजा रूप हैं, उन अग्नि का यजन करने को यजमान को प्रेरणा करता हूँ ॥ २ ॥ सूर्य की दो कन्याएं दिन और रात्रि हैं। इनमें से एक सूर्य के द्वारा प्रकाशित और दूसरी नक्षत्रों द्वारा दमकती है, यह दोनों हमारी स्तुति को सुनें ॥ ३ ॥ हमारी स्तुतियाँ वायु देवता के समक्ष गमन करें। हे अश्वों के स्वामी मरुतो! तुम स्तोता को धन द्वारा बढ़ाओ ॥ ४ ॥ मन के द्वारा योजित अश्विद्वय का रथ मेरे देह की रक्षा करे। हे अश्विद्वय! तुम उस पर चढ़ कर स्तोता का अभीष्ट पूर्ण करने को आओ ॥ ५ ॥ (५)

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८
प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१० ।६

हे पर्जन्य और वायो! तुम अन्तरिक्ष से जल प्रेरित करो। हे मरुद्गण! जिस पर तुम प्रसन्न होते हो उसके सभी मनुष्य समृद्ध होते हैं ॥ ६ ॥ विचित्र गमन वाली देवी सरस्वती हमारे यज्ञानुष्ठान का निर्वाह करें। वे प्रसन्न होकर देवांगनाओं सहित स्तोता को श्रेष्ठ घर और कल्याण दें ॥७॥ हे स्तोता! पूषा देव के समक्ष जाओ। वे हमें सुवर्ण शृंग वाली गौएं दें और सब कार्यों को सम्पन्न करें ॥ ८ ॥ जो त्वष्टा प्रसिद्ध अन्नदाता, सुन्दर हाथ वाले, महान्

और आह्वानीय हैं, अग्निदेव उन्हीं त्वष्टा का यज्ञ करें ॥९॥ हे स्तोता! अपने श्रेष्ठ स्तोत्रों से रुद्र को प्रसन्न करो। उन्हें दिन में और रात में भी प्रवृद्ध करो ॥१०॥   (६)

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतोवरस्याम्।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम्।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च ॥१३

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात्।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४

नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम्।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश
आदेवीरभ्य श्नवाम ॥१५ ।७

हे मरुद्गण! जहाँ यजमान यज्ञ करता है, वहाँ आगमन करो। तुम वृष्टि जल से वनों की वृद्धि करो ॥११॥ गौओं के झुन्ड को जैसे ग्वालिया शीघ्र चलाता है वैसे ही मरुद्गण की ओर अपने स्तोत्र को भेजो। जैसे अन्तरिक्ष नक्षत्रों द्वारा शोभित हैं, वैसे ही मरुद्गण स्तोता की स्तुति से अपने देह को सुशोभित करते हैं ॥ १२ ॥ जिन विष्णु ने त्रिपाद पराक्रम से लोकों को नाप लिया था, वह तुम्हारे द्वारा दिए घर में आकर निवास करें और हम धन आदि से युक्त हों ॥ १३ ॥ हमारे स्तोत्रों से स्तुत अहिर्बुध्न, पर्वत और सविता हमें जल और अन्न प्रदान करें। विश्वेदेवा और भग देवता भी हमें अन्न धन दें ॥ १४ ॥ हे विश्वेदेवो! तुम हमें रथ, अनुचर, पुत्रादि तथा घर और अन्न दो, जिससे हम शत्रुओं को हरावें और देवोपासकों को आश्रय दें ॥ १५ ॥   (७)

५० सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ऋत्रिभा । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्सवितारं भगं च ॥१
सुज्योतिष सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसाप सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२
उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३
आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४
मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५ ।८

हे देवताओ ! अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, सविता, भग तथा अन्य सब देवताओं का हम आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ हे सूर्य ! तेजस्वी देवताओं को हमारे अनुकूल बनाओ । स्वर्ग और पृथिवी पर उत्पन्न देवता यज्ञ से प्रीति करने वाले, धनी और अग्नि रूप जिह्वा वाले हैं ॥ २ ॥ हे द्यावा पृथिवी ! हमें बल और घर दो । हम ऐश्वर्यवान् हों । हमारे घर से पाप को दूर कर दो ॥ ३ ॥ रुद्र पुत्र मरुद्गण ! हमारे आह्वान पर आवें । वे विपत्ति में हमारे सहायक हों ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! आकाश-पृथिवी तुमसे संश्लिष्ट हैं, स्तोताओं को समृद्धि देने वाले पूषा तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम जब हमारे आह्वान पर आते हो, तब समस्त प्राणी कम्पित होते हैं ॥५॥ [८]

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६
ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८
उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥९
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१० ।९

हे स्तोता ! इन्द्र की स्तुति करो । वे इन्द्र हमारे आह्वान को सुन कर हमें अन्न दें ॥ ६ ॥ हे जलो ! तुम मनुष्यों का मङ्गल करने वाले हो । तुम हमारे पुत्र-पौत्रों की रक्षा करने वाला अन्न दो । तुम श्रेष्ठ उपचारक और देहधारियों के उत्पन्न करने वाले हो ॥ ७ ॥ जो सविता यजमान को काम्य धन देते हैं, वे हिरण्यपाणि हमारे यहाँ पधारें ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! देवताओं को हमारे यज्ञ में लाओ । मैं तुम्हारी अनुकूलता को सदा जानूँ और तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर श्रेष्ठ पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न होऊँ ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम मेरे स्तोत्र के पास आओ । तुमने जैसे अत्रि को अन्धकार से मुक्त किया वैसे ही हमें दुख से मुक्त करो ॥ १० ॥ [९]

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११
ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२
उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४
एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५ ।१०

हे देवगण ! हमें पुत्रादि से युक्त धन दो । आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण हमारी कामना पूर्ण कर सुखी करें ॥ ११ ॥ रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, श्येन और विधाता हमारा मङ्गल करें पर्जन्य और वायु हमारे अन्न की वृद्धि करें ॥ १२ ॥ दानशील अग्नि हमारे रक्षक हों । समान रूप से प्रसन्न हुए त्वष्टादेव, स्वर्गलोक और समुद्रों सहित पृथिवी हमारी रक्षा करें ॥ १३ ॥ अज एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पृथिवी और समुद्र हमारी स्तुति सुनें । यज्ञ कर्म को सम्पन्न करने वाले और स्तुत्य विश्वेदेवा हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥ भरद्वाज वंशज ऋषि देवताओं की स्तुति करते हैं । हे देवताओ ! तुम अजेय, गृहदाता हो । तुम देव-पत्नियों सहित पूजे जाते हो ॥१५॥ [१०]

५१ सूक्त

(ऋषि—ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२
स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३
रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४
द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५ ।११

सूर्य की प्रसिद्ध और मित्रावरुण की प्रिय ज्योति अन्तरिक्ष में अलंकार के समान सुशोभित है ॥ १ ॥ जो सूर्य तीनों लोकों के ज्ञाता, ज्ञानी और देवताओं के आश्रय के जानने वाले हैं, वे सूर्य मनुष्यों के सत्यासत्य के देखने वाले और उपासकों के अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं ॥ २ ॥ अदिति,

मित्र, वरुण, अर्यमा और भग की मैं स्तुति करता हूँ। उनके कार्य संसार को पवित्र करने वाले हैं ॥ ३ ॥ हे अदिति पुत्रो! तुम सज्जनों के पालक और दुर्जनों का त्याग करने वाले हो। तुम वर देने वाले और ऐश्वर्यवान् हो। मैं अदिति की भी शरण में जाता हूँ ॥ ४ ॥ हे वसुगण! स्वर्ग, पृथिवी और अग्नि के सहित तुम हमारा मङ्गल करो। हे अदिति और आदित्यो! तुम हमारा कल्याण करो ॥ ५ ॥ [११]

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८
ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नृन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९
ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥१२

हे देवगण! तुम हमें वृक वृकी को मत सौंपना। तुम हमारे देह, बल और वाणी के प्रेरक हो ॥ ६ ॥ हे देवताओ! हम किसी के पाप से दुःख न भोगें। हे वसुगण! तुम्हारी असहमति वाले अनुष्ठान को हम न करें। हे विश्वेदेवो! शत्रु की देह नष्ट हो जाय ॥ ७ ॥ स्वर्ग और पृथिवी को नमस्कार ने धारण कर रखा है। देवगण भी नमस्कार के वश में हैं। अतः मैं अपने पापों का प्रायश्चित करने के अभिप्रायः से नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥ हे देवगण! मैं नमस्कारपूर्वक झुक रहा हूँ। तुम यज्ञ के नेता, बली, यज्ञगृह में वास करने वाले और महिमा से सम्पन्न हो ॥ ९ ॥ वे तेजस्वी हैं, वे हमारे पापों को दूर करें। वरुण, मित्र और अग्नि सत्य कर्म वालों के पक्ष में रहते हैं ॥ १० ॥ [१२]

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११
नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३
ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६ ।१३

इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन हमारे गृह की वृद्धि करें। वे अन्नदाता, सुख दाता और आश्रयदाता होकर रक्षा करें ॥ ११ ॥ यह भरद्वाज शीघ्र ही सुन्दर घर पावें। हवि देने वाले ऋषि यजमानों सहित धन की कामना से देवताओं की स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! तुम कुटिल शत्रुओं को भगाओ और हमारा मङ्गल करो ॥ १३ ॥ हे सोम ! तुम पणि को मारो। यह अभिषव करने करने वाले तुम्हारी मित्रता की कामना करते हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्रादि देवताओ ! तुम दाता और तेजस्वी हो। तुम मार्ग में हमारी रक्षा करो ॥ १५ ॥ जिस सरल मार्ग पर चलने के शत्रु की पराजय और हमको धन-लाभ होगा, उसी पर हम आ गये हैं ॥ १६ ॥ [१३]

५२ सूक्त

(ऋषि—ऋजिश्वा। देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, गायत्री, जगती)

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म या यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३
अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४
विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५ १४

मैं इसे देवताओं के योग्य नहीं समझता । यह मेरे द्वारा किये जाते यज्ञ की या अन्य यज्ञों की भी तुलना न कर सकेगा । अतः सभी महान् पर्वत उस अतियाज को दुःख दें और उसके ऋत्विज् भी दीन हो जाँय ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! जो व्यक्ति हमारे स्तोत्र की निन्दा करे उसका अनिष्ट हो और स्वर्ग उस ब्राह्मण द्वेषी को जलावे ॥ २ ॥ हे सोम ! तुम मन्त्र रक्षक क्यों कहे जाते हो ? तुम्हें निन्दा से बचाने वाला क्यों कहा जाता है ? हमारे निन्दित होने पर तुम निरपेक्ष क्यों देखते रहते हो ? तुम अपने व्यथित करने वाले आयुध को ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले पर चलाओ ॥ ३ ॥ उषाएं नदियाँ, अचल पर्वत और देव-याग में उपस्थित देवता और पितर सब मेरे रक्षक हों ॥ ४ ॥ हम सदा सूर्योदय को देखें । देवताओं के लिए हव्य वहन करने वाले अग्नि हमें इस योग्य करें ॥ ५ ॥ [१४]

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥७
यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥९
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१०।१५

सरस्वती नदी रक्षार्थ हमारी ओर आवें । औषधियां सहित पर्जन्य हमें

सुख दें। अग्नि स्तुत्य और आह्वानीय हों ॥ ६ ॥ हे विश्वेदेवो ! मेरे आह्वान को श्रवण करते हुए इन कुशाओं पर विराजमान होओ ॥ ७ ॥ हे देवगण ! जो घृत युक्त हव्य द्वारा तुम्हें आहुति देता है, उसके पास आओ ॥ ८ ॥ अविनाशी विश्वेदेवा हमारी स्तुति सुनकर हमारा कल्याण करें ॥ ९ ॥ यज्ञ की वृद्धि करने वाले विश्वेदेवा अपने-अपने भाग के अनुसार दुग्ध ग्रहण करें ॥ १० ॥ [१८]

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ॥११

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२

विश्वे देवा शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७ ॥१९

मरुद्गण के साथ इन्द्र, त्वष्टा के साथ मित्र और अर्यमा हमारी हव्य-युक्त स्तुतियों को स्वीकार करें ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! देवताओं में जो प्रमुख हैं, उनके निमित्त यज्ञ करो ॥ १२ ॥ हे विश्वेदेवो ! तुम पृथिवी, स्वर्ग या अन्तरिक्ष में जहाँ भी हो, वहीं से हमारा आह्वान श्रवण करो। तुम सब कुशों पर बैठ कर सोम पीकर प्रसन्न होओ ॥ १३ ॥ हे विश्वेदेवो ! स्वर्ग, पृथिवी और जल के पौत्र अग्नि हमारी स्तुति सुनें। तुम जिस स्तोत्र से सहमत न हो, उसे हम न कहें। हम तुम्हारे आत्मीय होकर सुख पावें ॥ १४ ॥ दोनों

लोकों में प्रकट होने वाले देवगण हमको और हमारे पुत्रादि को अन्न प्रदान करें ॥ १५ ॥ हे अग्नि और पर्जन्य ! हमारे यज्ञ के रक्षक होओ। हमारी स्तुति सुनो ! तुम में से एक अन्नदाता और दूसरे संतानदाता हो, अतः हमें अन्न और संतान दो ॥ १६ ॥ हे विश्वेदेवो ! अग्नि के दीप्त होने और कुश पर हमारे हव्य और नमस्कारों से तृप्त होओ ॥ १७ ॥ [१६]

५३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—पूषा । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥४
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५ ॥१७

हे पूषन् ! हम तुम्हें कर्म के लिए और अन्न के लिए रथ के समान अपने सामने करते हैं ॥१॥ हे पूषन् ! मनुष्यों का हितैषी, दानी एक गृहस्थ हमारे यहाँ भेजो ॥ २ ॥ हे पूषन् ! लोभ को दानशील बना कर उसके हृदय की कठोरता मिटाओ ॥ ३ ॥ हे पूषन् ! अन्न लाभ के लिए मार्गों को सरल करो। चोर आदि को नष्ट करो, यज्ञों को सम्पन्न करो ॥ ४ ॥ हे पूषन् ! पणियों के हृदयों को चीर कर हमारे वश में कर दो ॥ ५ ॥ (१७)

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥६
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७
यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८
या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये ॥१०॥१८

हे पूषन् ! पणियों के हृदयों को विदीर्ण करो। उनके हृदय में सद्-भाव जाग्रत कर मेरे आधीन कर दो ॥ ६ ॥ हे पूषन् ! दस्युओ के हृदय की

कठोरता कम करते हुए उन्हें हमारे आधीन करो ॥ ७ ॥ हे पूषन् ! अन्न-प्रेरक प्रतोद धारण कर उससे कृपणों के हृदयों की कठोरता न्यून करो ॥ ८ ॥ हे पूषन् ! तुम अपने जिस अस्त्र से पशुओं को हाँकते हो, उसी अस्त्र से हम अपने हित की याचना करते हैं ॥ ९ ॥ हे पूषन ! हमारे यज्ञादि कर्म के लिए गौ, अश्व, मनुष्य और अन्न प्राप्त कराओ ॥ १० ॥ (१८)

५४ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता—पूषा । छन्द—गायत्री)

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥१

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥२

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥३

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥४

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५ ।१९

हे पूषन् ! जो हमें मार्ग दिखावे और हमारे अपहृत धन को प्राप्त करावे ऐसे पुरुष से हमारी भेंट कराओ ॥ १ ॥ खोए हुए पशुओं का गोष्ठ बताने वाले पुरुष से पूषा हमें मिलावें ॥ २ ॥ पूषा का चक्र नष्ट नहीं होता, उसकी धार कभी भी भोंतरी नहीं होती ॥ ३ ॥ जो यजमान पूषा को हवि देता है, पूषा उसका किंचित् भी अनिष्ट नहीं करते, वह पुरुष उनसे धन प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ पूषा हमारी गौओं और अश्वों की रक्षा करें और हमें अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥ (१९)

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥६

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥७

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१० ।२०

हे पूषन् ! यजमान की गौओं और स्तोत्रमयी स्तुतियों का अनुसरण करो ॥ ६ ॥ हे पूषन् ! हमारा गो-धन विनष्ट न हो। वह गर्त में न गिरे।

तुम इन्हें अहिंसित रखते सायंकाल इन्हीं के साथ लौटो ॥ ७ ॥ पूषा हमारी स्तुतियों को सुनकर हमारी दरिद्रता को दूर करते हैं। हम उनसे धन माँगते हैं ॥ ८ ॥ हे पूषन्! यज्ञ के अवसर पर हम हिंसित न हों। हम तुम्हारी स्तुति करते हुए पूर्ववत सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥ पूषा हमारे गो-धन को कुमार्ग पर से बचावें। वे हमारे अपहृत गो-धन को लौटा लावें ॥ १० ॥ [२०]

५५ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—पूषा। छन्द–गायत्री)

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै। रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। रायः सखायमीमहे ॥२
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व। धीवतोधीवतः सखा ॥३
पूषणं न्वजाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥६ ॥२१

हे पूषन्! तुम्हारा स्तोता मेरे पास आवे। हम दोनों मिलकर तुम्हें अपने यज्ञ का नेता बनावें ॥ १ ॥ हम महारथी पूषा से धन की याचना करते हैं ॥ २ ॥ हे छाग वाहन्! तुम धन के प्रवाह रूप हो और स्तोता के मित्र हो ॥ ३ ॥ हम उन्हीं पूषा की स्तुति करते हैं, जिन्हें लोग उषा का स्वामी कहते हैं ॥ ४ ॥ रात्रि माता के स्वामी पूषा की हम स्तुति करते हैं। वे उषा-पति सूर्य इन्द्र के भ्राता और हमारे मित्र हों ॥ ५ ॥ रथ में योजित छाग पूषा के रथ का वहन करते हैं। वे उन्हें यहाँ लावें ॥ ६ ॥ [२१]

५६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—पूषा। छन्द–गायत्री, उष्णिक्)

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्। न तेन देव आदिशे ॥१
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२

उताद: परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥५
आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६ ।२१

घृत युक्त अन्न के सहित पूषा को जो स्तुति करता है, उसे अन्य देवताओं की स्तुति करने की आवश्यकता नहीं होती ॥ १ ॥ महारथी इन्द्र अपने मित्र पूषा की सहायता से वैरियों को मारते हैं ॥ २ ॥ सूर्य के हिरण्यमय रथ के चक्र को पूषा ठीक प्रकार चलाते हैं ॥ ३ ॥ हे पूषन्! हम जिस धन के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं, वह हमें दो ॥ ४ ॥ हे पूषन्! आज और कल के अनुष्ठानों में हम उसी रक्षा की कामना करते हैं, जो पाप से दूर और धन के नितांत समीप है ॥ ६ ॥ [२१]

५७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य: देवता—पूषा । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥१
सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥२
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥४
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५
उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६ ।२२

हे इन्द्र और पूषन्! हम अपनी मङ्गल-कामना करते हुए तुम्हारी मित्रता चाहते और अन्न लाभ के लिए आहूत करते हैं ॥ १ ॥ तुममें से इन्द्र सोम पीने के लिए और पूषा सत्तू युक्त अन्न के लिए जाते हैं ॥२॥ इनमें पूषा के वाहन छाग और इन्द्र के वाहन अश्व हैं। इन्द्र अपने उन्हीं अश्वों पर जाकर

वृत्र का हनन करते हैं ॥ ३ ॥ जब इन्द्र महावृष्टि करते हैं, तो पूषा सहायता देते हैं ॥ ४ ॥ पूषा और इन्द्र की कृपापूर्ण रक्षा पर हम उसी प्रकार आश्रित हैं, जैसे सुदृढ़ वृक्ष की शाखा पर रह सकते हैं ॥ ५ ॥ सारथि जैसे लगाम को खींचता है, वैसे ही हम भी अपने मङ्गल के लिए पूषा और इन्द्र को अपनी ओर आकर्षित करते हैं ॥ ६ ॥ [२३]

५८ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–पूषा । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥३
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४ ।२४

हे पूषन् ! तुम उज्ज्वल वर्ण वाले हो और रात्रि केवल यज्ञ योग्य है । इस प्रकार दिन और रात्रि दोनों ही विपरीत रूप वाले हैं । हे पूषन् ! तुम सूर्य के समान प्रकाशित हो, क्योंकि तुम दाता और ज्ञानी हो । तुम्हारा कल्याण को वहन करने वाला दान प्रकट हो ॥ १ ॥ जिन पूषा का वाहन छाग हैं, जो पशुओं के पालन करने वाले हैं और जो स्तोताओं को प्रीति प्रदान करते हैं तथा सभी लोकों के ऊपर स्थापित हैं, वही पूषा सूर्य-रूप से सब प्राणियों को प्रकाशित करते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥ २ ॥ हे पूषन् ! तुम्हारी सभी नौकाएं अन्तरिक्ष में चलती हैं । उनके द्वारा तुम दूतकार्य करते हुए हवि कामना करते हो । स्तोता तुम्हें हव्य-दान द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥ पृथिवी और स्वर्ग के श्रेष्ठ बन्धु पूषा अन्नों के स्वामी हैं । वे ऐश्वर्यशाली और सुन्दर गमन वाले हैं ॥ ४ ॥ [२४]

५९ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्राग्नी । छन्द–बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१
बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२
ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रान्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥४
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५ ।२५

हे इन्द्राग्ने ! सोमाभिषव होने पर हम तुम्हारे बल का वर्णन करते हैं । देवताओं से द्वेष करने वाले राक्षसों को तुमने मार डाला । तुम अविनाशी हो ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारे सभी कर्म यथार्थ और विस्तृत हैं । तुम्हारे एक ही पिता हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! अश्व जैसे तृणों की ओर जाते हैं, वैसे ही तुम सोमाभिषव की ओर गमन करते हो । हम तुम्हें अपनी रक्षा के लिए इस यज्ञ में आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! जो सोमाभिषव के पश्चात कुत्सित रूप से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम उसका सोम नहीं पीते ॥४ हे इन्द्राग्ने ! जब तुम दोनों एक रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हो, तब कौन तुम्हारे इस कार्य को जान सकेगा ? ॥ ५ ॥ [२५]

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वो

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्त गविष्टषु ॥७
इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८
इन्द्राग्नी युयोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१०।२६

हे इन्द्राग्ने! बिना पाँव की यह उषा प्राणियों के शीर्ष-स्थान को उत्तेजित कर उनकी जिह्वा से उच्च वाणी प्रकट कराती हुई वर्तती है ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्ने! वीर पुरुष अपने धनुष को फैलाते हैं। तुम गौओं की खोज वाले कार्य में हमें मत त्याग देना ॥७॥ हे इन्द्राग्ने! जो शत्रु हमें व्यथित करते हैं, उन्हें दूर करो और उन्हें सूर्य-दर्शन भी मत होने दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने! तुम दिव्य और पार्थिव सब धनों के स्वामी हो। अतः हमें समस्त धन प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्राग्ने! हमारे सोम-पान के लिए आओ। क्योंकि तुम स्तुतियुक्ति आह्वान के सुनने वाले हो ॥ १० ॥ [२६]

सूक्त ६०

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, पंक्तिः, अनुष्टुप्,)

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हा ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥४

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥५ ।२७

अन्न की कामना करते हुए जो पुरुष महान् ऐश्वर्य के स्वामी और शत्रु-हन्ता इन्द्राग्नि की उपासना करते हैं वे अन्न पाते और शत्रुओं को मारते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुमने सूर्य और उषा के लिए युद्ध किया। हे इन्द्र तुमने दिशा, गौ, उषा, सूर्य और जल को जगत के साथ जोड़ा। हे अग्ने ! तुमने भी यही कार्य किये हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! शत्रु का हनन करने वाले बल के सहित आगमन करो। तुम श्रेष्ठ धन सहित प्रकट होओ ॥ ३ ॥ जो इन्द्राग्नि अपने स्तोता को नहीं मारते और जिनके वीर कर्म प्रशंसित हैं, मैं उन्हीं इन्द्राग्नि को आहूत करता हूँ ॥ ४ ॥ हम इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं, वे हमें युद्ध में सफल करें ॥ ५ ॥ [२७]

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥६
इन्द्राग्नी युवामिमेभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥८
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये । ६
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१० ।२८

वे इन्द्राग्नि सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के उपद्रव को नष्ट करते हैं। उन्होंने सब वैरियों को मारा है ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्नि ! यह स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम निष्पन्न सोम का पान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हव्यदाता के लिए उत्पन्न अश्वों पर आरूढ़ होकर आगमन करो ॥ ८ हे इन्द्राग्ने ! तुम सोम-पान के लिए हमारे सवन में आगमन करो ॥ ६ ॥ हे स्तोता ! जो अग्नि अपनी शिखा से जङ्गलों को ढक लेते हैं, तुम उन्हीं अग्नि का स्तव करो ॥ १० ॥ [२८]

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।

उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै रुप गच्छतम् ।

सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।

वीतं हव्यान्या गतं पिवतं सोम्यं मधु ॥१५ ।२६

जो अनुष्ठाता इन्द्र के लिए अग्नि में हवि डालते हैं, इन्द्र उनके लिए जल-वृष्टि करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हमें बलकारी अन्न प्रदान करो द्रुत वेग वाला अश्व भी दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्राग्ने ! मैं तुम दोनों को यज्ञ द्वारा और हव्य द्वारा आहूत करता हूँ। तुम अन्नदाता हो, अन्न-लाभ के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ १३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम गौ, अश्व और अपरिमित सम्पत्ति के सहित हमारे अभिमुख होओ । हम तुम्हें बुलाते हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्राग्ने ! सोम वाले यजमान की स्तुति सुनकर हव्य की इच्छा करते हुए सोम पान करो ॥ १५ ॥ (२६)

६१ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता—सरस्वती । छन्द—जगती, गायत्री, पंक्तिः ।)

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।

या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१

इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२

सरस्वति देवनिदो निवर्हय प्रजां विश्वस्य वृसयस्य मायिनः ।

उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥४

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५ ।३०

सरस्वती ने हविदाता वध्रयश्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया । उन्होंने अदानशील पणि का शोधन किया । हे सरस्वती, तुम्हारे दान विस्तृत हैं ॥ १ ॥ यह सरस्वती पर्वत के तटों को अपनी लहरों से तोड़ती हैं । हम उन्हीं की सेवा करते हैं ॥ २ ॥ हे सरस्वती ! तुमने देव-निन्दकों और त्वष्टा के पुत्र को मारा और मनुष्यों को भूमि देकर जल-वृष्टि की ॥ ३ ॥ अन्नवती सरस्वती, रक्षा करने वाली हैं, वे हमें भले प्रकार तृप्त करें ॥ ४ ॥ इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है, वही पुरुष धन प्राप्ति वाले संग्राम में जाता है । तुम उसकी रक्षक होओ ॥ ५ ॥ [३०]

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१० ।३१

हे सरस्वती ! तुम युद्ध में रक्षा करो । पूषा के समान हमें उपभोग्य धन दो ॥ ६ ॥ शत्रु का नाश करने वाली, रथारूढ़ा सरस्वती हमारे श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करें ॥ ७ ॥ इन सरस्वती का वेगवान् जल शब्द करता हुआ आता है ॥ ८ ॥ सूर्य जैसे दिन को लाते हैं, वैसे ही सरस्वती विजय लेकर अपनी अन्य भगिनियों सहित आती हैं ॥ ९ ॥ सरस्वती की प्राचीन ऋषियों ने सेवा की थी, वह हमारी स्तुति के योग्य हों ॥ १० ॥ [३१]

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।

रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ ३

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४।३२

जिन सरस्वती ने स्वर्ग-पृथिवी को तेज से पूर्ण किया है, वे हमें निन्दकों से बचावें ॥ ११ ॥ सप्त नदियों वाली सरस्वती संग्राम में आह्वान करने योग्य होती हैं ॥ १२ ॥ यशवती, नदियों में श्रेष्ठ, गुणवती सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं ॥ १३ ॥ हे सरस्वती ! हमें महान् धन दो । हमें हीन या पीड़ित मत करो । हमारा बन्धुत्व स्वीकार करो । हम निकृष्ट स्थान को प्राप्त न हों ॥ १४ ॥ [३२]

॥ चतुर्थ अष्टक समाप्तम् ॥

पंचम अष्टक

प्रथम अध्याय

६२ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–अश्विनौ । छन्द– पंक्तिः,त्रिष्टुप्)

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरु वरांसि ॥१

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥२

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥३

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥४

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५ ॥१

शत्रुओं के हराने वाले अश्विद्वय रात्रि का अन्धकार मिटाते हैं। मैं उन्हें स्तुत करता हुआ, बलवान् हूँ ॥ १ ॥ यज्ञ में गमन करने वाले अश्विद्वय अपने तेजों को निर्मित करते हुए अपने अश्वों को मरुभूमि से पार ले जाते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम मन के समान वेग वाले अश्वों के द्वारा स्तोताओं को स्वर्ग की प्राप्ति कराओ। हविदाता यजमान की हिंसा करने वाले को घोर निद्रा में निमग्न करो ॥ ३ ॥ वे अश्विद्वय स्तोता की सुन्दर स्तुतियों के पास आगमन करें। द्वेष शून्य प्राचीन अग्नि उनका यजन करें ॥४ जो स्तुति करने वाले को सुख देते हुए विविध प्रकार का धन देते हैं, उन्हीं अश्विनीकुमारों की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥६
वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७
यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८
य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९
अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०
आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥११॥२

हे अश्विद्वय ! तुमने ही भुज्यु को रथयुक्त अश्वों द्वारा समुद्र से निकाला ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! रथ के मार्ग में अड़े हुए पर्वत को तोड़ो तुम पुत्र की कामना वाली का आह्वान सुनो । स्तोता की वंध्या गौ को पयस्विनी बनाओ ॥ ७ ॥ द्यावापृथिवी, आदित्यगण, वसुगण, मरुद्गण और अश्विनी-कुमारों के उपासकों के प्रति देवताओं का जो भीषण क्रोध हो, उस क्रोध को राक्षस-हनन के कार्य में प्रयुक्त करो ॥ ८ ॥ जो यजमान भुवनपति अश्विनी-कुमारों की उपासना करता है, उसे मित्रावरुण जानते हैं । वह यजमान वीर राक्षसों पर आयुध चलाने में समर्थ होता है ॥ ९ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सारथियुक्त रथ पर आरूढ़ होकर अपत्य-प्रदान के लिए आओ और अपने क्रोध से मनुष्यों के लिए विघ्न उपस्थित करने वालों का सिर काटो ॥ १० हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे अभिमुख होओ । गौओं के सम्पन्न गोष्ठ का का उद्घाटन करो । मुझे दिव्य धन दो । मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ११ ॥ [२]

६३ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता-इन्द्रः। अश्विनौ-बृहती, पंक्तिः) त्रिष्टुप्)

क्तया वल्गू पुरुहूताय दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥१
अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२
अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३
ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४
अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५ ।२

जहाँ अश्विद्वय निवास करें, वहाँ हवियुक्त पन्द्रहवाँ स्तोत उन्हें दूत की तरह प्राप्त करे। इसी स्तोम ने अश्विद्वय को मेरी ओर किया। हे अश्विनीकुमारो! तुम स्तुति से प्रसन्न होते हो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो! हमारे आह्वान के प्रति आओ। सोम पान कर हमारे घर की शत्रु से रक्षा करो। शत्रु हमारे घर को दूर या पास से भी नष्ट न कर सकें ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय! यह अभिषुत सोम तुम्हारे लिए है। कुश बिछाये गये हैं, मैं स्तोता स्तुति कर रहा हूँ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय! तुम्हारे यज्ञ के निमित्त अग्नि ऊँचे उठते हैं। जो स्तोता तुम्हारा स्तोत्र करता है वह अनेक कर्म करने में समर्थ होता है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय! सूर्य-पुत्री ने तुम्हारे रथ को सुशोभित किया था। तुम देवताओं की प्रजा के नेतृत्व करने वाले होओ ॥५॥ [२]

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥६
आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७
पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८
उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥६
सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०
आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥११ ।४

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्या की शोभा के लिए पुष्ट होओ । तुम्हारे अश्व भी शोभा के लिए अनुगमन करते हैं । तुम्हें स्तुतियाँ व्याप्त करें ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! वहनशील तुम्हारे अश्व तुम्हें अन्न की ओर लावें, तुम्हारा रथ अन्न के निमित्त प्रेरित हुआ है ॥ ७ ॥ हे अश्वि-द्वय ! तुम अपरमित धन वाले हो । हमें स्थिरमना गौ और अन्न दो । तुम्हारे निमित्त स्तोता, स्तोत्र और तुम्हारे लिए सोम रस भी उपस्थित हैं ॥ ८ ॥ मेरे पास शीघ्रगामिनी दो वड़वाएं, समीढ़ की सौ गौएं, पेरुक के पके हुए अन्न हैं । शाण्ड राजा ने अश्विद्वय के स्तोताओं को सुन्दर दश रथ प्रदान किए और शत्रु का नाश करने वाले वीर पुरुष भी दिये ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे स्तोता को पुरुपन्था राजा ने शत संख्यक और सहस्र संख्यक अश्व दिये । हे अश्विद्वय ! भरद्वाज को भी शीघ्र दो और राक्षसों को नष्ट करो ॥१० हे अश्विनीकुमारो ! मैं विद्वानों सहित श्रेष्ठ मङ्गलमय धन से सुशोभित होऊँ ॥ ११ ॥ [४]

६४ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी १
भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।

आविर्वक्ष कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२
वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥३
सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४
सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६।५

उज्ज्वल वर्ण वाली उषाएं जल-तरङ्गों के समान उठती हैं । यह उषा सब स्थानों को सरलता से जाने योग्य बनाती है । यह उषा धन ऐश्वर्य वाली है ॥ १ ॥ हे उषे ! तुम मङ्गलमयी दिखाई देती हो तुम्हारी रश्मियाँ सुशोभित होरही हैं । तुम सुन्दर शोभामयी होकर प्रकाश प्रदान कर रही हो ॥२॥ रश्मियाँ उषा को वहन करती हैं । शत्रुओं को दूर करती हैं ॥ ३ ॥ हे उषे ! तुम स्वयं प्रकाशित हो । पर्वत और वायु-शून्य प्रदेश भी तुम्हारे लिए सुगम मार्ग है । तुम हमें काम्य धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे उषे ! तुम अश्वों पर धन वहन करती हो । तुम पूजनीया हो । मुझे धन प्रदान करो ॥ ५ ॥ हे उषे ! चिड़ियाएं तुम्हारे प्रकट होने पर घोंसला छोड़ती हैं, उसी समय अन्नोपार्जन करने वाले उठते हैं । तुम हविदाता को धन प्रदान करती हो ॥ ६ ॥ [५]

६५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—उषा । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १
वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।

अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२
श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३
इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४
इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्यर्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥५
उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६ ।६

दीप्तिमयी रश्मियों से युक्त हुई उषा अन्धकार को मिटाती और प्रणियों को प्रकाश देती है ॥ १ ॥ महान् यज्ञ की सम्पादिका उषा अपने लाल अश्वों से गमन करती हुई शोभा पाती है। यह रात्रि के अन्धकार को मिटा देती है ॥ २ ॥ हे उषाओ ! तुम हविदाता को बल, यश, अन्न और रस प्रदान करती हो। तुम धनवती और श्रेष्ठ गमन वाली हो। तुम हम सेवकों को पुत्रादि से युक्त अन्न-धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे उषाओ ! अङ्गिराओं ने तुम्हारी कृपा से गौओं को खोला और स्तुति द्वारा अन्धकार मिटाया। उनकी स्तुति सत्य फल वाली हुई ॥ ५ ॥ हे उषे ! अन्धकार नष्ट करो। भरद्वाज के समान मुझ स्तोता को भी धन और अन्न दो ॥ ६ ॥ [६]

६६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२
रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।

विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात् ॥३
न य ईषन्ते जनुषोऽया न्वन्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥४
मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५ ।७

मरुद्गण के समान स्थिर प्रीति करने वाला, विद्वान् स्तोता के समीप आविर्भूत हो। वह अन्तरिक्ष में जल धरित करता हुआ पृथिवी में दोहन के लिए प्रवृद्ध होता है ॥ १ ॥ जो अग्नि के समान तेजस्वी, इच्छानुसार वृद्धि को प्राप्त और सुवर्णालंकारों से युक्त हैं, वे मरुद्गण धन बल सहित आविर्भूत होते हैं ॥ २ ॥ जिन रुद्र पुत्र मरुतों को धारण करने में अन्तरिक्ष समर्थ है, उनकी माता महिमामयी है। वे मनुष्यों की उत्पत्ति के लिए जल धारण करती हैं ॥ ३ ॥ जो यान पर न जाकर स्तोताओं के अन्तःकरण में निवास करते हुए पापों को नाश करते हैं, जो जल दोहन करते और अपने तेज से भूमि को आकर्षित करते हैं, जिनके निमित्त स्तोता मरुत्मात्मक स्तोत्र करके इच्छित फल पाते हैं, जो महिमामय और गमनशील हैं, उन मरुद्गण को दानी यजमान क्रोध-रहित करता है ॥ ४-५ ॥ [७]

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥६
अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७
नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥८
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥९
त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१०

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११ ।८

वे मरुद्गण पराक्रमी हैं । द्यावा पृथिवी के रथ के साथ घर्षक सेनाओं को योजित करते हैं । यह अन्य किसी की दीप्ति से तेजस्वी नहीं हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारा रथ पाप-शून्य है । उसे स्तोता चलाता है । वह अश्व-रहित, सारथि-रहित, पाश-रहित और भोजन-रहित होता हुआ भी जल-प्रेरक और इच्छित देने वाला होकर स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष में जाता है ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! रणक्षेत्र में तुम जिसे बचाते हो, उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता । तुम जिसके पुत्रादि सहित रक्षक हो वह शत्रुओं की गौओं को बाँट लेता है ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं के बल का तिरस्कार करने वाले जिन मरुद्गण से पृथिवी भी काँपती है, उन्हीं मरुतों के लिए हविरन्न प्रसन्न करो ॥ ६ ॥ यज्ञ के समान तेजस्वी मरुद्गण अग्नि शिखा के समान दीप्ति वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले और तेजस्वी हैं ॥ १० ॥ मैं उन्हीं रुद्रपुत्र मरुतों की स्तुति करता हूँ । यही स्तुतियाँ उग्र होकर मरुद्गण के बल से समानता करने वाली होती हैं ॥ ११ ॥ [८]

६७ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१
इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥२
आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३
अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जयमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४

विश्वे यद्वां मह्ना मन्दमाना' क्षत्रं देवासो अदधु. सजोषा ।
रि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूरा. ॥५ ।६

हे मित्रावरुण ! तुम सर्वश्रेष्ठ को मैं स्तुतियों से बढ़ाता हूँ । तुम अपनी भुजाओं से मनुष्यों को मंगल करते हो ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारी यही स्तुति तुम्हें बढ़ाती है । तुम हमें शीत आदि से बचाने वाला घर दो । २ हे मित्रावरुण ! हमारे आह्वान के प्रति आओ । जैसे कर्म में लगा व्यक्ति अन्न चाहने वालों को तुष्ट करता है, वैसे ही तुम भी करो ॥ ३ ॥ अश्व के समान बली मित्रावरुण को अदिति ने धारण किया । वे हिंसकों की हिंसा करने वाले और जन्म से ही महान् हुए ॥ ४ ॥ सभी देवताओं ने तुम्हारा यश-कीर्तन कर बल धारण किया । तुम आकाश-पृथिवी को परिभूत करने वाले और अहिंसित हो ॥ ५ ॥ [६]

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥६
ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७
ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिऋंते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमह. ॥८
प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्रा. ॥९
वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनाना: ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥१०
अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गाव. स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११ ।१०

तुम अन्तरिक्षस्थ प्रदेश को दृढ़ता से धारण करते हो । तुम्हारे द्वारा ही मेघ अन्तरिक्ष और विश्वेदेवा हवि से तृप्त होकर पृथिवी और स्वर्ग में व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥ तुम प्राज्ञ व्यक्ति सोम को उदर-पूर्ति के लिए धारण करते

हो। जब ऋत्विज यज्ञ-गृह को सम्पन्न करते हैं और तुम जल भेजते हो तब नदियों में धूल नहीं भरती ॥ ७ ॥ मेधावीजन वाणी द्वारा तुमसे जल की याचना करते हैं। जैसे तुम्हारा उपासक यज्ञ में माया से विरक्त होता है, वैसी ही तुम्हारी महिमा है। तुम हविदाता के पाप को मिटाओ ॥ ८ ॥ हे मित्रावरुण ! जो द्वेषी व्यक्ति तुम्हारे कर्म से बाधक होते हैं, जो व्यक्ति स्तोत्र-शून्य और यज्ञशून्य हैं, उन्हें नष्ट कर डालो ॥ ९ ॥ जब विद्वान् पुरुष स्तुति करते हैं, तब तुम महिमा वाले होकर अन्य देवताओं के साथ मत जाना ॥ १० हे मित्रावरुण ! जब स्तुतियाँ की जाती हैं और सोम को यज्ञ में उपस्थित किया जाता है, तब गृह-दान के लिए तुम आते हो और घर प्राप्त होता है ॥ ११ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[१०]

६८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥१
ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥२
ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥३
ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥४
स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५ ॥११

हे इन्द्र और वरुण ! यजमान के सुख के निमित्त जो अनुष्ठान किया जाता है, वही अनुष्ठान आज तुम्हारे लिए किया जा रहा है ॥ १ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम यज्ञ में धनदाता और श्रेष्ठ हो। वीरों में अधिक बलशाली,

दाताओं में श्रेष्ठ, शत्रु-हिंसक और सब सेनाओं और ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो ॥ २ हे स्तोता ! इन्द्र और वरुण की स्तुति करो । उनमें से इन्द्र वृत्र-हन्ता है और वरुण प्रजा की रक्षा के लिए बलवान होते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! जब स्तोता तुम्हें बढ़ाते हैं, तब तुम अत्यन्त महिमा वाले होकर उनके स्वामी बनते हो । हे विस्तीर्ण स्वर्ग और पृथिवी ! तुम भी इनके स्वामी होओ ॥ ४ हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हें हवि देने वाला यजमान दानी, धनी और यज्ञ-कर्म वाला होता है । वह शत्रु से रक्षित रहता हुआ धन और सर्वगुणयुक्त पुत्र पाता है ॥ ५ ॥ [११]

प युव दाशदध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मै स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६
उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७
नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८
प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥११ ।१२

हे इन्द्र और वरुण ! तुम हविदाता को जो धन देते हो वही शत्रु द्वारा फैलाये गये अपयश को दूर करने वाला धन हमें दो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! हम तुम्हारे स्तोता हैं । तुम्हारा जो धन देवताओं द्वारा रक्षित है, वही हमें मिले । हमारा बल शत्रुओं को पराभूत करने वाला और उनका तिरस्कार करने वाला हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमें श्रेष्ठ अन्न के लिए धन दो । तुम महान् हो । हम तुम्हारे बल की प्रशंसा करते हैं । हम

नौका द्वारा तरने के समान ही पापों से तरें ॥ ८ ॥ जो वरुण महान् कर्म वाले महिमामय, तेजस्वी और जरा रहित हैं तथा जो द्यावापृथिवी को व्याप्त करते हैं, उन्हीं वरुण के लिए विस्तृत स्तुति करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम सोमपायी हो अतः इस हर्षकारी सोम का पान करो। हे व्रतधारी, मित्रा-वरुण देवताओं के पीने के निमित्त तुम्हारा रथ यज्ञ की ओर गमनशील है ॥ १० ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम इस श्रेष्ठ सोम का पान करो। तुम्हारे लिए यह सोम इस पात्र में उँडेला गया है। अतः इस यज्ञ में बैठकर सोम-पान द्वारा हर्षित होओ ॥ ११ ॥ [१२]

६९ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्राविष्णू । छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिक्,)

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥१
या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥२
इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३
आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥४
इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥५
इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥७
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथा त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ।।८।।१३

हे इन्द्र और विष्णु ! मैं यह स्तोत्र और हवि तुम्हारी ओर प्रेरित करता हूँ । इसके पश्चात् तुम यज्ञ का सेवन करो । तुम हमें उपद्रव रहित मार्ग से ले जाते हो, अतः धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम स्तुतियों के कारण रूप हो । तुम्हें स्तुतियाँ प्राप्त हों । स्तोताओं से गाने-योग्य स्तोत्र भी तुम्हें प्राप्त हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोमों के स्वामी हो । तुम धन-दान करते हुए सोमों के सामने आओ । स्तोत्र, उक्थों के सहित तुम्हें बढ़ावें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! हिंसकों के हराने वाले अश्व तुम्हें वहन करें । तुम स्तुतियों का सेवन करते हुए मेरे निवेदन पर ध्यान दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! सोम का हर्ष उत्पन्न होने पर तुम प्रदक्षिणा करते हो । तुमने अन्तरिक्ष का विस्तार किया है । हमारे जीवन के लिए लोकों को प्रसिद्ध किया है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोम से प्रवृद्ध होते हो । यजमान तुम्हें नमस्कार युक्त हव्य देते हैं अतः तुम हमें धन प्रदान करो । तुम कलश के और समुद्र के समान पूर्ण हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोम-पान से अपना उदर भरो । तुम्हारे पास हर्षकारी सोम गमन करे । तुम मेरी स्तुति सुनो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम अजेय हो । तुम में से कभी कोई पराजित नहीं हुआ । तुमने जिस पदार्थ के लिए राक्षसों से स्पर्द्धा की, वह अपरिमित होते हुए भी तुम्हें प्राप्त हो गया ॥ ८ ॥ [१३]

७० सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छन्द—जगती)

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ।।१
असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेत सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ।।२
यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवो. सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ।।३

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४
मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५
ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे
समिन्वताम् ॥६ ।१४

हे द्यावापृथिवी ! तुम जल वाली हो। सुन्दर रूप वाली, वरुण द्वारा धारण की हुई, नित्य और अनेक कर्म वाली हो ॥ १ ॥ हे द्यावापृथिवी ! श्रेष्ठ कर्म वाले पुरुषों को तुम जल प्रदान करती हो। तुम भुवन की अधीश्वरी हो। हमें हितकारी बल प्रदान करो ॥ २ ॥ हे द्यावापृथिवी ! तुम्हारा उपासक पुरुष सिद्ध-काम होता है। वह सन्तानों के सहित बढ़ता है ॥ ३ ॥ द्यावापृथिवी जल द्वारा आच्छादित हैं और जल का ही आश्रय करती हैं। वे विस्तीर्ण, जल से ओतप्रोत और जल वृष्टि का विधान करने वाली हैं। यज्ञ वाले यजमान उनसे सुख माँगते हैं ॥ ४ ॥ जल का दोहन करने वाली, यज्ञ, धन, यश, अन्न, बल प्रदात्री द्यावापृथिवी हमें मधु से अभिषिक्त करें ॥ ५ ॥ हे पिता स्वर्ग और माता पृथिवी ! हमें अन्न प्रदान करो। तुम जगत के जानने वाली, सुखदात्री हो, हमें बल, धन और अपत्य दो ॥ ६ ॥ [१४]

७१ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाज बार्हस्पत्यः । देवता–सविता । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्,)

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहु अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१
देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ।.३

उदु ष्य देव सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥५

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६ ॥१५

श्रेष्ठ कर्मा सवितादेव अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर संसार की रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ उन सवितादेव के धन-दान के लिए हम सामर्थ्य पावें । हे सवितादेव ! तुम सब पशुओं और मनुष्यों की रचना करने वाले हो ॥ २ ॥ हे सवितादेव ! अहिंसित तेज से हमारे घरों को रक्षा करो और हमारा मंगल करो । हमारा अनिष्ट चाहने वाला शत्रु हमारा शासक न हो ॥ ३ ॥ शान्तमन वाले, सुवर्ण हस्त, यश के योग्य सवितादेव रात्रि का अन्त होने पर सचेष्ट होकर हविदाता के लिए अभीष्ट अन्न प्रेरित करें ॥ ४ ॥ वे सवितादेव दोनों भुजाओं को उठाते हुए पृथिवी से स्वर्ग के उन्नत प्रदेश पर आरूढ़ होते हैं । वे सभी महान् वस्तुओं को पुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥ हे सवितादेव ! हमें आज धन दो । कल भी हमें धन देना, इस प्रकार नित्य ही देते रहना । तुम अपरिमित धन देने वाले हो, अतः हम स्तुति द्वारा धन पावेंगे ॥ ६ ॥ [१५]

७२ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रासोमौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥१

इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥२

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३

इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।

जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥४

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्य चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५ ।१६

हे इन्द्र और सोम ! तुम अत्यन्त महिमा वाले हो। तुमने प्रमुख भूतों की सृष्टि की है और सूर्य तथा जल को भी पाया है। तुम्हीं ने निन्दा करने वालों को और अंधकार को नष्ट किया है ॥ १ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम उषा को उदित करो और सूर्य की दीप्ति को ऊपर उठाओ। अन्तरिक्ष के द्वारा स्वर्ग को स्तंभित करो और माता पृथिवी को पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम जल को रोकने वाले वृत्र को मारो। स्वर्ग ने तुम्हें प्रवृद्ध किया अतः नदी के जल को प्रवाहित कर समुद्र को भर दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुमने गौओं में परिपक्व दूध रखा है और विविध वर्ण वाली गौओं के मध्य श्वेत वर्ण वाले दूध को ही धारण कराया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम हमें उद्धार करने वाला अपत्य युक्त धन दो। तुम शत्रु-सेना के अभिभूत करने वाले अपने बल को बढ़ाओ ॥ ५ ॥ [१६]

७३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३ ।१७

जो बृहस्पति सर्व प्रथम उत्पन्न हुए और जिन्होंने पर्वत को तोड़ा था, जो अंगिरा और यज्ञ-योग्य, दोनों लोकों में भले प्रकार गमनशील हैं, वही बृहस्पति स्वर्ग और पृथिवी में घोर शब्द करते हैं ॥ १ ॥ जो बृहस्पति यज्ञ में स्तोता को स्थान देने वाले हैं, वही बृहस्पति वृत्र-हन्ता और शत्रु विजेता

हैं। वे अपने वैरियों को हराते और राक्षसों के नगरों को तोड़ते हैं ॥ २ ॥ इन्हीं बृहस्पति ने राक्षसों का गोधन जीता। यही बृहस्पति स्वर्ग के शत्रुओं को मन्त्र द्वारा मारते हैं ॥ ३ ॥ [१८]

७४ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—सोमारुद्रौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूत द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४ ।१८

हे सोम और रुद्र ! हमें महान् बल दो ! सब यज्ञ तुम्हें व्याप्त करें। तुम सात रत्नों के धारक हो। हमारे लिये मङ्गलकारी होओ और हमारे मनुष्यों और पशुओं को सुखी करो ॥ १ ॥ हे सोम और रुद्र ! हमारे घर में घुसने वाले रोग को दूर करो। दरिद्रता हमारे पास से भागे और हम अन्न प्राप्ति द्वारा सुख पावें ॥ २ ॥ हे सोम और रुद्र ! हमारी देह-रक्षा के लिए औषधि धारण करो। हमारे पापों को दूर कर दो ॥ ३ ॥ हे सोम और रुद्र ! तुम्हारे पास श्रेष्ठ धनुष और तीक्ष्ण बाण हैं। तुम सुन्दर स्तुति की इच्छा करते हुए हमें सुख दो। हमको वरुण पाश से भी मुक्त करो ॥ ४ ॥ (१६)

७५ सूक्त

(ऋषि—पायुर्भारद्वाजः । देवता—वर्म, धनु, सारथिः, अश्वाः, रथः प्रभृति, छन्द— त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्ति)

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्रा. समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाःप्रदिशो जयेम ॥२
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिपस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥३
वह्वीनां पिता वहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५ ।१६

संग्राम उपस्थित होने पर यह राजा जब लौह कवच धारण करता है, तब वह मेघ के समान लगता है। हे राजन्! तुम अहिंसित रहते हुए जीतो। महिमामय कवच तुम्हारा रक्षक हो ॥ १ ॥ हम धनुष के प्रभाव से युद्ध को जीतकर गौओं को प्राप्त करेंगे। शत्रु की इच्छा नष्ट हो। हम इस धनुष से सब दिशाओं में स्थित शत्रुओं को हटा देंगे ॥ २ ॥ धनुष की प्रत्यञ्चा संग्राम से पार लगाने के लिए प्रिय वचन कहती हुई कान के पास पहुँचती हैं। यह प्रत्यञ्चा वाण से मिलकर शब्द करती है ॥ ३ ॥ धनुष्कोटियाँ आक्रमण के समय माता द्वारा पुत्र की रक्षा करने के समान इस राजा की रक्षा करें और शत्रुओं को विदीर्ण कर डालें ॥ ४ ॥ यह तूणीर बाणों के पिता के समान है, अनेकों बाण इसके पुत्र हैं। बाण के निकलने के समय जब यह शब्द करता है तब समस्त सेनाओं पर विजय पाता है ॥ ५ ॥ [१६]

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६
तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिःसह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥७
रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८
स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।

चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०।२०

श्रेष्ठ सारथि आगे योजित अश्वों को मनोनुकूल चलाता है, रश्मियाँ भी इच्छानुसार अश्वों के कण्ठ तक जाकर उन्हें आगे पीछे चलाती हैं। उन रश्मियों के यश का वर्णन करो ॥ ६ ॥ रथ के सहित वेगपूर्वक गमन करते हुए अश्व धूल उड़ाते हुए शब्द करते हैं, वे पीछे न हटकर शत्रुओं को रौंद डालते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र जैसे अग्नि को प्रवृद्ध करता है, वैसे रथ द्वारा वहन किया जाता धन इस राजा को बढ़ावे। इस राजा के शस्त्रास्त्र जिस रथ पर रहते हैं, हम उस रथ के समीप प्रसन्नतापूर्वक गमन करते हैं ॥ ८ ॥ शत्रुओं के अन्न को रथ के रक्षक नष्ट करते और अपने लोगों को अन्न देते हैं। सङ्कट काल में इनका आश्रय लिया जाता है, क्योंकि यह अनेक शत्रुओं को जीतने वाले हैं ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पितरो ! तुम हमारे रक्षक होओ। द्यावापृथिवी हमारा मङ्गल करें। पूषा पाप से बचावें। शत्रु हमारे शासक न हों ॥ १० ॥ [२०]

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥१३

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५।२१

सुन्दर पङ्ख वाले बाण का दाँत मृग का सींग है। यह प्रत्यञ्चा ताँत

से बँधी हुई है । यह प्रेरित होकर गिरता है । जहाँ नेता विचरते हैं वहाँ यह बाण हमें आश्रय प्रदान करे ॥११॥ हे बाण ! हमें बढ़ाओ । हमारा शरीर पाषाण के समान दृढ़ हो । सोम हमारा पक्ष लें और अदिति मंगल करे ॥ १२ ॥ हे चाबुक ! सारथि तुम्हारे द्वारा अश्व को चलाते हैं । तुम अश्वों को रणभूमि में ले जाओ ॥ १३ ॥ हे हस्तघ्न ! प्रत्यञ्चा के प्रहार का निवारण करता हुआ, सर्प के समान देह के द्वारा प्रकोष्ठ को व्याप्त करता है ॥ १४ ॥ जो बाण विषयुक्त, लौहमय और हिंसक मुख वाला है, वह पर्जन्य से उत्पन्न है । उसे नमस्कार हो ॥ १५ ॥ [२१]

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाइव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु । १८
यो नः अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९ ।२२

मन्त्र द्वारा तीक्ष्ण बाण ! तुम वध-कर्म में चतुर हो । अतः छोड़े जाकर शत्रुओं पर गिरो और उन्हें जीवित मत छोड़ो ॥ १६ ॥ जिस संग्राम में बाण गिरते हैं, उस संग्राम में ब्रह्मणस्पति और अदिति सुख प्रदान करें ॥ १७ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारे मर्म स्थान को कवच से ढकता हूँ । सोम तुम्हें अमृत से ढकें और वरुण तुम्हें महान् सुख प्रदान करे । तुम्हारी जीत से देवता हर्षित होते हैं ॥ १८ ॥ जो बाँधव हम से रुष्ट होकर हमें मारना चाहता है, उसे सभी देवता हिंसित करें । यह मन्त्र ही हमारे लिए कवच रूप है ॥ १९ ॥ [२२]

॥ षष्ठम् मण्डल समाप्तम् ॥

॥ अथ सप्तमं मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठ देवता-अग्नि । छन्द-गायत्री त्रिष्टुप्)

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥४

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५ ।२३

ऋत्विगण महान्, विस्तारपूर्ण, दूर रहने वाले अग्नि को अरणियों से प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ जो अग्नि घर में नित्य पूजे जाते थे, उन्हीं अग्नि को वसिष्ठों ने भय से रक्षा करने को घरों में स्थापित किया था ॥ २ ॥ हे युवातम अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर अपनी ज्वालाओं सहित तेज को प्राप्त होओ। तुम्हारे पास प्रचुर धन पहुँचता है ॥ ३ ॥ जिस अग्नि के पास सुन्दर जन्म वाले ऋत्विज बैठते हैं। वह सासारिक अग्नि से अधिक तेजस्वी, मंगलमय, पुत्र-पौत्र-दाता और प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥ शत्रुओं को पराजय देने वाले हे अग्ने ! जिस प्रकार हिंसाकारी राक्षस हमारे कर्म में बाधक न हों, इस प्रकार की रक्षाएं और पुत्र-पौत्र देने वाले श्रेष्ठ धन को हमें प्रदान करो ॥ ५ ॥ [२३]

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥७

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥८

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥९

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥१०।२४

हव्य से सम्पन्न नारी जुहू को जानने वाली है। वह अग्नि के समीप गमन करती है। स्वयं उत्पन्न दीप्ति धन की कामना करने वाली होकर उसके पास पहुँचती है ॥ ६ ॥ हे अग्ने! जिस तेज से तुम कठोर वाणी उच्चारण करने वाले राक्षस को दग्ध करते हो, अपने उसी तेज से सब शत्रुओं को भस्म करो। सभी उत्पातादि को नष्ट करते हुए हमारी रोग व्याधि को भी मिटाओ ॥ ७ ॥ हे पावक! तुम उज्ज्वल ज्योति से प्रदीप्त होते हो। तुम अपने समृद्ध करने वाले के पास जैसे ठहरते हो, जैसे ही इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमारे यज्ञ में भी निवास करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! पितरों का हित करने वाले जिन कर्मवीरों ने तुम्हारे तेज को विभिन्न कर्मों में विभाजित किया है, इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर तुम उसी प्रकार हमारे यज्ञ में वास करो ॥ ९ ॥ जो पुरुष मेरे उत्तम कर्म की प्रशंसा करें, वे रणभूमि में उपस्थित होकर राक्षसों की माया को नष्ट करें ॥ १० ॥ [२४]

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥११

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥१२

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टाद् पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥१३

मेदग्निरग्नीं रत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।

सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥१४

सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।

सुजातासः परि चरन्ति वीरा· ॥१५ ।२५

हे अग्ने ! हम अन्य के गृह में नहीं रहेंगे । शून्य गृह में भी वास नहीं करेंगे । हम पुत्र-रहित और वीरों से शून्य न रहते हुए तुम्हारे अनुग्रह से सुपुत्रवान् होकर समृद्ध घर में निवास करें ॥ ११ ॥ अश्ववान् अग्नि जिस यज्ञगृह में प्रतिदिन गमन करते हैं, वैसा ही अपत्ययुक्त, अन्न और सम्पत्ति युक्त गृह हम प्राप्त करें ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! दुर्धर्ष राक्षस से हमारी रक्षा करो । अदानशील पापियों और हिंसा-वृत्ति वालों से भी रक्षित करो । तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त हुए हम सेना एकत्र करने वाले शत्रु को हरायेंगे ॥ १३ ॥ हमारा दृढ़ भुजावाला बलवान् पुत्र जिस अग्नि की परिचर्या करता है, वही अग्नि अन्य के अग्नि को प्रकट करें ॥ १४ ॥ जो अनुष्ठाता प्रबोध करने वाले की रक्षा करते हैं, और श्रेष्ठजन्मा वीर जिनकी सेवा करते हैं, वही अग्नि हैं ॥ १५ ॥ [२५]

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।

परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।

उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥१७

इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।

प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥१८

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।

मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥१९

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।

रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२० ।२६

जिन्हें हवि-सम्पन्न यजमान भले प्रकार प्रदीप्त करता है और यज्ञ में जिनकी परिक्रमा की जाती है, उन अग्नि को अनेक देशों में आहूत किया जाता है ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! धन के अधीश्वर होकर हम प्रतिदिन ही तुम्हारी स्तुति करते हुए हव्यादि देंगे ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के पास इन रमणीय हवियों को पहुँचाओ, क्योंकि सभी देवता हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ में भाग प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! हम संततिहीन न हों, निकृष्ट वस्त्र न पहनें। हमारी बुद्धि का नाश न हो। हम क्षुधार्त न हों। राक्षस के हाथ में न पड़ें। हे अग्ने ! हम घर, जङ्गल या मार्ग में कहीं भी मृत्यु को प्राप्त न हों ॥ १९ ॥ हे अग्ने ! हमारा अन्न परिष्कृत हो। तुम इन यज्ञ करने वालों को अन्न दो। हम स्तोता और यजमान, दोनों ही तुम्हारे दान को पावें। तुम सदा हमारी रक्षा करते रहो ॥ २० ॥ (२६)

त्वमग्ने सुहवो रण्वसन्दृक् सुदीति सूनो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥२१
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥२२
स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥२३
महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम्।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥२४
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५ ।२७

हे अग्ने ! तुम भले प्रकार आहूत किये जाते हो। तुम अपनी दर्शनीय ज्वालाओं सहित प्रकट होओ। तुम हमारे पुत्र को दग्ध मत करो। हमारा पुत्र चिरजीवी हो। तुम हमारे हर प्रकार सहायक होओ ॥ २१ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारी सहायता करो। ऋत्विजों द्वारा प्रदीप्त अग्नियों से हमारा सुख-पूर्वक पोषण करने को कहो। तुम बलोत्पन्न हो, हमारी बुद्धि भ्रमित न हो

जाय ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! जो याज्ञिक तुम्हें हव्य-दान करता है, वह धन से सम्पन्न हो जाता है। धन की कामना वाला स्तोत्र जिसके आश्रय में गमन करता है, वह अग्नि यजमान की सदा रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ हे अग्ने ! हमारे कल्याणकारी कार्यों के तुम ज्ञाता हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें ऐसा कल्याणकारी धन प्रदान करो, जिससे हम पूर्ण आयुष्य पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर प्रसन्न रहें ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! हमारे अन्न को भले प्रकार सत्कारित करो। तुम यज्ञकर्त्ताओं को अन्न प्रदान करो। हम स्तोता और यजमान, दोनों ही तुम्हारे दान को प्राप्त करें। तुम अपनी मङ्गलमयी रक्षाओं से सदा हमारी रक्षा करते रहो ॥ २५ ॥ (१७)

२ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ. । देवता-आप्रम्। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति.)

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥१
नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२
ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥३
सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥४
स्वाध्यो वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥५ ॥१

हे अग्ने ! हमारी हवियों को स्वीकार करो। यज्ञ योग्य धूम्र से सम्पन्न होकर प्रकाशवान् होओ। तुम अपनी ज्वालाओं के द्वारा अन्तरिक्ष तक पहुँचो और सूर्य-रश्मियों से जा मिलो ॥ १ ॥ जो सुन्दर कर्म वाले, श्रेष्ठ कर्मों में रत देवता सौमिक और हविः संस्थादि का सेवन करते हैं, हम उनके

द्वारा अग्नि की महिमा का गान करते हैं ॥ २ ॥ हे यजमानो ! तुम स्तुति के योग्य, बलवान, आकाश पृथिवी में दूत रूप से विचरने वाले अग्नि का सदा पूजन करो ॥ ३ ॥ सेवा की इच्छा करते हुए याज्ञिक पात्र पूर्ण करते और हवि देते हैं। हे अध्वर्युओ ! तुम हवन करते हुए घृतपृष्ठ बर्हि प्रदान करो ॥ ४ ॥ देवताओं की कामना वाले, सुन्दरकर्मा तथा रथ की अभिलाषा वाले पुरुषों ने यज्ञ द्वार की शरण ली है। गौऐं जैसे बछड़ों को चाटती हैं, वैसे ही चाटने वाले अग्नि को अध्वर्यु नदी के समान सींचते हैं ॥५॥ [१]

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥६
विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥७
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ् इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११ ।२

दिव्य रूप वाली, महिती, कुशास्थिता, बहुस्तुता एवं धन वाली अहोरात्रि, कामधेनु के समान कल्याण प्रदात्री होती हुई हमें आश्रय दें ॥ ६ हे यज्ञ कर्म करने वाले पुरुष ! मैं तुमसे यज्ञ करने की प्रार्थना करता हूँ। स्तुति के पश्चात् तुम हमारे सरल यज्ञ को देवताओं के सम्मुख करो। देवताओं के पास जो धन है, उसे हमको बाँट दो ॥ ७ ॥ सूर्यात्मक वाणियों के साथ भारती आगमन करें। देवताओं और मनुष्यों के साथ इला भी आगमन करें। सरस्वती भी यहाँ पधारें। यह तीनों देवियाँ कुशाओं पर विराज-

मान होता है। फिर हे अग्ने ! तुम्हारा मार्ग कृष्ण वर्ण का होता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी जो अभिनव ज्वाला समृद्ध और उन्नत होती हैं, उसका धूम्र आकाश तक व्याप्त होता है और तुम दूत रूप से देवताओं के पास पहुँचते हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जब तुम अपनी ज्वाला रूप दाँतों से काष्ठादि का भक्षण करते हो, तब तुम्हारा तेज पृथिवी को व्याप्त करता है। तुम्हारी ज्वाला विमुक्त सेना के समान जाती है और तुम, जैसे मनुष्य जौ खाते हैं, वैसे ही काष्ठ को खाते हो ॥ ४ ॥ पूज्य अग्नि की अतिथि के समान पूजा की जाती है। उपासकगण सदा चलने वाले अश्व की तरह अग्नि की अभ्यर्थना करते हैं। कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि की ज्वालाएं दीप्तिमती होती हैं ॥ ५ ॥ [२]

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६
यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥७
या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥८
निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रो रुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥९
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०।४

हे अग्ने ! तुम महान् तेजस्वी हो। जब तुम सूर्य के समान प्रकाशित होते हो, तब तुम्हारा रूप शोभन दर्शन वाला होता है। विद्युत रूप में तुम्हारा तेज अन्तरिक्ष में प्रकट होता है। तुम सूर्य के समान ही प्रकाश करने वाले हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! जैसे हम गव्यादि से युक्त हवियों द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं, तुम भी वैसे ही अपने अपरिमित तेज के बल से हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न एवं दानशील हो। तुम अपनी

जिन तेजस्वी ज्वालाओं और वाक्यों द्वारा पुत्रवान यजमान की रक्षा करते हो, उनके द्वारा हमारी भी रक्षा करो। तुम हविर्दान करने वाले यजमान का पालन करने वाले होओ ॥ ८ ॥ अपने शरीर द्वारा भीषण होकर जब अग्नि काष्ठ से आविर्भूत होते हैं, तब वे यज्ञ कर्म में समर्थ होते हैं। यह कर्म करने में समर्थ अग्नि मातृ-रूप अरणियों द्वारा उत्पन्न हुए हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने! हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करो। हम यज्ञ करने वाला सुहृद पुत्र पावें। उद्गाताओं और स्तोताओं को समस्त धन मिलें। तुम हमारे लिए सदा मंगलकारी होओ ॥ १० ॥ [४]

४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता- अग्निः। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम्।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥१
स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥२
अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥३
अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥४॥
आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत्।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५।५

हे हविर्वान् यजमानो! तुम श्रेष्ठ प्रदीप्ति वाले अग्नि को विशुद्ध हव्य दो। यह अग्नि अपनी बुद्धि के द्वारा देवताओं और मनुष्यों के सब पदार्थों में घूमते हैं ॥ १ ॥ तरुणतम अग्नि दो अरणियों से प्रकट हुए हैं। वे इसीलिए मेधावी और दीप्तियुक्त शिखा से सम्पन्न हैं। वे जङ्गलों में व्याप्त होकर यथेष्ट काष्ठादि अन्न का भक्षण करते हैं ॥ २ ॥ पवित्र स्थानों में मनुष्यों द्वारा जिन अग्नि की स्थापना की जाती है और

जो अग्नि मनुष्यों द्वारा ग्रहण की गई वस्तु का सेवन करते हैं, वही अग्नि मनुष्यों के लिए, शत्रुओं द्वारा न प्राप्त करने योग्य तेज को धारण करते हैं ॥ ३ ॥ अज्ञानी मनुष्यों के मध्य ज्ञानी, अविनाशी और तेजस्वी अग्नि निवास करते हैं। हे अग्ने ! तुम्हारे निमित्त हम अपनी बुद्धि को सदा सावधान रखेंगे। तुम हमें हिंसित मत करना ॥ ४ ॥ अग्नि ने देवताओं को अपनी बुद्धि से ही पार लगाया। इसीलिए वे देवताओं के स्थान को प्राप्त हो गए। वृक्ष, औषधियाँ अग्नि को ही धारण करते हैं और यह पृथिवी भी अग्नि की सेवा करती है ॥ ५ ॥ [५]

ईशे ह्य ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥६
परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥७
नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥८
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०।६

अमृत-दान में अग्नि समर्थ हैं। यह श्रेष्ठ अमृतत्व के प्रदान करने वाले हैं। हे अग्ने ! हम पुत्रादि से हीन न हों, हम कुरूप न हों और तुम्हारी सेवा से भी कभी विरत न हों ॥ ६ ॥ जिसके पास प्रचुर धन होता है वह पुरुष ऋण से मुक्त रहता है। हम भी ऋण से हीन रहने के लिए धन के स्वामी बनेंगे। हे अग्ने ! हम अन्यजात (दत्तक) सन्तान वाले न हों। तुम मूर्ख व्यक्ति के मार्ग पर मत जाना ॥ ७ ॥ अन्यजात पुत्र को हृदय अपना पुत्र स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसका मन अपने स्थान पर ही रहता है। हे अग्ने ! हमें शत्रु का नाश करने वाला, अन्न से सम्पन्न और नवोत्पन्न शिशु

प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हिंसाकारी से हमारी रक्षा करो। पाप से हमारी रक्षा करो। पवित्र हव्य तुम्हारी ओर गमन करे। हम भी सहस्रों प्रकार के धन पावें ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! श्रेष्ठ धन दो। हम यज्ञकर्त्ता पुत्र पावें। स्तोताओं और उद्‌गाताओं को समस्त धन मिले। तुम अपने कल्याण द्वारा हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥ [६]

५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता–वैश्वानरः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥१
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥२
त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥३
तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥४
त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥५ ।७

यज्ञ में चैतन्य हुए देवताओं के साथ जो अग्नि वृद्धि को पाते हैं, हे स्तोता ! तुम उन्हीं पार्थिव और दिव्य अग्नि की स्तुति करो ॥ १ ॥ जो वैश्वानर अग्नि नदियों के नेता, जल वृष्टिकारक और पूज्य होकर अन्तरिक्ष में और पृथिवी पर आविर्भूत होते हैं, वे हवियों से प्रवृद्ध होकर शोभायमान होते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! जब तुमने पुरु के शत्रु की नगरी को ध्वस्त किया और अपने तेज से प्रदीप्त हुए तब तुम्हारे भय से अशुभ कर्म वाले व्यक्ति भाग गए ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तुम्हारे हित के लिए कर्म करते हैं। तुम अपने तेज द्वारा प्रकाशमान होकर आकाश-पृथिवी को समृद्ध करते हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के स्वामी और दिवस के

ध्वजा रूप हो। तुम्हारी कामना वाले अश्व तुम्हारी सेवा करते हैं। स्निग्ध और पाप-रहित वाणी तुम्हारी स्तुति करती है ॥ ५ ॥ [७]

त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥६
स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥८
तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥८
तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥६ ।८

हे अग्ने ! तुम मित्रों को सम्मानित करने वाले हो। वसुगण ने तुम्हें बलवान बनाया है। तुमने कर्मवान् पुरुषों की रक्षा के लिए अपने तेज से राक्षसों को उनके स्थानों से भगा दिया है ॥ ६ ॥ हे अग्ने तुम सूर्य रूप से प्रकट होकर वायु के समान सर्व प्रथम सोम-पान करते हो। जल को उत्पन्न करते हुऐ अन्न कामना वाले को आशा देते हुए विद्युत के रूप में गर्जनशील होते हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम सबके द्वारा वरण करने योग्य हो। तुम जिस अन्न के द्वारा धन को पुष्ट करते हो और हव्यदाता के यश को क्षीण नहीं होने देते, वही श्रेष्ठ अन्न हमें प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हविदाता यजमानों को अन्न, धन और प्रशंसनीय बल प्रदान करो। रुद्रगण और वसुगण के सहित तुम हमारा मंगल करने वाले होओ ॥ ६ ॥ [८]

६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—वैश्वानरः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१
कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।

पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥२
न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणींरश्रद्धां अवृधां अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूंरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापरां अयज्यून् ॥३
यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥४
यो देह्यो अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५
यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥६
आ देवो ददे बुध्न्या वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७ ।९

पुरियों को ध्वस्त करने वाले अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वे अग्नि स्तुत्य, बली सम्राट् इन्द्र के समान ही हैं। मैं उनके यश का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ अग्नि तेजस्वी, पर्वतों के धारणकर्ता, प्रज्ञापर्क, कल्याणप्रद और आकाश-पृथिवी के अधिपति हैं। उन अग्नि को देवता प्रसन्न करते हैं। मैं भी उनके प्राचीन श्रेष्ठ कर्मों का कीर्तन करता हूँ ॥ २ ॥ यज्ञ-विमुख, कटु-वक्ता, दुर्बुद्धि वाले 'पणियों' को अग्नि दूर भगावें और उनका पतन करें ॥३॥ अन्धकार में रहने वाले प्राणियों को अग्नि ने श्रेष्ठ मार्ग दिखाया। वे अग्नि धनों के स्वामी और दुष्टों का पराभव करने वाले हैं। मैं उनकी स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥ जिन्होंने अपने आयुध से आसुरी माया को नष्ट कर डाला और जिन्होंने उषा की रचना की, उन अग्नि ने प्रजा को अपने बल से रोका और राजा नहुष को कर देने वाला बनाया ॥ ५ ॥ सुख के लिए सब मनुष्य हव्य के सहित आकर जिन अग्नि की कृपा कामना करते हैं, वे वैश्वानर अग्नि माता-पिता के समान आकाश-पृथिवी के मध्य स्थित अन्तरिक्ष में प्रकट हुए हैं ॥ ६ ॥ सूर्य के उदित होने पर वैश्वानर अग्नि अन्धकार को दूर करते हैं। समुद्र, आकाश, पृथिवी आदि सभी स्थानों का अन्धकार उनमें समा जाता है ॥ ७ ॥ [९]

७ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र वो देवं चित् सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१
आ याह्यग्ने पथ्या अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥२
प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥३
सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणेऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥४
असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५
एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥६
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।१०

हे अग्ने ! तुमने राक्षस आदि को भगाया । तुम अश्व के समान वेगवान् हो । तुम मेधावी हो । तुम देवताओं में द्रुघद्रुम नाम से प्रसिद्ध हो । हमारे यज्ञ में दौत्य कर्म करने वाले होओ ॥ १ ॥ हे स्तुत्य अग्ने ! तुम देवताओं के मित्र हो । अपने तेज से पृथिवी के तट को शब्द से गुँजाते हुए सब वनों को भस्म करते हुए अपने मार्ग से आगमन करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम युवा हो । जब तुम शोभन रूप में प्रकट होते हो तभी यज्ञ किया जाता है । तुम होता रूप से बैठकर तृप्ति को प्राप्त होते हो । उस समय सबके लिए अहणीय मातृभूत आकाश-पृथिवी के आह्वानकारी यज्ञ-नेता अग्नि को मेधावी जन प्रकट करते हैं । जो अग्नि हविवाहक हैं, वही मनुष्यों के गृहों में निवास करते हैं ॥ ४ ॥ आकाश और पृथिवी जिन अग्नि की वृद्धि करती हैं और जिन

अग्नि के लिए होता यज्ञ करता है, वह अग्नि हवियों के वहन करने वाले तथा ग्रहादि देवताओं के धारणकर्त्ता हैं। वे मनुष्यों के घरों में निवास करते हैं ॥ ५ ॥ जिन मनुष्यों ने मन्त्रों से संस्कृत कर उन्हें बढ़ाया और जिन्होंने अग्नि को यज्ञ-कामना से प्रज्वलित किया है, वे अग्नि अन्न के द्वारा सभी पोषक बलों को प्रवृद्ध हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम वसुओं के स्वामी हो। वसिष्ठ वंशज ऋषि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हविदाता यजमान और स्तोता को अन्न से शीघ्र ही परिपूर्ण करो और हमारी सदा रक्षा करते रहो ॥ ७ ॥ [१०]

८ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता -अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥१
अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२
कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४
असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५
इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥६
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।११

जिन अग्नि के रूप को घृत से आहुत करते हैं और हव्य देते हुए विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते हैं, वे अग्नि स्तुतियों के साथ ही बढ़ जाते हैं।

वे अग्नि उषा से पूर्ण प्रदीप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥ यह अग्नि होता हैं । यह महान् कहे जाते हैं । इनकी दीप्ति सब ओर फैलती है । इनका मार्ग काला होता है । यह औषधियों द्वारा प्रवृद्ध होते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम किस हवि को प्राप्त कर हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होगे ? तुम किस स्वधा की कामना करोगे ? तुम सुन्दर दान वाले हो । हम तुम्हारा दान पाकर कब धनाधिकारी होंगे ? ॥ ३ ॥ जब अग्नि सूर्य के समान तेजस्वी होकर प्रकाश फैलाते हैं, तब वे यजमान द्वारा प्रशंसित होते हैं । जिन अग्नि ने पुरु को हराया, वही अग्नि देवताओं के लिए प्रदीप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हें प्रचुर हव्य दिया गया है । तुम तेजों के सहित प्रसन्न होओ और स्तुति सुनो । तुम स्तुतियों से प्रसन्न होकर अपने शरीर को बढ़ाओ ॥ ५ ॥ सौ गौओं का विभाग करने वाले और सहस्र गौओं से युक्त कर्मवान् तथा मेधावी वसिष्ठ ने इस स्तोत्र को अग्नि की प्रसन्नता के लिए रचा है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम वसुगण के स्वामी हो, बल से उत्पन्न हुए हो । वसिष्ठ तुम्हारी स्तुति में प्रवृत्त हुए हैं । तुम हवियुक्त यजमान और स्तोता को अन्न से शीघ्र ही सम्पन्न करो और श्रेष्ठ रक्षणों से हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ [११]

९ सूक्त

(ऋषि – वसिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥१
स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥२
अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व आ विवेश ॥३
ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसन्दृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥४
अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।

सरस्वती मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५
त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१२

अग्नि सब प्राणियों को पवित्र करने वाले, होता, हर्षदायक और उषा के मध्य चैतन्य होने वाले हैं। वह देवताओं और मनुष्यों में बुद्धि को धारण करने वाले और पुण्यकर्मा यजमानों में धन धारणकर्त्ता हैं ॥ १ ॥ पणियों के मार्ग का उद्घाटन करने वाले अग्नि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। उन्होंने पयस्विनी गौओं को हमें प्राप्त कराया है। शान्तमन वाले अग्नि अपने विशिष्ट तेज से सम्पन्न होकर उषा के मध्य जागृत होते और अन्न के रूप में औषधियों में प्रविष्ट होते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम मनुष्यों के यज्ञानुष्ठान में स्तुतियों के पात्र होते हो। तुम संग्राम भूमि में अत्यन्त तेजस्वी होते हो। स्तुतियाँ अग्नि को प्रवृद्ध करती हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने! दूत-कर्म के लिए देवताओं के पास गमन करो। तुम स्तुति करने वालों की हिंसा मत करना। तुम हमें धन देने के लिए मरुद्गण, अश्विद्वय, जल, सरस्वती आदि सब देवताओं का यज्ञ करते हो ॥ ५ ॥ हे अग्ने! वसिष्ठ तुम्हारी परिचर्या करते हैं। तुम कटुभाषी दैत्यों का हनन करो। अनेक स्तुतियों से देवताओं को प्रसन्न करो और हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥ [१२]

१० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१
स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥३
इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।

आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥४
मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥५ ।१३

सूर्य के समान ही अग्नि अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। वे कामनाओं की वर्षा करने वाले, हवियों के प्रेरक, प्रदीप्त अग्नि कर्मों को प्रेरित कर यश पाते हैं। वे अग्नि कामना वाले उपासकों को जाग्रत करते हैं ॥ १ ॥ उषाकाल में अग्नि सूर्य के समान दमकते हैं। वे यज्ञ को विस्तृत कर श्रेष्ठ स्तुतियों का उच्चारण करते हैं। अग्नि देवता सब प्राणियों को झुकाते हैं ॥ २ ॥ धन की याचना करने वाली देव-काम्या स्तुतियाँ अग्नि के अभिमुख होती हैं। वे अग्नि सुन्दर दर्शन, श्रेष्ठ गमन, मनुष्यों के पति और हव्य-वहनकर्त्ता हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! वसुगण से मिलकर इन्द्र को बुलाओ। रुद्रों से मिलकर रुद्र को आहूत करो। आदित्यों से सुसंगत होकर अदिति का आह्वान करो। अंगिराओं से सुसंगत होकर वरणीय बृहस्पति का आह्वान करो ॥ ४ ॥ कामना वाले पुरुष स्तुति योग्य अग्नि की स्तुति करते हैं। अग्नि रात्रि में शोभा सम्पन्न होते हैं। देव-याग में वे हवि देने वाले के दूत होते हैं ॥ ५ ॥ [१३]

११ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः-त्रिष्टुप्)

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥१
त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥२
त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥३
अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥४
आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।

इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१४

हे अग्ने ! तुम महान् हो । यज्ञ का सम्पादन करने वाले और देवताओं को प्रसन्न करने वाले हो । तुम सब देवताओं के साथ रथारूढ़ होकर आगमन करो और मुख्य होता होकर कुश पर विराजमान होओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम गतिमान हो । हवि देने वाले पुरुष तुम्हें सदा ही दूत बनाते हैं । तुम जिस यजमान के कुशाओं पर देवताओं सहित विराजमान होते हो, वह यजमान शुभ दिन वाला होता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! ऋत्विगगण तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त हवि देते हैं । तुम हमारे इस यज्ञ में दूत होकर हव्य वहन करो और शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ महायज्ञ के अधीश्वर अग्नि हवियों के भी स्वामी हैं । वसुगण इनके कर्मों की प्रशंसा करते हैं । इन अग्नि को देवताओं ने हव्य वाहक बनाया है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हव्य सेवनार्थ देवताओं का आह्वान करो । इस यज्ञ में इन्द्रादि को हर्षयुक्त करो यज्ञ द्रव्य को आकाश में ले जाते हुए हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [१४]

१२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥२
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिःसदा नः ॥३ ।१५

जो अग्नि अपने स्थान में बढ़ते हुए तेज-सम्पन्न होते हैं,—जो अद्भुत ज्वाला वाले, महान्, आकाश-पृथिवी के मध्य स्थित, शोभन आह्वान वाले हैं, हम ऐसे अग्नि के पास नमस्कार सहित गमन करते हैं ॥ १ ॥ अपनी महिमा द्वारा वे अग्नि सब पापों को नष्ट करते हैं। यज्ञ में उनकी स्तुति की जाती है, हम यज्ञकर्ता उनकी स्तुति करते हैं, वे पापों हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥ हे

अग्ने! मित्रावरुण भी तुम्हीं हो। वसिष्ठों ने तुम्हारा स्तोत्र किया है। तुम्हारे धन हमारे लिए सरलता से प्राप्त हों। तुम हमारे पालक रहो॥ ३॥ [१५]

१३ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः। देवता–वैश्वानरः। छन्द–पंक्तिः)

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम्।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥१
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२
जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।१६

राक्षसों का हनन करने वाले कर्मवान् अग्नि के लिए यज्ञानुष्ठान करते हुए, हे स्तोताओ! उन्हीं की स्तुति करो। मैं प्रसन्न हृदय से, अभीष्टों की सिद्धि करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ॥ १॥ हे अग्ने! तुमने दीप्ति से तेजोमयी हुई आकाश पृथिवी को परिपूर्ण किया है। तुमने अपनी महिमा से ही देवताओं को शत्रु के हाथ से छुड़ाया था॥ २॥ हे अग्ने! सूर्य रूप से तुम ही उत्पन्न होते हो। तुम सर्वत्रगन्ता हो, जब तुम प्राणियों का सन्दर्शन करो, उस समय स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों। तुम हमारी सदा रक्षा करो॥ ३॥ [१६]

१४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता–अग्निः। छन्द–बृहती, त्रिष्टुप्)

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥१
वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥२

आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।१७

हम हविर्वान् यजमान जातवेदा अग्नि की परिचर्या करते हैं । हम देवताओं की स्तुति करते हुए अग्नि को प्रसन्न करेंगे । हे मंगलमयी ज्वालाओं से सम्पन्न अग्ने ! हव्य-प्रदान द्वारा हम तुम्हारी सेवा में तत्पर होंगे ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हम समिधा और स्तुति द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे । हे मंगलमय ज्वालायुक्त अग्निदेव ! हम हवि प्रदान द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो । हम तुम्हारे तेज के उपासक हों और तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥ [१७]

१५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥१
यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥२
स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥३
नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । वस्वः कुविद्वनाति नः ॥४
स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा ।
अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥५ ।१८

हे ऋत्विजो ! जो अग्नि हमारे निकटस्थ बन्धु हैं, उनके साथी काम्य-साधक अग्नि के मुख में हवि डालो ॥ १ ॥ घरों का पालन करने वाले युवकतम अग्नि पंचजनों के सम्मुख प्रत्येक गृह में निवास करते हैं ॥ २ ॥ जो अग्नि हमें मन्त्र देते हैं, वही हमें सब विघ्नों से बचावें । वही हमारे धन की रक्षा करें और हमें पापों से मुक्त करें ॥ ३ ॥ हम गरुड़ के समान द्रुतगामी अग्नि के लिए अभिनव स्तोत्र रचते हैं । वे हमें महान् धन प्रदान करें ॥ ४ ॥ यज्ञ के अग्रभाग में दमकती हुई अग्नि की ज्वालाएं पुत्र वाले यजमान के धन के समान शोभाजनक होती हैं ॥ ५ ॥ (१८)

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥६
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ॥७
क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥८
उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ॥९
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥१०।१९

यज्ञकर्त्ताओं के श्रेष्ठ हव्य का वहन करने वाले अग्नि हमारी हवियों की इच्छा करते हुए हमारे स्तोत्र से प्रसन्न हों ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम यजमानों द्वारा आहूत किये जाते हो । तुम वीरकर्मा और तेजस्वी हो । हे संसार के स्वामी ! तुम्हें हमने प्रतिष्ठित किया है ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम दिन-रात प्रज्ज्वलित रहो । तुम हम पर प्रसन्न होकर श्रेष्ठ कर्म वाले बनो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! धन की अभिलाषा वाले यजमान अनुष्ठान द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हैं ॥ ९ ॥ हे स्तुत्य अग्ने ! तुम श्रेष्ठ ज्वाला वाले, पवित्र और शोधक हो । राक्षसों के हिंसाकारी यत्नों को रोको ॥ १० ॥ [१९]

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥११
त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यम् ॥१२
अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥१३
अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ॥१४
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्यः ॥१५।२०

हे अग्ने ! तुम संसार के पालक होकर हमें धन प्रदान करो । भग देवता भी हमें धन प्रदान करें ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न धन हमें प्रदान करो । सविता, भग और अदिति भी हमें धन प्रदान करें ॥१२ हे अग्ने ! तुम जरा-रहित हो । हिंसाकारियों को अपने संतापदायक तेज से भस्म करो और पाप से हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ हे दुर्धर्ष अग्ने ! तुम हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिए लौह-नगरी का निर्माण करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! अन्धकार को दूर करो । तुम हमें पाप से और पाप कर्मा दुष्ट से रक्षित करो ॥ १५ ॥ [२०]

१६ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्, बृहती, पंक्तिः)

एना वो अग्नि नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ।२
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीढ्हुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥३
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्त्वेमहे ॥४
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥५
कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६ ।२१

हे यजमान ! मैं तुम्हारे निमित्त नवोत्पन्न, गतिवान्, यज्ञवान्, देव-दूत अग्नि का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ वे अग्नि सब के पालनकर्त्ता हैं। वे दोनों अश्वों को रथ में योजित करते हैं और देवताओं की ओर शीघ्रता से जाते हैं। वे श्रेष्ठ आहुति वाले, यज्ञ योग्य एवं सुन्दर कर्म वाले हैं। उन अग्नि का धन वसिष्ठ के वंशज ऋषियों को प्राप्त हो ॥ २ ॥ इन आह्वानीय अग्नि का कामनाकारी तेज उन्नत हो रहा है। इनका धूम्र अन्तरिक्ष को स्पर्श करने वाला है। सभी मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त कर रहे हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम यशस्वी हो। हम तुम्हें दूत रूप से वरण करते हैं। तुम हविर्वहन करते हुए देवाह्वाक होओ। जब हम याचना करें, तभी हमें उपभोग्य धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! सभी प्राणी तुम्हें पूजते हैं। तुम हमारे यज्ञ में गृह-स्वामी बनो। तुम होता और पोता भी हो। यज्ञ में हव्य का भक्षण

करो ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ कर्म वाले हो यजमान को रत्न धन प्रदान करो। हमारे यज्ञ में सबको तेज दो, होता की वृद्धि करो ॥ ६ ॥ [२१]

इवे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥७
येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥८
स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥९
ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥१०
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥११
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥१२ ।२२

हे अग्ने ! भले प्रकार तुम्हारा आह्वान किया जाता है। जो धनिक दाता गवादि धन दान करते हैं वे भी देवताओं के प्रीति-भाजन हों ॥ ७ ॥ जिन घरों में हवि रूप वाली देवी पूर्ण होकर निवास करती है, हे बलवान अग्ने ! उन घरों की दुष्ट निन्दकों से रक्षा करो। हमें सुख प्रदान करो, जिससे हम तुम्हारी स्तुति करते रहें ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी एवं हव्य वाहक हो। तुम हमें मुख में स्थित मधुर वाणी के द्वारा धन प्राप्त कराओ। हम हविर्वान पुरुषों को कर्म में लगाओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे यजमान यश की कामना से हविदान में लगते हैं, उन्हें पाप से रक्षित करो ॥ १० ॥ हे स्तोता ! अग्नि तुम्हारे स्रुक की कामना करते हैं, तुम अपने पात्र को सोम से भर कर प्रस्तुत करो, तब अग्नि तुम्हारे यज्ञ को वहन करेंगे ॥ ११ ॥ हे देवगण तुमने बुद्धिमान अग्नि को होता नियुक्त किया है। यह अग्नि यजमान को सुन्दर धन प्रदान करने वाले हों ॥ १२ ॥ [१२]

१७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१
उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥२
अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥३
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥४
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥५
त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥६
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥७ ।२३

हे अग्ने ! समिधा द्वारा समृद्धि को प्राप्त होओ । इस यज्ञ में अध्वर्यु गण कुश बिछाते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! देवताओं की इच्छा करने वाले द्वारों के लिए आश्रय रूप होकर यज्ञ अभिलाषा वाले देवताओं का आह्वान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! देवताओं के अभिमुख गमन करो । हवि से यज्ञ करो और हमारे यज्ञ को देवताओं की प्रसन्नता का कारण बनाओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! अविनाशी देवताओं को यज्ञ से युक्त करो । उनके लिए हवि दो और स्तुतियों से प्रसन्न करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हमें समस्त धन प्रदान करो । हमें दिए गए आशीर्वचन सत्य हों ॥ ५ ॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! उन सब देवताओं ने तुम्हें हविवहन करने वाला नियुक्त किया है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । हम तुम्हें हव्य प्रदान करेंगे । तुम महान् हो, हमें रत्न-धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ [२३]

१८ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥
राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।

पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥२
इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥३
धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥४
अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥५ ।२४

हे इन्द्र ! हमारे पूर्वजों ने तुम्हारी स्तुति द्वारा ही समस्त धनों को प्राप्त किया है । तुम्हारे कर्म से ही गौऐं दोहन कर्म द्वारा दुग्ध देने वाली होती हैं । देवताओं के उपासकों को तुम श्रेष्ठ धन प्रदान करते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी बने रहते हो । तुम मेधावी और कवि हो, स्तोताओं को गौ, अश्व और रूप दो । हम तुम्हारी उपासना करते हैं, तुम हमें धन के योग्य बनाओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पास हमारी रमणीय स्तुतियाँ गमन करती हैं । तुम्हारा धन हमारी ओर आगमन करे । हम तुम्हारे अनुग्रह से सुख पावें ॥ ३ ॥ ज्ञानी वसिष्ठ श्रेष्ठ तृण वाली गोष्ठ में वास करने वाली गौ के समान स्तोत्र रूप बछड़े को उत्पन्न करते हैं । सभी प्राणी तुम्हें गौओं का स्वामी मानते हैं । हे इन्द्र ! हमारी स्तुति का सामीप्य प्राप्त करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! विकट धारा वाली परुष्णी नदी से तुमने सुदास राजा को पार करने योग्य बनाया । नदियों की तरङ्ग से स्तोता के यातायात को रोकने वाले शाप को तुमने ही नष्ट किया ॥ ५ ॥ [२४]

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥६
आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥७
दुराध्यो अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥८

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकां अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥९
ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगाव· पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥१० ।२५

तुर्वश नामक एक यज्ञकर्ता राजा थे । भृगुओं और द्रुह्युओं ने मत्स्य के समान जल में बँधे रहने पर भी सुदास और तुर्वश से धन के निमित्त भेंट की । इन दोनों में एक को इन्द्र ने मार डाला और सुदास को पार लगा दिया ॥ ६ ॥ हव्यों का पाक करने वाले, मङ्गल सुख वाले दीप्तिवान् पुरुष इन्द्र का स्तोत्र करते हैं । सोम पान से मदयुक्त हुए इन्द्र गौओं को छुड़ा लाये । तब उन्होंने गौओं के छिपाने वाले राक्षसों का वध कर डाला ॥ ७ ॥ दुष्ट हृदय वाले शत्रुओं ने परुष्णी नदी को खोद कर उसके कगारों को ढा दिया । सुदास ने इन्द्र की कृपा प्राप्त की थी । चयमान के पुत्र कवि को सुदास ने पालतू पशु के समान धाराशायी किया था ॥ ८ ॥ इन्द्र ने परुष्णी के किनारे को ठीक किया, तब उसका जल गन्तव्य दिशा में जाने लगा । अश्व भी अपने गन्तव्य स्थान में गया । तब इन्द्र ने सुदास के शत्रुओं को अपने वश में कर लिया ॥ ९ ॥ जैसे चराने वाले के बिना गौएं जौ के खेत में जाती हैं, वैसे ही माता द्वारा प्रेरित मरुद्गण अपनी इच्छानुसार इन्द्र के पास गए । तब मरुद्गण के अश्व भी प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥ १० ॥ [२५]

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥११
अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥१२
वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३
नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ।१४

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन् मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥२६

राजा सुदास ने दो प्रदेशों के इक्कीस पुरुषों को मार कर यश संचित किया। अध्वर्यु जैसे कुश को काटता है वैसे ही उस राजा ने शत्रुओं को काट डाला। इन्द्र ने सुदास की सहायता के लिए मरुद्गण को प्रकट किया॥ ११ फिर उन वज्रहस्त इन्द्र ने द्रुह्यु, कवष, श्रुत और वृद्ध नामक शत्रुओं को जल-मग्न किया। उस समय जिन पुरुषों ने उनकी स्तुति की वे उनके सखा हो गए॥ १२॥ इन्द्र ने अपनी शक्ति से उक्त शत्रुओं के नगरों को भी तोड़ डाला और अनु-पुत्र का घर तृत्सु को दे दिया। हे इन्द्र! हम पर ऐसी कृपा करो जिससे हम कठोरवक्ता शत्रुओं पर विजय पा सकें॥ १३॥ अनु और द्रुह्यु की गौओं की कामना करने वाले छियासठ सहस्र छियासठ संबंधियों का सुदास के लिए वध किया। यह सब कर्म इन्द्र की वीरता प्रदर्शित करते हैं॥ १४॥ तब यह तृत्सुवंशज संग्राम भूमि से भागने लगे, परन्तु बाधा उपस्थित होने पर अपना समस्त धन उन्होंने सुदास को दे दिया॥ १५॥ [२६]

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः॥१६
आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे॥१७
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र॥१८
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च वलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि॥१९
न त इन्द्र सुमतयो न रायः सञ्चक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत्॥२०॥२७

हिंसाकारी, यज्ञ शून्य, इन्द्र विरोधी पुरुषों को सुदास के निमित्त इन्द्र ने पृथिवी पर गिराया। इन्होंने क्रोधित शत्रुओं के क्रोध को व्यर्थ कर दिया

तब सुदास के शत्रु ने संग्राम में मुख मोड़ लिया ॥ १६ ॥ सुदास के लिए इन्द्र ने छाग द्वारा सिंह को मरवा दिया, सुई द्वारा ही यूप का कोना काटा और समस्त धन सुदास को दे दिया ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने शत्रुओं को वशीभूत कर लेते हो । इस नास्तिक को वशीभूत करो । यह तुम्हारे स्तोता का अहित करता है । इसके विरुद्ध तीक्ष्ण वीर को प्रेरित कर इसे नष्ट कर डालो ॥ १८ ॥ इस युद्ध में इन्द्र ने नास्तिक को मार डाला । यमुना ने इन्द्र की सन्तुष्टि की । तृत्सुओं ने भी उन्हें प्रसन्न किया । शिग्रु, यक्षु और अज ने भी उपहार प्रस्तुत किए ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राचीन कर्म उषा के समान वर्णनातीत हैं । तुम्हारे नवीन कर्मों का वर्णन करना भी कठिन है । तुमने देवक को मारा और शिला से शम्बर का भी संहार किया ॥२०॥ (२७)

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१
द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२
चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३
यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४
इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५ ।२८

हे इन्द्र ! जिनके मारे जाने की कामना राक्षसगण करते हैं, उन वसिष्ठ पाराशर आदि ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की थी । वे तुम्हारी मित्रता को नहीं भूले, क्योंकि तुमने उनकी सदा रक्षा की है ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! तुम देवताओं में श्रेष्ठ हो । मैंने तुम्हारी स्तुति करके सुदास से सौ गौ और दो रथ प्राप्त किये हैं । होता के समान मैं भी यज्ञ स्थान में जाता हूँ ॥ २२ ॥ राजा सुदास के श्रद्धा और दानादि कर्मों वाले, स्वर्णालंकारों से विभूषित, सरल-

गामी चार अश्व, पालन योग्य वसिष्ठ को, पुत्र के समान ले जाते हैं ॥ २३ ॥ आकाश पृथिवी में विस्तृत यश वाले राजा सुदास उत्तम कर्म वाले ब्राह्मणों को धन-दान करते हैं। इन्द्र के समान उनके स्तोत्र किए जाते हैं। संग्राम उपस्थित होने पर युध्यामधि नामक शत्रु को नदियों ने विनष्ट किया था ॥ २४ ॥ हे मरुद्गण! यह राजा सुदास के पिता हैं। तुम इन्हीं के समान सुदास की भी रक्षा करो। इनका बल क्षीण न हो। तुम इनके गृह को भी रक्षित करो ॥ २५ ॥ (२८)

१९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥४
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहन्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५ ।२९

तीक्ष्ण सींग वाले वृषभ के समान विकराल होकर इन्द्र अपने शत्रुओं को अकेले ही गिराते हैं और उनके घरों को छीन लेते हैं, वे इन्द्र सोमाभिषवकारी यजमान को धन प्रदान करें ॥ १ ॥ हे इन्द्र! जब तुमने कुत्स को धन दिया और दस्यु शुष्ण और कुयव को जीता उस समय कुत्स की रक्षा की थी ॥ २ ॥ हे इन्द्र! हविर्दाता सुदास की रक्षा करो संग्राम भूमि, में पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु और पुरु के रक्षक होओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम स्तुत्य हो। तुमने मरुद्गण के सहयोग से अनेक वृत्रों का वध किया है। दभीति की रक्षा

करो और सदा इनके मित्र रहो ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तूयमान और स्तोत्र मान होकर वृद्धि को प्राप्त होओ। हमें अन्न और गृह प्रदान करो। हमारे सदा रक्षक रहो ॥ ११ ॥ [२६]

२० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्,)

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्ववावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मियुँवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥१
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२
युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ।३
उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥४
वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५ ।१

बल के निमित्त इन्द्र की उत्पत्ति हुई है। वे मनुष्य के जिस कार्य को करना चाहते हैं, उसे कोई रोक नहीं सकता। वे इन्द्र यज्ञ स्थान को गमन करने वाले हैं। वे हमें पापों से मुक्त करें ॥ १ ॥ वृत्र-हनन के लिए इन्द्र को प्राप्त होते हैं। वीर इन्द्र स्तोता का आश्रय प्रदान कर उसकी रक्षा करते हैं। उन्होंने सुदास के लिए नव निर्मित प्रदेश दिया। वह यजमान को बारंबार धन प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ संग्राम में दुर्धर्ष इन्द्र महान वीर हैं। वे असंख्य शत्रुओं को अकले ही हराते हैं। उन्होंने ही शत्रु-सेना में विघ्न उपस्थित किया। शत्रुओं को वे मार डालते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने बल से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण किया। जब तुम शत्रुओं पर वज्र फेंकते हो तब सोम-रस द्वारा तुम्हारी सेवा की जाती है ॥ ४ ॥ कश्यप ने इन्द्र को संग्राम के निमित्त प्रकट किया। वे इन्द्र मनुष्यों के स्वामी और सेनानायक होते हैं।

यही शत्रुओं के संहारक, गौओं के खोजने वाले और वृत्र का नाश करने वाले हैं ॥ ५ ॥ [1]

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥६
यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥७
यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥८
एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥९
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० ।२

इन्द्र का मन शत्रु-हनन कर्म में रहता है, जो पुरुष उनके इस मन का ध्यान करता है, वह अपने स्थान से कभी गिरता नहीं । इन्द्र अपने स्तोता को धन प्रदान करें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! पूर्वज अपने से लघु को जो धन देता है, छोटे से जो धन बड़ा पाता है और जो धन पिता से पुत्र पाता है, इन तीनों प्रकार के धनों को यहाँ लाओ ॥ ७ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हें जो मित्रभूत व्यक्ति हवि देता है, वह सदा तुम्हारे अनुग्रह को प्राप्त करते हुए अन्नवान् हों और रक्षा-साधनों से सम्पन्न घर में निवास करें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! यह क्षरित सोम तुम्हारी कामना कर रहा है । स्तोता तुम्हारी स्तुति में लगा है । मैं तुम्हारा स्तोता धन की कामना कर रहा हूँ । तुम शीघ्र ही हमें बसाने वाला धन प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! अपने दिये धन का उपभोग करने की सामर्थ्य हमें दो । हविदाता का पालन करो । हम स्तुति के कार्य में मन से लगें । तुम मेरी सदा रक्षा करते रहो ॥ १० ॥ [२]

२१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥१
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥२
त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद्वावक्रे रथ्यो न धेना रेजन्ते विश्वः कृत्रिमाणि भीषा ॥३
भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥४
न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५ ।३

यह गव्य युक्त सोम निष्पन्न होकर तेजोमय हुआ है । इन्द्र इस पर रुचि रखते हैं । हे इन्द्र ! हम तुम्हें यज्ञ द्वारा जगावेंगे । तुम हमारी स्तुति पर ध्यान दो ॥ १ ॥ यज्ञ में पहुँच कर यजमान कुश-विस्तृत करते हैं । वहाँ सोमाभिषवकारी पाषाण घोर शब्द करते हैं । अन्न से युक्त ऋत्विजों द्वारा यह पाषाण घर से लाए जाते हैं ॥ २ ॥ हे वीर इन्द्र ! वृत्र द्वारा रोके गए जल को तुमने प्रेरित किया था । तुमने ही नदियों को रथारूढ़ वीरों के समान प्रवाहित किया, तुम्हारे भय से भीत संसार कम्पायमान होता ॥३॥ मनुष्यों का हित जानने वाले इन्द्र ने असुरों के कर्म में विघ्न डाला और उनके सब स्थानों को कम्पित किया । फिर उन्होंने अपने वज्र द्वारा राक्षसों का नाश किया ॥४॥ हे इन्द्र ! दैत्यगण हमें हिंसित न करें । वे हमको हमारी प्रजा से पृथक् न करें । हमारे यज्ञ में ब्रह्मचर्य-विमुख व्यक्ति बाधक न हों ॥ ५ ॥ (३)

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥६
देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥७
कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥८

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके भीतिमर्यो वनुषा शवांसि ॥९
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० ।४

हे इन्द्र ! तुम अपने कर्म से सब प्राणियों को वश में रखते हो। तुम्हारी महिमा को संसार व्यर्थ नहीं कर सकता। तुमने अपने बल से वृत्र को मारा है। वह तुम्हारे बल का पार नहीं पा सका ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! प्राचीन देवता भी तुमसे अपने को निर्बल मानते थे। तुम शत्रुओं को हरा कर उपासकों को धन प्रदान करते हो। स्तोतागण अन्न के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम ईश्वर हो, स्तोतागण रक्षा के लिए तुम्हें आहूत करते हैं। तुम अनेकों को दुःख से बचाते हो। तुम दुर्धर्ष हिंसक को नष्ट करो ॥८॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें स्तुतियों से बढ़ाने वाले सदा तुम्हारे रहें। तुम अपनी महिमा से सबको पार लगाते हो। तुम्हारे द्वारा रक्षित स्तोता आक्रमणकारियों को जीते ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे अन्न का उपभोग करें ऐसी शक्ति दो। तुम हविदाता का पालन करो। हम स्तुति-कार्य में मन से लगें तुम सदा हमारे रक्षक रहो ॥ १० ॥ [४]

२२ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः। देवता–इन्द्रः। छन्द–उष्णिक्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२
बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥४

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥५ ।५

हे इन्द्र ! इस हर्षकारी सोम-रस का पान करो । दोनों हाथों में पकड़े गए सोमाभिषव प्रस्तर ने इसे निष्पन्न किया है ॥ १ ॥ हे हर्यश्व ! तुम्हारे प्रिय सोमरस ने शक्ति देकर वृत्रादि शत्रुओं का नाश किया है, वही सोम तुम्हें प्रसन्नता दे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मैं वसिष्ठ तुम्हारी जिस स्तुति को करता हूँ, उसे तुम जानो और स्वीकार करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! इस सोमाभिषव प्रस्तर के शब्द को और स्तोता के स्तोत्र पर ध्यान दो । मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे श्रेष्ठ बुद्धि में स्थित करो ॥ ४ ॥ हे शत्रुजेता इन्द्र ! तुम्हारे बल को मैं जानता हूँ । मैं तुम्हारे स्तोत्र से विमुख नहीं हो सकता । मैं तुम्हारे नाम का सदा कीर्त्तन करूँगा ॥ ५ ॥ [५]

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥६

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥७

नू जिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥८

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९ ।६

हे इन्द्र ! तुम अनेक सवन वाले हो । तुम अपने को हमसे दूर मत करो । मैं स्तोता तुम्हें आहूत करता हूँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! सभी सवन तुम्हारे हैं । यह स्तुति तुम्हें बढ़ाने वाली हो । तुम आह्वान के पात्र हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! कौन-सा स्तोता तुम्हारी कृपा को नहीं पायेगा ? कौन सा उपासक तुम्हारा धन प्राप्त न करेगा ? ॥८॥ सभी प्राचीन और नवीन ऋषियों ने तुम्हारे लिए स्तोत्र प्रकट किये हैं । तुम्हारी मैत्री हमारा कल्याण करने वाली हो । तुम सदा हमारा पालन करो, ॥ ९ ॥ [६]

२३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३
आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।७

अन्न-काम्य स्तोता ने यह सब स्तोत्र उच्चारित किये हैं। हे वसिष्ठ! इस यज्ञ में इन्द्र का स्तव करो। उन्होंने अपनी महिमा से सब लोकों को व्याप्त कर रखा है। मैं उनकी सभा में उपस्थित होना चाहता हूँ। वे मेरे आह्वान को सुनें॥ १॥ औषधियों के वृद्धि-काल में देवताओं की स्तुति की जाती है। हे इन्द्र! तुम्हारी आयु का ज्ञाता इन मनुष्यों में कोई भी नहीं है। तुम हमें सब पापों से पार करो॥ २॥ इन्द्र के रथ में इन्द्र के दोनों हर्यश्वों को योजित करता हूँ। इन्द्र हमारी स्तुतियों ग्रहण करते हैं। उनकी महिमा से आकाश पृथिवी व्याप्त हुई है। इन्द्र ने शत्रुओं को नष्ट कर कर डाला है॥ ३॥ हे इन्द्र! जल की वृद्धि हो। वायु जैसे नियुत की ओर गमन करते हैं, वैसे ही तुम मेरी ओर आओ और कर्म के द्वारा श्रेष्ठ अन्न मुझे दो॥ ४॥ हे इन्द्र! सोम तुम्हारे लिए हर्षकारी हो। तुम स्तोता को पुत्रवान् करो, तुम मनुष्यों पर कृपा करने वाले हो। इस यज्ञ में हम पर प्रसन्न होओ॥ ५॥ वसिष्ठों ने इस

स्तोत्र द्वारा इन्द्र की पूजा की है। वे स्तुत होकर हमें श्रेष्ठ गवादि धन दें और हमारा सदा पालन करते रहें॥ ६ ॥ [७]

२४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥१
गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥२
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥३
आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥४
एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥५
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।८

तुम्हारे यज्ञ के लिए स्थान बनाया गया है। हे इन्द्र! मरुद्गण सहित आओ। जैसे तुम हमारे रक्षक हुए हो, वैसे ही हमें धन प्रदान करो। तुम हमारे सोम का आनन्द प्राप्त करो॥ १ ॥ हे पूजनीय इन्द्र! हमने तुम्हारे मन को आकर्षित किया और सोमाभिषव किया। हमने मधुररस को पात्र में सींचा है। यह स्तुति तुम्हें आहूत करती है ॥ २ ॥ हे इन्द्र! इस यज्ञ में सोम पीने के लिए आओ। तुम्हारे हर्यश्व हमारे स्तोत्र की ओर तुम्हें लावें॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम मरुद्गण के साथ शत्रुओं का वध करो और हमें अभीष्ट-वर्षक पुत्र दो। तुम हम स्तोताओं की ओर आगमन करो॥ ४ ॥ यह बलकारक स्तोत्र इन्द्र के निमित्त उच्चारित हुआ है। हे इन्द्र! यह स्तोता

धन की याचना करता हूँ। तुम हमें धी सम्पन्न पुत्र भी दो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! तुम हमें धन से सम्पन्न करो। हम तुम्हारी कृपा को प्राप्त करें। हम हविदाता पुत्र से सम्पन्न ऐश्वर्य पावें। तुम हमारा सदा पालन करो ॥६॥ [८]

२५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥१
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्रानभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर सम्भरणं वसूनाम् ॥२
शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥३
त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।६

हे इन्द्र! तुम मनुष्यों का हित करने वाले हो। युद्ध के अवसर पर तुम्हारा वज्र हमारी रक्षा के लिए गिरे ॥ १ ॥ हे इन्द्र! जो मनुष्य हमें मारना चाहते हैं और जो हमारे निन्दक हैं, तुम उनके यश को समाप्त करो और हमें धनवान बना दो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! मैं सुदास तुम्हारी सैकड़ों रक्षाएं प्राप्त करूँ। तुम्हारे सैकड़ों दान मेरे हों। हिंसक शत्रुओं के आयुधों को नष्ट करो। तुम हमें यश और धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी उपासना में रत हूँ। मैं तुम्हारे दान में अवस्थित हूँ। तुम हमें कर्म लगाओ। हम पर कभी क्रोध मत करना ॥ ४ ॥ हम इन्द्र का स्तोत्र करते हुए उनसे

दिव्य बल माँगते हैं। हे इन्द्र! हम हवि-सम्पन्न यजमानों को पुत्र-युक्त ऐश्वर्य दो और सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [६]

२६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥१

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥२

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥४

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।१०

जो सोम-रस इन्द्र के लिए प्रस्तुत नहीं होंगे, उनमें तृप्ति नहीं होगी। स्तोत्र-हीन सोम से भी तृप्ति नहीं होती। हमारा उक्थ इन्द्र का उपासक है, हम उसे इन्द्र के लिए ही उच्चारित करते हैं ॥ १ ॥ स्तुति के समय प्रस्तुत सोम इन्द्र को तृप्त करता है। जैसे पिता पुत्र को बुलाता है, वैसे ही ऋत्विग्गण रक्षा के निमित्त इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ २ ॥ सोमाभिषव के पश्चात् स्तोतागण इन्द्र के जिन कर्मों का वर्णन करते हैं, इन्द्र ने वे कर्म प्राचीन काल में किये थे। इन्द्र ने अकेले शत्रुओं के पुरों को परिमार्जित किया (राक्षसों से विहीन किया।) ॥ ३ ॥ इन्द्र अनेक रक्षा साधनों से सम्पन्न हैं, इस समस्त ग्रहणीय धनों के दाता है। वे संकट से मुक्त करते हैं। हम उनसे श्रेष्ठ कल्याण को पावें ॥ ४ ॥ सोमाभिषवकारी वसिष्ठ इन्द्र का स्तोत्र करते हैं। हे इन्द्र! हमें विभिन्न प्रकार के अन्न दो। हमारा सदा पालन करते रहो ॥ ५ ॥ [१०]

२७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४

नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।११

जब संग्राम-व्यवस्था सजी जाती है तब सहायता के लिए इन्द्र का आह्वान किया जाता है । हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों को धन देने वाले होकर हमें सम्पन्न गोष्ठ में प्रतिष्ठित करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! अपने बल से स्तोता को धनी करो । तुमने शत्रुओं के दृढ़ नगरों को तोड़ा है, अतः बुद्धि-दान द्वारा छिपे धन का प्रकाश करो ॥ २ ॥ इन्द्र सभी प्राणियों के ईश्वर हैं । सभी पार्थिव धनों के राजा इन्द्र ही हैं । वे हवि वाले यजमान को धन प्रदान करते हैं । वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें सब तरह धनप्राप्त करावें ॥ ३ ॥ हमने उन ज्ञानवान् इन्द्र को मरुद्गण के सहित आहूत किया है । वे हमारी शरीर रक्षा के लिए अन्न दें । इन्द्र जिस मित्र को धन देना चाहते हैं, वही श्रेष्ठ धन पाता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हमें शीघ्र धनवान बनाओ । हम तुम्हारे मन अपनी स्तुति द्वारा आकर्षित करेंगे । तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [११]

२८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।

विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ।।१
हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ।।२
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नृन्न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत् ।।३
एभिर्न इंद्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ।।४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।५ ।१२

हे इन्द्र ! हमारी स्तुति की ओर आओ । तुम्हारे अश्व हमारे समक्ष योजित हों, सब मनुष्य पृथक-पृथक तुम्हें आहूत करते हैं, तुम हमारे आह्वान को सुनते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम स्तोत्रों की रक्षा करते हो, तब तुम्हारी महिमा उसका पालन करती है । जब वज्र ग्रहण करते हो, तब अपने कर्म से विकराल होते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हारी बरम्बार स्तुति करते हैं, तुम उन्हें पृथिवी पर और स्वर्ग में भी प्रतिष्ठावान् करते हो । जो तुम्हारे निमित्त यज्ञ करता है, वह अयाज्ञिकों का वध करने शक्ति पाता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! दुष्टों के धन को छीन कर हमें दो । पाप का नाश करने वाले वरुण हमारा जो पाप देखें, उसीसे हमें मुक्त करें ॥ ४ ॥ जिन इन्द्र ने हमें अभीष्ट धन प्रदान किया है, जो स्तुतियों की रक्षा करते हैं, हम उन्हीं इन्द्र का स्तव करते हैं । हे इन्द्र ! हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥   [१२]

२९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ।।१
ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ।।२

का ते अस्त्यरङ्कृति सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥३
उतो घा ते पुरुष्या इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१३

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए निष्पीडित हुआ है, तुम उसके सेवनार्थ शीघ्र पधारो । हे इन्द्र ! इस सोम को पीकर हमारी धन की याचना पूर्ण करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र तुम अपने अश्वों द्वारा शीघ्र आओ । हमारे स्तोत्र सुन कर प्रसन्न होओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं की स्तुतियाँ सुशोभित हैं । हम तुम्हें प्रसन्न करने का यत्न कब करें ? यह स्तुतियाँ तुम्हारे लिए ही कर रहा हूँ, इन्हें सुनो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने मनुष्यों का हित करने वाले पूर्वज ऋषियों के स्तोत्र सुने हैं । तुम पिता के समान ही हमारा हित करने वाले हो, अतः मैं तुम्हें बारम्बार आहूत करता हूँ ॥ ४ ॥ जिन इन्द्र ने हमें महान् धन प्रदान किया है और जो स्तुतियों की रक्षा करते हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं । वे हमारी सदा रक्षा करें ॥ ५ ॥ [१३]

३० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप, पंक्तिः)

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥१
हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥२
अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्यग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३
वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।

यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१४

हे इन्द्र ! तुम बल सहित आगमन करो । हमारे धन को बढ़ाओ । तुम शत्रु-नाश के लिए अपने बल की वृद्धि करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! शरीर की रक्षा के लिए हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम्हीं सब में श्रेष्ठ सेनानायक हो । तुम अपने वज्र के द्वारा सब शत्रुओं को जीतो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! शुभ दिनों में होता रूप अग्नि श्रेष्ठ धन-दान के लिए इस यज्ञ में विराजमान होकर देवताओं का आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे ही हैं । हविदाता यजमान भी तुम्हारे ही हैं । उन्हें श्रेष्ठ घर दो । वे जरा-रहित और स्वस्थ रहें ।४। जिन इन्द्र ने हमें इच्छित धन दिया है और जो स्तुतियों की रक्षा करते हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ (१४)

३१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता-इन्द्रः । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्)

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६।१५

हे मित्रो ! सोम-पान करने वाले इन्द्र को स्तुति से प्रसन्न करो ॥ १ ॥ जैसे श्रेष्ठ धन वाले इन्द्र की स्तुति की जाती है, हम तुम भी उसी स्तुति का आश्रय लें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे अन्न दाता होओ । तुम हमें गौ और सुवर्ण देने की इच्छा करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी विशिष्ट स्तुतियाँ करते हैं, तुम हम पर अनुग्रह करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! कटुभाषी, निन्दक, अदानी व्यक्ति के हाथों में हमें मत सौंपना । हमारी स्तुति तुम्हें प्राप्त हो ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रहन्ता और प्रख्यात हो । मैं तुम्हारी कृपा से शत्रु का संहार करूँगा ॥ ६ ॥ [१५]

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥७
तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः ॥८
ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः ॥९
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥१०
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥११
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥१२ ॥१६

हे इन्द्र ! तुम्हारे बल के सामने आकाश-पृथिवी झुकती हैं । तुम महान् हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुन्दर दर्शन हो । सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है । सभी प्राणी तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥ हे मनुष्यो ! धन-लाभ के लिए सोमाभिषव करो और इन्द्र की स्तुति करो । जो तुम्हें हव्य से संतुष्ट करते हैं, उनके समक्ष प्रकट होओ ॥ १० ॥ व्यापक और महान इन्द्र के लिए हव्य एकत्र किया जाता और स्तोत्र रचे जाते हैं । उन इन्द्र के अनुष्ठानादि कर्मों की मेधावी जन सदा रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ इन्द्र की समस्त स्तुतियाँ शत्रु के पतन करने वाली हैं । अतः हे स्तोतागण ! इन्द्र की स्तुति करने के लिए सब मित्रों को उत्साहित करो ॥ १२ ॥ (१६)

३२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, पंक्तिः, अनुष्टुप्)

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥३
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥४
श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५ ।१७

हे इन्द्र ! अन्य यजमान भी तुम्हें न रोकें । तुम दूर से भी हमारे यज्ञ में आकर स्तोत्र सुनो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सोमाभिषव के पश्चात् स्तोतागण यज्ञ में बैठते हैं और धन की कामना से स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ पुत्र द्वारा पिता को बुलाए जाने के समान मैं स्तोता श्रेष्ठ दान वाले इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥ दधिमिश्रित सोमरस इन्द्र के लिए रखा है । हे वज्रिन ! इस सोम का पान करने को हमारे यज्ञ में आओ ॥ ४ ॥ याचना सुनने वाले इन्द्र से हम धन माँगते हैं । वे हमारी स्तुति को सुनें । हमारी आशा निष्फल न हो । जो इन्द्र सहस्रों दान करने वाले हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता ॥ ५ ॥ (१७)

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥६
भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥७
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥८
मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥९
नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१० ।१८

हे इन्द्र ! जो सोमाभिषवकारी तुम्हारा अनुचर होता है, उस वीर का विरोध करने का साहस किसी में नहीं होता ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम

हविदाताओं के विघ्नों को दूर करो । शत्रुओं को मारो । उन शत्रुओं के धन को हम पावें । तुम हमें धन प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥ हे मनुष्यो ! सोमपायी, वज्रहस्त इन्द्र के लिए अभिषव करो । उनके निमित्त पुरोडाश का पाक करो । वे इन्द्र यजमान को हर प्रकार सुख देते हैं ॥ ८ ॥ हे मनुष्यो ! सोम-याग मे विमुख मत होओ । इन्द्र की कामना करते हुए धन प्रापक यज्ञ में लगो । शुभ कर्मकारी पुरुष बलवान होकर शत्रुओं को जीतता और अशुभकर्मा पुरुष देव-विहीन होता है ॥ ९ ॥ दानी के रथ को कोई रोक नहीं सकता, न कोई हिंसित कर सकता है । इन्द्र और मरुद्गण जिसकी रक्षा करते हैं, वह गो-पूर्ण गोष्ठ प्राप्त करता है ॥ १० ॥ [१८]

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥११
उदिन्नवस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥१३
कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५ १९

हे इन्द्र ! तुम जिस स्तोता की रक्षा करोगे, वह तुम्हारी स्तुति कर अन्न पावेगा । तुम हमारे पुत्र आदि की और हमारी रक्षा करो ॥ ११ ॥ हर्यश्व इन्द्र जिस यजमान को बली बनाते हैं, उसे शत्रु हिंसित नहीं कर सकते । इन्द्र का कार्य सब बलवानों से भी बढ़ कर है ॥ १२ ॥ हे स्तोताओ इन्द्र के लिए सुन्दर स्तुति अर्पित करो । जो पुरुष इन्द्र के मन को अपनी ओर खींच लेता है, वह किसी बन्धन में नहीं पड़ता ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस पर कृपा करते हो उसे कौन नष्ट कर सकता है ? जो हविदाता श्रद्धा से

तुम्हें मनाता है, वह दिव्य धन पाता है ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हें हव्य दें, उन्हें रण क्षेत्र में सहायता दो । हम तुम्हारी स्तुति द्वारा सब पापों से पार होंगे ॥ १५ ॥ [१९]

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥१६
त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥१७
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१८
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥१९
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥२० ।२०

हे इन्द्र ! पार्थिव, अन्तरिक्षस्थ और दिव्य सब धनों के तुम स्वामी हो । तुम्हें दानादि से कोई रोक नहीं सकता ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम धन-दाता के नाम से प्रख्यात हो । यह सब मनुष्य अपने जीवन के लिए तुमसे अन्न माँगते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस धन के स्वामी हो, वह हमें प्राप्त हो । मैं स्तोता की धन से रक्षा करूँगा और पापी को धन नहीं दूँगा ॥१८॥ मैं श्रेष्ठ पुरुष को धन दूँगा । हे इन्द्र ! तुम ही हमारे बन्धु और पिता हो ॥ १९ ॥ शुभ कर्म वाला पुरुष ही सुख भोगता है । जैसे बढ़ई काष्ठ वाले चक्र को झुकाता है, वैसे ही मैं इन्द्र को स्तुति द्वारा झुकाऊँगा ॥२०॥ [२०]

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२१
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥२२
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२३
अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्याय: कनीयस: ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्य: ॥२४
परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृध: सखीनाम् ॥२५
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमु: ।
त्वया वय प्रवत: शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७ ।२१

निन्दा से धन लाभ नहीं होता । हिंसक धनी नहीं होता । हे इन्द्र ! तुम्हारे पास जो कुछ देने योग्य है, उसे उत्तमकर्मा पुरुष ही प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! पृथिवी पर कोई भी तुम्हारे समान उत्पन्न नहीं हुआ और न होगा । हम गौ, अश्व, अन्न की कामना से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! तुम बड़े हो । मैं तुच्छ मनुष्य हूँ । तुम मेरे निमित्त धन लाओ । हम सभी संग्रामों में धन-लाभ करें ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! शत्रुओं को भगाओ । हमें धन प्राप्त कराओ । तुम हमारे मित्र होकर युद्ध में रक्षा करो ॥ २५ ॥ हे इन्द्र ! हमें बुद्धि दो । पिता द्वारा पुत्र को देने के समान हमें धन दो । हम नित्य प्रति सूर्य के दर्शन करें ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! शत्रु हम पर आक्रमण न करें । हम तुम्हें नमस्कार करते हुए अनेक कर्मों को सिद्ध करेंगे ॥ २७ ॥ [२१]

३३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ:, वसिष्ठपुत्रा: । देवता—त एव: । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति:)

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दु: ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठा: ॥१
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।

पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् ॥२
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥४
उद् द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥५ ॥२२

वसिष्ठ वंशज ऋषि अपने शिर के दक्षिण भाग में चूड़ामणि धारण करते हैं। वे हम पर कृपा रखते हैं। मैं सबके समक्ष उनसे निवेदन करता हूँ कि वे हमसे अन्यत्र कहीं न जावें ॥ १ ॥ पाशद्युम्न को तिरस्कृत कर सोम-पान करते हुए इन्द्र को वसिष्ठ गोत्री ऋषि ले आए। इन्द्र ने भी उन ऋषियों का ही वरण किया ॥ २ ॥ वसिष्ठों ने नदी को पार किया और शत्रु को मारा। हे वसिष्ठो ! दाशराज्ञ नामक युद्ध में तुम्हारे स्तोत्र की शक्ति से ही इन्द्र ने सुदास को रक्षित किया था ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! तुम्हारे स्तोत्र पितरों को को तृप्त करने वाले हैं। तुम क्षीणता को प्राप्त न होओ। हे वसिष्ठो ! तुम ने श्रेष्ठ ऋचाओं के द्वारा इन्द्र से बल प्राप्त किया ॥ ४ ॥ वर्षा की कामना करते हुए वसिष्ठों ने राजाओं से युद्ध करते हुए इन्द्र को सूर्य समान ऊपर उठाया। वसिष्ठों की स्तुति इन्द्र ने सुनी और तृत्सु वंशी राजाओं को श्रेष्ठ स्थान दिया ॥ ५ ॥ [२२]

दण्डाइवेद्गो अजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वां इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥८

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठा ॥९
विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१० ।२३

भरतगण (तृत्सु) शत्रुओं से घिरे हुए और अल्प संख्यक थे। जब वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए तब उनकी संतति वृद्धि को प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ सूर्य, अग्नि वायु जगत को जल प्रदान करते हैं। उन्हें आदित्य आदि श्रेष्ठ प्रजाएं हैं, ये तीनों उषाओं को प्रकट करते हैं। उन सब के ज्ञाता वसिष्ठगण हैं ॥७॥ हे वसिष्ठो! तुम्हारा तेज सूर्य के समान प्रकाशित है। वह समुद्र के समान गंभीर भी है। तुम्हारे स्तोत्र का अनुगामी अन्य कोई नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ उन वसिष्ठों ने सहस्रों स्थान वाले जगत में भ्रमण किया। उन्होंने यम द्वारा चौड़े वस्त्र को बुनते हुए, मातृ-रूप अप्सरा के पास गमन किया ॥ ९ ॥ हे वसिष्ठ! जब तुम देह धारणार्थ अपनी ज्योति को छोड़ रहे थे, तब तुम्हें मित्रावरुण ने देखा। उस समय तुम एक जन्म वाले हुए। अगस्त्य भी तुम्हें यहाँ ले आए ॥ १० ॥ [२३]

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११
स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३
उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥१४ ।२४

हे वसिष्ठ! तुम उर्वशी के मानस-पुत्र एवं मित्रावरुण की संतान हो। विश्वेदेवाओं ने तुम्हें पुष्कर में स्तोत्र द्वारा धारण किया था ॥ ११ ॥ ज्ञानी वसिष्ठ दोनों लोकों के ज्ञाता सर्वज्ञानी हुए। यम द्वारा विस्तृत वस्त्र बुनने के,

लिए वे उर्वशी द्वारा उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ यज्ञ में स्तुत्य मित्रावरुण ने कुम्भ में बीज डाला। उसी से वसिष्ठ की उत्पत्ति कही जाती है ॥ १३ ॥ हे तृत्सुओ ! वसिष्ठ तुम्हारे समीप आते हैं। तुम इनका पूजन करो यह वसिष्ठ सब कर्मों का उपदेश करने वाले हैं ॥ १४ ॥ [२४]

३४ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः देवता—विश्वेदेवाः, अहिः अहिर्बुध्न्यः । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्)

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥१
विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥२
आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥३
आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥४
अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥५
त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥६
उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥७
ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८
अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥९
आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१० ।२५

हमारी श्रेष्ठ स्तुति वेगवान् रथ के समान देवताओं की ओर गमन करे ॥ १ ॥ वृष्टि-जल स्वर्ग और पृथिवी के प्राकट्य का ज्ञाता है। जल स्तुतियों को श्रवण करता है ॥ २ ॥ जल इन्द्र को तृप्त करता है। विघ्न उप-स्थित होने पर मनुष्य इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र के आने के लिए अश्वों को योजित करो। वे इन्द्र स्वर्णहस्त और वज्रधारी हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो ! यज्ञ के अभिमुख जाओ। श्रेष्ठ यज्ञ-मार्ग पर पथिक के समान चलो ॥ ५ ॥ हे मनुष्यो ! रणभूमि में जाओ। फिर पापों का नाश करने के लिए यज्ञानुष्ठान करो ॥ ६ ॥ सूर्य इस यज्ञ के बल से उत्पन्न होते हैं। पृथिवी जैसे प्राणियों को धारण करती है, वैसे ही यज्ञ भी धारण करता

है ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अहिमा वाले इस यज्ञ में अभीष्ट पूर्वक देवताओं का मैं आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥ हे स्तोताओ ! देवताओं के लिए इस श्रेष्ठ कर्म वाली स्तुति को करो ॥ ९ ॥ अनेक नेत्रों वाले वरुण नदियों क जल का निरीक्षण करत हैं ॥ १० ॥ [२५]

राजा राष्ट्राना पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११
अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंस निनित्सो ॥१२
व्येतु दिद्युद् द्विपामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥१३
अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभि प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोम ॥१४
सजूर्देवभिरपा नपात सखाय कृध्व शिवो नो अस्तु ॥१५
अ॰जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीना रज सु षीदन् ॥१६
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायो ॥१७
उत न एषु नृषु श्रवो धु प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्य ॥१८
तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥१९
आ यन्न पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२० ॥२६

वे वरुण, प्रदेशों के स्वामी और नदियों के रूप वाले हैं। वे अपने बल से सर्वगन्ता हैं ॥ ११॥ हे देवगण ! हमारे रक्षक होओ। निन्दकों को तेज हीन करो ॥ १२ ॥ शत्रुओं के विघ्नकारी आयुध दूर रहें। हे देवगण ! हमें पाप से मुक्त करो ॥ १३ ॥ नमस्कारों से प्रसन्न अग्नि हमारे रक्षक हों। हम उनकी स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ हे स्तोताओं ! देवताओं के साथी अग्नि से मित्रता स्थापित करो। वे हमारा कल्याण करेंगे ॥ १५ ॥ मेघों को तोड़ने वाले, जल में स्थित अग्नि की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! हमें हिंसक को मत सौंपना। यज्ञकर्त्ता का यज्ञ व्यर्थ न हो ॥ १७ ॥ देवगण हमारे लिए अन्न धारण करते हैं। हमारे शत्रु नाश को प्राप्त हों ॥ १८ ॥ जैसे सूर्य सब लोकों को तपाते हैं, वैसे ही देवताओं के कृपापात्र राजा सेनाओं से शत्रु को तपाते हैं ॥ १९ ॥ जब देव नारियाँ हमारे समक्ष पधारें, तब त्वष्टादेव हमें अपत्यवान् करें ॥ २० ॥ [२६]

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥२१
ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥२२
तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३
अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५।२७

त्वष्टादेव हमारे स्तोत्र को सुनते हैं, वे हमारे लिए धन देने की कृपा करें ॥ २१ ॥ देवनारियाँ हमारा अभीष्ट पूर्ण करें। आकाश-पृथिवी और वरुण भी हमारा निवेदन सुनें। त्वष्टादेव हमें अपना आश्रय दें ॥ २ ॥ पर्वत हमारे धन की रक्षा करें। जल हमारे धन का पालन करें। देव-पत्नियाँ, आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पति आदि भी हमारी रक्षा करें ॥ २३ ॥ हम धारण करने योग्य धन के धारक हों। आकाश-पृथिवी हमारी सहायता करें। इन्द्र, वरुण और मरुद्गण हमारे धन के समर्थक हों ॥ २४ ॥ मित्रा-वरुण, इन्द्र, अग्नि, जल, औषधि, वृक्ष आदि हमारी स्तुति सुनें। हम मरुद्गण के आश्रय में सुख पूर्वक रहें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥२५॥[२७]

३५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५ ।२८

हे इन्द्राग्ने ! हमारी रक्षा के लिए शान्ति देने वाले बनो । हे इन्द्रा-वरुण ! यजमान ने हवि दी है, तुम मङ्गलकारी होओ । इन्द्र और सोम कल्याण प्रद हों । इन्द्र और पूषा हमें सुखी करें ॥ १ ॥ भग देवता, सुखी करें । सत्य वचन द्वारा भी हम सुख पावें । अर्यमा हमारा मङ्गल करें ॥ २ ॥ धाता, वरुण, पृथिवी, आकाश, पर्वत और देवाह्वान हमें सुख देने वाले हों ॥ ३ ॥ ज्वालामुखी हमारे लिए शीतल हों । मित्रावरुण, अश्विद्वय वायु और पुण्यकर्म सभी हमारे लिए शांतिप्रद हों ॥ ४ ॥ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष, औषधियाँ, वृक्ष और लोक-स्वामी इन्द्र हमें शान्ति प्रदान करें ॥ ५ ॥ (२८)

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०।२९

वसुओं सहित प्रधान रुद्र, देव नारियों के सहित त्वष्टा हमें शांति देने वाले हों ॥ ६ ॥ सोम, सोमाभिषवण प्रस्तर, यज्ञ, स्तोत्र, यूप, औषधियाँ,

वेदी आदि हमें शांति दें ॥ ७ ॥ महान् तेज वाले, सूर्य, दिशाएं, पर्वत, नदियाँ और जल भी हमें शांतिप्रद हों ॥ ८ ॥ अदिति, मरुद्गण, विष्णु, पूषा, अन्तरिक्ष और वायु हमारे लिए शांतिप्रद हों ॥ ९ ॥ सविता, उषा, पर्जन्य और क्षेत्रपति हमें शान्ति प्रदान करें ॥ १० ॥ (२९)

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ।११
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृता सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।१२
शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ।१४
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५।३९

विश्वेदेवा, सरस्वती, यज्ञानुष्ठान, दान, पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष, देवता, अश्वगण, गौएं, ऋभुगण हमें शान्ति देने वाले, हों। हमारे पितर भी हमें शांति दें ॥ १२ ॥ अज-एकपाद, अहिबुध्न्यदेव, समुद्र, अपान्नपात् और पृश्नि हमें शांति प्रदान करें ॥ १३ ॥ इस नवीन स्तोत्र को हमने रचा है। आदित्यगण, मरुद्गण और वसुगण इसे सुनें। आकाश-पृथिवी तथा समस्त यज्ञीय देवता हमारे आह्वान पर ध्यान दें ॥ १४ ॥ हे देवताओ! मनु प्रजापति, अविनाशी और सत्यज्ञ देवता हमें पुत्र दें और तुम हमारी सुन्दर कल्याण से रक्षा करो ॥ १५ ॥ (३०)

३६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।

वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥१
इमा वा मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥२
आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥३
गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥४
यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥५ ॥१

यज्ञ में उच्चारित स्तोत्र सूर्य की ओर गमन करे। रश्मियों के द्वारा सूर्य ने वृष्टिजल की उत्पत्ति की है। विस्तारमयी पृथिवी के ऊपर अग्नि प्रदीप्त होते हैं ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण! तुम्हारे निमित्त अभिनव स्तुति का उच्चारण करता हूँ। तुममें से वरुण एक स्थान को प्रकट करने वाले हैं और मित्र, स्तोता को कर्म में लगाते हैं ॥ २ ॥ वायु की गति मन्द और शोभित है। पयस्विनी गौ वृद्धि को प्राप्त होती है। सूर्य के स्थान में उत्पन्न मेघ अन्तरिक्ष में घोर शब्द करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! जो तुम्हारे इन अश्वों को योजित करता है, उसके यज्ञ में आगमन करो। हिंसक पापियों के क्रोध को अर्यमा व्यर्थ कर देते हैं। उन श्रेष्ठकर्मा अर्यमा की स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥ अन्नवान यजमान रुद्र की मित्रता की कामना करते हैं। स्तुतियों से प्रसन्न रुद्र अन्न प्रदान करते हैं। मैं उन्हीं रुद्र को प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ (१)

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥६
उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥७
प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम् ।

भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरन्धिम् ॥८
अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९ ।२

सिन्धु नदियों की माता है, सरस्वती सप्तमा है, वे सुन्दर धारा वाली नदियाँ अभीष्ट सिद्ध करने वाली हैं। वे अपने जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुई नदियाँ एक साथ ही अन्न देने वाली हों ॥ ६ ॥ वेगवान् मरुद्गण हमारे अनुष्ठान और अपत्य के रक्षक हों। वाणी देवता हमें त्याग कर अन्य पर कृपा दृष्टि न करें। यह हमारे धनों की वृद्धि करें ॥ ७ ॥ हे स्तोता! विस्तीर्ण पृथिवी, यज्ञीय पूषा, भग, वाजदेव का इस यज्ञ में आह्वान करो ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण! यह स्तोत्र तुम्हारे अभिमुख हो। विष्णु के समक्ष भी उपस्थित हो। वे स्तोता को पुत्र युक्त अन्न प्रदान करें। तुम अपनी रक्षाओं से हमें रक्षित करो ॥ ९ ॥ (२)

३७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभि पृणध्वम् ॥१
यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥२
उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३
त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४
सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥५ ।३

हे ऋभुगण! तुम तेजस्वी हो। तुम वहनशील रथ द्वारा आगमन करो। तुम मिश्रित सोमरस से अपना पेट भरो ॥ १ ॥ हे ऋभुओ! तुम

हविदाताओं के लिए धन धारण करो। फिर बली होकर सोम-पान करो और हमें धन दो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम धन-दान के समय अश्व सेवन करते हो। तुम्हारे दोनों हाथों में धन है। तुम्हारे दान को कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥ हे इन्द्र तुम ऋभुओं के स्वामी हो। तुम स्तुति करने वाले के घर पर आगमन करो। आज हम हवि देकर तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यजमान को धन देते हो। तुम हमें कब धन प्रदान करोगे? हम तुम्हारी स्तुतियों से रक्षित होंगे ॥ ५ (३)

वासयसीव वेधसस्त्वं न कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥६
अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इंद्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥७
आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ।४

हे इन्द्र! हमारी स्तुति पर कब ध्यान दोगे? तुमने हमें निवास प्रदान किया है। तुम्हारे अश्व हमारे घर में अत्यन्त युक्त धन लेकर आवें ॥ ६ ॥ पृथिवी जिन इन्द्र को ईश्वर बनाने का यत्न करती है, अन्नमय वर्ष जिन्हें स्वामी रूप में स्वीकार करते हैं, और स्तोता जिन्हें अपने घर में आहूत करते हैं, वे इन्द्र अन्न-भक्षण वाला बल पाते हैं ॥ ७ ॥ हे सवितादेव! तुम्हारा प्रशंसनीय धन हमें मिले। पर्वत प्रदत्त धन हमें प्राप्त हो। इन्द्र हमारी सेवा को स्वीकार करें। हे देवगण! तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ ८ ॥ (४)

३८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—सविताः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥१
उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्यस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्युर्वी पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥२

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स ना स्तोमान्नमस्य श्चनो धाद्विश्वेभिः पातुः पायुभिर्नि· सूरीन् ॥३
अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥४
अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिपाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥५
अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीतिं भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥६
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देववाता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥७
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥८ ।५

अपनी प्रभा से दमकते हुए सूर्य उदय को प्राप्त होते हैं। वे मनुष्यों द्वारा स्तुतियों के योग्य हैं। वे स्तोता को श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं ॥ १ ॥ हे सविता ! उदय को प्राप्त होओ। नेताओं के उपभोग्य धन देते हुए इस यज्ञानुष्ठान का आरम्भ हुआ है। तुम हमारी स्तुति को सुनो ॥ २ ॥ सविता हमारे द्वारा पूजित हों। जिनकी सभी स्तुति करते हैं, वे पूज्य सविता हमारी स्तुति को बढ़ावें और स्तोता की सब प्रकार रक्षा करें ॥ ३ ॥ सविता की स्तुति अदिति, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देवता करते हैं ॥ ४ ॥ दानशील यजमान सविता की उपासना करते हैं। अहिर्बुध्न्य हमारी स्तुति सुनें। और वाणी देवी हमारी सब प्रकार रक्षा करें ॥ ५ ॥ वाजी नामक देवगण हमें सुख दें। वे अदानशील और राक्षसों नष्ट करें और सब रोगों को हमसे दूर कर कर दें ॥ ७ ॥ हे देवगण ! तुम सत्य के जानने वाले होकर सब संग्रामों में रक्षा करो। तुम इस सोम से हर्ष प्राप्त करो, फिर देवयान मार्ग से गमन करो ॥ ८ ॥ [५]

३६ सूक्त

(ऋषि - वसिष्ठ । देवता—विश्वेदेवा । छन्द-त्रिष्टुप्)

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥१
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२
ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥३
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् ॥४
आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥५
ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥६
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।६

अग्निदेव स्तोता की स्तुति से ऊँचे उठें। उषा देवी यज्ञ में आवें। पत्नीयुक्त यजमान यज्ञ मार्ग पर चलता है और होता यज्ञ करता है ॥ १ ॥ यह यजमान कुश को हव्य से पूर्ण करते हैं। वायु और पूषा सबका कल्याण करने के लिए उषा से पूर्व ही आगमन करें ॥ २ ॥ वसुगण इस यज्ञ में विहार करें। अन्तरिक्षस्थ मरुद्गण की भी यहाँ सेवा होती है। हे वसुओ और मरुतो ! अपने मार्ग को हमारी ओर करो। जो हमारा दूत तुम्हारी सेवा में पहुँचा है उसके निवेदन पर ध्यान दो ॥ ३ ॥ विश्वेदेवा हमारे यज्ञ में आते हैं। हे अग्ने ! उनके निमित्त यज्ञ करो। भग, अश्विद्वय और इन्द्र का पूजन करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा, अग्नि, अदिति

और विष्णु का हमारे यज्ञ में आह्वान करो। सरस्वती और मरुद्गण की भी कृपा-याचना करो॥ ५ ॥ यज्ञ योग्य देवताओं को हम हवि देते हैं। अग्नि हमारी कामनाओं में बाधक नहीं होते। हे देवगण! तुम हमें ग्रहणीय धन प्रदान करो। हम अपने सहायक देवताओं के आज दर्शन करेंगे॥ ६ ॥ आज आकाश पृथिवी की भले प्रकार स्तुति की गई। इन्द्र, वरुण और अग्नि की भी स्तुति की गई है। कल्याणप्रद देवता हमें श्रेष्ठ अन्न दें और सदा हमारा पालन करें ॥ ७ ॥ [७]

४० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—वैश्वानरः। छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम्।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥१
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥२
सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ।३
अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥४
अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५
मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन्।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥६
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।७

हे देवगण! तुम्हारा श्रेष्ठ सुख हमें प्राप्त हो। हम देवताओं की स्तुति करते हैं। जो धन सवितादेव हमारे लिए प्रेरित करेंगे उसी धन से हम

मनुष्ट होंगे ॥ १ ॥ मित्रावरुण और द्यावापृथिवी उसी प्रशंसनीय धन को हमें दें। इन्द्र और अर्यमा भी हमें धन प्रदान करें। वायु और भग हमें जिस धन को देना चाहें, अदिति उस धन को हमें दे डालें ॥ २ ॥ पृषत् अश्व वाले मरुद्गण ! तुम जिसके रक्षक होते हो, वह उपासक बल और तेज प्राप्त करे। अग्नि और सरस्वती आदि देवता यजमान को कर्म में लगावें। इसके पास जो धन है, उसे कोई नष्ट न कर सके ॥ ३ ॥ मित्र, वरुण, अर्यमा सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, वे हमारे यज्ञानुष्ठान के धारक हैं। प्रकाशमयी अदिति सुन्दर आह्वान से सम्पन्न हैं। यह सब देवता हमें पापों से मुक्त करें ॥ ४ ॥ अन्य सब देवता विष्णु के अंश रूप हैं। रुद्र अपनी कृपा हमें दें। हे अश्विद्वय ! तुम हमारे हव्य-सम्पन्न घर में आगमन करो ॥ ५ ॥ हे पूषन् ! सरस्वती और देव नारियाँ हमें जो धन दें, उसमें तुम बाधक नहीं होना। कल्याणदाता देवगण हमारी रक्षा करें। वायु हमें जल-वृष्टि दें ॥ ६ ॥ आज देवताओं ने द्यावा पृथिवी की भले प्रकार स्तुति की। वरुण, इन्द्र और अग्नि की भी स्तुति की गई। देवगण हमें महणीय धन दें और हमारा सदा पालन करें ॥७॥ [७]

४१ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ । देवता-लिङ्गोक्ताः भगः उषाः । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।

तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥५
समध्वरायोपसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६
अश्वावतीर्गोमतीर्न उपासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।८

हम अपने प्रातः सवन में इन्द्र, मित्र, और वरुण का आह्वान करते हैं। अश्विद्वय, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्र की भी स्तुति करते हैं॥ १ ॥ अदिति के विजयशील पुत्र भग का हम अपने प्रातः सवन में आह्वान करते हैं। दरिद्र और धनवान राजा दोनों ही उनसे उपभोग्य धन माँगते हैं ॥ २ ॥ हे भग ! तुम श्रेष्ठ नेता और सत्य धन वाले हो । तुम हमें इच्छित वस्तु दो । हमारे गवादि पशुओं की वृद्धि करो । हम पुत्रादि से सम्पन्न सौभाग्यशाली हों ॥ ३ ॥ हम तुम्हारे कृपा पात्र हों । दिन के प्रारम्भ में और मध्य में भी तुम्हारी कृपा को पाते रहें। हे भग ! हम सूर्योदय काल में इन्द्रादि देवताओं की कृपा पाते रहें ॥ ४ ॥ हे देवगण ! हम भग की कृपा से सम्पन्न हों । हे भग ! हमारे इस यज्ञ में सर्व प्रथम आओ । हम बारम्बार अह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ उषा हमारे यज्ञ में आगमन करें । वेगवान अश्वों से युक्त रथ के समान उषा, भग देवता को हमारे अभिमुख करें ॥ ६ ॥ सर्वगुण सम्पन्ना उषा अश्व, गौ, अपत्यादि से युक्त होकर रात्रि के अन्धेरे को दूर करें और सदा हमारा पालन करें ॥ ७ ॥ [८]

४२ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥१
सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युङ्क्ष्व सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२
समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।

यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥३
यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥४
इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥५
एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।९

अंगिरागण सर्वत्र व्याप्त हों । पर्जन्य हमारी स्तुति को चाहें । नदियाँ जल सींचती हुई बहें । यजमान दम्पति यज्ञ का आयोजन करें ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम्हारा सनातन मार्ग सुगम हो । कृष्ण वर्ण के और लाल रङ्ग के जो अश्व तुम्हारे समान महान् देवता को यज्ञ गृह में पहुँचाते हैं, उन्हें रथ में जोड़ो । मैं यज्ञ मंडप में अवस्थित होकर देवताओं का आह्वान करता हूँ ॥२॥ हे देवगण ! यज्ञ में स्तोतागण तुम्हारी पूजा करते हैं । हमारा निकटस्थ होता सर्वोत्तम है । हे यजमान ! देवताओं का भले प्रकार यज्ञ करो । तुम तेज को धारण करो, भूमि को प्राप्त करो ॥ ३ ॥ अतिथि रूप अग्नि जिस धनवान के घर में शयन करते हैं, तथा जिस समय चैतन्य और प्रसन्न होते हैं, उस समय ग्रहणीय धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने हमारे यज्ञ का सेवन करो । इन्द्र और मरुद्गण के मध्य हमारे यश को विस्तृत करो । तुम रात्रि में और उषा-काल में भी यज्ञीय कुशों पर विराजमान होओ । यज्ञ की कामना वाले मित्रा-वरुण का पूजन करो ॥ ५ ॥ धन की कामना से वसिष्ठ ने अग्नि की स्तुति की । अग्नि हमें बल, यश और धन प्रदान करें । हमारा सदा पालन करते रहें ॥ ६ ॥ [९]

४३ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ॥१

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥२
आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३
ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥४
एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१०

जिन विद्वानों की स्तुतियाँ सब ओर फैलती हैं, वे विद्वान् तुम्हारी प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं और आकाश-पृथिवी की भी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ ऋत्विजो ! द्रुतगामी अश्व के समान आगमन करो । एक मन वाले होकर स्रुक को ग्रहण करने वाली तुम्हारी रश्मियाँ ऊपर को मुख करें ॥ २ ॥ पुत्र जैसे माता-पिता की गोद में जा बैठते हैं, उसी प्रकार देवतागण यज्ञ के श्रेष्ठ स्थानों में विराजमान हों । हे अग्ने ! तुम्हारी यज्ञ-योग्य ज्वालाओं का जुहू भले प्रकार सिंचन करे, तुम हमारे शत्रुओं के सहायक मत होना ॥ ३ ॥ जल की दोहनशील धारा को सींचते हुए देवगण हमारे पूजन को स्वीकार करें । हे देवगण सर्व श्रेष्ठ धन हमें मिले । तुम समान मन से आगमन करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हमें धन प्रदान करो । तुम हमारा त्याग न करो । हम सदा सुखी रहें । तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ [१०]

४४ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–लिङ्गोक्ताः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ।
दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥२
दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।

अघ्नं मश्वतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥३
दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथाना भवति प्रजानन् ।
सविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभि ॥४
आ नो दधिक्रा पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्नि शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूरा ॥५।११

रक्षार्थ मैं दधिक्रा का आह्वान करता हूँ । फिर अश्विद्वय, उषा, अग्नि, भग, इन्द्र, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति आदित्यगण, आकाशपृथिवी, जल और सूर्य का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ यज्ञारम्भ में हम दधिक्रा की स्तुति करते हैं और इला की स्थापना कर, शोभामय अश्विनीकुमारों का आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ दधिक्रा का आह्वान कर अग्नि, उषा, सूर्य और वाणी की स्तुति करता हूँ । वरुण के अश्व का भी स्तव करता हूँ । सभी देवता मुझे पापों से छुड़ावें ॥ ३ ॥ अश्वों में प्रमुख दधिक्रा जानने योग्य बातों को जानकर उषा सूर्य, आदित्यगण, वसुगण और अंगिराओं को साथ लाते हुए रथ के अग्र भाग में चलते हैं ॥ ४ ॥ दधिक्रा सत्य और न्याय पर चलते हुए हमको धर्म और लोक हितकारी मार्ग पर अग्रसर करें । वे अग्नि के समान प्रकाशक होकर हमको भी शक्ति प्रदान करें ॥ ५ ॥ [११]

४५ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ । देवता-सविता । छन्द-त्रिष्टुप्)

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥१
उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्तां अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२
स घा नो देव सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते न. ॥३
इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।

चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४ ।१२

सविता देवता मनुष्यों के लिए कल्याणकारी धन धारण करते हुए सब जीवों को कर्म की प्रेरणा करते हुए उदित हों ॥ १॥ सवितादेव अन्तरिक्ष की सीमा को व्याप्त करें। हम उनकी महिमा को आज कहेंगे। सूर्य हमें कर्म करने की ओर झुकावें ॥ १ ॥ सविता देवता धन-प्रेरण करें। वे विशाल रूप वाले होकर उपभोग्य धन हमें प्रदान करें ॥ ३ ॥ वह श्रेष्ठ अन्न दें और हमारा पालन करें ॥ ४ ॥ [१२]

४६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—रुद्रः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥१
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥२
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजः मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३
मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४ ।१३

हे स्तोता! धनुर्धारी, अजेय, सर्वजेता रुद्र का स्तव करो। वे हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १ ॥ पार्थिव और दिव्य ऐश्वर्य से उनकी अनुभूति होती है। हे रुद्र! तुम्हारे स्तोत्र करने वाले हमारे पुरुषों की रक्षा करते हुए आगमन करो। तुम हमें रोग-व्याधि में ग्रस्त मत करना ॥ २ ॥ हे रुद्र! अन्तरिक्षस्थ विद्युत पृथिवी पर घूमती है, वह हमें नष्ट न करे। तुम सहस्रों औषधियों वाले हो। हमारे पुत्र पौत्रादि को नष्ट मत करना ॥ ३ ॥ हे रुद्र! हमारी हिंसा मत करना। हम तुम्हारे क्रोध के पाश में न पड़ें। तुम हमें यज्ञ-भागी बनाओ और सदा हमारा पालन करो ॥ ४ ॥ [१३]

४७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—आपः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आपो य वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥१
तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२
शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥३
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४ ।१४

हे जलदेवता! अध्वर्युओं द्वारा इन्द्र के पान-योग्य जो सोमरस निष्पन्न किया गया है, उसका हम भी सेवन करेंगे ॥ १ ॥ अपानपात् देव तुम्हारे रस युक्त सोम को बढ़ावें। वसुगण सहित इन्द्र जिससे हर्ष प्राप्त करते हैं, उस सोम रस को देवताओं की कामना करते हुए हम पावेंगे ॥ २ ॥ जल देवता देव-स्थानों में जाते हैं। वे इन्द्र के यज्ञानुष्ठान में बाधक नहीं होते। हे अध्वर्युओ! तुम सिन्धु आदि के निमित्त हविर्दान करो ॥ ३ ॥ अपनी रश्मियों से सूर्य जिन जलों को बढ़ाते हैं, जिनके बहने को इन्द्र ने मार्ग बनाया है, हे सिन्धुगण! ऐसे तुम हमारे लिए धन धारण करो और सदा हमारा पालन करो ॥ ४ ॥ [१४]

४८ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः देव०-ऋभवः, ऋभवो विश्वेदेवा वा । छन्द-पंक्तिः त्रिष्टुप्)

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न याता विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥१
ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम् ॥३
नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४ ।१५

हे ऋभुगण ! हमारे सोम को पीकर प्रसन्न होओ। तुम्हारे कर्मवान् अश्व हमारे सामने आकर मनुष्यों का हित करें ॥ १ ॥ हम तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं। तुम सामर्थ्यवान् हो। हम तुम्हारी सहायता पाकर ही शत्रुओं को हरावेंगे। वे ऋभुगण हमारे रक्षक हों। इन्द्र की कृपा से हम वृत्र द्वारा हिंसित न हों ॥ २ ॥ हमारे शत्रुओं की सेनाओं को इन्द्र और ऋभुगण हराते हैं। वे रणक्षेत्र में सब शत्रुओं का वध करते हैं। विभ्वा, ऋभुक्षा और वाज नामक ऋभु-त्रय और इन्द्र शत्रुओं का नाश करेंगे ॥ ३ ॥ हे ऋभुओ ! धनदाता होओ। हमारी रक्षा करो। हमें अन्न दो और हमारा कल्याण करो ॥ ४ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　[१५]

४९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—आपः । छन्द—त्रिष्टुप्)

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१
या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४ ।१६

जिन जलों में समुद्र बड़ा है, वे जल प्रवाह युक्त हैं। जल देवता अन्तरिक्ष से आते हैं। इन्द्र ने जिन्हें मुक्त किया, वे जल हमारे

रक्षक हों ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले जल, नदी में प्रवाहित या कूप रूप में खोद कर निकाले गए जल और समुद्र की ओर जाते हुए जल, यह सब हमारे रक्षक हों ॥ २ ॥ जिन जलों के स्वामी वरुण मध्य लोक में गमन करते हैं, वे प्रकाशयुक्त, रस-सम्पन्न जल हमारे रक्षक हों ॥ ३ ॥ जिन जलों में वरुण और सोम निवास करते हैं, जिनके अन्न से विश्वेदेवा प्रसन्न होते हैं और जिनमें वैश्वानर अग्नि का निवास है, वे जल देवता हमारे रक्षक हों ॥ ४ ॥ [१६]

५० सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–मित्रावरुणौ, अग्निः, विश्वेदेवाः, नद्यः ।
छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१
यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥२
यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥३
याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥४ ।१७

हे मित्र और वरुण ! तुम हमारे रक्षक बन कर घातक विषों से हमारी रक्षा करो । छिप कर चलने वाले सर्प भी हम पर आक्रमण न कर सकें ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! वृक्षादि की ग्रन्थियों में जो विष उत्पन्न होता है और जो पैरों के संधिस्थानों में सूजन उत्पन्न कर देता है, उस विष के प्रभाव को इस व्यक्ति पर से दूर करदो । छिपकर चलने वाले सर्प हमको जानने न पावें ॥२ ॥ जो विष शाल्मली के वृक्ष में होता है और जो नदियों में उत्पन्न होने वाली गुल्म, लता आदि में पैदा होता है उससे विश्वेदेवगण हमारी रक्षा करें । छिपकर

चलने वाले सर्प हमको हानि न पहुँचा सकें ॥ ३ ॥ प्रचण्ड देश, निम्न देश तथा उन्नत देश में जो नदियाँ बहती हैं, और जिनके जल के द्वारा लोगों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं, वे संसार की उपकारी नदियाँ इसके शिपद रोग को दूर करने की कृपा करें । वे नदियाँ हमें हानि न पहुँचायें ॥ ४ ॥ [१७]

५१ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–आदित्याः । छन्द–त्रिष्टुप्)

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोपमाणाः ॥१
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२
आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।१८

आदित्यों की कृपा से हम सुखकारी घर पावें । वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता यजमान को निर्दोष और दारिद्र्य-रहित करें ॥ १ ॥ आदित्य, अदिति, मित्र, वरुण और अर्यमा हर्षयुक्त हों । देवगण हमारी रक्षा करें और सोम पान करें ॥ २ ॥ द्वादश आदित्य, उनचास मरुद्गण, तेंतीस सौ तेंतीस देवता, तीनों ऋभु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्र और अग्नि की हमने स्तुति की है । वे हमारा पालन करें ॥ ३ ॥ [१८]

५२ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–आदित्याः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्,)

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥१
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥२
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।

पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वेदेवा समनसो जुषन्त ॥३ ॥१९

आदित्यों के हम प्रिय हैं, हम अहिंसित रहें। हे वसुगण ! तुम रक्षक होओ। हे मित्रावरुण ! हम उपासना द्वारा धन पावेंगे। हे द्यावा पृथिवी ! हम शक्तिशाली बनें ॥ १ ॥ मित्रावरुण आदि आदित्य हमारे पुत्र पौत्रादि को सुखजनक हों। अन्य कृत पाप का फल हमें न मिले हे वसुगण ! जिस कर्म से तुम हमें नष्ट करते हो, हम वह कर्म न करें ॥ २ ॥ सविता की प्रार्थना कर अङ्गिराओं ने जिस धन को प्राप्त किया था, उस धन को प्रजापति और समस्त देवगण हमें प्रदान करें ॥ ३ ॥ [१९]

५३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता-द्यावापृथिव्यौ । छन्द-त्रिष्टुप्)

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥१
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२
उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ॥२०

जिन विस्तीर्ण आकाश पृथिवी की स्तुति करते हुए स्तोताओं ने आगे प्रतिष्ठित किया, उन्हीं की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ हे स्तोताओ ! मातृपितृ भूता आकाश पृथिवी की यज्ञ के अग्रभाग में स्थापना करो। हे द्यावापृथिवी ! देवताओं के साथ धन दान के निमित्त आगमन करो ॥ २ ॥ हे द्यावापृथिवी ! तुम्हारे पास हविदाता को देने के लिए प्रचुर धन है। अतः हमको भी अक्षय धन प्रदान करो और सदा हमारा पालन करते रहो ॥ ३ ॥ [२०]

५४ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ । देवता-वास्तोष्पति । छन्द-त्रिष्टुप्)

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥२
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।२१

हे वास्तोष्पति ! हमें जागृत करो । हमारे घर में रोग न रहे । याचित धन हमें दो । हमारे पशु और मनुष्यों को सुख प्रदान करो ॥ १ ॥ हे वास्तोष्पति ! हमारे धन के बढ़ाने वाले होओ । तुम्हारी मित्रता को पाकर हम अजर होंगे और गवादि पशुओं से सम्पन्न होंगे । पिता द्वारा पुत्र का पालन करने के समान ही तुम हमारा पालन करो ॥ २ ॥ हे वास्तोष्पति ! हम तुमसे सुखकारी एवं ऐश्वर्य-सम्पन्न स्थान पावें । तुम हमारे धन की रक्षा करो और सदा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥ [२१]

५५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—वास्तोष्पतिः इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री बृहती, अनुष्टुप्)

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥१
यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४
सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।

तेषा सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ता सर्वाः स्वापयामसि ॥८ २२

हे वास्तोष्पते ! तुम रोगों के नष्ट करने वाले हो । तुम हमारे हितैषी मित्र होओ ॥ १ ॥ हे वास्तोष्पते ! जब दाँत निकालते हो, तब तुम्हारे दाँत आयुध के समान सुशोभित होते हैं । इस समय तुम सुख पूर्वक शयन करो ॥ २ ॥ हे सारमेय ! तुम जहाँ जाते हो वहाँ फिर पहुँचते हो । तुम चोर और दस्यु के पास गमन करो । इन्द्र की स्तुति करने वाले के पास क्यों जाते हो ? उसके कर्म में बाधक क्यों होते हो ? तुम सुख से शयन करो ॥ ३ ॥ तुम शूकर आदि को विदीर्ण करो । इन्द्र के उपासक के पास जाकर बाधक क्यों बनते हो ? तुम सुख से शयन करो ॥ ४ ॥ तुम्हारे माता पिता शयन करें । तुम भी शयन करो । गृह स्वामी, बांधव और सब ओर के मनुष्य भी शयन करें ॥ ५ ॥ जो यहाँ है, जो घूमता है, जो हमें देखता है, हम उनकी आँखों को फोड़ेंगे । वे इस कोष्ठ के समान निश्चल हो जायेंगे ॥ ६ ॥ सहस्रांशु सूर्य समुद्र से ऊपर उठे हैं, उनकी सहायता से हम सब मनुष्यों को निद्रा-ग्रस्त करेंगे ॥ ७ ॥ आंगन में शयन करने वाली, वाहन पर शयन करने वाली, बिछौने पर शयन करने वाली और पुष्पगन्ध वाली, ऐसी जो स्त्रियाँ हैं, उन सबको शयन करावेंगे ॥ ८ ॥　[२२]

५६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठ देवता—मरुतः छन्द—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥१
नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥२
अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृधन् ॥३

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥४
सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६
उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥७
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥८
सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ॥९
प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१० ।२३

यह समान गृहवासी, अश्व वाले और रुद्र के यह पुत्र कौन हैं ? ॥१॥ इनके जन्म को यह स्वयं जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता ॥ २ ॥ यह स्वयं विचरण करते हैं और श्येन के समान परस्पर स्पर्द्धी होते हैं ॥ ३ ॥ शास्त्रों के ज्ञाता विज्ञ इन्हें जानते हैं । पृश्नि ने इन्हें अन्तरिक्ष में धारण किया है ॥४॥ वह मरुद्गण की सहायता से शत्रुओं की पराभवकारिणी, धनदात्री और पुत्रवती है ॥ ५ ॥ यह मरुद्गण गमन योग्य स्थानों में अधिक जाते हैं। वे अलंकृत, तेजस्वी और ओजस्वी हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम स्थिर बल वाले, श्रेष्ठ बुद्धि वाले और उग्र तेज वाले हो ॥ ७ ॥ हे मरुतो ! तुम बल से सुशोभित हो । तुम क्रोधयुक्त मन वाले हो । तुम्हारा वेग स्तोता के समान शब्द करने वाला है ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! अपने जीर्ण आयुधों को हमारे पास से दूर करो । हम तुम्हारी क्रूरता के लक्ष्य न बनें ॥ ९ ॥ हे प्रियकर्मा मरुतो ! हम तुम्हारा नामोच्चार करते हैं । तुम इससे संतुष्ट होते हो ॥ १० ॥   [२२]

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः
अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥१३
प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।

सहस्रिय दम्य भागमेत गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥१४

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा ॥१५ ।२४

श्रेष्ठ आयु वाले मरुद्गण सुशोभित हैं। वे हमें अलङ्कारों से सजाते हैं ॥ ११ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे लिए यह हव्य है। तुम पवित्र हो, हम भी यह पवित्र यज्ञ कर रहे हैं। तुम सत्य से सत्य को प्राप्त हुए हो। तुम शुद्ध जन्म वाले हो तथा अन्यों को भी शुद्ध करते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे स्कन्धों पर खादि नामक अलंकार और हृदय पर श्रेष्ठ रुक्म (हार) स्थित है। वर्षा से विद्युत की जैसे शोभा होती है, वैसे ही तुम जल प्रदान करते हुए शोभा पाते हो ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारा उग्र तेज गमनशील है। तुम यज्ञ के योग्य हो। जल की वृद्धि करो। तुम इस यज्ञ में दिये गए भाग को ग्रहण करो ॥१४॥ हे मरुद्गण ! तुम हवि सम्पन्न स्तुतियों के ज्ञाता हो। हमें पुत्र युक्त धन प्रदान करो। तुम्हारे उस धन को शत्रु नष्ट नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ [२४]

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥१६

दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥१७

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ।१८

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥२० ।२५

मरुद्गण अश्व के समान सदा गमनशील हैं वे मनुष्यों और शिशुओं के समान सुन्दर हैं। वे खेलने वाले बालक के समान जल को धारण करते

हैं ॥ १६॥ मरुद्गण अपनी महिमा से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण करें। वे हमारे लिए मङ्गलजनक हों। हे मरुद्गण ! मनुष्यों को नष्ट करने वाले तुम्हारे आयुध हम से दूर रहें। तुम हमारे सामने सुखप्रद रूप से आओ ॥ १७ ॥ हे मरुतो ! होता तुम्हें बारम्बार आहूत करता है। वह यजमान-रक्षक होता माया से विरक्त होकर तुम्हारी स्तुति में रत है ॥ १८ ॥ यज्ञकर्म वाले यजमान को मरुद्गण सुखी करते हैं। यह पराक्रमी दुष्टों का पतन करते और स्तोता की रक्षा करते हैं, जो हवि नहीं देता उसका अनिष्ट करने वाले हैं ॥ १९ ॥ धनिक और निर्धन दोनों को ही यह प्रेरणा देते हैं। हे मरुतो ! अन्धकार को दूर कर हमें पुत्र पौत्रादि दो ॥ २० ॥ [२५]

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥२१
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२
भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥२३
अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥२४
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५ ।२६

हम तुम्हारे दान-दृष्टि से न बचें। हमें धन-दान से विमुख मत करना। तुम अपने धन का श्रेष्ठ भाग हमें दो ॥ २१ ॥ हे मरुद्गण ! जब बलवान पुरुष क्रोध करके संग्राम के लिए तत्पर होते हैं। तब तुम शत्रु से हमारी रक्षा करना ॥ २२ ॥ हे मरुद्गण ! हमारे पूर्व पुरुषों के हित में तुमने अनेक कर्म किये थे। पूर्व प्रशंसित सभी कर्म तुम्हारे द्वारा हुए हैं। तुम्हारी सहायता से ही संग्राम में शत्रुओं को हराया जाता है और तुम्हारी कृपा प्राप्त कर स्तोता अन्न का उपभोग करता है ॥ २३ ॥ हे मरुद्गण ! हमारा पुत्र बलवान हो।

करते हैं ॥३॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारा विनाशक आयुध हमारे पास न आवे। हम मनुष्य अपराध करके भी तुम्हारे कोप-भाजन न हों। तुम्हारी अन्नदात्री सुमति हमारी ओर हो ॥ ४ ॥ मरुद्गण हमारे यज्ञ स्थान में विहार करें। वे पवित्र करने वाले और निन्दा रहित हैं। हे मरुद्गण ! हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर पालक बनो और पोषण के लिए हमारी वृद्धि करो ॥५॥ मरुद्गण हमारे द्वारा प्रस्तुत हव्य का सेवन करें। वे समस्त जलों से सम्पन्न हैं। हे मरुद्गण ! हमारी सन्तति के लिए जल प्रदान करो और हविदाता को श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥६॥ स्तुतियों से प्रसन्न हुए मरुद्गण सब रक्षाओं सहित स्तोता के अभिमुख हों। यह स्तोता को सैकड़ों पुत्रादि देते हैं। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ७ ॥ (२७)

५८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥१
जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२
बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३
युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४
ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥५
प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।२८

हे स्तोताओ! मरुद्गण का पूजन करो। यह सब में मेधावी हैं। यह अपनी महिमा से आकाश पृथिवी को व्याप्त करते हैं॥ १ ॥ हे मरुद्गण! तुम रुद्र द्वारा उत्पन्न हुए हो। यह मरुद्गण प्रभावशाली हैं। हे मरुतो! सूर्य दर्शक सब जगत तुम्हारे गमन वेग से भीत होता है ॥२॥ तुम हविदाता को अन्न प्रदान करो। हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध होओ। मरुद्गण के मार्ग का अवरोध कोई नहीं करता। वे हमें इच्छित ऐश्वर्य दें॥ ३ ॥ हे मरुद्गण! तुम्हारी कृपा से स्तोता सहस्रों धन से युक्त होता है। वह शत्रुओं को वश करने वाला और ऐश्वर्यवान् होता है। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन वृद्धि को प्राप्त हो ॥४॥ मैं मरुद्गण का उपासक हूँ। वे हमारे सामने आवें। जिस अपराध पर से वे क्रोध करते हैं, उसे हम स्तुति द्वारा दूर करेंगे॥ ५ ॥ इस सूक्त में वैभवयुक्त मरुतों की सुन्दर स्तुति की गई है। वे इस सूक्त को ग्रहण करें। हे मरुद्गण! शत्रुओं को दूर ही पृथक् करो। तुम हमारा पालन करो॥ ६ ॥ [२८]

५९ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ। देवता–मरुत, रुद्रः। छन्द–बृहती, पंक्ति, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री)

य त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुत शर्म यच्छत॥ १
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥२
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥३
नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः॥ ४
ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मोष्वन्यत्र गन्तन॥ ५

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥२९

हे देवताओ ! स्तोता को भय मुक्त करो । हे अग्नि, वरुण, मित्र, अर्यमा और मरुद्गण ! तुम जिस यजमान को श्रेष्ठ मार्ग पर चलाओ उसे सुखी करो ॥ १ ॥ हे देवगण ! तुम्हारी कृपा से जो यज्ञ करता है, शत्रु को मारता है, तुम्हें हव्य देता है, वह मनुष्य अपने आवास की वृद्धि करता है ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! सोम की अभिलाषा करके तुम हमारे यज्ञ में आओ और सोम पान करो ॥ ३ ॥ हे मरुतो ! तुम इच्छित फल देते हो । तुम्हारे रक्षा साधन हमारी रक्षा करते हैं । तुम्हारी अभिनव कृपा हमें प्राप्त हो । तुम शीघ्र यहाँ आओ ॥४ हे मरुद्गण ! तुम्हारा धन सुसंगत है । तुम हव्य सेवनार्थ आगमन करो । मैं तुम्हें हव्य देता हूँ, तुम और कहीं मत जाओ ॥ ५ ॥ हे मरुद्गण ! हमारे कुश पर बैठो । तुम धन-दान के लिए यहाँ आओ और हर्षकारी सोम का पान करो ॥ ६ ॥ (२९)

सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्त ॥ ७
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८
सान्तपना इदं हविर्मरुतज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९
गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥ १०
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥३०

हे मरुद्गण ! अपने शरीर को अलंकृत कर आगमन करो । मरुद्गण इस यज्ञ में विराजमान हों ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! जो हमारे मन को नष्ट करना चाहे अथवा जो हमें वरुण-पाश में बाँधने का यत्न करे ऐसे पापियों को तुम अपने शस्त्र से मार डालो ॥ ८ ॥ हे शत्रु को संताप देने वालो ! यह

तुम्हारा हव्य है। तुम शत्रुओं का भक्षण करने वाले हो। तुम हमारे हव्य को ग्रहण करो ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम सुन्दर दान वाले हो। तुम अपने रक्षा साधनों सहित आओ ॥ १० ॥ हे मरुद्गण ! तुम अपनी महिमा से बढ़ने वाले हो। मैं यज्ञ का आयोजन करता हूँ ॥ ११ ॥ हम सुरभित, पुष्टिवर्द्धक त्र्यम्बक का पूजन करते हैं। हे रुद्र ! हमें मृत्यु के पाश से छुड़ाओ और अमृत से दूर मत रखो ॥ १२ ॥ [३०]

६० सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ. । देवता–सूर्यः, मित्रावरुणौ. । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ १
एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ २
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥ ३
उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४
इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५
इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥ ६ ॥१

हे सूर्य ! अनुष्ठान के अवसर पर उदित होकर पाप से हमें छुड़ाओ। हे अदिति ! देवताओं में मित्रावरुण के हम प्रिय हों। हे अर्यमा, हम तुम्हारी स्तुति द्वारा तुम्हें प्रसन्न करें ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! आकाश पृथिवी को देखते हुए सूर्य उदय को प्राप्त होकर सब प्राणियों का पोषण करते हैं। वे मनुष्यों के पाप पुन्य को भी देखते हैं ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! सूर्य ने अपने सात अश्वों को योजित किया। वे सूर्य को वहन करते हुए-जलप्रदान करते हैं।

सूर्य संसार के सब प्राणियों को देखते हुए तुम दोनों को भजते हैं ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण ! अन्न और पुराडाश आदि तुम्हारे निमित्त हैं। सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं। मित्र, अर्यमा, वरुण आदि देवता सूर्य के लिए मार्ग देते हैं ॥ ४ ॥ मित्रावरुण और अर्यमा पाप-नाशक हैं। यह अदिति के पुत्र मङ्गल करने वाले हैं। यज्ञ स्थान में वे वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ मित्र, वरुण और आदित्य किसी के वश में नहीं पड़ते। यह अज्ञानी को ज्ञान देते हैं। यह दुष्कर्मों को नष्ट कर कर्मवान् पुरुष को सन्मार्ग पर चलाते हैं ॥ ६ ॥ [१]

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७
यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥८
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥६
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२ ।२

यह आकाश और पृथिवी के सब ज्ञान-रहितों को कर्म में लगाते हैं। इनके बल से नदी के नीचे के भाग में भी भूतल होता है। यह हमें कर्मों पर लगावें ॥ ७ ॥ अर्यमा, मित्र और वरुण जो सुख हविदाता को प्रदान करते हैं, वही सुख प्राप्त करते हुए हम ऐसा कार्य न करें जिससे देवगण क्रोध करें ॥ ८ ॥ हमारा जो वैरी देवताओं की स्तुति नहीं करता, उसे वरुण नष्ट कर दें। अर्यमा हमें राक्षसों से बचावें। मित्रावरुण हमें श्रेष्ठ स्थान दें ॥ ९ ॥ यह मित्रादि देवता श्रेष्ठ संगति वाले हैं। यह वैरियों को हराते हैं। हे

मित्रादि देवताओ ! हमारे विरोधी तुम्हारे भय से कम्पित होते हैं। तुम हमें अपनी कृपा से सुखी करो ॥ १० ॥ जो यजमान श्रेष्ठ धन दान के लिए तुम्हारी स्तुति करता है, उसके स्तोत्र से प्रसन्न हुए देवता उसे सुन्दर घर देते हैं ॥ ११ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारी स्तुति की गई, तुम हमारे दुःख दूर करो। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ १२ ॥ [२]

६१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ. । देवता-मित्रावरुणौ' छन्द—पंक्ति,' त्रिष्टुप्)

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अ निमिषं रक्षमाणा ॥३
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥४
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥५
समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥६
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।३

हे मित्रावरुण ! तुम तेजस्वी हो। तुम्हारे नेत्र-रूप सूर्य तेज की वृद्धि करते हुए अन्तरिक्ष में चढ़ते और सब प्राणियों को देखते हैं। वे मनुष्यों में प्रवृत्त स्तोत्र के ज्ञाता हैं ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! यज्ञकर्त्ता और वसिष्ठ तुम्हारे स्तोत्र को करते हैं। तुम श्रेष्ठ कर्मा हो, तुमने सदा वसिष्ठ के कर्मों को सुफल

किया है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! तुमने पृथिवी और आकाश की प्रदक्षिणा की है। तुम औषधियों और प्राणियों के लिए रूप धारण करते हो। श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वालों के तुम रक्षक हो ॥ ३ ॥ हे ऋषि ! मित्रावरुण के तेज की स्तुति करो। इन्होंने आकाश पृथिवी को अपनी महिमा से पृथक-पृथक किया है। अयाज्ञिक पुत्र-हीन हों और यज्ञ वाले व्यक्ति पुत्रादि से सम्पन्न हों ॥४॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारी स्तुति में विशेषता कुछ भी नहीं है। विरोधी व्यक्ति व्यर्थ स्तुतियाँ ग्रहण करते हैं। तुम्हारी स्तुति अज्ञान प्राप्त कराने वाली न हो ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! मैं इस यज्ञ में नमस्कार सहित तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम्हारे लिए नवीन स्तोत्र रचे जाते जाते हैं। मेरे द्वारा एकत्रित स्तोत्र तुम्हें आनंदित करें ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति की गई है। तुम हमें विपत्तियों से पार करो और सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [३]

६२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—सूर्यः, मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्,)

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१
स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥२
वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥३
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४
प्र वाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।४

सूर्य अत्यन्त तेजस्वी हों। वे मनुष्यों के प्रिय हों। वे दिन में अत्यन्त प्रकाश वाले होते हैं। वे सब के उत्पत्तिकर्त्ता और प्रजापति के तेज से तेजस्वी हैं ॥१॥ हे सूर्य तुम गमनशील अश्वों द्वारा स्तोताओं के सम्मुख होओ। मित्र, वरुण, अर्यमा, अग्नि के समक्ष तुम हमारे निर्दोष होने की बात कहना ॥ २ ॥ वरुण, मित्र और अग्नि हमें सहस्रों धन प्रदान करें। वे प्रसन्नता देने वाले हों। वे हमें वरणीय धन दें। हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर वे हमारी कामना सिद्ध करें ॥ ३ ॥ हे आकाश पृथिवी और अदिति! तुम हमारी रक्षा करो। हम श्रेष्ठ जन्म वाले हैं। हम वरुण, वायु और मित्र के कोपभाजन न हों ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण! अपनी भुजाऐं फैलाओ। हमारे भूभाग को जल से सींचो। तुम हमें यशस्वी करो। हमारे आह्वान को सुनो ॥ ५ ॥ हे मित्र, वरुण और अर्यमा! तुम हमारे पुत्र को धनवान करो। हमारे सब मार्ग सरल हों। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ६ ॥ (४)

६३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—सूर्यः, मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥१
उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥२
विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥४
यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।५

मित्रावरुण के नेत्र-रूप सूर्य उदित हो रहे हैं। यह अन्धकार को ढक देते हैं ॥ १ ॥ यह सूर्य मनुष्यों के उत्पन्नकर्त्ता, सब के प्रेरक और बलदाता हैं। हरे रङ्ग के अश्व इनका वहन करते हैं ॥ २ ॥ स्तोताओं की स्तुतियों को सुनते हुए यह सूर्य उषाओं के मध्य उदित होते हैं। यह इच्छित पदार्थ के देने वाले हैं। यह अपने तेज को न्यून नहीं करते ॥ ३ ॥ यह तेजस्वी सूर्य अंतरिक्ष में उदय को प्राप्त होते हैं। प्राणी इन्हीं सूर्य से प्रकट होकर कर्म में लगते हैं ॥ ४ ॥ देवताओं ने सूर्य का गमन-मार्ग बनाया। वह मार्ग अन्तरिक्ष के साथ जाता है। हे मित्रावरुण! सूर्योदय काल में, नमस्कार युक्त हवि देकर हम तुम्हारा यज्ञ करेंगे ॥ ५ ॥ मित्रावरुण और अर्यमा हमारे पुत्र को धन प्रदान करें। हमारे मार्ग सरल हों। तुम सदा हमारा पालन करते रहो ॥ ६ ॥ (५)

६४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—मित्रावरुणौः। छन्द—त्रिष्टुप्)

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥१
आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥२
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥३
यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।६

हे मित्रावरुण! तुम पार्थिव और दिव्य जलों के स्वामी हो। मेघ तुम्हारी प्रेरणा से ही जल को रचता है। मित्र, अर्यमा और वरुण हमारे हव्य को ग्रहण करें ॥ १ ॥ तुम यज्ञ की रक्षा करने वाले, नदी के स्वामी, वीरकर्मा

हो। हे वेगवान् मित्रावरुण! तुम अन्तरिक्ष से अन्न रूप वृष्टि का प्रेषण करो ॥ २ ॥ मित्र, वरुण, अर्यमा हमें श्रेष्ठ मार्ग पर गमन करावें। अर्यमा, दाता को उपदेश दें। तुम्हारी रक्षा में रह कर हम पुत्रादि के साथ आनन्द उपभोग करें ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण! जिसने मानसिक रथ की तुम्हारे लिए रचना की, जो श्रेष्ठ कर्म वाला तुम्हारे यज्ञ का धारक है, तुम उसे जल से सींचो और श्रेष्ठ आवास देकर सन्तुष्ट करो ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण! तुम्हारे और वायु के लिए यह सोम अभिषुत हुआ है। तुम हमारे कर्म में आकर हमारे स्तोत्र को सुनो और सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [६]

६५ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ । देवता–मित्रावरुणौ । छन्द–त्रिष्टुप)

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥१
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥३
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।७

हे मित्रावरुण! सूर्योदय काल में मैं तुम्हें आहूत करता हूँ। तुम महान बल वाले रणभूमि में सदा जीतते हो ॥ १ ॥ वे दोनों अत्यन्त बली हैं। वे हमारी प्रजा-वृद्धि करें। हे मित्रावरुण! हम तुम दोनों की सेवा करेंगे। आकाश-पृथिवी तुम्हारी महिमा से हमें पूर्ण करेंगी ॥ २ ॥ मित्रावरुण के पास सुदृढ़ पाश हैं। वे यज्ञ रहित मनुष्य को बंधन में डालते हैं। शत्रुओं के लिए वे विकराल कर्म वाले हैं। हे मित्रावरुण! जैसे नौका जल से पार करती है वैसे ही हम तुम्हारे यज्ञ रूप नौका द्वारा पार होंगे ॥ ३ ॥

मित्रावरुण हमारे हव्य-भक्षणार्थ आगमन करें। वे हमारी गोचर भूमि को जल से सींचें। मित्रावरुण! हमारे सिवाय अन्य कौन तुम्हें श्रेष्ठ हव्य प्रदान करेगा? तुम श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण तुम्हारे और वायु के लिए सोमाभिषव किया है। तुम हमारे यज्ञ में आकर स्तोत्र सुनो और सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [७]

६६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—मित्रावरुण, आदित्यः, सूर्यः। छन्द—गायत्री, बृहती, उष्णिक्)

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः। नमस्वान्तुविजातयोः ॥१
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा ॥२
ता नः स्तिपा तनपा वरुण जरितॄणाम्। मित्र साधयतं धियः ॥३
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥४
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥५ ।८

मित्रावरुण बारम्बार प्रकट होते हैं। उनकी स्तुति उन्हें प्राप्त हो ॥१॥ मित्रावरुण श्रेष्ठ बल से और तेज से युक्त हैं। इन्हें देवताओं ने बल के निमित्त धारण किया ॥ २ ॥ मित्रावरुण घर और शरीर के रक्षक हैं। तुम दोनों, स्तोता के कर्म को बलयुक्त करो ॥ ३ ॥ सूर्योदय काल में मित्र, भग, अर्यमा, सविता देव हमारे लिए धन भेजें ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण! तुम दानी हो, हमारे पाप नष्ट करो। तुम आओ तो हमारे घर की रक्षा हो ॥ ५ ॥ [८]

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥६
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ॥७
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये ॥८
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ॥९
बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१० ।९

मित्रादि देवता कर्मों के पालक हैं। वे श्रेष्ठ धनों के स्वामी हैं ॥ ६ ॥ सूर्योदयकाल में, मैं मित्रावरुण और अर्यमा की स्तुति करूँगा ॥७॥ यह स्तुति हमें हिंसित होने से बचाने वाला बल प्राप्त करावे ॥ ८ ॥ हे मित्रावरुण! हम ऋत्विजों के साथ तुम्हारी स्तुति करेंगे और अन्न जल पावेंगे ॥ ६ ॥ यह देवता सूर्य के समान तेजस्वी और यज्ञ के बढ़ाने वाले हैं, वे कर्मों के द्वारा व्याप्त करने वाले और स्थानों के दाता है ॥ १० ॥ [६]

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥११

तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्य ॥१२
ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥१३
उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥१४
शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥१५ ॥१०

वर्ष, मास, दिवस, रात्रि, यज्ञ और मन्त्र को जिन्होंने बनाया, वे मित्र, वरुण और अर्यमा श्रेष्ठ बल प्राप्त कर चुके हैं ॥ ११ ॥ आज सूर्योदय काल में हम तुमसे धन माँगेंगे। उस धन को मित्र, वरुण, अर्यमा धारण करते हैं ॥ १२ ॥ तुम यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिए उत्पन्न हुए हो और यज्ञ-विमुख मनुष्यों से वैर करते हो। तुम्हारे कल्याणकारी धन को अन्य ऋत्विज् और हम भी प्राप्त करेंगे ॥ १३ ॥ अन्तरिक्ष के निकट यह मङ्गलकारी मण्डल प्रकट होता है। सबके दर्शन के लिए हरित अश्व इसे धारण करते हैं ॥ १४ ॥ सब के शीर्ष रूप, सबके स्वामी, रथी सूर्य को उनके सात घोड़े विश्व कल्याण के लिए वहन करते हैं ॥ १५ ॥ [१०]

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥१६
काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥१७
दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥१८
आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा ।
पातं सोममृतावृधा ॥१९ ॥११

वह प्रकाशयुक्त श्रेष्ठ सूर्य मण्डल प्रकट होता है । हम उसके सौ वर्ष तक दर्शन करते रहें ॥ १६ ॥ हे वरुण ! तुम और मित्र तेजस्वी हो। तुम हमारे स्तोता के पास आकर सोम-पान करो ॥१७॥ हे मित्रावरुण ! तुम द्वेष-हीन हो । तुम आकाश से आकर शत्रुओं का वध करने के लिए सोम-पान करो ॥ १८ ॥ मित्रावरुण यज्ञ का नेतृत्व करने वाले हैं । तुम आहुतियों की ओर आओ और सोम-पान करो ॥ १९ ॥ (११)

६७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥१
अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥२
अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥३
अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥४
प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती
शचीभिः ॥५ ॥१२

हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारे रथ की स्तुति करते हैं। पुत्र जैसे पिता को जगाता है, वैसे ही यह रथ सबको चैतन्य करता है। मैं उसी रथ का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ अग्नि हमारे लिए दीप्ति को धारण करते हैं। तब अँधेरे के सब भूभाग दिखाई देते हैं। सूर्य उषा की पूर्व दिशा में उत्पन्न होकर उठते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम पूर्व से रथारूढ़ होकर हमारे अभिमुख होओ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! मैं धन की कामना वाला स्तोता सोमाभिषव होने पर तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम्हारे अश्व तुम्हें यहाँ लावें। तुम हमारे सोम का पान करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! धन की अभिलाषा करने वाली हमारी बुद्धि को तुम तीक्ष्ण करो। रणभूमि में भी हमारी बुद्धि की रक्षा करो। तुम कर्म द्वारा हमें धन दो ॥ ५ ॥ (१२)

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥६
एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥७
एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥८
असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥९
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० ॥१३

हे अश्विद्वय ! हमारे रक्षक होओ। हम पुत्रोत्पत्ति में समर्थ हों। हम श्रेष्ठ धन वाले, पुत्र-पौत्रादि को धन देकर देवताओं के यज्ञ में उपस्थित हों ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे द्वारा अभिषुत यह सोम निधि रूप में प्रस्तुत है, तुम क्रोध-रहित भाव से हमारे अभिमुख होओ और हव्य भक्षण करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा रथ सातों नदियों को पार करता हुआ आता है। तुम्हारे श्रेष्ठ जन्म वाले अश्व तुम्हारा वहन करने में कभी थकते

नहीं ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम निर्लेप हो । जो हविर्दान करता है, जो सखाओं की यथार्थ वचन द्वारा वृद्धि करता है और गवादि युक्त धन देता है, ऐसे श्रेष्ठ कर्म वालों के तुम हितैषी हो ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम हमारा आह्वान सुनकर आगे आओ और रत्नादि धन दो । स्तोता की वृद्धि करो और सदा हमारा पालन करो ॥ १० ॥ (१३)

६८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्,)

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥१

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥२

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥३

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥४

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५ ।१४

हे अश्विद्वय ! तुम शत्रु का वध करने वाले हो । तुम आकर स्तुति सुनो । हमारे हव्य का सेवन करो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! यह सोम प्रस्तुत है । हव्य-सेवनार्थ आओ । तुम हमारे शत्रु के आह्वान पर न जाकर हमारे आह्वान को सुनो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सूर्या के रथ पर आरूढ़ होते हो । हमारी प्रार्थना पर तुम्हारा रथ सब लोकों को छोड़ कर यज्ञ में आता है ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! जब मैं यज्ञ में तुम्हें देवता मानता हुआ सोमाभिषव करता हूँ, तब यह प्रस्तर घोर शब्द करता है और मेधावी स्तोता तुम्हारे लिए हव्य देता है ॥ ४ ॥ तुम अपने धन को हमें दो । जो अत्रि तुम्हारे प्रदत्त सुख से सुखी हैं, उनसे महिष्वद् को पृथक करो ॥ ५ ॥ (१४)

उत त्यद्वा जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥६
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥७
वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥८
एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसा सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥१५

हे अश्विद्वय ! हवि देने वाले वृद्ध च्यवन ऋषि को रूप तुमने लाकर दिया, उससे वे युवा हो गए ॥ ६ ॥ दुष्टों ने भुज्यु को समुद्र में छोड़ दिया, तब तुम्हीं ने उन्हें पार लगाया। भुज्यु ने कभी कोई निन्द्यकर्म नहीं किया, वह सदा तुम्हारी सेवा करता रहा ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! क्षीण होते वृक ऋषि को तुमने धन दिया। शयु ऋषि को पुकार तुमने सुनी। जैसे नदी खेतों को जल से भरती है, वैसे ही वृद्धा गौ को तुमने जल से परिपूर्ण किया ॥ ८ ॥ सुन्दर मति वाला स्तोता (वसिष्ठ) उषा से पूर्व जाग्रत होकर स्तुति करता है। उसे अन्न, दुग्ध आदि द्वारा प्रवृद्ध करो। उसकी गौ को पुष्ट करो। तुम सदा हमारा पालन करते रहो ॥ ९ ॥ (१५)

६९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२
स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥३
युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।

यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ।।४
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ।।५
नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्मकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ।।६
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ।।७
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।८ ।१६

तुम्हारा अश्वयुक्त रथ आगमन करे । वह सुवर्णिम रथ आकाश पृथिवी, को व्याप्त करता है । उसका चक्र जलसेय है । वह चक्र, डंडों द्वारा तेजस्वी अन्नवहन करने वाला और यजमानों का अधीश्वर है ॥ १ ॥ यह रथ सब जीवों को प्रकट करने वाला तीन बन्धुरों और स्तोत्रों वाला है । हे अश्विद्वय ! तुम इच्छा होने पर इसके द्वारा सर्वत्र गमन करते हो । इस देव-काम्य यज्ञ में भी आगमन करो ॥ २ ॥ तुम अपने अश्व और अन्न के सहित आओ । तुम यहाँ सोमपान करो । सूर्या सहित गमन करता हुआ तुम्हारा रथ आकाश तक गमन करता हुआ सब स्थानों को व्याप्त करता है ॥ ३ ॥ सूर्य पुत्री तुम्हारे रथ को घेरती है । जब तुम यजमान की रक्षा करते हो, तब तेजस्वी अन्न तुम्हारी ओर गमन करता है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! अश्वयुक्त तुम्हारा रथ सब तेजों को ढकता है । उषाकाल में उस रथ द्वारा हमारे यज्ञ में कल्याण के लिए आगमन करो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! आज हमारे सवनों में सोमपानार्थ आगमन करो । यजमान तुम्हारा आह्वान करते हैं । देवताओं की कामना करने वाले अन्य व्यक्ति तुम्हें हवि न देने पावें ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने जल-निमग्न भुज्यु को अपने शीघ्रगामी अश्वों की सहायता से निकालकर पार किया ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे स्तोत्र को सुनो । हमारे घर में आकर रत्न आदि धन दो । स्तोता की वृद्धि करो । हमारा सदा पालन करो ॥८॥ [१६]

७० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१
सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥२
यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥३
चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४
शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥५
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥६
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१७

हे अश्विद्वय ! हमारे यज्ञ में आओ । पृथिवी पर तुम्हारा यही आश्रय स्थान है । तुम जिस अश्व पर चढ़ो वह तुम्हारे पास ही रहे ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! यह स्तुति तुम्हारी प्रशंसा करती है । मनुष्यों के यज्ञ मण्डप में घर्म तप रहा है, वह घर्म नदियों और समुद्रों को वृष्टि जल से पूर्ण करता है । जैसे अश्वों को रथ में योजित किया जाता है, वैसे ही तुम यज्ञ में योजित किये जाते हो ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुम स्वर्ग से आकर औषधियों और प्राणियों में में जिस स्थान पर बैठते हो, वही स्थान अन्न देने वाले यजमान को प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम ऋषि प्रदत्त औषधि और जल को यज्ञ में करते हो । हमारी औषधि और जल की भी इच्छा करो । तुमने पूर्वकालीन यजमानों को भी रत्नादि देकर अपनाया था ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने अनेक

ऋषि कर्मों को प्रकट किया है। तुम यजमान के यज्ञ में आगमन करो। तुम हम पर अन्न वाली अनुग्रह दृष्टि करो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! कृतस्तोत्र, हव्य युक्त और वरणीय वसिष्ठ की ओर गमन करो। यह स्तुति तुम्हारी ही है ॥६॥ हे अश्विद्वय ! यह स्तोत्र तुम्हारे लिए हुआ है। तुम इस स्तुति से प्रसन्न होओ। यह सभी कर्म तुम से मिलें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥७॥ (१७)

७१ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुपाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥१
उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥२
आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥३
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१८

रात्रि अपनी बहिन उषा के आगमन के साथ ही चली जाती है। काली रात्रि सूर्य को मार्ग देती है। हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं, तुम दिन में और रात्रि में भी हिंसक शत्रुओं को दूर रखो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम हवि देने वाले के लिए श्रेष्ठ पदार्थ लेकर आओ। हमसे रोग और दारिद्र्य को दूर करो। तुम हमारी दिन-रात्रि रक्षा करो ॥ २ ॥ तुम्हारे रथ में योजित अश्व तुम्हें यहाँ लावें। तुम अपने धन से लदे रथ को अश्वों द्वारा वहन कराओ ॥३॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हें वहन करने वाला रथ तीन स्थानों

वाला है। वह व्यापक रूप से दिवस की ओर बढ़ता है। तुम उसी रथ द्वारा आगमन करो ॥ ४ ॥ तुमने च्यवन ऋषि की वृद्धावस्था दूर की, रथवेग में पेदु राजा के लिए द्रुतगामी अश्व प्रेषित किया, अत्रि को अँधेरे से निकाला और पदच्युत जाहुप को उनका राज्य दिलाया ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! यह स्तुति तुम्हारी ही है। तुम इससे प्रसन्न होओ। यह सब कर्म तुम में मिलें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ६ ॥ [१८]

७२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥१
आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसः नासत्या रथेन ।
युवोर्हि न. सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥१
उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युपसश्च देवीः ।
आविवासन्नोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति । ३
वि चेदुच्छन्त्यश्विना उपासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥४
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभि. सदा नः ॥५॥ १९

हे अश्विनीकुमारो ! तुम गवादि धन से भरे रथ पर आगमन करो। अनेक स्तुतियाँ तुम्हारी कामना कर रही हैं। तुम श्रेष्ठ तेज से सुशोभित होओ ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम समान प्रीति वाले होकर रथारूढ़ हो हमारे पास आगमन करो। हमारे पूर्वजों से भी तुम्हारा बन्धुत्व स्थापित था। हमारे तुम्हारे एक ही पूर्वज, एक ही धन वाले थे ॥ २ ॥ यह स्तुतियाँ अश्विनीकुमारों को जगाती हैं। सब कर्म उषा का चैतन्य करते हैं। वसिष्ठ आकाश-पृथिवी की सेवा करते हुए अश्विद्वय की स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! उषाओं द्वारा अन्धकार हटाने पर स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करेंगे। सविता

देवता तेज के आश्रित होते हैं और अग्नि देवता भले प्रकार पूजा को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सब दिशाओं से आगमन करो। पाँचों वर्णों का कल्याण करने वाले धन के सहित आकर हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥   [१६]

७३ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः देवता–अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप्)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१
न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥२
अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥३
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥४
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।२०

हम देवताओं की कामना से स्तुति करते हुए अज्ञान को दूर करेंगे। हे अश्विद्वय ! स्तोता तुम्हारा आह्वान करता है ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा प्रीतिपात्र उपासक यहाँ बैठा कर्म कर रहा है। तुम उसके मधुर सोम का पान करो। मैं हवियुक्त होकर तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! हम स्तोता देव-याग की वृद्धि करते हैं। तुम इन स्तुतियों से प्रसन्न होओ। मैं वसिष्ठ तुम्हारे पास दूत के समान आकर स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥ अश्विद्वय दृढ़ अंग, दृढ़ भुज वाले और राक्षसों के संहारक हैं। वे हमारे पुत्रादि के सामने आवें। हे अश्विद्वय ! तुम इस हर्षदायक अन्न को ग्रहण करो। तुम कल्याण सहित आगमन करो। तुम हमें हिंसित मत करना ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम

जिस दिशा में हो, वहीं से आओ। साथ में पाँचों वर्णों का कल्याण करने वाले धनों को लाओ और हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ [२०]

७४ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ। देवता—अश्विनौ। छन्द-बृहती,)

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥३
अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥४
अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥५
प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥६ ।२१

हे अश्विद्वय ! स्वर्ग की इच्छा करने वाले व्यक्ति तुम्हारा आह्वान करते हैं। मैं वसिष्ठ भी तुम्हें रक्षा के लिए आहूत करता हूँ। तुम सब के पास गमन करने वाले हो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम जिस धन को धारण करते हो वह धन स्तोता को प्राप्त कराओ। तुम अपने रथ को यहाँ लाकर समान मन से सोम-पान करो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे पास आकर सोम पान करो। तुम जल का दोहन करते हुए आओ। हमें हिंसित मत करना ॥ ३ ॥ हवि-दाता यजमान के यहाँ तुम्हारे जो अश्व जाते हैं, उनके द्वारा हमारे यहाँ आओ ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! स्तोतागण प्रभूत अन्न पाते हैं। तुम हमें स्थिर गृह और यश प्रदान करो। हम तुम्हारी कृपा से धन सम्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥

जो अन्य का धन न लेकर मनुष्यों में रक्षाकारी होते हुए तुम्हारे पास गमन करते हैं, वे अपने बल द्वारा वृद्धि पाते हुए श्रेष्ठ निवास प्राप्त करते हैं।६[२१]

७५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१
महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥२
एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥३
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५
प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥७
नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ।२२

अन्तरिक्ष में प्रकट हुई उषा ने प्रकाश को उत्पन्न किया। वह अपनी महिमा को प्रकट करती हुई आई। उसने शत्रु को और अन्धकार को नष्ट किया तथा सब प्राणियों के कर्म-मार्ग को दिखाया ॥ १ ॥ हे उषा ! हमारे कल्याण के लिए चैतन्य होओ। तुम हमें सौभाग्य दो। हमारे लिए धन-धारण करो। तुम मनुष्यों को अन्नयुक्त पुत्र प्रदान करो ॥ २ ॥ उषा की किरणें

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥३
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४
प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।२५

केतु रूपी उषा प्रथम देखी जाती है। इसकी किरणें ऊपर मुख करती हुई सब ओर जाती हैं। हे उषे! तुम अपने दैदीप्यमान रथ पर हमारे लिए श्रेष्ठ धन वहन करो ॥ १ ॥ अग्नि सर्वत्र वृद्धि पाते हैं, वे स्तुतियों से बढते हैं। उषा भी सब पापों और अन्धकारों को दूर करती है ॥ २ ॥ यह उषाऐं प्रभात की कारण रूपा हैं, पूर्व में दिखाई देती हैं। इन्हीं ने सूर्य, अग्नि और यज्ञ को प्रकट किया है। इन्हीं के द्वारा अन्धकार दूर हुआ है ॥ ३ ॥ स्वर्ग की पुत्री उषा धन से युक्त एवं प्रभात के करने वाली है। वह अश्व युक्त रथ पर चढ़ कर अश्वों द्वारा आती है ॥ ४ ॥ हे उषे! श्रेष्ठ पुरुषों सहित हम तुम्हें जगाते हैं। तुम प्रभात करने वाली होकर संध्या को स्निग्धता से युक्त करो। हमारा सदा पालन करती रहो ॥ ५ ॥ [२५]

७६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता–उषा । छन्द-त्रिष्टुप)

व्युषा आवः पथ्या जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसन्दृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥१
व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२
अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥३
तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४

देवदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।२६

यह उषा अन्धकार को नष्ट कर मनुष्यों का हित करती है। यह सब मनुष्यों को जगाती और सूर्य की आश्रिता होती है। सूर्य अपने तेज से पृथिवी को ढकते हैं ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष में तेज प्रकाश करने वाली उषाएं सुसंगत होकर अन्धकार को नष्ट करने में यत्नवती होती हैं। हे उषे ! तुम्हारी किरणें तमोनाशिनी हैं। वे सूर्य के तेज के समान ही प्रकाश फैलाती हैं ॥ २ ॥ यह धन वाली उषा उत्पन्न हुई। उसने सबके हितकारी अग्नि को उत्पन्न किया। स्वर्ग की पुत्री और अङ्गिरोपन्न उषा श्रेष्ठ कर्मों के लिए धन धारण करने वाली है ॥ ३ ॥ हे उषे ! पूर्वकालीन स्तोता को तुमने जितना धन प्रदान किया, उतना ही हमें दो। तुम्हें सब लोग स्तोत्र की ध्वनि द्वारा जान लेते हैं। तुमने ही गौओं के अपहरण काल में पर्वत का द्वार दिखाया था ॥ ४ ॥ हे उषे ! स्तोताओं के और हमारे समक्ष मन्यराणी को प्रेरित करो और अन्धकार का नाश कर हमें देने की बुद्धि बनाओ। तुम सदा हमारा मङ्गल करो ॥ ५ ॥ [२६]

८० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्ती रजसी समन्ते आविष्कृण्वती भुवनानि विश्वा ॥१
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥२
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।२७

वसिष्ठों ने स्तुतियों द्वारा उषा को सर्व प्रथम जगाया। वह उषा आकाश पृथिवी को ढकती और सब प्राणियों को प्रकाश देती है ॥ १ ॥ यह उषा अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करती हुई जागती है। वह सूर्य के सामने

आकर सूर्य, अग्नि और यज्ञ को प्रकट करती है ॥ २ ॥ गौओं और अश्वों से सम्पन्न उषाऐं अन्धकार को मिटाती हैं। वे जल का दोहन करती हुई वृद्धि को प्राप्त होती हैं। तुम सदा हमारा मंगल करो ॥ ३ ॥ [२७]

८१ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः। देवता-उषाः। छन्द-बृहती)

प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचां उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥३
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४
तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम्।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥५
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥६ ।१

आकाश की पुत्री उषा अन्धकार नष्ट करती है। वह सबको दर्शन शक्ति देती और तेज को बढ़ाती है ॥ १ ॥ रश्मियों को सूर्य एक साथ गिराते हैं। यह ग्रह नक्षत्र आदि को भी प्रकाश देती हैं। हे उषे ! तुम्हारे और सूर्य के प्रकाश को पाकर हम अन्न से युक्त हों ॥ २ ॥ हे उषा ! हम तुम्हें जाग्रत करेंगे। तुम इच्छित धन को लाती हो। यजमान के लिए रत्नादि का वहन करती है ॥ ३ ॥ हे उषे ! तुम महिमामयी और अन्धकार नाशिनी हो। तुम विश्व को चैतन्य कर उसे दर्शन शक्ति देती हो। हे रत्नवली उषे ! हम तुमसे याचना करते हैं। जैसे माता के लिए पुत्र प्रिय होता है, वैसे ही हम तुम्हारे लिए प्रिय होंगे ॥४॥ हे उषे ! तुम्हारा जो धन दूर तक प्रसिद्ध है, उसी को

की है। तुम में से इन्द्र मरुद्गण के साथ तेजोमय अलंकार धारण करते हैं और वरुण की सब सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ [२]

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥६
न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥७
अर्वाङ् नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥८
अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥९
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१० ।३

धन की प्राप्ति के लिए इन्द्र और वरुण को बुलाते हैं। यह विशिष्ट बल वाले हैं। इनमें से एक अनेक शत्रुओं को वश करते और दूसरे हिंसक को मारते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र, हे वरुण! तुम जिसके यज्ञ में जाते हो, उसके पास विघ्न नहीं जाते। पाप और दुष्कर्म और सन्ताप भी उसके पास नहीं पहुँचते ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वरुण! मेरी रक्षा के लिए अभिमुख होओ। मेरी स्तुति सुनो। तुम्हारी मित्रता सुख प्राप्त कराती है। तुम हमारे मित्र और बन्धु होओ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण! तुम सब युद्धों में हमारे आगे रहो। तुम्हें प्राचीन कालीन और नवीन स्तोता रणक्षेत्र में अथवा अपत्य प्राप्ति के लिए आहूत करते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा हमें धन और वर दें। अदिति का तेज हमारी हिंसा न करे। हम सवितादेव की स्तुति करेंगे ॥ १० ॥ [३]

८३ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः देवता–इन्द्रावरुणौ। छन्द–जगती)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१
यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२
सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥३
इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥४
इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥५ ।४

हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हारी मित्रता पाकर गौओं की कामना वाले यजमान पूर्व दिशा में गए । तुम वृत्रादि का वध करो और सुदास के लिए रक्षक होकर आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हे वरुण ! जहाँ दोनों पक्ष संग्राम के लिए हाथ बढ़ाते हैं, जिस युद्धमें स्वर्ग-दर्शन आदि प्राप्त होता है, उस संग्राम में तुम हमारा पक्ष ग्रहण करना ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हे वरुण ! सैनिकों द्वारा सब अब नष्ट किए जाते हैं । उनका कोलाहल आकाश तक फैलता है । मेरे शत्रु मेरी ओर बढ़ रहे हैं । तुम अपने रक्षा-साधनों सहित आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुमने सुदास को बचाया था और तृत्सुओं के स्तोत्र सुने थे । उनका पौरोहित्य संग्राम के उपस्थित होने पर सफल होगया ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! मैं शत्रुओं के आयुधों से घिरा हूँ । शत्रु मुझे हर प्रकार बाधित कर रहे हैं । तुम सब धनों के स्वामी हो । युद्ध के अवसर पर हमारे रक्षक होओ ॥ ५ ॥ [४]

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६
दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥८
वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥९
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१० ।५

युद्ध के अवसर पर इन्द्र और वरुण का आह्वान करते हैं, तुमने दस राजाओं द्वारा त्रस्त सुदास की तृत्सुओं सहित रक्षा की थी ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! यज्ञ-विमुख दस राजा भी सुदास को न जीत सके । यज्ञ में नेताओं की स्तुति फलवती हुई । सब देवता इस यज्ञ में आये थे ॥ ७ ॥ जहाँ कर्मवान् तृत्सुगण उपासना करते हैं, वहीं दस राजाओं द्वारा घिरे हुए राजा सुदास को तुमने बल दिया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुममें से इन्द्र वृत्रहन्ता और वरुण कर्म-पालक हैं । तुम हमें कल्याण प्रदान करो । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा हमें धन और घर दें । अदिति का तेज हमारी हिंसा न करे । हम सविता देव को नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ [५]

८४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्,)

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१
युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिरज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२
कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३
अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

हे इन्द्र और वरुण ! मैं तुम्हारे लिए सोमरस की आहुति देता हूँ। राक्षसों से हीन स्तुति को उषा के तेज के समान परिष्कृत करता हूँ। वे युद्ध और यात्रा में हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥ युद्ध में शत्रुगण हमारे प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। हे इन्द्र और वरुण ! जिस संग्राम में ध्वजा पर शस्त्र गिरें उस संग्राम में पीछे हटते हुए शत्रु को भी तुम नष्ट करो। ॥ २ ॥ सभी सोम तेजस्वी होकर इन्द्र और वरुण को धारण करते हैं। उनमें इन्द्र शत्रुओं का संहार करते हैं और वरुण प्रजाओं को पृथक-पृथक रूप से धारण करते हैं ॥ ३ ॥ हे बली आदित्यो ! जो तुम्हारी सेवा करता है, वह श्रेष्ठकर्मा और यज्ञ का जानने वाला हो। जो हवियुक्त यजमान तुम्हें तृप्त करने की इच्छा से बुलाता है, वह अन्नवान होता हुआ फल की प्राप्ति करे ॥ ४ ॥ मेरा स्तोत्र इन्द्र और वरुण को व्याप्त करे। इससे मेरे पुत्र पौत्रादि की रक्षा हो। हम श्रेष्ठ धन और यज्ञ से सम्पन्न हों। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [७]

८६ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–वरुणः, । छन्द–त्रिष्टुप्)

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥१
उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२
पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥३
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४
अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥५
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥१
आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥२
परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥३
उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥४
तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥५
अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥६
यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।९

वरुण ने ही सूर्य को अन्तरिक्ष में मार्ग दिया था । इन्होंने नदियों को जल दिया । वरुण ने शीघ्र गमन की इच्छा से रात्रियों को दिन से पृथक कर दिया ॥ १ ॥ हे वरुण ! संसार की आत्मा रूप वायु जल को सब ओर भेजता है । जैसे तृण खाकर पशु अन्न ढोता है, वैसे ही वायु भी अन्न वहन करता है । विस्तीर्ण द्यावापृथिवी में तुम्हारे सब स्थान सब को प्रिय लगते हैं ॥ २ ॥ वरुण के सब अनुचर प्रशंसा के पात्र हैं वे आकाश पृथिवी के श्रेष्ठ रूपों को देखते हैं । वे मेधावियों के स्तोत्र को भी देखते हैं ॥ ३ ॥ मैं मेधावी ऋत्विज् हूँ । वरुण ने कहा था कि पृथिवी इक्कीस नाम वाली है । मेधावी वरुण ने योग्य छात्र को उपदेश देकर सब बातें बताई हैं ॥ ४ ॥ इन वरुण के भीतर तीन स्वर्ग हैं । इनमें तीन प्रकार की भूमियाँ और छै प्रकार की दशाएं हैं । वरुण ने सूर्य को स्वर्ण के झूले के समान तेज के निमित्त रचा है ॥ ५ ॥ वरुण ने सूर्य के समान ही समुद्र की रचना की । वे मृग के समान बलवान, जल के रचने वाले, दुःख से पार जाने वाले और सभी उत्पन्न

पदार्थों के स्वामी हैं ॥ ६ ॥ अपराधी पर भी दया करने वाले हैं। हम उनके कर्मों को बढ़ा कर अपराधों से मुक्त हों। तुम सदा हमारा पालन करो ।७। [६]

८८ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ । देवता–वरुण । छन्द–त्रिष्टुप्)

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठा मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥१
अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२
आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥३
वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभि. ।
स्तोतारं विप्र सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषास ॥४
क्वत्यानि नौ सख्या बभूवु सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधाव. सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥५
आपिर्नित्यो वरुण प्रिय. सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्र. स्तुवते वरूथम् ॥६
ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभि सदा न ॥७ ।१०

हे वसिष्ठ ! वरुण कामनाओं के वर्षक हैं। तुम उनकी स्तुति करो। वे यज्ञ के योग्य और धनों के स्वामी हैं तथा सूर्य को सबके सामने लाते हैं ॥१॥ वरुण का दर्शन करता हुआ मैं अग्नि की ज्वालाओं को नमस्कार करता हूँ। सुखकारी पाषाण के कर्म में रत हम सोम-रस का वरुण अधिकाधिक पान करते हैं, तब दर्शन के निमित्त मेरी शरीर-वृद्धि करते हैं ॥ २ ॥ जब मैं और वरुण नौका पर आरूढ़ हुए और जब समुद्र में नौका भले प्रकार चलाई गई, तब हमने उस नौका रूपी झूला पर सुख पूर्वक क्रीड़ा की थी ॥ ३ ॥ विद्वान्

वरुण ने दिन-रात्रि को बढाया और मुझे नौका पर चढ़ा लिया। अपने रक्षण-कर्मों द्वारा उन्होंने वसिष्ठ को श्रेष्ठ कर्म वाला किया ।४। हे वरुण ! हम प्राचीन काल में मित्र कब हुए थे ? हम में जो पहिले से हिंसा-रहित मित्रता थी, उसका हम निरन्तर निर्वाह करते चले आरहे हैं। हे वरुण ! तुम अन्नों के स्वामी हो। मैं तुम्हारे सहस्र द्वार वाले गृह में प्रविष्ट होऊँगा ॥ ५ ॥ हे वरुण ! जिन नित्य बन्धुओं ने प्राचीन समय में तुम्हारा अपराध किया था, वह अब तुम्हारे मित्र बनें। हम तुम्हारे आत्मीय पाप पूर्ण भोग को न भोगें। तुम स्तुति करने वाले को वर दो ॥ ६ ॥ हे वरुण ! हम तुम्हारे स्तोता हैं। हमें बन्धन-मुक्त करो। हम तुम्हारी रक्षा का उपभोग करें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [१०]

८९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—वरुणः । छन्द—गायत्री, जगती)

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥१
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥२
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मळय ॥३
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥४
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या अरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५ ।११

हे वरुण! मैं मिट्टी का घर प्राप्त न करूँ। तुम मुझ पर दया करो और सुख दो ।१। हे वरुण ! मैं वायु से धकेले जाते हुए मेघ के समान कम्पित होता हुआ जाता हूँ, तुम मुझ पर दया करो और सुख दो ॥२॥ हे वरुण ! दरिद्रता और असमर्थता के कारण अनुष्ठान को मैं नहीं कर सका। तुम मुझ पर कृपा करो और कल्याण करो ॥३॥ समुद्र में रह कर भी मुझे प्यास लगी है। तुम मुझे कृपा पूर्वक सुखी करो ॥ ४ ॥ हे वरुण ! हम मनुष्यों से जो देवताओं का अपराध हुआ है या अज्ञानवश तुम्हारे कर्म में जो त्रुटि रह गई है, उन पापों के कारण हमारी हिंसा न करना ॥ ५ ॥ [११]

६० सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-वायुः, इन्द्रवायु । छन्द-त्रिष्टुप्)

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥१
ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥२
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥३
उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥४
ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥५
ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥६
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१२

हे वीरकर्मा वायो ! इस मधुर रस वाले सोम को अध्वर्युगण प्रस्तुत करते हैं । तुम अपने अश्वों को योजित कर यहाँ आओ और सोम-पान करो ॥ १ ॥ हे वायो ! जो यजमान तुम्हें ईश्वर मान कर आहुति देता है और हे वरुण ! जो तुम्हें सोम अर्पित करता है, उसे मनुष्यों में प्रमुख करो । वह सर्वश्रेष्ठ होकर धन पाता है ॥ २ ॥ जिन वायु को आकाश-पृथिवी ने धन के लिए प्रकट किया और इसीलिए स्तुति जिन वायु को धारण करती है, वह वायु अपने अश्वों द्वारा सेवा प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ पाप रहित उषाऐं अन्धकार को मिटाती हैं, वे विशिष्ट दीप्ति वाली हुई हैं । अंगिराओं ने गौ रूप धन पाया और प्राचीन जल अंगिराओं का अनुगामी हुआ था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र

और वायु ! तुम ईश्वर हो। यजमान अपनी हार्दिक स्तुतियों द्वारा तुम्हारे रथ को अपने यज्ञ में वहन करते हैं और सभी अन्न तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और वायो ! जो समर्थ जन हमें गौ, अश्व, धन और सुवर्ण आदि देते हैं, वे दाता व्याप्त जीवन पर विजय पाते हैं ॥ ६ ॥ अश्व के समान हवि वहन करने वाले वसिष्ठों ने श्रेष्ठ स्तुति द्वारा इन्द्र और वायु को आहूत किया। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ७ ॥ [१२]

९१ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ. । देवता–वायुः इन्द्रावायु.। छन्द–त्रिष्टुप्)

कुविदङ्ग नमसा ये वृधसाः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥१
उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥२
पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिपक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥३
यावत्तरस्तन्वो यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥४
नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥५
या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१३

जो स्तोता वायु के स्तोत्र को करते हुए समृद्ध हुए, उन्होंने संकटग्रस्तों का उद्धार करने के लिए, वायु को हवि प्रदान करने के अभिप्राय से सूर्य और उषा को एकत्र रोका था ॥ १ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम हमारे रक्षक हो।

हमारी हिंसा मत करना। श्रेष्ठ स्तुति तुम्हारी ओर गमन करके श्रेष्ठ धन माँगती है ॥ २ ॥ उज्वल वर्ण वाले वायु जिन पुरुषों को आश्रय देते हैं, वे पुरुष एक-से मन वाले होकर वायु का यज्ञ करते हैं। इन्होंने श्रेष्ठ अपत्य प्राप्ति के लिए यज्ञ रूप कार्यों को किया ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वायो! जब तक तुम्हारे देह में बल तथा वेग है, जब तक ज्ञान के बल से कर्मवान् प्रकाशमान रहते हैं, तब तक तुम इन कुशों पर बैठकर सोम पान करो ॥४॥ हे इन्द्र और वायो! तुम्हारा स्तोता कामना वाला है। तुम अपने अश्वों को योजित कर आओ यह सोम तुम्हारे निमित्त है तुम इसे पीकर हमें पाप से मुक्त करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और वायो! तुम्हारे सैकड़ों अश्व तुम्हारी सेवा में रत हैं। वे अश्व वरणीय हैं। उनके सहित हमारे अभिमुख होओ ॥ ६ ॥ हविवहन करने वाले, अन्न-याचक वसिष्ठगण श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा इन्द्र और वायु का आह्वान करते हैं। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ७ ॥ [१३]

९२ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ.। देवता-वायुः इन्द्रवायू। छन्द—त्रिष्टुप्,)

आ वायो भूष शुचिपा उप न. सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥१
प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै।
प्र यद्वा मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥२
प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३
ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ॥१४

हे सोमपायी वायो! तुम हमारे अभिमुख होओ। तुम सहस्र अश्व वाले हो। तुम जिस सोम को प्रथम पीते हो, वह सोम तुम्हारे लिए पात्र में

स्थित है ॥ १ ॥ श्रेष्ठकर्मा अध्वर्यु ने इन्द्र और वायु के लिए सोम प्रस्तुत किया है। हे इन्द्र और वायो ! इस यज्ञ में अध्वर्युओं ने सोम का अग्रभाग तुम्हारे लिए अर्पित किया है ॥ २ ॥ हे वायो ! तुम हविदाता यजमान के घर में अपने जिन अश्वों से पहुँचते हो, उनके सहित यहाँ आओ और हमें श्रेष्ठ अन्न-युक्त धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ जो देवोपासक इन्द्र और वायु को संतुष्ट करते हैं, वे शत्रुओं का हनन करने वाले हैं। हम उनकी सहायता से शत्रु-नाश करें ॥ ४ ॥ हे वायो ! तुम अपने सैकड़ों-हजारों अश्वों के सहित यज्ञ में आओ और सोम-पान द्वारा हर्षित होओ। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [१४]

९३ सूक्त

(ऋषि – वसिष्ठः । देवता—इन्द्राग्नि । छन्द–त्रिष्टुप्)

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥१

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥२

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥३

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥४

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५ ।१५

हे इन्द्राग्ने ! मेरे अभिनव स्तोत्र को सुनो। तुम सुख पूर्वक आह्वान योग्य हो। मैं तुम्हें बारम्बार आहूत करता हूँ। तुम कामना वाले यजमान को अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम भजनीय हो। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले होओ। तुम प्रचुर धन और अन्न के स्वामी हो। हमें शत्रु-नाशक अन्न प्रदान करो ॥ २ ॥ जो हविदाता यज्ञ कर्म में लगते

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥६ ।१७

हे इन्द्राग्ने ! मेघ से वृष्टि-जल के उत्पन्न होने के समान इस स्तोता ने यह स्तुति उत्पन्न की है ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! आह्वान सुनो । तुम ईश्वर हो । इस अनुष्ठान को सम्पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हमें पराजय, निन्दा और हीनता में मत डाल देना ॥ ३ ॥ हम रक्षा की कामना करते हुए इन्द्र और अग्नि की श्रेष्ठ स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्राग्नि की मेधावी स्तोता स्तुति करते हैं और समान संकट में पड़े अन्य स्तोता भी अन्न के लिए उनकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ अन्न-धन की कामना वाले हम उन इन्द्राग्नि का स्तुतियों द्वारा आह्वान करें ॥ ६ ॥ (१७)

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥७
मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥८
गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥९
यत्सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥१०
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥११
ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥१२ ।१८

हे इन्द्राग्ने ! तुम मनुष्यों को प्रकट करते हो । तुम अन्न सहित आगमन करो । कटु-भाषी पुरुष हम पर शासन न करे ॥ ७ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हम शत्रु द्वारा हिंसित न हों । हमारा मङ्गल करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हम तुमसे जिस विविध प्रकार के धन को माँगते हैं, वह उपभोग्य हो ॥ ९ ॥ सोमाभिषव के पश्चात् कर्म करने वाले पुरुष इन्द्राग्नि को बारम्बार आहूत करते हैं ॥ १० ॥ हम वृत्रहन्ता इन्द्र और अग्नि की स्तुतियों से सेवा करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम अपहारक दुष्ट को घड़े के समान अपने आयुध से तोड़ डालो ॥ १२ ॥ [१८]

६५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता-सरस्वती, सरस्वान् । छन्द-त्रिष्टुप्,)

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१
एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥२
स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥३
उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥४
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥५
अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१६

लौह निर्मित नगरी के समान धारण करने वाली होकर यह सरस्वती धारक जल के सहित गमन करती है। वह अपनी महिमा से बहने वाली सब नदियों को बाधा देने वाले सारथि के समान गमन करती है ॥ १ ॥ नदियों में श्रेष्ठ जो सरस्वती पर्वत से चल कर समुद्र तक जाती है, उसने राजा नहुष की याचना को सुना और नहुष के लिए घृत दुग्ध का दोहन किया ॥ २ ॥ वर्षा करने में समर्थ सरस्वान् (वायु) मनुष्यों के हित के लिए यज्ञीय योषित के मध्य प्रवृद्ध हुए। वे हवि वाले यजमानों को बलवान् पुत्र प्रदान करते हैं और उनके शरीर को शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥ सुन्दर धन वाली सरस्वती हमारी स्तुति सुनें। पूज्य देवता भी उनके समक्ष झुकते हैं। वह धनवती देवी अपने उपासकों पर कृपा करती हैं ॥ ४ ॥ हे सरस्वते ! हम हवि वहन करते हुए और नमस्कार करते हुए यजमान तुमसे धन पावेंगे। तुम हमारी स्तुति का सेवन

करो। आश्रय रूपी वृक्ष के समान हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥ हे सरस्वती ! तुम श्रेष्ठ धन वाली हो, यह वसिष्ठ यज्ञ-द्वार का उद्घाटन करता है। तुम मुझ स्तोता को अन्न प्रदान करो और सदा हमारा पालन करो ॥६॥[१६]

९६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता–सरस्वती, सरस्वान्। छन्द—बृहती, पंक्तिः, गायत्री)

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१
उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥२
भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवस्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥३
जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥४
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥५
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ।६।२०

हे वसिष्ठ ! नदियों में अत्यन्त वेग वाली सरस्वती की स्तुति करो। उन्हीं का पूजन करो ॥ १ ॥ हे उज्वल वर्ण वाली सरस्वती तुम्हारी कृपा से दिव्य और पार्थिव अन्न प्राप्त होते हैं। तुम हमारी रक्षा करो और हवि देने वाले यजमानों के पास धन भेजो ॥ २ ॥ सरस्वती कल्याण करें। वे हमें बुद्धि दें। जमदग्नि के समान मेरे द्वारा स्तुत होने पर वसिष्ठ की स्तुति को ग्रहण करो ॥ ३ ॥ हम स्तोता स्त्री-पुत्र की कामना वाले हैं। हम सरस्वान् देव की स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हे सरस्वान् ! तुम्हारी जो जल-राशि वृष्टि देती है, उसके द्वारा हमारा कल्याण करो ॥ ५ ॥ हम सरस्वान् देवता के जलाधार को प्राप्त करें। वह देवता सब के दर्शन-योग्य हैं। उनसे हम बुद्धि और अन्न पावें ॥ ६ ॥ [२०]

९७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । दे०—इन्द्र, बृहस्पतिः, इन्द्राब्रह्मणस्पती । छन्द—त्रिष्टुप्,)

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥१
आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥२
तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥३
स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥४
तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥५ ।२१

जिस यज्ञ में देवताओं की कामना वाले मेधावी जन हर्षित होते हैं और जहाँ सब सवनों में इन्द्र के लिए सोमाभिषव होता है, उस यज्ञ में सर्व प्रथम इन्द्र अपने अश्वों सहित आवें ॥ १ ॥ हम देवताओं से रक्षा याचना करते हैं । बृहस्पति हमारी हवि को ग्रहण करें । जैसे दूर से आकर पिता पुत्र को धन देता है, वैसे बृहस्पति हमें धन दें । हम उनके प्रति किसी प्रकार अपराधी न हों ॥ २ ॥ मैं उन ब्रह्मणस्पति को नमस्कार और हव्य अर्पित करता हूँ । जो स्तोत्र मनुष्यों में श्रेष्ठ है, वही स्तोत्र इन्द्र की सेवा करे ॥ ३ ॥ ब्रह्मणस्पति हमारी वेदी पर विराजमान हों । वे हमारी धन और बल की कामना को पूर्ण करें । हम जिन विघ्नों से ग्रस्त हैं, वे उनसे पार लगावें ॥४॥ अविनाशी देवता अन्न दें । हम यज्ञ के योग्य बृहस्पति का आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीळवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥६

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७
देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥८
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥९
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० २२

आदित्य के समान तेजस्वी अश्व उन बृहस्पति को लावें । उन बृहस्पति के पास गृह और श्रेष्ठ बल हैं ॥ ६ ॥ बृहस्पति के अनेक वाहन हैं । वे शोधक और रमणीक वाद्यों से सजे हैं । वे गमनशील और दर्शनीय है । स्तोता को वे वाहन प्रचुर अन्न प्राप्त कराते हैं ॥ ७ ॥ जननी रूपी द्यावा-पृथिवी बृहस्पति को अपनी महिमा से बढ़ावें । मित्रगण भी उन्हें बढ़ावें । वे जलों को अन्न के निमित्त द्रव रूप में करते हैं ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! मैंने तुम्हारी और वज्रधर इन्द्र की श्रेष्ठ स्तुति की है । तुम हमारे यज्ञ की रक्षा करो । हम पर आक्रमण करने वाली शत्रु-सेना का संहार करो ॥ ९ ॥ हे बृहस्पति और इन्द्र ! तुम पार्थिव और दिव्य धनों के स्वामी हो । स्तोता को धन देने वाले हो । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ १० ॥ [२२]

९८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः, इन्द्राबृहस्पती । छन्द—त्रिष्टुप्,)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१
यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजि सौश्रवसं जयेम ॥४

प्रेन्द्रस्य वोच प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवल. सोमो अस्य ॥५

तवेदं विश्वमभितः पशव्या यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२३

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के लिए सोमाहुति दो । वे इन्द्र सोम का अभिषव करने वाले यजमान को ढूँढते हुए सदा आते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! प्राचीन काल में तुमने जिस सोम को धारण किया था, उसी सोम के पीने की अब भी इच्छा करो । तुम इस अर्पित सोम का पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही सोम पिया था । अदिति ने तुम्हारी महिमा बताई थी कि तुमने विशाल अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण किया । तुमने संग्राम द्वारा देवताओं को धन प्राप्त कराया ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम अहंकारी शत्रुओं से हमारा संग्राम कराओगे, तब हम उन्हें हरावेंगे । तुम मरुद्गण को साथ लेकर संग्राम करोगे, तब हम विजय प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥ मैं इन्द्र के प्राचीन कर्मों का वर्णन करता हूँ । इन्द्र के नवीन कर्मों को भी कहूँगा । इन्होंने राक्षसी माया को नष्ट किया है, अतः यह सोम केवल इन्द्र के लिए है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! जिस विश्व को तुम सूर्य के प्रकाश से देखते हो, वह सब तुम्हारा ही है । तुम्हीं सब गौओं के अधिपति हो, हम तुम्हारे दान का ही उपभोग करते हैं ॥ ६ ॥ हे बृहस्पति और इन्द्र ! तुम दिव्य और पार्थिव धनों के अधिपति हो । तुम स्तोता को धन-दान करते हो । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२३]

६६ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–विष्णुः, इन्द्राविष्णू । छन्द—त्रिष्टुप्,)

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१
न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णावेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४
इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५
इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥६
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२४

हे विष्णो ! तुम्हारी महिमा को कोई नहीं जानता । हम तुम्हारे दोनों लोकों के ज्ञाता हैं, परन्तु अपने परमलोक को केवल तुम्हीं जानते हो ॥ १ ॥ हे विष्णो ! पृथिवी पर जो उत्पन्न हुए हैं और जो होंगे, उनमें भी तुम्हारी महिमा का ज्ञाता कोई नहीं है । तुमने विराट् स्वर्ग को धारण किया है और पृथिवी की पूर्व दिशा को भी धारण किया है ॥ २ ॥ हे द्यावापृथिवी ! तुम स्तोता को देने की इच्छा से अन्नवती और गौ-सम्पन्ना हुई हो । हे विष्णो ! तुमने आकाश पृथिवी को विविध रूप से धारण किया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और विष्णो । तुमने सूर्य, अग्नि और उषा को प्रकट कर यजमान के लिए स्वर्ग की रचना की है । तुमने रणक्षेत्र में दस्यु की माया का नाश किया

है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुमने शम्बर के निन्यानवे पुरों को तोड़ा और वर्चि के शत सहस्र वीरों का संहार किया ॥ ५ ॥ यह स्तुति इन्द्र और विष्णु की बल-वृद्धि करेगी। हे इन्द्र और विष्णो ! संग्राम भूमि में तुमको स्तोत्र अर्पित किया है, तुम हमारे अन्न की वृद्धि करो ॥ ६ ॥ हे विष्णो मैंने यज्ञ में स्तुति की है। तुम हमारे हव्य को स्वीकार करो। हमारी स्तुति तुम्हारी वृद्धि करे और तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२४]

१०० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ। देवता—विष्णुः। छन्द—त्रिष्टुप्)

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥१
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥२
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३
वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥५
किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥६
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२५

जो विष्णु के निमित्त हवि देता है और मन्त्रों द्वारा पूजन करता है, वह धनेच्छु मनुष्य शीघ्र ही धन पाता है ॥ १ ॥ हे विष्णो ! तुम हम पर अनुग्रह करो। जिस प्रकार हम प्राप्तव्य धन पा सकें ऐसी कृपा करो ॥ २ ॥

विष्णु ने पृथिवी पर तीन बार चरण निक्षेप किया, वे प्रवृद्ध विष्णु हमारे ईश्वर हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥ ३ ॥ विष्णु ने पृथिवी को निवास के लिए देने की इच्छा से पाद प्रक्षेप किया और विस्तृत स्थान की रचना की ॥ ४ ॥ हे विष्णो ! हम तुम्हारे प्रसिद्ध नामों का कीर्त्तन करेंगे, तुम प्रवृद्ध की हम अवृद्ध मनुष्य स्तुति करेंगे ॥ ५ ॥ हे विष्णो ! मैंने जो तुम्हारा 'शिपिविष्ट' नाम लिया है वह क्या उचित नहीं है ? संग्रामों में तुमने अनेक रूप धारण किये हैं। तुम अपने रूप को हम से मत छिपाओ ॥ ६ ॥ हे विष्णो ! मैं तुम्हारे निमित्त वषट्कार करता हूँ। तुम हमारे हव्य को स्वीकार करो। हमारी स्तुति तुम्हें प्रवृद्ध करे और तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२५]

१०१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः। देवता-पर्जन्यः। छन्द—त्रिष्टुप्)

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१
यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥२
स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥४
इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत्।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥५
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१

अग्र भाग में ओंकार युक्त जो ऋक्, यजुः और साम नामक तीन वाक्य जल का दोहन करते हैं, इनको कहो। सहवासी विद्युत रूप अग्नि को

उत्पन्न करते हुए पर्जन्य वृषभ के समान शब्द करते हैं ॥ १ ॥ जो पर्जन्य औषधियों और जलों के बढ़ाने वाले हैं वे हमें भूमियुक्त घर देकर सुखी करें। वे तीन ऋतुओं में विद्यमान तेज को हमें प्रदान करें ॥ २ ॥ पर्जन्य का एक रूप बंध्या गौ के समान और दूसरा रूप वृष्टि कारक है। यह इच्छानुसार रूप धारण करते हैं। मातृभूता पृथिवी स्वर्ग रूप पिता से रस प्राप्त करती है, तब स्वर्ग सब प्राणियों को बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ जिन में सब प्राणी और सब लोक निवास करते हैं और जिनसे तीन प्रकार से जल निकलता है। जिनके सब ओर तीन प्रकार के मेघ जल-वृष्टि करते हैं, वे देवता पर्जन्य ही हैं ॥ ४ ॥ पर्जन्य की यह स्तुति की गई, वे इसे स्वीकार करें। हमारे लिए कल्याणमयी वर्षा हो और औषधियाँ उत्तम फल वाली हों ॥ ५ ॥ पर्जन्य अनेक औषधियों के लिए जल धारण करते हैं। सब प्राणियों की आत्मा उन्हीं में निवास करती है। उनका जल मेरी सौ वर्ष तक रक्षा करे। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ६ ॥ [१]

१०२ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ. कुमारो वाग्नेयः। देवता-पर्जन्य। छन्द-त्रिष्टुप्)

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे। स नो यवसमिच्छतु ॥१
यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥२
तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम्। इळां नः संयतं करत् ॥३ ॥२

हे स्तोताओ! पर्जन्य की स्तुति का गान करो ॥ १ ॥ जो पर्जन्य औषधियों, गौओं, अश्वों आदि को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥ उन्हीं पर्जन्य के लिए अग्नि में आहुति दो। वे हमें अन्न प्रदान करें ॥ ३ ॥ [२]

१०३ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः। देवता-मण्डूकाः। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥२
यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥३
अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥४
यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५ ।३

व्रती स्तोता के समान, एक वर्ष सोकर जागने वाले मेंढक पर्जन्य के लिए स्तुति-वाक्य उच्चारित करते हैं ॥ १ ॥ जब सरोवर में सुप्त मेंढकों के पास दिव्य जल पहुँचता है, तब सवत्साधेनु के समान मेंढक शब्द करते हैं ॥ २ ॥ वर्षा-काल में जब पर्जन्य प्यासे मेंढकों को जल से सींचते हैं, तब मेंढक एक दूसरे के पास गमन करते हैं ॥ ३ ॥ जल वृष्टि से दो जातियों के मेंढक हर्षित होते हैं और लम्बी उछलकूद करते हैं, तब परस्पर अनुग्रह करते हैं ॥ ४ ॥ जैसे शिष्य गुरु का अनुकरण करता है, वैसे ही परस्पर एक दूसरे के शब्द का यह अनुकरण करते हैं । हे मेंढको ! तुम सुन्दर शब्द करते हुए जल पर उछलते कूदते हो, उस समय तुम्हारे शरीर के सब अवयव पुष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ [३]

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥६
ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥७
ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥८
देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९

गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥१० ॥४

कोई मेंढक गौ का-सा और कोई बकरे जैसा शब्द करता है । कोई धूम्र वर्ण का और कोई हरित वर्ण वाला है । यह विभिन्न रूप वाले मेंढक अनेक स्थानों पर शब्द करते हुए प्रकट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे मेंढको ! अतिरात्र नामक सोम याग में स्तोता जैसे शब्द करते हैं, वैसे ही भरे हुए सरोवर में शब्द करते हुए तुम चारों ओर निवास करो ॥ ७ ॥ यह मेंढक सोम वाले स्तोता के समान शब्द करते हैं । धूप के कारण बिल में छिपे मेंढक वर्षा-काल में बाहर निकल आते हैं ॥ ८ ॥ मेंढक दैव-नियमों के रक्षक हैं । वे ऋतुओं को नष्ट नहीं करते । वर्ष के पूर्ण होने पर आगत वर्षा से प्रसन्न मेंढक गर्त के बन्धन से मुक्त होते हैं ॥९॥ गौ के समान शब्द करते हुए मेंढक हमें धन प्रदान करें । बकरे के समान शब्द वाले मेंढक भी हमें धन दें । भूरे और हरे रङ्ग के मेंढक भी धनदाता हों । सहस्रों वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाली वर्षा ऋतु में यह मेंढक गण हमें गौएं दें और हमारी आयु की वृद्धि करें ॥ १० ॥ (१)

१०४ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–इन्द्रासोमौ, अग्निः, देवाः, ग्रावाणः, मरुतः, वसिष्ठ पृथिव्यन्तरिक्षे । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥१
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।

तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ।।५ ।५

हे इन्द्र और सोम ! तुम राक्षसों को सन्तप्त और नष्ट करो । अन्धकार में प्रवृद्ध राक्षसों का पतन करो । इन्हें मार कर भगाओ अथवा फेंक दो ॥ १ ॥ हे इन्द्र और सोम ! इस राक्षस को वशीभूत करो । इसे अग्नि में फेंके गए चरु के समान अदृश्य कर दो । ब्राह्मणों के वैरी, मांसाहारी, कटु भाषी, वक्र दृष्टि वाले राक्षसों के प्रति सदा शत्रुता रहे, ऐसा करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और सोम ! दुष्कर्म करने वाले राक्षस को मार कर फेंक दो । एक भी राक्षस शेष न रहे । तुम्हारा क्रोधयुक्त बल उन्हें अपने वश में करे ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और सोम ! अन्तरिक्ष से हिंसक आयुध को प्रकट करो । इस पृथिवी से भी शत्रु-हिंसक आयुध प्रकट करो । मेघ से राक्षसों को नष्ट करने वाले वज्र को उत्पन्न करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और सोम ! प्रत्येक दिशा में आयुधों को प्रेरित करो । अग्नि और पत्थरों के अस्त्रों द्वारा राक्षसों की बगलों को फाड़ दो । वे राक्षस भयभीत होकर भाग जाँय ॥ ५ ॥　　　　　　　　[५]

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ।।६
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ।।७
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आपइव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ।।८
ये पाकशंसं विरहन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ।।९
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि प हीयतां तन्वा तना च ।।१०।६

हे इन्द्र और सोम ! जैसे रस्सी अश्व को बाँधती है, वैसे ही यह स्तुति तुम्हारे पास पहुँचे । मैं इस स्तोत्र को तुम्हारी ओर भेजता हूँ, तुम इसे राजा के समान फल से परिपूर्ण करो ॥६॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम अपने द्रुतगामी

अश्वों पर आओ। हिंसक राक्षसों को नष्ट करो। पापी कभी सुख न पावे जिससे वह कभी हमें मारने का अवसर न पा सके ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! मिथ्या-भाषी राक्षस, मुट्ठी में बँधा जल जैसे निकल जाता है, वैसे ही अस्तित्वहीन होवे ॥ ८ ॥ जो सत्यप्रिय होकर भी मुझे स्वार्थवश लांछित करे और जो कल्याण की भावना वाले पुरुष मुझे व्यर्थ दोष दें उन्हें सर्प के ऊपर फेंक दो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! जो दुष्ट हमारे अन्न को नष्ट करे अथवा गौ, अश्व, संतानादि को नष्ट करे, वह हिंसित हो और सन्तान सहित निर्मूल हो जाय ॥ १० ॥ (६)

परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३
यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५ ।७

वह राक्षस देह रहित हो, सन्तान-हीन हो। तीनों लोकों के नीचे गिरे। हे देवगण ! हमारी हिंसा-कामना वाले राक्षस की कीर्ति शुष्क हो जाय ॥११॥ मिथ्या और यथार्थ वचन परस्पर प्रतिस्पर्द्धी होते हैं यह मेधावी जन जानते हैं। सोम सत्य का पालन करते और असत्य का नाश करते हैं ॥ १२ ॥ पापी मिथ्यावादी को सोम हिंसित करते हैं। वह असत्याचरण वाले को नष्ट करते हैं। असत्यभाषी दुष्ट इन्द्र के पाश में पड़ते हैं ॥ १३ ॥ यदि मैं असत्य देवताओं की उपासना करूँ तो हे अग्ने ! तुम क्रोध क्यों करते हो ? मिथ्या-भाषी पुरुष तुम्हारी हिंसा के लक्ष्य हों ॥ १४ ॥ यदि मैं राक्षस हूँ और किसी

के आयु-नाश का कारण हूँ तो अभी मृत्यु को प्राप्त होऊँ या मुझे जो राक्षस बतावे उसकी सन्तति नष्ट हो जाय ॥ १५ ॥ (७)

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८
प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२० ।८

जो दुष्ट मुझ साधु को 'राक्षस' बतावें और अपने को साधु कहें, इन्द्र उन्हें अपने वज्र से मार दें। वह सब प्राणियों से भी निकृष्ट गति को प्राप्त करे ॥ १६ ॥ रात्रि के समय जो राक्षसी अपने शरीर के उलूक के समान छिपा कर चले, वह नीचे मुख कर घोर गर्त में गिरे, अभिषवण प्रस्तर भी अपने शब्द से राक्षसों का नाश करें ॥ १७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम विभिन्न प्रकार से प्रजाओं में रहो। रात्रि के समय पक्षी के रूप में आने वाले यज्ञ-हिंसक राक्षसों को पकड़ कर चूर्णित कर दो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! अन्तरिक्ष से वज्र को चलाओ। सब दिशाओं में राक्षसों से रक्षा करो ॥ १९ ॥ यह राक्षस कुत्तों के सहित यहाँ आए हैं। जो राक्षस इन्द्रकी हिंसा करना चाहें उन्हें मारने को इन्द्र अपने वज्र को तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र राक्षसों पर अपने वज्र को चलावें ॥ २० ॥ [८]

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः ॥२१
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी न पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५ ।६

हिंसकारी को इन्द्र हिंसा करते है। जैसे कुल्हाड़ा काष्ठ को काटता और गदा बर्तनों को तोड़ता है, वैसे ही इन्द्र अपने उपासकों की रक्षा के लिए राक्षसों को चूर्णित करते हुए आरहे हैं ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! जो राक्षस उलूकों को साथ लेकर हिंसा कर्म करते हैं, उन्हें मारो। जो उलूक-रूप से हिंसा कर्म में प्रवृत्त हों, उन्हें भी मारो। जो कुक्कुर, चक्रवाक, श्येन और गृध का रूप धारण कर हिंसा करते हैं, उन्हें भी अपने प्रस्तर-निर्मित वज्र से नष्ट कर दो।२२। राक्षस हमें घेर न सकें। राक्षस पृथक्-पृथक् हों। 'यह क्या है' कहते घूमने वाले राक्षस भाग जाय। पृथिवी हमें अन्तरिक्ष से प्राप्त पाप से रक्षित करे और दिव्य पाप से अन्तरिक्ष हमारी रक्षा करे ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! राक्षस को मारो! राक्षसी को भी नष्ट करो। जो राक्षस हिंसा क्रीड़ा में रत हैं वे छिन्न मस्तक हों। वे उदय होने वाले सूर्य के दर्शन कर सकें ॥ २४ ॥ हे सोम और इन्द्र ! तुम सबको भले प्रकार देखो। राक्षसों पर अपने वज्र रूप आयुध को चलाओ ॥ २५ ॥ [६]

॥ इति सप्तम मंडलम् समाप्तम् ॥

॥ अथाष्टमं मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—प्रगाथो घोर. काण्वो वा, मेधातिथि मेध्यातिथि काण्वौ। देवता—इन्द्र। छन्द—बृहती, त्रिष्टुप)

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ।।१
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ।।२
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ।।३
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ।।४
महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ।। ५।१०

हे मित्रो ! इन्द्र के सिवाय अन्य की स्तुति न करो। अन्यथा दंडनीय होओगे। सोम सिद्ध होने पर कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र का स्तवन करने के लिए बारम्बार स्तोत्र उच्चारित करो ॥ १ ॥ बलीवर्द के समान शत्रुओं को मारने वाले, सब के विजेता, स्तोता द्वारा स्तुत्य, दिव्य एवं पार्थिव धनों के स्वामी तथा दाताओं में मुख्य इन्द्र का स्तवन करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा के लिए मनुष्य पृथक-पृथक स्तुति करते हैं। फिर भी यह स्तोत्र तुम्हें बढ़ाने वाला हो ॥ ३ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुम्हारे स्तोता शत्रुओं को कम्पायमान करते हुए विपत्तियों से बचे रहते हैं। तुम हमारे पास आओ। हमारे पालन के लिये बहु प्रकार का अन्न हमको दो ॥ ४ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारी भक्ति का महान् मूल्य प्राप्त होने पर भी मैं विक्रय नहीं सकता। असीम धन के बदले भी उसे नहीं बेच सकता ॥ ५ ॥ [१०]

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ।।६
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ।।७
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ।।८

ये ते सन्ति दशग्विन. शतिनो ये सहस्त्रिण ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥९
आ त्वद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥१० ।११

हे इन्द्र ! तुम मेरे पिता से अधिक वैभव वाले हो। तुम मेरे रण से न भागने वाले भाई से भी अधिक बली हो। मेरी माता और तुम समान होकर मुझे व्यापक धनों के योग्य बनाओ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम कहाँ हो? तुम्हारा मन सब ओर रहता है। तुम रण-कुशल एवं नगरों के विजेता हो। गायक तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र के लिए प्रशंसनीय गायन करो। शत्रुओं के नगरों के तोड़ने वाले इन्द्र सब के लिए स्तुत्य हैं। जिन ऋचाओं द्वारा वे कण्वपुत्रों के यज्ञ में गए थे, और जिन ऋचाओं से शत्रु नगरों को तोड़ा था, उन्हीं ऋचाओं से उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जो अश्व दस योजन चलते हैं, वे शीघ्र गमन करने वाले हैं। तुम उन्हीं अश्वों के द्वारा शीघ्र आओ ॥ ९ ॥ दुग्ध देने वाली, वेगवती गाय के समान इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ। वाँछनीय वृष्टि के भले प्रकार करने वाले इन्द्र का मैं हृदय से स्तवन करता हूँ ॥ १० ॥ [११]

यत्तुदत् सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥११
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥१२
मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१३
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥१४
यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दव. ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृध. ॥१५ ।१२

जब सूर्य ने "एतश" को पीड़ित किया था, तब टेढ़ी चाल वाले द्रुत-गामी घोड़ों ने "कुत्स" का वहन किया और इन्द्र ने अहिंसित सूर्य पर छद्म-वेश से आक्रमण किया ॥ ११ ॥ जो इन्द्र कंठ से रुधिर निकलने के पूर्व ही कटे हुए जोड़ों को जोड़ देते हैं, वह इन्द्र छिन्न-भिन्न हुओं को ठीक कर देते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे अनुग्रह से पतित न हों, दुःख न पावें। हम पतझड़ में क्षीण वनों के समान संतान-शून्य न हों। हे वज्रिन् ! हमको अन्य व्यक्ति पीड़ित न करें। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं॥ १३ ॥ हम उग्रता को त्याग कर, शीघ्रता न करते हुए धीरे-धीरे तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ वे इन्द्र हमारी स्तुति श्रवण करें तो हम सोम-रस द्वारा उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं। सोम दशापवित्र द्वारा निष्पन्न किए गए और जलों द्वारा शोधे गए हैं। सभी सोम हृष्टि वर्द्धक हैं ॥ १५ ॥ (१२)

आ त्वद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥१६

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥१७

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥१८

इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥१९

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२० ।१३

वे अपने स्तुति करने वाले की स्तुति की ओर शीघ्रता से आवें। हवियों से युक्त स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हो। मैं तुम्हारे श्रेष्ठ स्तोत्र की इच्छा कर रहा हूँ ॥ १६ ॥ हे अध्वर्युओ ! पत्थरों द्वारा सोम को कूटो और जल में शुद्ध करो। मेघों के द्वारा मरुद्गण जल को दुह कर नदियों को परिपूर्ण करते हैं ॥ १७ ॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष तथा द्युलोक से आकर इन्द्र मेरी स्तुतियों

द्वारा बढ़ें। वे हमारे मनुष्यों को इच्छित फल प्रदान करें ॥ १८ ॥ हे अध्वर्युओ ! तुम इन्द्र के निमित्त अत्यन्त पुष्टिकर सोम भेंट करो। वे इन्द्र अपने समस्त कर्मों द्वारा प्रसन्नतामद और अन्न की कामना वाले यज्ञ को बढ़ावें ॥१९ हे इन्द्र ! यज्ञों में मैं सोम अर्पित करता हुआ तथा स्तुतियाँ करता हुआ तुम्हें कभी भी रुष्ट न करूँ। तुम बालक भी हो तथा चिरकाल भी हो। संसार में ऐसा कोई नहीं जो तुम्हारी प्रार्थना न करता हो ॥ २० ॥ (१३)

मदेनेषित मदमुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषा तरुतारं मदच्युत मदे हि ष्मा ददाति न ॥२१
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुत ॥२२
इन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥२३
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥२४
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५ ।१४

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। हर्षाभिलाषी स्तोता द्वारा अर्पित हर्षकारी सोम को पीओ। सोम के हर्ष से प्रसन्न इन्द्र हमको शत्रुओं को जीतने वाला पुत्र प्रदान करते हैं ॥ १२ ॥ सुखदायक यज्ञ में इन्द्र हविदाता यजमान को वरण करने योग्य धन प्रदान करते हैं। वे सभी कार्यों के करने वाले हैं ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! आओ। तुम दर्शनीय ऐश्वर्य से ऐश्वर्यशाली बनो। तुम एकत्र हुए पीले वर्ण के सोम से अपना उदर पूर्ण रूपेण भर लो ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! सैकड़ों और हजारों घोड़े तुमको सोम पान के लिए रथ पर लावें ॥ २४ ॥ मयूर वर्ण के श्वेत पीठ वाले घोड़े मधुर स्तुति के योग्य, सोम-पान के लिए इन्द्र को यहाँ लावें ॥ २५ ॥ (१४)

पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।

परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥२६
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥२७
त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥२८
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥२९
स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३० ॥१५

हे स्तुत्य इन्द्र ! तुम पहले सोम पीने वाले के समान इस सोम को पीओ। यह शुद्ध रस से युक्त है। यह हर्षकारी और सुन्दर है। प्रसन्नता के लिए ही यह तैयार किया जाता है ॥ २६ ॥ जो इन्द्र अकेले ही अपने बल से सबको हराते हैं और जो विशाल कर्म वाले हैं, वे इन्द्र यहाँ आगमन करें। वह हमसे दूर न हों। हमारे स्तोत्रों के सामने आवें ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" के निवास को वज्र से चूर्ण कर दिया। तुम यज्ञ करने वाले स्तोता द्वारा आहूत करते योग्य हो। तुमने तेजस्वी होकर "शुष्ण" का पीछा किया ॥ २८ ॥ तुम सूर्य के उदित होने पर मेरे सब स्तोत्रों को पुनः चैतन्य करो। दिन के मध्य में, अन्त में, रात में भी मेरे स्तोत्र को आवर्तित करो ॥२९ हे मेधातिथि ! तुम मेरी बारम्बार स्तुति करो। हम सबसे अधिक धन देते हैं। मेरी शक्ति से ही दूसरों के अश्व नियोजित हुए हैं। मेरे आयुध और मार्ग श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ (१५)

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥३१
य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासङ्गस्य स्वनद्रथः ॥३२
अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळाइव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३

जिन इन्द्र को सोम रुष्ट नहीं करता, वह क्षीरादि से युक्त सोम भी जिन्हें अप्रसन्न नहीं करता, अन्य पुरोडाश आदि भी जिन्हें रुष्ट नहीं करते, उन इन्द्र का स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ (१७)

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥६
अय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतेपाव्नः ॥७
त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ॥८
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥९
इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥१० ॥१८

जैसे जाल के द्वारा घेरे गए मृग को शिकारी ढूँढ़ता है, वैसे ही ऋत्विक् आदि सोम द्वारा इन्द्र को खोजते हैं। जो व्यक्ति अस्वच्छ हृदय से इन्द्र के पास पहुँचते हैं, वे उन इन्द्र को पा नहीं सकते ॥ ६ ॥ छाने हुए सोम-रस के पीने वाले इन्द्र के निमित्त तीनों सवनों में, यज्ञ-गृह में सोम सिद्ध किया जाता ॥७॥ ऋत्विकों का पालन करने वाले यज्ञ में तीन प्रकार के कलश सोम-रस को प्राप्त करते और पूर्ण होते हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम पवित्र पात्रों में स्थिति होते हो तथा दूध या दही से मिश्रित होते हो। तुम अपने आनन्द-दायक प्रभाव से उन वीर इन्द्र को हृष्ट करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे यह सोम अत्यन्त हर्षकारी हैं। हमारे अभिषुत एवं मिश्रण युक्त सोम तुम्हें चाहते हैं ॥ १० ॥ (१८)

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा श्रृणोमि ॥११
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥१२
रेवाँ इन्द्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥१३
उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं ॥१४
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥१५

हे इन्द्र ! उन सोमों को और मिश्रण-पदार्थ को एकत्र करो । पुरोडाश और सोम-रस को भी एकत्र करो । उससे मैं धनवान बनूँ ॥ ११ ॥ जैसे सुरापान करने के पश्चात् उसका मद सुरा पीने वाले के हृदय में मत्त बनाने के लिए युद्ध करता है, वैसे ही पिये हुए सोम भी हृदयों में युद्ध करते हैं । हे इन्द्र ! तुम सोम से पूर्ण हो । जैसे गाय के दूध के युक्त धन की रक्षा की जाती है, वैसे ही स्तुति करने वाले तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यशाली हो । तुम्हारी स्तुति करने वाला भी धन प्राप्त करे । तुम्हारे समान धनिक और प्रसिद्ध देव की स्तुति करने वाला भी वैभववन्त होता है ॥ १३ ॥ स्तुतियों से हीन मनुष्य के इन्द्र पूरी तरह शत्रु हैं । वह गाए जाने वाले स्तोत्र को जानते हैं । इस समय योग्य स्तोत्र गाया जाता ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! मुझे शत्रु के हाथ में न सौंपो । छानने वाले के हाथ में भी मत छोड़ो । हे इन्द्र ! अपने कर्म और बल से हमको धन प्रदान करना ॥ १५ ॥ [१६]

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१६

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥१७

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥१८

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्यस्मान् ।

महाँ इव युवजानिः ॥१९

मो ष्वद्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत् ।

अश्रीरइव जामाता ॥२० २०

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र हैं । तुम्हारी ही कामना किया करते हैं । तुम्हारा स्तोत्र उच्चारित करना ही हमारा उद्देश्य है, हम तुम्हारे स्तोता हैं । कण्व वंशी ऋषि तुम्हारा स्तवन स्तोत्र से करते हैं ॥ १६ ॥ हे वज्रिन् ! तुम कर्म करने वाले हो । तुम्हारे यज्ञ में मैं अन्य का स्तोत्र नहीं करता । मैं केवल तुम्हारे स्तोत्र का ही ज्ञाता हूँ ॥ १७ ॥ देवगण सोम छानने वाले यजमान की सदा कामना करते हैं । वे सुषुप्त मनुष्य को नहीं चाहते । वे आलस्य से रहित देवता हर्षकारी सोम-लाभ करते हैं ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! अन्न सहित

हमारे समक्ष पधारो। जैसे गुणवती स्त्री पाने पर विचारवान् पुरुष उस पर क्रोध नहीं करते, वैसे ही तुम भी हम पर क्रोध नहीं करते, ॥ १६ ॥ हे इन्द्र! हमारे पास आओ। बुलाए हुये घमण्डी जमाई के समान सायंकाल मत कर देना ॥ २० ॥ [२०]

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम्। त्रिषु जातस्य मनांसि ॥२१

आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात्।
यशस्तरं शतमूतेः ॥२२

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय।
भरा पिबन्नर्याय ॥२३

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥२४

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय। सोमं वीराय शूराय ॥२५॥२१

हम इन वीर इन्द्र की प्रचुर धन दान करने वाली मङ्गलकारिणी कृपा-बुद्धि को जानते हैं। हम, उन तीनों लोकों में प्रकट होने वाले इन्द्र को जानते हैं ॥ २१ ॥ हे अध्वर्यु! कण्ववंशी स्तोता ऋषि इन्द्र के लिए शीघ्र ही सोम याग करें। अत्यन्त पराक्रमी एवं रक्षक इन्द्र से अधिक यश वाले किसी देवता को हम नहीं जानते ॥ २२ ॥ सोम छानने वाले अध्वर्यु, मनुष्यों का हित करने वाले, पराक्रमी इन्द्र के लिए सोम प्रदाता हों। वे इन्द्र सोम को पीवें ॥ २३ ॥ जो सुख देने वाले स्तोताओं के ज्ञाता हैं, वह इन्द्र होताओं और स्तोताओं को बहुत अश्व गवादि युक्त धन देते हैं ॥ २४ ॥ हे सोम सिद्ध करने वालो! तुम हृष्ट करने के योग्य वीर इन्द्र के निमित्त प्रशंसा के योग्य सोम प्रदान करो ॥ २५ ॥ [२१]

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्। नि यमते शतमूतिः ॥२६

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम्।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥२७

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि।

शिप्रिन्नृपीव शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥२८
स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।

इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥२९
गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि ।

सत्रा दधिरे शवांसि ॥३० ।२२

सोम-पान से लगे हुए तथा वृत्र के मारने वाले इन्द्र यहाँ आगमन करें। वे हमसे दूर न जायें। वे बहुत रक्षाओं से युक्त इन्द्र हमारे शत्रुओं का मान खण्डन करें ॥ २६ ॥ सुख से युक्त, स्तोत्र-सम्पन्न दोनों घोड़े स्तुतियों से नियुक्त होकर आश्रयदाता, मित्र रूप इन्द्र को यहाँ लावें ॥ २७ ॥ हे सशक्त इन्द्र! यह सोम अत्यन्त सुस्वादु है। तुम यहाँ आगमन करो। सभी सोम दुग्धादि से मिश्रित हुए रखे हैं। तुम हवि को चाहते हो। अत. यहाँ आओ। स्तुति करने वाला साधक तुम्हारा स्तवन करता है ॥ २८ ॥ हे इन्द्र! स्तुति करने वाले और सभी स्तोत्र, महान् ऐश्वर्य और पराक्रम के निमित्त तुम्हें वर्द्धमान करते हैं ॥ २९ ॥ हे इन्द्र! जो स्तोत्र तुम्हारे लिए हैं, वे सब एकत्र होकर तुम्हारे ही पराक्रम को प्राप्त हों ॥ ३० ॥ [२२]

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः। सनादमृक्तो दयते ॥३१
हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः। महान्महीभिः शचीभि. ॥३२
यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च।

अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥३३
एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे। वाजदावा मघोनाम् ॥३४
प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति।

इनो वसु स हि वोळ्हा ॥३५ ।२३

हे इन्द्र! तुम विविध कर्म वाले एवं वज्रधारी हो। तुम किसी के द्वारा कभी जीते नहीं जासकते। तुम स्तुति करने वाले यजमान को बल प्रदान करते हो ॥ ३१ ॥ इन्द्र ने दक्षिण हाथ से वृत्र को मारा। वे अनेक स्थानों में बहुत बार आहूत हुए हैं। वे विविध कर्मों द्वारा अत्यन्त महान् हैं ॥ ३२ ॥ जिन

इन्द्र के आश्रित समस्त प्रजा है और जो इन्द्र महा पराक्रमी तथा अभिनव हैं, वह इन्द्र यजमानों की बात रखने वाले हों ॥ २३ ॥ इन्द्र ने यह सभी कार्य किए हैं। वे सब जगह कहे जाते हैं। वे हवि देने वालों को अन्न प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥ हे इन्द्र! तुम गौ की कामना वाले जिस यजमान को दुर्बुद्धि वाले शत्रु से रक्षा करते हो, वह यजमान धन वहन करने वाला होकर उसका स्वामी होता है ॥ २५ ॥ [२३]

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः।
सत्योऽविता विधन्तम् ॥३६
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा। यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥३७
गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम्।
कण्वासो गात वाजिनम् ॥३८
य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात् सखा नृभ्यः शचीवान्।
ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥३९
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्। मेषो भूतोभि यन्नयः ॥४०
शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्। अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१
उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या।
जनित्वनाय मामहे ॥४२ ।२४

ऐश्वर्यशाली इन्द्र सभी गमन योग्य स्थानों पर अश्व की सहायता से गमन करते हैं। वे मरुद्गण के सहयोग से वृत्र का हनन करते हैं। वे सत्य रूप वाले एवं अपने उपासक के रक्षक हैं ॥ २६ ॥ हे प्रियमेध! इन्द्र में मन लगा कर उनके लिए यज्ञ करो। सोम पान करने पर वे हर्षित होते हैं तब उनका हर्ष व्यर्थ नहीं होता ॥ २७ ॥ हे कण्व-पुत्रो! तुम सज्जनों की रक्षा करने वाले, अन्न की कामना वाले, विभिन्न स्थानों में जाने वाले, वेगवान् एवं यश गाने योग्य इन्द्र का स्तवन करो ॥ २८ ॥ पद चिन्ह न मिलने पर भी उत्तम कर्म वाले मित्र रूप इन्द्र ने देवताओं को गौएं फिर ढूँढ कर दीं। देवताओं ने इन्द्र से इच्छित धन प्राप्त किया था ॥ २९ ॥ हे वज्रिन्! स्तुति

करते हुए, सामने से आते हुए मेघ रूप वाले कण्वपुत्र मेधातिथि को तुमने पाया ॥ ४० ॥ हे "विभिन्दु" राजन् ! तुम अत्यन्त दानी हो। तुमने मुझे चालीस सहस्र संख्या वाला धन प्रदान किया। इसके पश्चात् आठ सहस्र संख्यक धन दिया ॥ ४१ ॥ मैंने सुप्रसिद्ध, जल की वृष्टि करने वाली प्राणियों को आवास देने वाली और स्तोता पर कृपा करने वाली आकाश पृथिवी को धन उत्पन्न करने के लिए स्तुति की ॥ ४२ ॥ [२४]

३ सूक्त

(ऋषि मेध्यातिथि काण्व । देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती, पंक्ति, अनुष्टुप, गायत्री)

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमत ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेस्माँ अवन्तु ते धिय ॥१
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा न. सुम्नेषु यामय ॥२
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥३
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृत समुद्र इव पप्रथे ।
सत्य सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥४
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥५ ॥२५

हे इन्द्र हमारे छाने हुए सोम रस कर तृप्त होओ। तुम तृप्त होने के योग्य हो। तुम मित्र होकर हमें बढ़ाने के लिए स्वयं बढ़ो। तुम्हारी बुद्धि हमारी पालक हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे अनुग्रह से हवियों से युक्त हों। हमको शत्रु के लिए हिंसित मत करना। हमारी रक्षा करते हुए तुम हमको सदा सुखी बनाओ ॥ २ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! मेरी स्तुति रूप वाणी तुम्हें बढ़ावें। अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानी पुरुष तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ सहस्रों ऋषियों के द्वारा बल पाकर इन्द्र बढ़े हैं। इनकी

प्रसिद्ध महिमा और पराक्रम की सदा प्रशंसा की जाती है ॥ ४ ॥ यज्ञारम्भ में हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। यज्ञ की समाप्ति पर भी हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। हम धन प्राप्ति की कामना करते हुए भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [२५]

इंद्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥६
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥७
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥८
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न सन्नशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१० ॥२६

अपनी महत्ता से ही इन्द्र ने आकाश-पृथिवी को चढ़ाया। इन्द्र ने ही सूर्य को प्रकाशमान किया। इन्द्र के द्वारा ही समस्त लोक नियमित हैं। सोम भी इन्द्र द्वारा ही नियत हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! स्तुति करने वाले लोग सोम-पान के निमित्त तुम्हें सब देवताओं से पहिले बुलाने के लिए स्तुति करते हैं। ऋभुगण भी तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र! तुम प्राचीन हो। रुद्रों ने भी तुम्हारा स्तवन किया था ॥ ७ ॥ छने हुए सोम को पीकर आनन्दित होने पर इन्द्र यजमान के बल-वीर्य की वृद्धि करते हैं। प्राचीन काल के समान ही आज भी स्तोतागण उन्हीं का गुण गान करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम सुन्दर वीर्य वाले हो। मैं तुमसे उत्तम अन्न की याचना करता हूँ। कर्म रहित मनुष्यों से हितकारी धन लेकर तुमने "भृगु" को प्रदान किया और 'प्रस्कण्व' की तुमने रक्षा की। मैं तुमसे उसी वीर्य और अन्न की याचना करता हूँ ॥ ९ ॥ हे इन्द्र! जिस बल से तुमने समुद्र को उत्तम एवं प्रचुर जल प्रदान किया।

तुम्हारा वही बल अभीष्ट पूर्ण करने वाला है। तुम्हारी महिमा का पृथिवी अनुगमन करती है ॥ १० ॥ (२६)

शग्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥११
शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम्॥१२
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१३
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥१४
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५ ।२७

हे इन्द्र ! जिस सुन्दर वीर्ययुक्त धन की मैं तुमसे याचना करता हूँ, मुझे वह धन दो। हविर्युक्त यजमान को सब से पहले धन दो। फिर स्तुति करने वाले को भी दो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! जिस बल से तुमने पुरु के पुत्र की रक्षा की, वही बल यजमानों में प्रदान करो। जैसे "रुशम", "श्यावक" और "कृप" की तुमने रक्षा की, वैसी ही रक्षा सब हविवालों की करो ॥ १२ ॥ कौन-सा मनुष्य सदा गमनशील स्तुतियों को करने वाला, इन्द्र का स्तोता है ? इन्द्र के स्तोता इन्द्र की महिमा को नहीं पा सकते ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम देवता हो। कौन सा स्तोता तुम्हारे लिए यज्ञ संपादन की शक्ति रखता है ? कौन ऋषि तुम्हारी स्तुतियों का वाहक है ? हे इन्द्र ! स्तोता के आह्वान पर तुम कब आते हो ? ॥ १४ ॥ प्रसिद्ध और अत्यन्त मधुर वाणी, स्तोत्र, शत्रु के जीतने वाले अक्षय रक्षा से युक्त और अन्न की अभिलाषा करने वाले रथ के समान कही जाती है ॥ १५ ॥ (२७)

कण्वाइव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥१७

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥१८

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥१९

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृपे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥२० ।२८

कण्वों के समान ही भृगुओं ने सूर्य किरणों के समान इन्द्र को व्याप्त किया । प्रियमेध ने स्तोत्र द्वारा इन्द्र का ही पूजन किया था ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र का भले प्रकार वध करते हो । अपने दोनों घोड़ों को रथ में युक्त करो । हे इन्द्र ! तुम उग्रकर्मा एवं धनी हो । दर्शनीय मरुद्गण के साथ सोम पीने के लिए यहाँ आगमन करो ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! कर्मवान् यजमान यज्ञ के निमित्त तुम्हारा ही स्तवन करते हैं । हे धनी इन्द्र ! तुम स्तुत्य हो । पुरुष जैसे पत्नी का आह्वान सुनता है वैसे ही हमारा आह्वान सुनो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र का हनन किया । मायावी "अर्बुद" और "मृगय" को मारा । पर्वत से गौओं को मुक्त किया ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! जब तुमने अन्तरिक्ष से वृत्र को हटाया, तब बल को प्रकट किया । उस समय अग्नि, सूर्य और इन्द्र के सेवन योग्य सोम रस भी उज्ज्वल हो गए ॥ २० ॥ (२८)

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥२१

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् । अदाद्रायो विबोधनम् ॥२२

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः । अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥२३

आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४ ।२९

इन्द्र और मरुद्गण ने मुझे जो दिया, वही "कुरुयान" के पुत्र

"पाकस्थामा" ने दिया। वह धन सभी धनों में प्रकाशमान् सूर्य के समान सुशोभित होता है ॥ २१ ॥ पाकस्थामा ने मुझे लाल रङ्ग का सुन्दर, विविध प्रकार के श्रेष्ठ धनों को प्राप्त कराने वाला अश्व प्रदान किया ॥ २२ ॥ उस अश्व के दश प्रतिनिधि अश्व हैं। वे मुझे वहन करते हैं। इसी प्रकार अश्वों ने "तुग्र पुत्र भुज्यु" का वहन किया ॥ २३ ॥ पाकस्थामा अपने पिता के श्रेष्ठ पुत्र हैं। वे निवास तथा बल के देने वाले हैं। वे शत्रुओं की हिंसा करने वाले हैं। लाल रङ्ग का अश्व प्रदान करने वाले पाकस्थामा का मैं स्तव करता हूँ ॥ २४ ॥ [२६]

४ सूक्त

(ऋषि—देवातिथिः काण्वः। देवता—इन्द्रः पूषा वा।
छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, उष्णिक्)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥४
प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षाइव येमिरे ॥५ ॥३०

हे इन्द्र! तुम सभी दिशाओं में रहने वाले स्तोताओं द्वारा आहूत होते हो, तो भी "अनुक" राजा के पुत्र के लिए स्तोताओं द्वारा प्रीतिदायक होते हो। "तुर्वश" के लिए भी तुम प्रेरित होते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम "रुम" "रुशम", श्यावक और "कृप" के साथ प्रीति करते थे। फिर भी कण्व वंशी तुम्हारा स्तोत्र कहते हैं। आगमन करो ॥ २ ॥ जैसे प्यासा मृग जल से

परिपूर्ण तथा वासादि से युक्त स्थान की पहिचान कर लेता है, हे इन्द्र ! वैसे ही मित्रता स्थापित होने पर तुम हमारे समक्ष आगमन करो । हम कण्व पुत्रों के साथ सोमपान करो ॥ ३ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! सोमाभिषव करने वाले को धन देने के निमित्त तुमने बल धारण किया है ॥४॥ अपने वीर कर्म से इन्द्र ने शत्रुओं को वशीभूत किया । बल के द्वारा दूसरे के द्वारा प्रकट किए गए क्रोध को उन्होंने दूर किया । उन महान् इन्द्र ने युद्ध की कामना वाले शत्रुओं को वृक्ष के समान गिरा दिया ॥ ५ ॥ [३०]

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नम उक्तिभिः ॥६
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥७
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥८
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥९
ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१० ।३१

हे इन्द्र ! जो तुम्हारी स्तुति करता है वह सहस्रों वज्रायुध पाता है । जो नमस्कार पूर्वक हवि देता है, वह सुन्दर, पराक्रमी तथा शत्रु को मारने वाला पुत्र पाता है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम उग्रकर्मा हो । तुम्हारी मित्रता प्राप्त होने पर हमको किसी का भय नहीं रहेगा । हम परिश्रान्त भी नहीं होंगे । हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । तुम्हारे सभी महान् कर्मों को कहना चाहिये । तुमने "तुर्वश" और "यदु" को भी देखा था ॥ ७ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र ने सभी जीवों को आच्छादित किया । हे हवि देने वालो ! इन्द्र को कुपित मत करना । हे इन्द्र ! मधु मक्खी के शहद से युक्त हर्षदायक सोम के पास शीघ्र आगमन कर उसका पान करो ॥ ८ ॥ हे

इन्द्र! तुम्हारा मित्र ही अश्व, रथ, गौ एवं रूप से युक्त है। वह सदा ही श्रेष्ठ धन पाता और प्रसन्न होता हुआ सभा स्थान के लिए गमन करता है ॥ ९ ॥ "ऋश्य" नामक मृग के समान, पात्र में अवस्थित सोम के समक्ष आकर इच्छानुसार पाओ। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तुम सदा नीचे की ओर वर्षा जल गिराते हुए पराक्रमी होते हो ॥ १० ॥ [३१]

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११
स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२
रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥१३
उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥१४
प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५ ।३२

हे अध्वर्युओ! इन्द्र सोम पान करना चाहते हैं। तुम सोम को सिद्ध करो। आज दोनों युवा घोड़े जोड़े गए हैं। वे वृत्र के संहारक इन्द्र आ पहुँचे हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र तुम जिसके सोम से तृप्त होते हो, वह हविदाता यजमान ही इसे जानता है। तुम्हारे लिए सींचा गया सोम पात्र में है। तुम आकर उसका पान करो ॥ १२ ॥ हे अध्वर्युओ! इन्द्र रथ पर चढ़े हैं। उनको सोम दो। सोम अभिषव के लिए चर्म पर रखे हुए सुशोभित हो रहे हैं ॥ १३ ॥ अन्तरिक्ष में घूमने वाले दोनों घोड़े हमारे यज्ञ में इन्द्र को ले आवें। हे इन्द्र! दोनों घोड़े तुम्हें यज्ञ के पास पहुँचाने वाले हों ॥ १४ ॥ हम पूषा को मित्रता के लिए वरण करते हैं। हे इन्द्र! और अनेकों द्वारा बुलाए गए पाप नाशक पूषन्! तुम दोनों ही अपनी बुद्धि करते हुए हमें धन तथा शत्रु-नाश के लिए सामर्थ्य प्रदान करो ॥ १५ ॥ [३२]

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोपि मर्त्यम् ॥१६
वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे ।
न तस्य वेम्यरणं हि तद्वसो स्तुपे पज्राय साम्ने ॥१७
परा गावो यवसं कच्चिजदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥१८
स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिपु ।
राज्ञस्त्वेपस्य सुभगस्य रातिपु तुर्वशेष्वमन्महि ॥१९
धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
पष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृपिः ॥२०
वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥२१ ।३३

नाई के हाथ में रहने वाले उस्तरे के समान हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण करो। हे पाप-नाशक! हमको धन प्रदान करो। तुम्हारा गौ रूप धन हमको सुलभता से साध्य हो। तुम मनुष्यों के लिए धनों का प्रेरण करते हो ॥१६॥ हे पूषा, मैं तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। तुम्हारी स्तुति करने का इच्छुक हूँ। मैं अन्य देवताओं की कामना नहीं करता। तुम साम स्तोता को इच्छित धन प्रदान करो ॥ १७ ॥ हे पूषन्! तुम तेजस्वी एवं अमरणशील हो, हमारी गायें चर कर लौटती रहें। हमारा गवादि धन स्थिर हो। तुम हमारी रक्षा करने वाले और कल्याण करने वाले हो। तुम अन्न देने के लिए महान् बनो ॥ १८ ॥ "कुरुङ्ग" नामक राजा की स्वर्ग कामना के निमित्त हुए यज्ञ और दान में हमने सौ अश्वों वाले प्रचुर धन को पाया था ॥ १९ ॥ कण्वपुत्र और मेधातिथि तथा उनके स्तोताओं द्वारा एवं प्रियमेध द्वारा मैंने साठ सहस्र गौओं को सबके पश्चात् पाया था ॥ २० ॥ मेरे धन प्राप्त करने पर वृक्षों ने भी हर्ष रूप ध्वनि की थी। उनका भाव था कि मैंने स्तुति योग्य गौ और अश्व रूप धन को पाया है ॥ २१ ॥　　　　　[३३]

५ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मातिथिः काण्व· देवता-अश्विनौ, । चैद्यस्यः कशोर्दानस्तुति ।

छन्द-गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्)

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वथातनत् ॥१
नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोपसम् ॥२
युवाभ्या वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥३
पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥४
मंहिष्ठा वाजसातमेपयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥५ ।१

दूर से ही पास में दिखाई पड़ने वाली उषा जब सब पदार्थों को श्वेत करती है, उस समय वह अपनी कांति को फैलाती हुई बढ़ती है ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अग्रगण्य हो । इच्छा होते ही अश्वों द्वारा योजित अन्नवान् रथ से तुम उषा के पास पहुँचो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय तुम अन्न और धन से युक्त हो । अपने रचे हुए स्तोत्रों का अवलोकन करो । जैसे दूत स्वामी के वचन की याचना करता है, वैसे ही हम तुम्हारे वचन के लिए याचना करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अनेकों के प्रीति भाजन हो । बहुत धन वाले तुम, अनेकों धन प्रदान करते हो । हम कण्ववंशी अपनी रक्षा के लिए अश्विनीकुमारों से याचना करते हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम पूजनीय हो । तुम सर्वाधिक यश देते हो, तुम सुन्दर धनों के अधिपति हो । तुम मंगलकारी हो तथा हविदाता के घर में जाया करते हो ॥ ५ ॥ [1]

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥६
आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥७
येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीरक्तून्परिदीयथ. ॥८
उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथ. सातये सितम् ॥९
आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् ।
वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥१० ।२

जो हविदाता सुन्दर देवता का उपासक है, तुम उसके लिए यज्ञ युक्त सुन्दर भूमि को सींचो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! अश्वों पर सवार होकर हमारी स्तुतियों के प्रति शीघ्र आओ। तुम्हारे अश्वों की चाल स्तुत्य है ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम तीन दिन रात समस्त उज्ज्वल स्थानों पर अपने घोड़ों की सहायता से जाओ ॥ ८ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम प्रातः सवन में स्तुति के योग्य हो। हमारे उपभोग के लिए धन तथा गौ युक्त अन्न प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय हमारे निमित्त गौ, रथ, अश्व, और सुन्दर सन्तान से युक्त धन-लाभ कराओ ॥ १० ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[२]

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥११
अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥१२
नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मोष्वन्याँ उपारतम् ॥१३
अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४
अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५।३

हे अश्विद्वय ! तुम सुन्दर पदार्थों के स्वामी हो। तुम उज्ज्वल मार्ग वाले तथा दर्शनीय हो। बढते हुए तुम सोम-मधु को पीओ ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम धनवान् हो। हम भी धन से युक्त हैं। हमको विस्तृत और सुरक्षित वर दो ॥ १२ ॥ हे अश्विद्वय ! मनुष्य के स्तोत्र की रक्षा करो। तुम शीघ्र हमारे पास आओ। अन्य के पास मत जाओ ॥ १३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम स्तुति के पात्र हो। हमारे द्वारा प्रदत्त हर्षकारी मधुर सोम को पीओ ॥ १४ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे निमित्त शत एवं सहस्र संख्यक धन निवास से युक्त प्राप्त कराओ ॥ १५ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[३]

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् ॥१६
जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥१७
अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८
यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥१९
तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥२०।४

हे अश्विद्वय ! तुमको विद्वज्जन अनेक स्थानों में आहूत करते हैं । तुम अपने अश्व की सहायता से आगमन करो ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय ! हवि वाले यजमान कुशोच्छेदन करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १७ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! हमारा यह सुन्दर स्तोत्र सब स्तोत्रों से अधिक वाहक होता हुआ तुम्हारे पास पहुँचे ॥ १८ ॥ हे अश्विद्वय ! जो मधुर रस से पूर्ण पात्र बीच में रखा है उससे मधु पीओ ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अन्नवान् और धनवान् हो । हमारे गवादि पशु और संतान के लिए अपने रथ द्वारा प्रचुर अन्न लाओ ॥ २० ॥ [४]

उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥२१

कदा वां तौग्रचो विधत्समुद्रे जहितो नरा । यद्वां रथो विभिष्पतात्॥२२

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभि. सुशस्तिभि. । यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥२४

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।

अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥२५ ।५

हे अश्विद्वय ! तुम प्रातःकाल में जाने जाते हो । तुम आवश्यक दिव्य जल को हमारे द्वार से,ही सींचो ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! समुद्र में पड़े हुए "उग्र पुत्र भुज्यु" ने कब तुम्हारी स्तुति की थी, जिससे तुम्हारा अश्ववान् रथ उसके पास गया था ? ॥ २२ ॥ हे कभी भी असत्य न होने वाले अश्विद्वय ! असुरों द्वारा महल के नीचे बाँधे गये "कण्व" की तुमने रक्षा की थी ॥ २३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वर्षणशील तथा वैभवशाली हो । मैं तुमको जब बुलाऊँ तभी तुम अपने विशाल एवं अभिनव रक्षा-साधनों सहित आगमन करो ॥ २४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने "कण्व", "प्रियमेध", "उपस्तुत" और स्तुति करने वाले "अत्रि" की जैसे रक्षा की थी, वैसे ही हमारी करो ॥ २५ ॥ [५]

यथोत कृत्व्ये धनेऽशुं गोष्वगस्त्यम् । यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥२७

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ।२८
हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९
तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम । उपेमां सुष्टुतिं मम ॥३०।६

धन के निमित्त "अंश", गौओं के लिये "अगस्त्य" और अन्न के लिए "सौभार" की जैसे रक्षा की, वैसे ही हमारी भी करो ॥ २६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वर्षणशील एवं ऐश्वर्यशाली हो । स्तुति करने वाले हम बहुत धन की प्रार्थना करते हैं ॥ २७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सुवर्ण युक्त ढाँचे एवं स्वर्ण की लगाम वाले रथ पर चढ़ कर आओ ॥ २८ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे रथ की ईशा, अक्ष, दोनों पहिए यह सब सुवर्ण निर्मित हैं ॥ २९ ॥ हे अन्न और धन से युक्त अश्विनीकुमारो ! दूर हो तो भी इस रथ पर आओ । हमारी सुन्दर स्तुति के पास पहुँचो ॥ ३० ॥ [६]

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ॥३१
आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना । पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥३२
एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥३३
रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ॥३४
हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः । धीजवना नासत्या ॥३५ ।७

हे अश्विद्वय ! तुम अविनाशी हो । दुष्टों के अनेक पुरों को ध्वस्त कर अन्न लेकर आओ ॥ ३१ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सत्य स्वभाव वाले तथा बहुतों के सखा हो, हमारे पास अन्न लेकर आओ । यश और धन के सहित हमारे पास आओ ॥ ३२ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! पक्षियों के समान द्रुतगति वाले अश्व तुम्हें यज्ञ करने वाले यजमान के पास लावें ॥ ३३ ॥ जो घोड़ा रथ में जुता है तथा स्तुति करने वालों ने जिसकी प्रशंसा की है, तुम्हारा वह घोड़ा हमारे कार्यों में सहायक बने ॥ ३४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मन के समान वेग वाले हो । तुम शीघ्र चाल वाले घोड़ों से युक्त सुवर्णमय रथ पर चढ़ कर यहाँ आगमन करो ॥ ३५ ॥ [७]

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू । ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥३६

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ।।३७
यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ।।३८
माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदय ।
अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ।।३९ ।८

हे अश्विद्वय ! तुम सदा चैतन्य रहते तथा सोम-पान करते हो । तुम हमको अश्व प्रदान करो ।। ३६ ।। हे अश्विद्वय ! तुम नवीन धनों के जानने वाले हो । चेदि वंशीय "कशु" राजा ने सौ ऊँट और सहस्र सख्यक धेनु प्रदान की थीं, तुम इसे जानते हो ।। ३७ ।। मेरी सेवा के निमित्त जिन "कशु" राजा ने स्वर्ण के समान चमकते हुए दस संस्थानों को दिया, उन "कशु" की प्रजा उनके चरणों में आश्रय प्राप्त करती हैं ।। ३८ ।। चेदि वंश वाले जिस मार्ग से जाते हैं, उससे कोई नहीं जाता । "कशु" से बड़ कोई दानी विद्वान् स्तोता को नहीं देता ।। ३९ ।। [८]

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-वत्स काण्व । देवता-इन्द्रः, तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुति । छन्द-गायत्री)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।।१
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ।।२
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ।।३
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ।।४
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ।।५ ।९

जो इन्द्र पर्जन्य के समान पराक्रमी हैं, वह पुत्र के समान स्तोता के पराक्रम से बढ़ते हैं ।। १ ।। जब आकाश को परिपूर्ण करने वाले यज्ञ रूप अश्व इन्द्र को वहन करते हैं, तब विद्वज्जन स्तोत्रों से, उनकी स्तुति करते हैं ।। २ ।। कण्व वंशियों ने स्तोत्र से ही इन्द्र को यज्ञ का साधनकर्त्ता नियुक्त

किया । इसीलिए इन्द्र को मित्र कहा जाता है ॥ ३ ॥ जैसे नदियाँ समुद्र का स्तवन करती हैं, वैसे सब मनुष्य इन्द्र के डर से, इन्द्र का स्तवन करते हैं ॥ ४ ॥ जिस बल से इन्द्र आकाश-पृथिवी को चमड़े के समान रखते हैं, वह बल अत्यन्त तेज से पूर्ण है ॥ ५ ॥ [६]

वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥६
इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥७
गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः । कण्वा ऋतस्य धारया ॥८
प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥९
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥१० ।१०

कम्पायमान् वृत्र के शिर को इन्द्र ने शतधार वाले दृढ़ वज्र से छिन्न कर दिया था ॥ ६ ॥ हम स्तुति करने वालों के सामने अग्नि के तेज के समान चमकते हुए इन स्तोत्रों का बारम्बार उच्चारण करेंगे ॥ ७ ॥ गुफा में स्थिति जो गौऐं इन्द्र के पास जाकर अश्वस्त होती हैं, उन्हें कण्व वंशीय ऋषि सोम से सींचे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हम गौ और घोड़ों से युक्त धन पावें और सब से पहिले ही अन्न प्राप्त करें ॥ ९ ॥ मैंने ही सत्य स्वरूप एवं पिता तुल्य इन्द्र की कृपा प्राप्त की और सूर्य के समान तेजस्वी हुआ ॥१०॥ [१०]

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥११
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१२
यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् ॥१३
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि । वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥१४
न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
न विव्यचन्त भूमयः ॥१५ ।११

कण्व के समान मैं स्तोत्र द्वारा वाणी को अलंकृत करता हूँ । इन्द्र उसी स्तोत्र से बल पाते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हारा स्तव नहीं करते और जो तुम्हारा स्तव करते हैं, इन दोनों में भी मेरी स्तुति भले प्रकार बढ़े ॥ १२ ॥ जब इन्द्र के क्रोध से छिन्न-भिन्न होते हुए वृत्र ने शब्द किया

था, तब इन्द्र ने समुद्र की ओर जल भेजा था ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" के लिए धारण किए गए वज्र को चलाया। हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के वर्षक हो ॥ १४ ॥ इन्द्र को आकाश अन्तरिक्ष और पृथिवी अपने बलों में व्याप्त नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ [११]

यस्त इन्द्र महीरप स्तभूयमान आशयत् । नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥१६
य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् । तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥१७
य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः । ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥१८
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषी ॥१९
या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन् । परि धर्मेव सूर्यम् ॥२० ।१२

हे इन्द्र ! जिस वृत्र ने जलों को अन्तरिक्ष में रोक रखा था, उस वृत्र को तुमने जल में ही मार दिया ॥ १६ ॥ जिस वृत्र ने महत्त्ववती आकाश पृथिवी को व्याप्त किया था, उसे हे इन्द्र ! तुमने मरण रूप अन्धकार में डाल दिया ॥१७॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! जो अंगिरागण एवं भृगु वंशीय तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सब में मेरी स्तुति श्रवण करो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! यज्ञ के वृद्धि करने वाली गौएँ दूध एवं घृत प्रदान करती हैं ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! इन प्रसवधर्म वाली गौओं ने तुम्हारे दिए हुए अन्न को मुख से खाकर सूर्य के चारों ओर वर्तमान जल के समान गर्भ को धारण किया था ॥२०॥ (१२)

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इन्दवः ॥२१
तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥२२
आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् । उत प्रजां सुवीर्यम् ।२३
उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा । अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥२४
अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २५ । १३

हे इन्द्र ! तुम बल के स्वामी हो। कण्ववंशीय तुम्हें स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं। सिद्ध सोम तुम्हें बढ़ाते हैं ॥ २१ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे पथ प्रदर्शन करने पर श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा यज्ञ किए जाते हैं ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! हमको

महान् गौ युक्त अन्न तथा वीर्यवान् पुत्र प्रदान करने का विचार करो ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! नहुष की प्रजाओं के सम्मुख द्रुतगामी घोड़े से युक्त जो बल तुमने दिया था, वह हमको भी दो ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो। इस गौओं के सुन्दर गोष्ठ को परिपूर्ण करो और हमको सुख दो ॥ २५ ॥ (१३)

यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः । महाँ अपार ओजसा ॥२६
तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये । उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥२७
उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥२८
अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति । यतो विपान एजति ॥२९
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवा ॥३०।१४

हे इन्द्र ! तुम बल के समानवर्ती हो, मनुष्यों के स्वामी होओ। तुम अपने बल के द्वारा अजेय हो ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! तुम व्यापक हो, हविवान् व्यक्ति तुम्हें सोम से तृप्त करने के लिए तुम्हारे पास आकर स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥ पर्वतों में, नदियों के संगमों पर होने वाले यज्ञानुष्ठानों में विद्वान् इन्द्र प्रकट होते हैं ॥ २८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सर्वत्र व्याप्त हो। जो संसार में विचरण करते हैं, वे इन्द्र ऊपर से नीचे की ओर मुख करते हुए समुद्र को देखते हैं ॥ २९ ॥ आकाश पर जब इन्द्र अपना तेज फैलाते हैं, तब उन प्राचीन जलदाता इन्द्र की ज्योति का सभी दर्शन करते हैं ॥ ३० ॥ (१४)

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।
उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥३१
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव । उत प्र वर्धया मतिम् ॥३२
उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥३३
अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः । इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥३४
इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः । अनुत्तमन्युमजरम् ॥३५।१५

हे इन्द्र ! तुम्हारे बुद्धि-बल की कण्व वंशीय वृद्धि करते हैं। वे तुम्हारे वीर कर्म को भी प्रचण्ड करते हैं ॥ ३१ ॥ हे इन्द्र ! हमारी सुन्दर

स्तुतियों को सुनो। हमारी भले प्रकार रक्षा करते हुए बुद्धि को बढ़ाओ ॥३१॥ हे अग्नि! हम विद्वान् हैं। अपने जीवन के लिए तुम्हारे प्रति हम स्तोत्रोच्चार करते हैं ॥ ३३ ॥ कण्ववंशीय स्तुति करते हैं। नीचे ओर जाते हुए जलों के समान स्तुतियाँ स्वयं ही इन्द्र की मेधा में जाती हैं ॥ ३४ ॥ नदियाँ समुद्र को जैसे बढ़ाती हैं वैसे ही मन्त्र इन्द्र को बढ़ाते हैं, वे इन्द्र जरा रहित हैं। उनके प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता ॥ ३५ ॥ [१५]

आ नो याहि परावतो हरिभ्या हर्यताभ्याम् । इममिन्द्र सुतं पिब ॥३६

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । हवन्ते वाजसातये ॥३७

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् । अनु सुवानास इन्दवः ॥३८

मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ॥३९

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् ।

वृत्रहा सोमपातमः ॥४० ॥१६

हे इन्द्र! सुन्दर रथ द्वारा दूर से भी हमारे पास आगमन करो और सुसिद्ध सोम को पीओ ॥ ३६ ॥ हे इन्द्र! तुम सबसे अधिक राक्षसों के हनन-कारी हो। कुश छेदन करने वाले साधक अन्न लाभ के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र! जैसे रथ के पहिये घोड़े के पीछे चलते हैं, वैसे ही आकाश पृथिवी तुम्हारी अनुवर्त्ती होती हैं और सोम भी तुम्हारा अनुगमन करता है ॥ ३८ ॥ हे इन्द्र! "शर्यणादेश" के तालाब (कुरुक्षेत्र) के निकट सब ऋषियों के यज्ञ में तृप्त होओ और स्तुतियों से पुष्टि को प्राप्त करो ॥ ३९ ॥ कामनाओं के वर्षक, प्रवृद्ध, पराक्रमी, अत्यन्त सोमों के पान करने वाले वृत्रहन्ता इन्द्र आकाश के निकट से बोलते हैं ॥ ४० ॥ [१६]

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥४१

अस्माकं त्वा सुतां उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहन्तु हरयः ॥४२

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥४३

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इन्द्र सनिष्युरूतये ॥४४

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥४५

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे । राधांसि याद्वानाम् ॥४६
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम । ददुष्पज्राय साम्ने ॥४७
उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् ।
श्रवसा याद्वं जनम् ॥४८ ।१७

हे इन्द्र ! तुम पहिले ऋषि रूप से उत्पन्न हुए फिर अपने महान् बल से सब देवताओं के अधिपति हुए । हमको बारम्बार धन प्रदान करो ॥ ४१ ॥ मजबूत चौड़ी पीठ वाले सौ घोड़े हमारे अभिषुत सोम तथा अन्न के लिये तुम्हें ले आयें ॥ ४२ ॥ स्तोत्र द्वारा कण्व वंशीय पूर्वजों द्वारा की हुई मधुर जलों के बढ़ाने वाली यज्ञ क्रिया की वृद्धि करें ॥ ४३ ॥ सभी देवता महान् हैं । उन सबके मध्य इन्द्र को ही रक्षा के निमित्त धन की कामना करते हुए वरण करते हैं ॥ ४४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा स्तुत हो । यज्ञ-कामना वाले ऋषियों द्वारा प्रशंसित दो घोड़े तुम को हमारे समक्ष सोम पीने के लिए ले आवें ॥ ४५ ॥ यदुवंशियों में 'परशु' के पुत्र 'तिरिंदिर से सहस्र संख्यक धन मैंने प्राप्त किया था ॥ ४६ ॥ उन 'तिरिंदर' राजा ने 'पज्र' और 'साम' को तीन सौ घोड़े और एक हजार गौऐं प्रदान कीं ॥ ४७ ॥ उन 'तिरिन्दर' राजा ने चार स्वर्ण भारों सहित ऊँटों को दान किया और अपने यश के तेज से वे स्वर्ग प्राप्त कर सके ॥ ४८ ॥ [१७]

७ सूक्त

(ऋषि– पुनर्वत्सः काण्वः । देवता–मरुतः । छन्द-गायत्री)

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥१
यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत ॥२
उदीरयन्त वायभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षन्त पिप्युपीमिषम् ॥३
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् । यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥४
नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे । शुष्माय येमिरे ॥५ ।१८

हे मरुद्गण ! जब मेधावी जन यज्ञ के तीनों सवनों में हव्य डालते हैं, तब तुम पर्वतों में प्रकाश फैलाते हो ॥ १ ॥ हे बल की कामना वाले सुन्दर

रूप वाले मरुद्गण ! जब तुम घोड़ों को रथ में योजित करते हो तब पर्वत भी कम्पायमान् होने लगते हैं ॥ २ ॥ शब्दवान् मरुत् वायु वेग से मेघादि को ऊपर उठाकर वृष्टि द्वारा अन्न प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ जब मरुद्गण वायुओं के साथ गमन करते हैं तब वे वृष्टि करते हुए पर्वतों को कम्पित करते हैं ॥४॥ हे मरुतो ! तुम्हारे रथ की गति पर्वतों पर निश्चित है । नदियाँ तुम्हारी रक्षा और गमन के लिए नियुक्त हैं ॥ ५ ॥ [१८]

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे । युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥६
उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते । वाश्रा अधिष्णुना दिव ॥७
सृजन्ति रश्मिमाजसा पन्था सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥८
इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः । इमं मे वनता हवम् ॥९
त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१० ।१९

हम रात्रि में तुम्हें रक्षा की इच्छा से बुलाते हैं । दिन में भी तथा यज्ञ के आरम्भ होने पर भी हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ वे अरुण वर्ण वाले, अद्भुत तथा शब्द करने वाले मरुद्गण रथ पर चढ़े हुए स्वर्ग से जाते हैं ॥ ७ ॥ जो मरुद्गण सूर्य के जाने का किरण से युक्त मार्ग बनाते हैं, वे उन्हें प्रकाश से पूर्ण करते हैं, ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! मेरे इस वाक्य को आश्रय दो । हे महान् कर्म वालो ! इस स्तोत्र को आश्रय दो । मेरे आह्वान को सुनो ॥ ९ ॥ मरुद्गण की माता पृश्नियों ने वज्रधारी इन्द्र के लिए मीठे सोमरस को 'उत्स,' 'कबन्ध' और 'अद्रि' नामक सरोवरों से निकाला ॥ १० ॥ (१९)

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ॥११
यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥१२
आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् । इयर्ता मरुतो दिवः ॥१३
अधीव यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् । सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥१४
एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥१५ ।२०

हे मरुद्गण ! जब तुमको हम सुख की कामना करते हुए, स्वर्ग से बुलावें, तब तुम शीघ्र ही हमारे पास आगमन करो ॥ ११ ॥ हे दानशील, सुन्दर, तेजस्वी मरुद्गण ! तुम यज्ञ स्थान में हर्षकारी सोम पीकर श्रेष्ठ ज्ञानी बनते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमारे निमित्त स्वर्ग से हर्षकारी, बहुत निवासप्रद तथा पोषण-समर्थ धन लाओ ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम पर्वत पर अपना रथ लेकर पहुँचते हो, तब सोम के हर्ष से हृष्ट होते हो ॥१४॥ स्तुति करने वाला मनुष्य स्तोत्रों द्वारा मरुद्गण से अपनी सुख की याचना करता है ॥ १५ ॥ (२०)

ये द्रप्साइव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ।१६
उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः । उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥१७
येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् । राये सु तस्य धीमहि ॥१८
इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ।१९
क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः । ब्रह्मा को वः सपर्यति ।२० ।२१

मरुद्गण क्षीण न होने वाले मेघ को दुहते हुए जल की बूँदों के समान, वर्षा से आकाश-पृथिवी को व्याप्त करते हैं ॥ १६ ॥ पृश्नि-पुत्र मरुद्गण शब्द करते हुए उठते हैं, वे अपने रथ से ऊर्द्ध्वगामी होते हैं। वे वायु तथा मन्त्र की शक्ति से ऊपर की ओर चढ़ते हैं ॥ १७ ॥ हे मरुतो ! जिन रक्षण-साधनों से तुमने 'यदु' और 'तुर्वश' की रक्षा की थी और जिन साधनों से धन की कामना वाले 'कण्व' की रक्षा की थी, हम भी धन के निमित्त उन्हीं साधनों को चाहते हैं ॥ १८ ॥ हे दानशील चित्त वाले मरुद्गण ! तुम घृत के समान शरीर को बलिष्ट बनाने वाले इस अन्न को, कण्व वंशियों द्वारा उत्पन्न किये स्तोत्र के समान बढ़ाओ ॥ १९ ॥ हे मरुतो ! तुम दानशील हो। यह कुश तुम्हारे निमित्त उखाड़े गए हैं। इस समय तुम कहाँ विहार करते हो ? कौन स्तोता तुम्हारी पूजा करता है ? ॥ २० ॥ (२१)

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।
शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥२१
समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥२२

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वतां अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥२३

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥२४

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥२५ ।२२

हे मरुद्गण ! तुम अन्यों के स्तोत्रों से अपने यज्ञीय बल की वृद्धि करते हो, उनके स्थान पर हमारे स्तोत्रों को ग्रहण करो ॥ २१ ॥ इन मरुद्गण ने औषधियों में जल मिश्रित किया। आकाश और पृथिवी को उन के स्थानों पर स्थिर किया और सूर्य की स्थापना की। उन्होंने वृत्र को छिन्न भिन्न करने के लिए वज्र को धारण किया ॥ २२ ॥ स्वच्छन्द एवं बल की वृद्धि करने वाले मरुतों ने पर्वत के समान वृत्र के खंड खंड कर डाले ॥ २३ ॥ उन मरुतों ने वीर त्रित के बल की रक्षा की, त्रित के कर्म की भी रक्षा की और वृत्र हनन कर्म के लिए इन्द्र की रक्षा की ॥ २४ ॥ हाथ में आयुध धारण करने वाले, सुन्दर, तेजस्वी मरुद्गण ने अपने मस्तक पर शोभा के लिए शिप्र धारण किया ॥ २५ ॥ [२२]

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन । द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥२६

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः । देवास उप गन्तन ॥२७

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः ॥२९

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।
मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥३० ।२३

हे मरुद्गण ! स्तुति करने वालों को कामना करते हुए कामनाओं की वर्षा करने वाले रथ से तुमने दूर से आगमन किया था। उस समय देवताओं के समान मर्त्यलोक के प्राणी भी भय से कंपित हो गए थे ॥ २६ ॥ वे देवता मरुत् यज्ञ में दान के निमित्त सुवर्ण युक्त पाँवों वाले घोड़ों पर चढ़ कर आगमन करें ॥ २७ ॥ इन मरुद्गण के रथ पर जब श्वेत बूंद वाली मृगी और

द्रुतगामी रोहित मृग चढ़ते हैं तब सुन्दर मरुद्गण गमन करते हैं। उस समय जल वृष्टि होती है॥ २८॥ मरुद्गण! सुन्दर सोम से युक्त और यज्ञ गृह वाले हैं। ऋजीका देश के "शयणा सरोवर" में रथ के पहिये को नीचे मुख करके ले जाते हैं॥२९॥ हे मरुद्गण! तुम कामना करने वाले विद्वान स्तोता के पास सुख के कारण रूप धन सहित कब आओगे?॥ ३०॥ [२३]

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन। को वः सखित्व ओहते ॥३१

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः।

स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥३२

ओ षु वृष्णः प्रयज्ज्यूना नव्यसे सुविताय। ववृत्यां चित्रवाजान् ॥३३

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः। पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥३४

आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः। धातारः स्तुवते वयः ॥३५

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा

ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥३६ ।२४

हे मरुतों! तुम स्तोत्र से प्रसन्न होते हो। तुमने इन्द्र को कब छोड़ा? तुम्हारी मैत्री के लिए किसने याचना की?॥ ३१॥ कण्व वंशियों! तुम वज्र धारण करने वाले मरुद्गण के सहित अग्नि का स्तवन करो॥ ३२॥ यजन के योग्य, अद्भुत पराक्रमी वाले, वर्षणशील मरुद्गण को मैं सुख से प्राप्त होने वाले धन के निमित्त बुलाता हूँ॥ ३३॥ सभी पर्वत आघात होने पर स्थान-भ्रष्ट नहीं होते। वे सदा ही स्थिर रहते हैं॥ ३४॥ बहुत दूर तक जाने की सामर्थ्य वाले घोड़े आकाश-मार्ग से मरुद्गण को लेकर आते हैं। वे स्तुति करने वाले को अन्न प्रदान करते हैं॥ ३५॥ अग्नि अपने तेज के बल से सूर्य के समान सबसे श्रेष्ठ होते हुए प्रकट हुए। वे मरुद्गण भी अपने तेज के बल से विभिन्न स्थानों में वास करते हैं॥ ३६॥ [२४]

८ सूक्त

(ऋषि—सध्वंस काण्वः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम्।

दस्रा हिरण्यवर्तनी पिवतं सोम्यं मधु ॥१
आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥२
आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात् सुवृक्तिभि. ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वाना सवने सुतम् ॥३
आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्य मधु ॥४
आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥५ ।२५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दर्शन के योग्य हो । तुम अपने स्वर्ण-रथ पर चढ़कर सभी रक्षण साधनों सहित आओ और सोम रूप मधुर रस को पीओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सुवर्णमय शरीर वाले, उज्ज्वल कर्मवान् एवं अत्यन्त ज्ञानी हो । तुम सूर्य के समान रोचमान रथ पर आरोहण कर हमारे निकट आगमन करो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारी स्तुतियों के द्वारा अन्तरिक्ष से यहाँ आओ और कण्वों के यज्ञ में सोम पान करो ॥३॥ इस यज्ञ में कण्ववंशीय तुम्हारे निमित्त सोम निष्पन्न करते हैं । हे अश्विद्वय ! तुम प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ग या अन्तरिक्ष से आओ ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! हमारे स्तुति युक्त इस यज्ञ में सोम पान के लिए आओ और अपनी बुद्धि तथा कर्म के द्वारा स्तुति करने वाले को बढ़ाओ ॥ ५ ॥ [२५]

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥६
दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥७
किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्र. कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥८
आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना ।

अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥६
आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१० ।२६

हे अश्विनीकुमारो ! प्राचीन कालीन ऋषियों ने जब रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान किया, तब तुम आगए । अतः मेरी भी स्तुति के प्रति आगमन करो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सूर्य के जानने वाले हो । आकाश और अन्तरिक्ष से हमारे निकट आगमन करो । तुम स्तुति करने वाले के लिए प्रकृष्ट बुद्धि सहित आओ ! हे आह्वान के श्रवण करने वाले अश्विद्वय ! तुम स्तोत्र सहित आगमन करो ॥ ७ ॥ मेरे सिवाय अन्य कौन साधक अश्विनीकुमारों की स्तोत्र द्वारा स्तुति कर सकता है ? कण्व के पुत्र वत्स ऋषि स्तोत्र के द्वारा तुम्हें प्रवृद्ध करते हैं ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में रक्षा के निमित्त स्तुति करने वाले ने तुम्हारा आह्वान किया है । हे असत्य रहित, हे शत्रुओं के नाश करने में श्रेष्ठ अश्विद्वय ! तुम हमारे लिए कल्याणकारी होओ ॥ ६ ॥ धन और अन्न वाले अश्विनीकुमारो ! तुम सभी इच्छित पदार्थों को प्राप्त करो ॥ १० ॥ [२६]

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशसीत्काव्यः कविः ॥११
पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥१२
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥१३
यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्वरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४
यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥१५ ।२७

हे अश्विद्वय ! तुम जिस लोक में हो, वहीं से सुन्दर रथ पर आरोहण

कर यहाँ आओ। कण्व और कवि वत्स मधुर वाणी का उच्चारण करते हैं ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय! तुम अत्यन्त हृष्ट, समार के वहन करने वाले, धनों के देने वाले मेरे इस स्तोत्र का पालन करो ॥ १२ ॥ हे अश्विद्वय! हमको धन प्रदान करो। हमको प्रजोत्पादन कर्म में समर्थ बनाओ। हमको निंदा करने वालों के वश में मत डाल देना ॥ १३ ॥ हे अश्विद्वय! तुम सत्य स्वभाव वाले हो। तुम दूर हो या निकट चाहे जहाँ होओ, असंख्य रूप वाले सुन्दर रथ से आओ ॥ १४ ॥ हे अश्विद्वय! जिन वत्स ऋषि ने अपनी स्तुति से तुम्हें बढ़ाया, उन्हें विविध रूपों से युक्त तथा घृत युक्त अन्न प्रदान करो ॥ १५ ॥ (२७)

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥१६
आ नो गन्त रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८
आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शम्भुवा युवम ।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१९
याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२० ॥२८

हे अश्विद्वय! इन स्तुति करने वालों को घृत युक्त बलकारक अन्न दो तुम दानों के स्वामी हो। इन स्तोताओं ने तुम्हें सुख देने के लिए स्तुति की है। यह अपने लिए धन चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय! तुम शत्रुओं के भक्षक तथा बहुत हव्य भक्षण करने वाले हो। हमारी स्तुतियों के प्रति आकर हमको सुन्दर ऐश्वर्य से युक्त करो ॥ १७ ॥ 'प्रियमेध' ऋषि ने देवताओं का आह्वान करते समय तुम्हें रक्षा-साधनों सहित आहूत किया। हे अश्विनीकुमारो! तुम इस यज्ञ में आकर विराजमान होओ ॥ १८ ॥ हे अश्विद्वय! तुम सुख

प्रदान करने वाले, आरोग्य दाता और स्तुति के योग्य हो। जिन 'वत्स' ने अपनी स्तुति से तुम्हें बढ़ाया, उनके समक्ष पधारो ॥ १९ ॥ जिन रक्षा साधनों से तुमने 'कण्व' 'मेधातिथि', 'वश', 'दशव्रज' और 'गोशर्य' की रक्षा की थी, उन्हीं साधनों से हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥ (२८)

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्वस्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१
प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२
त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥२३ ।२९

हे अश्विनीकुमारो ! जिन रक्षा-साधनों से तुमने 'त्रसदस्यु' की रक्षा की थी, उन्हीं से हमारी रक्षा करो ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम बहुतों के रक्षक तथा शत्रुओं का नाश करने वालों में प्रमुख हो। निर्दोष स्तोत्रमय वाक्य तुम्हारी वृद्धि करें। तुम हमारे प्रति कामनाओं वाले होओ ॥ २२ ॥अश्विनी-कुमारों का तीन पहियों वाला रथ छिपा हुआ रह कर फिर प्रकट होता है। हे अश्विद्वय ! अन्न के कारण रूप रथ से हमारे सामने आगमन करो ॥२३॥ (२९)

९ सूक्त

(ऋषि–शशकर्णः काण्वः । देवता–अश्विनौ । छन्द–बृहती, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्तिः, जगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१
यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥२
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥३
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥५ ।३०

हे अश्विनीकुमारो ! तुमने "वत्स" ऋषि की रक्षा के लिए गमन किया था । इन ऋषि को विघ्न रहित घर दो और इनके शत्रुओं को भगाओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जो धन अन्तरिक्ष और स्वर्ग में है तथा जो पंच श्रेणी में है, वह धन हमको दो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जिस साधक ने तुम्हारे निमित्त बारंबार अनुष्ठान किया, तुम उनको जानो और कण्व-पुत्रों के कार्यों की भी जानकारी करो ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा धर्म (यज्ञ का पाक पात्र) स्तोत्र में भिगोया जाता है । तुम अन्न और धन वाले हो । तुमने जिस सोम के द्वारा वृत्र को जाना था वह मधुर सोम यही है ॥ ४ ॥ हे त्रिविध कर्मों के करने वाले अश्विनीकुमारो ! जल, वनस्पति और लताओं को जो तुमने औषधि गुण दिया है, उसके द्वारा हमारी रक्षा करो ॥५ ॥ [३०]

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथ ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथ. ॥६
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥७
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥८
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥९
यद्वा कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१० ।३१

हे सत्यशील अश्विद्वय ! तुमने संसार का पालन किया और उसे आरोग्य दिया । स्तुति द्वारा वत्स ऋषि तुम्हें प्राप्त नहीं कर पाते । तुम तो हविर्वान् साधकों के निकट जाते हो ॥ ६ ॥ "वत्स" ऋषि ने उत्तम बुद्धि से

अश्विनीकुमारों की स्तुति को जाना। "वत्स" ने मधुर सोम और हव्य को अर्पित किया था ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम द्रुतगामी रथ पर आरोहण करो। मेरे यह सूर्य के समान तेज वाले स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होते हैं ॥८॥ हे अश्विद्वय ! हम स्तोत्र द्वारा जैसे तुम्हें ले आते हैं, वैसे ही तुम मेरे स्तोत्र को जानो ॥६ हे अश्विद्वय ! जैसे "कक्षीवान्" ने तुम्हें आहूत किया था, जैसे "व्यश्व" तथा "दीर्घतमा" ने, "वेन" के पुत्र "पृथ" ने यज्ञ स्थान में आहूत किया था, वैसे ही मैं स्तुति करता हूँ मेरे इस स्तोत्र को जानो ॥ १० ॥ [२१]

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥११
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२
यद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये।
यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥१४
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५ ।२२

हे अश्विद्वय ! तुम घर के रक्षक होकर आगमन करो। तुम अत्यन्त पालनकर्त्ता हो। तुम संसार के पालक हो। पुत्र और पौत्र के घर में आओ ॥ ११ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम यदि इन्द्र के साथ रथ पर बैठ कर गमन करते हो, यदि तुम वायु के साथ एक स्थान पर रहते हो, यदि तुम विष्णु के पादक्षेप के साथ लोकत्रय में व्यापते हो तो यहाँ आओ ॥ १२ ॥ जब मैं युद्ध के लिए अश्विद्वय का आह्वान करता हूँ तब वे आगमन करें। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए जो रक्षा-साधन अश्विनीकुमारों के पास है, वह अत्युत्कृष्ट हैं ॥ १३ ॥ हे अश्विद्वय ! ये हवियाँ तुम्हारे निमित्त हैं। तुम अवश्य आगमन करो। यह सोम "तुर्वश" और "यदु" द्वारा वर्त्तमान हैं। यह कण्व पुत्रों

को दिया गया था ॥ १४ ॥ हे सत्याचरण वाले अश्विनीकुमारो ! दूर अथवा पास जो औषध है, उसके सहित "त्रिमद" के समान "वश" को भी निवास योग्य घर दो ॥ १५ ॥ [३२]

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१६
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्र चेतसा ॥२०
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथ ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥२१ ॥३३

मैं अश्विनीकुमारों के स्तोत्र के साथ जाग गया । हे कान्तिमती उषे ! मेरी स्तुति से अन्धकार को नष्ट करो और मनुष्यों को धन प्रदान करो ॥ १६॥ सुन्दर नेत्र वाली देवी उषा ! तुम अश्विद्वय को जगा कर प्रवृद्ध करो । हे, देवताओं का आह्वान करने वाली, तुम अश्विद्वय को सदा चैतन्य करो । उनके हर्ष के लिए वृहद् अन्न यहाँ उपस्थित है ॥ १७ ॥ हे उषे ! जब तुम तेज के साथ जाती हो, तब सूर्य के समान सुशोभित होती हो । उस समय अश्विनीकुमारों का यह रथ मनुष्यों का पोषण करने वाले यज्ञ गृह में आगमन करता है ॥ १८ ॥ जिस समय पीले रङ्ग वाली सोमलता गौ के स्तन के समान दुही जाती है और जिस समय देवताओं की कामना वाले मनुष्य स्तुति करते हैं, उस समय हे अश्विनीकुमारो ! तुम रक्षा करने वाले होओ ॥ १९ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! धन के निमित्त तुम हमारी रक्षा करो । बल के निमित्त रक्षा करो । मनुष्यों की सुख-समृद्धि के निमित्त रक्षक होओ ॥ २० ॥ हे अश्विनी-

कुमारो ! यदि तुम पिता के समान स्वर्ग के अङ्क में कर्म सहित स्थित हो, यदि प्रशंसा के योग्य होकर सुख सहित निवास करते हो तोभी हमारे पास आगमन करो ॥ २१ ॥ [३३]

१० सूक्त

(ऋषि–प्रगाथः काण्वः । देवता–अश्विनौ छन्द–बृहती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः ।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥१
यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम् ।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥२
त्या न्वश्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम ॥३
ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥४
यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।
यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम ॥५
यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।
यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥६ ।३४

हे अश्विनीकुमारो ! जहाँ बृहद् यज्ञ गृह है यदि तुम वहाँ रहते हो यदि तुम स्वर्ग के तेजोमय प्रदेश में वास करते हो, यदि अन्तरिक्ष में बने घर में वास करते हों, तो इन सब स्थानों से यहाँ आगमन करो ॥ १ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! तुमने मनु के निमित्त जैसे यज्ञ को सींचा था, वैसे ही कण्व-पुत्र के यज्ञ को जानो । मैं बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु अश्विद्वय और सभी देवताओं का आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥ अश्विनीकुमार सुन्दर कर्म वाले हैं । वे हमारे हव्य को ग्रहण करने के लिए उत्पन्न हुए हैं । मैं उनका आह्वान करता हूँ । अश्विनीकुमारों की मित्रता सभी देवताओं में श्रेष्ठ सुलभता से प्राप्त हो

जाती है ॥ ३ ॥ जिन अश्विनीकुमारों पर यज्ञ-कर्म होते हैं, जिनके स्तोता स्तोत्र-रहित स्थान में भी हैं, वे हिंसा-शून्य यज्ञ के ज्ञाता हैं। वे स्तुति के साथ सोमयुक्त मधु को पीवें ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न-धन से युक्त हो। तुम इस समय पूर्व या पश्चिम में हो अथवा "द्रुह्यु", "अनु", "तुर्वश" और "यदु" के निकट हो, वहीं से मेरे आह्वान के प्रति आगमन करो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम बहुत हव्य के भक्षण करने वाले हो। यदि अन्तरिक्ष में जा रहे हो, यदि आकाश-पृथिवी के समक्ष जा रहे हो। और यदि तेज के बल से रथ पर बैठ रहे हो, तो इन समस्त स्थानों से आगमन करो ॥ ६ ॥ [१४]

११ सूक्त

(ऋषि-वत्सः काण्वः। देवता-अग्निः। छन्द-गायत्री त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य। अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥२

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः। अदेवीरग्ने अरातीः ॥३

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः। नोप वेषि जातवेदः ॥४

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदः ॥५ ॥२५

हे अग्ने ! तुम मनुष्यों में कर्म की रक्षा करने वाले हो, इसलिए तुम यज्ञ में स्तुति के योग्य हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम शत्रु को पराजित करने वाले हो। तुम यज्ञ में वन्दे हो, यज्ञों के नेता हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले हो। हमारे शत्रुओं को पृथक् करो। हे अग्ने ! तुम देवताओं के शत्रु और उसकी सेना को दूर करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! पास रहने पर भी तुम शत्रु के यज्ञ की कभी इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ हे उत्पन्न वस्तु के ज्ञाता अग्नि ! हम विप्र हैं। हम तुम्हारे स्तोत्र की वृद्धि करेंगे ॥५॥ [२५]

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वांकामया गिरा ॥७

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः।

समत्सु त्वा हवामहे ॥८

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥९
प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१० ।३६

हम अग्नि को हव्य द्वारा प्रसन्न करने के लिए अपनी रक्षा के लिए स्तोत्र द्वारा आहूत करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने श्रेष्ठ वास स्थान से भी वत्स ऋषि तुम्हारे मन को आकर्षित करते हैं । उनकी स्तुति तुम्हें चाहती हैं ॥ ७ ॥ तुम अनेक देशों में समान रूप से देखने वाले हो । तुम समस्त प्रजा के अधिपति हो । हम तुम्हें युद्ध में आहूत करते हैं ॥ ८ ॥ हम अन्न की कामना वाले होकर रक्षा के लिए रणक्षेत्र में अग्नि का आह्वान करते हैं । वे अग्नि युद्धस्थल में अद्भुत धन वाले होते हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम प्राचीन हो । यज्ञ में पूजनीय हो । तुम चिरकाल से ही होता और स्तुति के योग्य हो तुम यज्ञ में बैठते हो । तुम अपने शरीर को हव्य से संतुष्ट करो । हमको भी सौभाग्य शाली बनाओ ॥ १० ॥   [३६]

॥ पंचम अष्टक समाप्तम् ॥

षष्ठ अष्टक

प्रथम अध्याय

१२ सूक्त

(ऋषि—पर्वतः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥१

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥२

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥३

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।
येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥४

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥५ ।१

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त सोम के प्रेमी हो । पराक्रमियों में मुख्य हो । सोम पीने से हृष्ट हुए तुम अपने कर्मों को भले प्रकार जानते हो । जैसे तुम सोम से उत्पन्न पराक्रम द्वारा दैत्यों का हनन करते हो, वैसे ही हर्षयुक्त होने की हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुमने सोम की जिस शक्ति से हृष्ट होकर अङ्गिरा वंशीय "अध्रिगु" की तथा अन्धकार के नाश करने वाले सूर्य की रक्षा की थी, जिस शक्ति से तुमने समुद्र की रक्षा की थी, उसी शक्ति से युक्त होने की हम तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जैसे सोम पीने से उत्पन्न बल द्वारा रथ के समान जल रूप वृष्टि को समुद्र की ओर प्रेरित करते

हो, ऐसे ही शक्ति युक्त होने पर हम तुमसे यज्ञ-मार्ग की कामना से प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥ हे वज्रिन्! जिस स्तुति से पूजित होकर तुम अपनी शक्ति से हमारा अभीष्ट पूर्ण करते हो, उसी पवित्र स्तुति को अभीष्ट के लिए ग्रहण करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम स्तोत्र द्वारा उपासनीय हो, हमारे स्तोत्र को स्वीकार करो। यह स्तोत्र समुद्र के समान प्रवृद्ध होता है। हे इन्द्र! तुम उस स्तोत्र के द्वारा हमारा समस्त रक्षा-साधनों से मङ्गल करने में समर्थ हो ॥ ५ ॥ [१]

यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे।
दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥६
ववक्षुरस्य केतव उत वज्रो गभस्त्योः।
यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥७
यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः।
आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥८
इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति।
अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥९
इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी।
सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥१० ॥२

इन्द्र ने दूर देश से आगमन कर हमारे प्रति सख्य भाव वर्तने को धन प्रदान किया है। हे इन्द्र! तुम आकाश से होने वाली वृष्टि के समान हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए हमें कर्मों का श्रेय देने की कामना करते हो ॥ ६ ॥ जब वे इन्द्र सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य के समान वृष्टि आदि कर्मों से आकाश-पृथिवी की वृद्धि करते हैं, तब उनकी पताकाएं और इन्द्र के हाथ में सुशोभित वज्र हमारे लिये मङ्गलकारी होता है ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठ अनुष्ठान करने वालों की रक्षा करने वाले इन्द्र! जब तुमने सहस्रों वृत्र आदि राक्षसों का संहार किया, उसके पश्चात् ही तुम्हारा पराक्रम अत्यन्त प्रवृद्ध हुआ ॥ ८ ॥ जैसे दावाग्नि जङ्गलों को दग्ध करती है, वैसे ही इन्द्र उन विघ्नकारी शत्रुओं

को सूर्य की रश्मियाँ द्वारा दृग्ध करते हैं। शत्रुओं को वशीभूत करने वाले इन्द्र भले प्रकार प्रवृद्ध होते हैं॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! मेरा स्तोत्र तुम्हारे प्रति गमन करता है। वह स्तोत्र वसंत आदि में किए जाने वाले यज्ञ से युक्त, अत्यन्त सुखकारक है॥ १० ॥ [२]

गर्भो यज्ञस्य देवयु क्रतुं पुनीत आनुषक् ।
स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥११
सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये ।
प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥१२
विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः ।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥१३
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥१४
अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये ।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५ ।३

यह स्तुति करने वाला इन्द्र का यज्ञकर्त्ता है। वह इन्द्र के पीने योग्य सोम को दशा पवित्र में छानता है। वह स्तोत्र से इन्द्र को बढ़ाता है और स्तोत्र से ही इन्द्र को सीमित करता है॥ ११ ॥ स्तुति करने वाले सखा के लिए दानशील इन्द्र ने गुण गाने वाले की वाणी के समान धन देने के निमित्त अपने शरीर का विस्तार किया। यह स्तुति रूप वाणी इन्द्र के गुणों की सीमा करती है॥ १२ ॥ मेधावी स्तोता जिन इन्द्र को भले प्रकार प्रसन्न कर लेते हैं, उन इन्द्र के मुख में, मैं यज्ञ की हवियों का घृत के समान सींचूँगा॥१३॥ अदिति ने स्वयं सुशोभित इन्द्र के लिए, रक्षा वाले तथा अनेकों से प्रशंसित सत्य रूप स्तोत्र को प्रकट किया॥ १४ ॥ यज्ञ वहन करने वाले ऋत्विक् रक्षा के निमित्त इन्द्र की स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! विविध कर्मों के करने वाले दोनों अश्व तुमको यज्ञ में वहन करते हैं॥ १५ ॥ [३]

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१६

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥१७

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥१८

देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥१९

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।
होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥२० ।४

हे इन्द्र ! विष्णु, आप्तत्रित या मरुद्गण के आगमन पर दूसरों के यज्ञ में उनके साथ सोम से हृष्ट होते हो, फिर भी तुम हमारे सोम से हृष्टि को प्राप्त होओ ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ देश में हव्य रूप सोम से हृष्ट होते हो तो भी हमारे सोम के अर्पित होने पर तुम उसके साथ प्रसन्न होओ ॥१७॥ हे इन्द्र ! तुम सत्य के पालनकर्त्ता हो। तुम सोम अभिषव करने वाले को बढ़ाते हो। तुम जिस यजमान के स्तोत्र से प्रसन्न होते हो उसके सोम से हृष्टि को प्राप्त होओ ॥ १८ ॥ हे ऋत्विको ! तुम्हारी रक्षा के लिए मैं जिन इन्द्र का स्तव करता हूँ, यज्ञ के निमित्त उन इन्द्र को मेरी स्तुतियाँ प्राप्त करें ॥ १९ ॥ हव्य, स्तोत्र और सोम द्वारा यज्ञ में लाने योग्य सब से अधिक सोम पीने वाले इन्द्र को स्तुति करने वाले यजमान बढ़ाते हुए व्याप्त करते हैं ॥ २० ॥　　　　(४)

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥२१

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ।२२

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् ।
अर्केरभि प्र णोनुम: समोजसे ॥२३
न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
अमादिदस्य तित्विषे समोजस ॥२४
यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुर ।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतु ॥२५ ।५

इन्द्र का दान प्रचुर परिमाण में मिलता है। वे बहुत यशस्वी हैं। वे हवि देने वाले यजमान के लिए समस्त ऐश्वर्यों को व्याप्त करते हैं ॥ २१ ॥ देवताओं ने वृत्र-नाश के निमित्त इन्द्र को धारण किया था, बल के निमित्त हमारी वाणी इन्द्र की स्तुति करती है ॥ २२ ॥ अत्यन्त महिमावान् और आह्वान के सुनने वाले इन्द्र की हम स्तोत्र द्वारा बल प्राप्ति के लिये बारम्बार स्तुति करते हैं ॥ २३ ॥ जिन वज्रधारी इन्द्र को आकाश-पृथिवी और अन्तरिक्ष अपने से पृथक् नहीं होने देते, उन्हीं इन्द्र के बल से संसार प्रकाशित होता है ॥ २४ । हे इन्द्र ! जब कभी युद्ध में देवताओं ने तुम्हें धारण किया तभी अश्वों ने तुम्हारा वहन करके वहाँ पहुँचाया ॥ २५ ॥ (५)

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः ।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२६
यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे
आदित्त हर्यता हरी ववक्षतु: ।२७
यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८
यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९
यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारय. ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१
यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन्।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२
सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे। ३३ ।६

हे इन्द्र ! जब तुमने जल रोकने वाले वृत्र का वध किया, तभी तुम्हें घोड़े अपने स्थान पर ले आए॥ २६॥ हे इन्द्र ! जब विष्णु ने तीन पग से लोक त्रय को नाप लिया, तब तुम्हें दोनों घोड़े ले आए ॥ २७॥ हे इन्द्र ! जब तुम्हारे दोनों अश्व वृद्धि को प्राप्त हुए, तभी सारा विश्व तुम्हारे द्वारा नियमित होगया ॥२८॥ हे इन्द्र ! जब तुम्हारे मरुद्गण समस्त जीवों को नियमित करते हैं, तभी तुम सब विश्व को नियमित करते हो ॥२९॥ हे इन्द्र ! जब इन ज्योतिमान सूर्य को तुम सूर्यमण्डल में स्थित करते हो, तभी इस विश्व को नियमित करते हो ॥३०॥ हे इन्द्र ! जैसे सभी अपने बन्धुओं को उच्च स्थान में ले जाते हैं, वैसे ही विद्वान् स्तुति करने वाला प्रसन्न करने वाली स्तुति को, यज्ञ में तुम्हारे पास पहुँचाता है ॥३१॥ इन्द्र के तेज की कामना के लिए यज्ञ स्थान में एकत्रित: स्तोतागण जब भले प्रकार स्तुति करते हैं, तब हे इन्द्र ! नाभिरूप यज्ञ के अभिषव स्थान पर धन प्रदान करो ॥३२॥ हे इन्द्र ! श्रेष्ठ पराक्रम, श्रेष्ठ गौओं और उत्तम अश्वों से युक्त ऐश्वर्य हमको प्रदान करो। मैंने सबसे पहले, ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त होता के समान यज्ञ-गृह में तुम्हारी स्तुति की थी ॥ ३३ ॥ (६)

१३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—नारदः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द—उष्णिक्)

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्।
विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥१
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः।

सुपार सुश्रवस्तमः समप्सुजित ॥२
तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा न सुम्ने अन्तम सखा वृधे ॥३
इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४
नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे ।
रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥५ ।७

वे इन्द्र सोम के अर्पित किए जाने पर यज्ञ करने वाले और स्तुति करने वाले को पवित्र करते हैं। इन्द्र ही बढ़ाने वाले बल की प्राप्ति के लिए महत्वावान् होते हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र प्रथम व्योम और स्वर्ग में यजमानों की रक्षा करते हैं। यज्ञ प्रारम्भ किए कर्म को सम्पूर्ण कराने वाले हैं। वे अत्यन्त यशस्वी, जल की प्राप्ति के लिए वृत्र पर विजय प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ मैं पराक्रमी इन्द्र का युद्ध स्थल में आह्वान करता हूँ। हे इन्द्र! धन की कामना होने पर तुम वृद्धि के निमित्त हमारे मित्र बनो ॥ ३ ॥ हे स्तुतियों द्वारा पूजनीय इन्द्र! तुम्हारे निमित्त यजमान द्वारा प्रदत्त आहुति प्राप्त होती है। तुम प्रसन्न होते हुए हमारे यज्ञ में विराजमान होओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! सोम सिद्ध करने वाले तुमसे कामना करते हैं, तुम मुझे वह ऐश्वर्य अवश्य दो। वह अद्भुत और स्वर्ग प्राप्त कराने वाला ऐश्वर्य लेकर आओ ॥ ५ ॥ (७)

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः ।
वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥६
प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् ।
मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥७
क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥८
उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी ।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥९

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१०॥८

हे इन्द्र ! स्तुति करने वाला जब तुम्हारे लिए शत्रुओं को हराने वाली स्तुति करता है और जब सभी वचन तुम्हें हर्षित करते हैं, तब तुम सभी गुणों से युक्त हो जाते हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! पूर्व काल के समान स्तोत्र प्रकट करो । स्तुति करने वाले का आह्वान सुनो । जब तुम सोम से हृष्ट होते हो तब सुन्दर कार्य करने वाले यजमान को फल देते हो ॥ ७ ॥ इन्द्र की सत्य वाणी नीचे की ओर जाते हुए जल के समान जाती है । स्वर्गाधिपति इन्द्र इस स्तुति द्वारा यश प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ एक मात्र इन्द्र ही मनुष्यों के रक्षक हैं । हे इन्द्र ! तुम स्तोत्र द्वारा बढ़ाने वालों और युद्ध की कामना वालों के साथ सोम से हृष्ट होओ ॥ ९ ॥ हे स्तुति करने वालो ! तुम मेधावी एवं प्रसिद्ध इन्द्र की स्तुति करो । शत्रुओं के जीतने वाले इन्द्र के दोनों घोड़े हव्य और नमस्कार वाले यजमान के गृह में पहुँचते हैं ॥ १० ॥ [८]

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११

इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥१२

हुवे त्वा सूर उदिते हुवे मध्यन्दिने दिवः ।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥१३

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।
तन्तु तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥१४

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥१५॥९

हे इन्द्र ! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त फल देने वाली है । तुम अपने द्रुत-गामी घोड़ों सहित हमारे यज्ञ में आओ । क्योंकि तुम यज्ञ में ही सुख पाते हो ॥ ११ ॥ हे सज्जनों की रक्षा करने वाले, पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हारा

स्तवन करते हैं। तुम हमको धन प्रदान करो। स्तुति करने वालों को कभी भी नष्ट न होने वाला व्यापक यश दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! सूर्योदय काल में, मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। मैं दिन के मध्य के सवन में भी तुम्हें बुलाता हूँ, प्रसन्न होते अपने गतिमान् घोड़ों सहित आगमन करो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! शीघ्र ही जहाँ सोम है, वहाँ आगमन करो। दुग्ध मिश्रित सोम से प्रसन्न होओ फिर मैं जैसा जानता हूँ वैसे ही मेरे यज्ञ को पूर्ण करो ॥ १४ ॥ हे वृत्र के मारने वाले इन्द्र! तुम दूर हो अथवा पास हो या अन्तरिक्ष में कहीं भी हो तो भी वहाँ से आकर सोम-रस को पियो और हमारे रक्षक बनो ॥१५॥ [ ]

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः ।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥१६

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ।
इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥१७

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥१८

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥२० ॥१०

हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को बढ़ावें। अभिषुत सोम इन्द्र को बढ़ावें। हवि वाले यजमान इन्द्र की साधना में लीन हुए हैं ॥ १६ ॥ रक्षा की कामना वाले मेधावी जन इन्द्र को तृप्त करते हुए आहुतियों द्वारा बढ़ाते हैं। पृथिवी के सभी जीव इन्द्र को वृक्ष की शाखा के समान बढ़ाते हैं ॥ १७ ॥ त्रिकद्रुक नामक यज्ञ में देवताओं ने चैतन्यता प्रदान करने वाले इन्द्र का सम्मान किया। इन्द्र को हमारी वर्द्धक स्तुतियाँ सदा बढ़ावें ॥ १८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी स्तुति करने वाले समय-समय पर स्तोत्रोच्चार करते हैं। तुम अद्भुत वेश वाले, पवित्र करने वाले एवं स्तुत्य हो ॥ १९ ॥ जिनके निमित्त

मेधावी जन स्तोत्रोच्चार करते हैं, वे रुद्र पुत्र मरुद्गण अपने पुरातन स्थानों में वर्तमान हैं ॥ २० ॥ (१०)

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१
कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।
कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२
उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥२३
तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥२४
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥ ११

हे इन्द्र ! तुम मुझे अपनी मित्रता दो और इस सोमरस को पीओ तभी हम सब शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों के पात्र हो । तुम्हारी स्तुति करने वाला क्या कम सुखी होगा ? तुम हमको अश्व गवादि से युक्त सुन्दर गृह वाला धन कब प्रदान करोगे ? ॥२२॥ हे इन्द्र ! तुम जरा-रहित हो । कामनाओं की वर्षा वाले, भले प्रकार स्तुत्य तुम्हारे दोनों घोड़े तुम्हारे रथ को हमारे यहाँ लावें । तुम अत्यन्त हृष्ट हो । हम तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ २३ ॥ बहुतों द्वारा स्तुत एवं महान् इन्द्र की तृप्ति करने वाली आहुतियों सहित हम प्रार्थना करते हैं । वे प्रसन्नताप्रद कुशों पर विराजमान हों । फिर दोनों प्रकार का हव्य ग्रहण करें ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों एवं ऋषियों द्वारा स्तुत हो । अपने रक्षण-साधनोंसे हमको बढ़ाओ और हमको अत्यन्त अन्न प्रदान करो ॥ २५ ॥ (११)

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः ।
ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥२६
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।

हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥२७

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रास सक्षत श्रियम् ।
उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रय ॥२८

इमा अस्य प्रतूर्तय पद जुषन्त यद्दिवि ।
नाभा यज्ञस्य स दधुर्यथा विदे ॥२९

अय दार्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे ।
मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३० ॥१२

हे वज्रिन्! तुम स्तुति करने वाले के रक्षक हो। मैं तुम्हारे स्तोत्र वाले सुन्दर कर्म को प्राप्त होता हूँ ॥ २६ ॥ हे इन्द्र! तुम अपने प्रसन्न मन वाले, दृढ़ एव धन युक्त दोनों घोड़ों को रथ में जोत कर सोम पीने के निमित्त यहाँ आगमन करो ॥ २७ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे जो मरुद्गण हैं वे इस यज्ञ में आगमन करें। मरुद्गण की प्रजाएं भी यहाँ आवें ॥ २८ ॥ इन्द्र की मरुदादि प्रजाएं स्वर्ग में या जहाँ भी वे हैं, उनकी परिचर्या करती हैं। हम जिस प्रकार धन पावें, उसी प्रकार वे यज्ञ के नाभि स्थल पर रहते हैं ॥ २९ ॥ यज्ञ के प्राचीन गृह में आरम्भ होने पर यज्ञ को यथाविधि देखकर इच्छित फल के निमित्त इन्द्र यज्ञ का सम्पादन करते हैं ॥ ३० ॥ (१२)

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी ।
वृषा त्व शतक्रतो वृषा हव ॥३१

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अय सुत ।
वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हव ॥३२

वृषा त्वा वृषण हुव वज्रिञ्चित्राभिरूतिभि ।
वावन्थ हि प्रतिष्टुति वृषा हव ॥३३ ॥१३

हे इन्द्र! तुम्हारा रथ अभीष्टों को पूर्ण करने वाला है। तुम्हारे दोनों अश्व भी कामनाओं की वर्षा करते हैं। हे सैकड़ों कर्म करने वाले इन्द्र! तुम अभीष्ट की वर्षा करने वाले हो और तुम्हारा आह्वान इच्छित फल का देने वाला है ॥ ३१ ॥ सोम को कूटने वाला पाषाण कामनाओं की वर्षा करता

है। सोम मनोरथों का दाता है। सोम सभी कामनाओं की वर्षा करने वाला है। जिस यज्ञ को तुम प्राप्त करते हो वह भी इच्छित वर्षक हो। तुम्हारा आह्वान इच्छित फलों का देने वाला है ॥ ३२ ॥ हे वज्रिन्! तुम कामनाओं के वर्षक हो। मैं हविसिंचन करने वाला हूँ। मैं विविध स्तुतियों से तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम अपने निमित्त की जाने वाली स्तुति को ग्रहण करते हो अतः तुम्हारा आह्वान इच्छित फलों का देने वाला है ॥ ३३ ॥ (१३)

१४ सूक्त

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥२
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमनाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥४
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ॥५ ॥१४

हे इन्द्र! जैसे केवल तुम्हीं सब के स्वामी हो, वैसे ही यदि मैं भी धनवान हो जाऊँ तो मेरा स्तोता गौओं से युक्त हो जाय ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम सर्व शक्तिमान हो। यदि मैं तुम्हारी कृपा से गौ वाला हो जाऊँ तो इस स्तुति करने वाले को माँगा हुआ धन देने की इच्छा करूँगा ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी सत्यप्रिय और बढ़ाने वाली स्तुति रूप धेनु सोम प्रस्तुत करने को गौ और घोड़े प्रदान करती है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम स्तुत होकर धन देने की कामना करते हो। उस समय कोई देवता या मनुष्य तुम्हारे धन को नहीं रोक सकता ॥ ४ ॥ यज्ञ ने इन्द्र को बढ़ाया है। इन्द्र ने स्वर्ग में मेघ को सुपुप्त कर पृथिवी को वृष्टि देकर स्थिर किया है ॥ ५ ॥ (१४)

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥७
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥८

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥९

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥१० ॥१५

हे इन्द्र ! तुम बढ़ने वाले एवं शत्रुओं के सब धनों को जीत लेने वाले हो। हम तुम्हारी रक्षा चाहते हैं ॥ ६ ॥ सोम से उत्पन्न हर्ष के होने पर इन्द्र ने अन्तरिक्ष को बढ़ाया है। क्योंकि इन्होंने मेघ को खोला है ॥ ७ ॥ इन्द्र ने गुफा में छिपी हुई गौओं को निकाल कर अङ्गिराओं को प्रदान कीं और गौओं के चुराने वाले पणियों के मुखिया "बल" राक्षस को नीचे गिराया ॥ ८ ॥ इन्द्र ने आकाश के नक्षत्रों को स्थिर किया। उन नक्षत्रों को उनके स्थानों से च्युत कोई नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ हे इन्द्र! समुद्र की लहरों के समान तुम्हारी स्तुतियाँ शीघ्र जाती हैं। तुम्हारी दृष्टि सदा तेज को प्राप्त करती ॥ १० ॥ [१५]

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥११
इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥१२
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥१३
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥१४
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥१५ ॥१६

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्र द्वारा बढ़ने हो और "उक्थ" द्वारा भी बढ़ते हो। तुम स्तुति करने वाले के लिए मङ्गलकारी हो ॥ ११ ॥ इन्द्र के दोनों अश्व सोम पीने के लिए इन्द्र को यज्ञ स्थान में ले जाते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! जब तुमने सब राक्षसों को पराजित किया था, तब जल के फेन द्वारा ही "नमुचि" के सिर को पृथक कर दिया था ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम माया द्वारा सर्वत्र व्याप्त हो। तुमने स्वर्ग में चढ़ने की इच्छा करने वाले शत्रुओं को नीचे गिरा दिया ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! सोम पीकर श्रेष्ठतम होते हुए तुमने

सोम अभिषव न करने वाले व्यक्तियों को परस्पर लड़ा कर नष्ट कर डाला ॥ १४ ॥ [१६]

१५ सूक्त

(ऋषि-गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ: । देवता-इन्द्रः । छन्द-उष्णिक्)

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥१

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी ।
गरीँरज्राँ अपः स्वर्वृ पत्वना ॥२

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥३

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥४

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥५ ।१७

मनुष्यो ! अनेकों द्वारा आहूत और अनेकों द्वारा ही स्तुत उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो । सुन्दर वाणी से महान इन्द्र की पूजा करो ॥ १ ॥ इन्द्र का प्रशंसनीय पराक्रम आकाश पृथिवी को धारण करता है । वह शीघ्रगामी मेघ तथा गतिशील जल को अपने पराक्रम से ही धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा स्तुत हो । तुम सुशोभित हो । जीतने तथा सुनने के योग्य धन को स्वच्छन्द करने के लिए तुम वृत्रादि राक्षसों को मारते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम की हम स्तुति करते हैं । वह अभीष्ट पूर्ण करने वाले, शत्रुओं के पराजित करने वाले तथा अश्वों द्वारा सेवा के योग्य हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जिस तेज से सूर्य आदि ज्योतियों को प्रकट किया था, उसी के द्वारा बढ़ते हुए तुम यज्ञ कर्म के करने वाले हुए ॥ ५ ॥ [१७]

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥६

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुम् ।

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥७

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।

त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥८

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।

त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥९

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।

सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥१० ॥१८

हे इन्द्र ! पूर्व काल के समान अब भी स्तोत्र करने वाले तुम्हारे बल की स्तुति करते हैं। जिस जल के स्वामी पर्जन्य हैं तुम उस जल को मुक्त करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हमारे स्तोत्र, तुम्हारे पराक्रम, कर्म और वरण करने योग्य वज्र को तीक्ष्ण करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! आकाश तुम्हारे बल को, पृथिवी तुम्हारे यश को तथा अन्तरिक्ष और मेघ तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! पालनकर्त्ता विष्णु, मित्र और वरुण तुम्हारा स्तव करते हैं। मरुद्गण तुम्हारे भरोसे से अधिकार को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम वर्षणशील एवं दानशील हो। तुम अपत्ययुक्त सुन्दर धन धारण करते हो ॥ १० ॥ [१८]

सत्रा त्वं पुरुष्टुतं एको वृत्राणि तोशसे ।

नान्य इन्द्रात् करणं भूय इन्वति ॥११

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।

अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥१२

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् ।

इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥१३ ॥१९

हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा स्तुत हो। तुम अकेले ही असंख्य शत्रुओं को नष्ट करते हो। इन्द्र से बढ़कर कर्म करने वाला अन्य कोई भी नहीं है ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! रक्षा के निमित्त जिस युद्ध में तुम स्तोत्र द्वारा पूजित होते हो। उसी युद्ध में बुलाए जाकर तुम शत्रुओं के बल पर विजय प्राप्त

करो ॥ १२ ॥ हे स्तुति करने वालो ! हमारे महान् गृह के निमित्त सर्वत्र व्याप्त और कर्मों के रक्षक इन्द्र का, जीतने योग्य धन के निमित्त, स्तवन करो ॥ १३ ॥ [१९]

१६ सूक्त

(ऋषि इरिम्बिठिः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥२
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३
यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४
तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥५
तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥६।२०

हे स्तोताओ ! मनुष्यों के सम्राट इन्द्र का स्तव करो । वे स्तुतियों द्वारा प्रशंसित, शत्रुओं के डराने वाले एवं अन्य सब की अपेक्षा अधिक देने वाले हैं ॥ १ ॥ जैसे जल की लहरें सिन्धु में सुशोभित होती हैं, वैसे ही स्तोत्र और हविरन्न इन्द्र में सुशोभित होते हैं ॥ २ ॥ मैं सुन्दर स्तोत्र द्वारा इन्द्र की धन-प्राप्ति के लिए स्तुति करता हूँ । वे इन्द्र सभी श्रेष्ठ देवताओं में सुशोभित रहते हैं । वे पराक्रमी रणक्षेत्र में महान् बल दिखाते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र की शक्ति महती, गम्भीर, विस्तृत, शत्रु से बचाने वाली और वीरों के संग्राम में प्रसन्न रहती है ॥ ४ ॥ धन मिलने पर, स्तुति करने वाले अपने पक्ष के लिए इन्हीं इन्द्र का आह्वान करते है । जिस पक्ष में इन्द्र रहते हैं, उधर विजय मिलती हैं ॥ ५ ॥ अपने शक्तिशाली स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को ही ईश्वर बनाया जाता है । अपने कर्म से ही मनुष्य उन्हें ईश्वर मानते हैं । इन्द्र ही धन के कर्त्ता स्वरूप हैं ॥ ६ ॥ [२०]

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥७
सः स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः । एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥८
तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥९

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१०

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥११

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥१२ ।२१

इन्द्र बहुतों द्वारा बुलाए जाते हैं। वे अपने महान् कार्यों के द्वारा ही महान् हैं ॥ ७ ॥ वे इन्द्र स्तुति और आह्वान के योग्य हैं। वे शत्रुओं के अवसादक बहुत कर्मवान् हैं, तथा अकेले रहते हुए भी असंख्य शत्रुओं को भगाने वाले हैं ॥ ८ ॥ मेधावी मनुष्य पूजा साधक स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को बढ़ाते हैं। गायन योग्य स्तोत्रों से बढ़ाते हैं और गायत्री आदि छन्दों तथा युद्ध मन्त्रों द्वारा भी बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥ वे इन्द्र प्रशंसा योग्य धनों के प्रकट करने वाले, रणक्षेत्र में पराक्रम के दिखाने वाले और शस्त्रों द्वारा शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं ॥ १० ॥ वे इन्द्र सब कार्यों के सम्यक् कर्त्ता और बहुतों द्वारा आहूत हैं। वे हमको अपनी रक्षा रूप नाव के द्वारा शत्रुओं के विघ्नादि से पार लगावें ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! अपने बल से हमको धन दो। तुम हमको श्रेष्ठ मार्ग दो। हमको सुखी बनाओ ॥ १२ ॥ [२१]

१७ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, बृहती)

आ याहि सुषुमा हि त इंद्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥१

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥४

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥५ ।२२

हे इन्द्र ! यहाँ आओ। तुम्हारे निमित्त छना हुआ हुआ सोम रखा है। मेरे इस कुश पर विराजमान होकर इस मधुर सोम-रस का पान करो॥१ हे इन्द्र ! मरुद्गण द्वारा जोड़े हुए सुन्दर केश वाले घोड़े तुम्हें यहाँ ले आवें। तुम इस यज्ञ स्थान में आगमन कर हमारे सुन्दर स्तोत्र को श्रवण करो॥ २॥ हे इन्द्र ! हम स्तुति करने वाले हैं। तुमको आह्वानीय स्तोत्र द्वारा आहूत करते हैं। हम अभिषुत सोम से युक्त हैं। हम सोमपान करने वाले इन्द्र का आह्वान करते हैं॥ ३॥ हे इन्द्र ! हम सोमवान् हैं। तुम हमारे समक्ष आगमन करो। हमारे श्रेष्ठ स्तोत्रों को जानो। तुम सुन्दर मुकुट धारण करने वाले हो। तुम अन्न सेवन करो॥ ४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे दाँये और बाँए उदर को सोम से पूर्ण करता हूँ। वह सोम तुम्हारे शरीर को परिपूर्ण करे। तुम इस मधुर सोम को जिह्वा द्वारा सेवन करो॥ ५॥ [२२]

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वेतव। सोमः शमस्तु ते हृदे ॥६
अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः। प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥७
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा। वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥९
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि। यजमानाय सुन्वते ॥१०।२३

हे इन्द्र ! तुम्हारे दानशील शरीर के निमित्त यह मधुर रस वाला सोम सुस्वादु बने। यह सोम तुम्हारे लिए सोम उत्पन्न करने वाला हो॥ ६॥ हे इन्द्र ! यह सोम सुरक्षित रहने के लिये सब तरफ से ढका हुआ तुम्हारे समीप में गमन करे॥ ७॥ वे विशाल स्कंध, स्थूल उदर और शोभन बाहु वाले इन्द्र अन्न रूप सोम का प्रभाव होने पर वृत्र आदि असुरों का संहार करते हैं॥ ८॥ हे इन्द्र ! तुम बल के कारण रूप एवं संसार के ईश्वर हो। तुम हमारे समक्ष आओ। हे वृत्र-हन्ता इन्द्र ! तुम शत्रुओं और असुरों का संहार करो॥ ९॥ हे इन्द्र ! तुम अपने जिस अंकुश से अभिषव करने वाले यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करते हो, तुम्हारा वह अंकुश महान् हो॥१० [२३]

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब ॥११

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥१२
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥१३
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणासत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥१४
पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥१५ ॥२४

हे इन्द्र! यह सोम वेदी पर बिछे हुए कुश पर विशेष रूप से तुम्हारे लिए सुसिद्ध किया गया है। तुम इस सोम के सामने आकर शीघ्र ही इसका पान करो ॥ ११ ॥ हे प्रसिद्ध पूजा के योग्य इन्द्र! तुम्हें प्रसन्न करने के लिए सोम अभिषुत हुआ है। हे शत्रुहन्ता, तुम श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा बुलाए जाते हो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी रक्षा वाला श्रेष्ठ कुण्डपायी यज्ञ है, उसमें ऋषिगण लीन हो रहे हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुम गृहपति हो। घर का आधार रूप स्तंभ सुदृढ़ हो। हम सोम के सम्पादन कर्त्ता हैं। हमारे स्कंध में रक्षा के लिए सामर्थ्य हो। सोमवान् एवं अनेक नगरों के ध्वस्त करने वाले इन्द्र ऋषियों के सखा बनें ॥ १४ ॥ ऊँचे शिर वाले, यज्ञ के योग्य, गौओं के प्रकट करने वाले वे इन्द्र अकेले रह कर भी असंख्य शत्रुओं को हराते हैं। स्तुति करने वाले विद्वान् उन विस्तृत इन्द्र को सोम पीने के लिए हमारे सामने लाते हैं ॥ १५ ॥ [२४]

१८ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठि काण्वः । देवता—आदित्याः, अश्विनौ, अग्निः सूर्यानिलाः । छन्द—उष्णिक्)

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥१
अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् ।
अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥२
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥३
देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥४
ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥५ ।२५

इस समय मनुष्य आदित्यों के सामने पूर्ण न हुए सुख के परिपूर्ण होने की याचना करे ॥ १ ॥ इन आदित्यों के मार्ग अहिंसित हैं । उन मार्गों पर अन्य कोई नहीं चला है । वे पालन वाले मार्ग सर्व सुखों के बढाने वाले हैं ॥ २ ॥ हम जिस अत्यन्त सुख की इच्छा करते हैं, उसी सुख को सविता, भग, मित्र, वरुण और अर्यमा हमको दें ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! अहिंसा को पुष्ट करने वाली और बहुतों को प्रिय अदिति, विद्वान और सुख के देने वाले देवताओं के सहित सुख रूप होकर यहाँ आवें ॥ ४ ॥ अदिति के बन्धु एवं पुत्रादि वैरियों को भगाना जानते हैं । विस्तृत कर्मों के करने वाले और रक्षा करने में समर्थ वे सभी हमको पापों से बचाना जानते हैं ॥५ ॥ [२५]

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ६
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् ।
सा शन्ताति मयस्करदप स्रिधः ॥७
उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।
युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥८
शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः ।
शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥९
अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥१० २६

दिन एवं रात में भी हमारे पशुओं की रक्षा माता अदिति करें तथा वे अपने विस्तृत रक्षा साधनों द्वारा हमारी पाप से भी रक्षा करें ॥ ६ ॥ वे स्तुति की पात्र अदिति दिन में अपनी रक्षाओं सहित आगमन करें । वे शान्ति

पाले सुख को हमें प्रदान करें। वे विघ्न करने वालों को हमसे दूर करें ॥७
देववाओं में विख्यात चिकित्सक अश्विनीकुमार हमको सुख प्रदान करें। पापों को हमारे पास से हटावें। शत्रुओं को भी हमसे दूर करें ॥ ८ ॥ अग्निदेव हमारे रोग को शान्त करें। सूर्य का ताप सुख देने वाला हो। वायु पाप और ताप से रहित होकर प्रवाहित हो और यह सभी, शत्रुओं को दूर भगावें ॥९॥ हे आदित्यो ! रोगों को हमसे दूर करो। शत्रुओं को भी दूर भगाओ। बुरी गतियों और पापों को भी दूर रखो ॥ १० ॥ [२६]

युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम्।

ऋधग् द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति।

एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥१२

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।

स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥१३

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम्।

यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥१४

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम्।

उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥१५ ।२७

हे आदित्यो ! हिंसकों को हमसे दूर करो। कुबुद्धि को भी दूर करो। शत्रुओं को भी दूर करो ॥ ११ ॥ सुन्दर दान वाले आदित्यो ! तुम्हारा जो सुख पापी स्तोता को भी पाप से छुड़ा देता है, वही सुख हमें दो ॥ १२ ॥ जो मनुष्य राक्षस-वृत्ति द्वारा हमारा वध करना चाहता है, वह अपने ही कार्यों से मारा जाय। वह हमसे दूर रहे ॥ १३ ॥ जो कुख्यात व्यक्ति कपटी एवं हमारा हिंसक है, उसे उसका ही पाप व्याप्त करे ॥ १४ ॥ हे सुन्दर धाम देने वाले आदित्यो ! तुम पूर्णज्ञानी हो। अतः तुम कपटी और निर्मल चित्त वाले, दोनों तरह के मनुष्यों के पूरी तरह जानने वाले हो ॥ १५ ॥ [२७]

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥१६
ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः ।
अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥१७
तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥१८
यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।
युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥१९
बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥२०
अनेहो मित्रायमन्नृवद्वरुण शंस्य । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥२१
ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरतेन ॥२२ ।२८

हम पर्वत के तथा जलों के सुखों की इच्छा करते हैं। हे आकाश, पृथिवी! तुम पापों को हमसे दूर भेज दो ॥ १६ ॥ हे वास देने वाले आदित्यो! अपनी सुन्दर और सुख देने वाली नाव के द्वारा सभी पापों से पार लगाओ ॥ १७ ॥ हे आदित्यो! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो हमारी सन्तान को अधिकतम आयु प्रदान करो ॥ १८ ॥ हे आदित्यो! हमारे कृत यज्ञ तुम्हारे पास है। तुम हमको सुख दो। तुम्हारी मित्रता पाकर हम सदैव तुम्हारे रहेंगे ॥ १९ ॥ हे मरुद्गण के पालनकर्त्ता इन्द्र! अश्विनीकुमार, मित्र और वरुण! हम तुमसे शीत-ताप आदि के निवारक घर को अपने सुख के लिए माँगते हैं ॥ २० ॥ हे मित्र, अर्यमा, वरुण, मरुद्गण! तुम अहिंसित एवं स्तुत्य हो। शीत-ताप-वर्षा आदि का निवारक संतान युक्त घर हमको प्रदान करो ॥ २१ ॥ हे आदित्यो! जो मनुष्य मृत्यु के निकट जाने वाले (अल्प आयु) हैं, उनके जीवन के निमित्त आयु की वृद्धि करो ॥२२॥ [२८]

१६ सूक्त

(ऋषिः—सोभरिः काण्वः। देवता—अग्निः, आदित्याः। छन्द—उष्णिक्, पंक्तिः, बृहती)

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमोहिरे ॥१

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रे मध्वराय पूर्व्यम् ॥२
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३
ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥४
यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
यो नमसा स्वध्वरः ॥५ ।२६

हे स्तोताओ ! अग्नि का स्तवन करो । वे स्वर्ग में हवि पहुँचाने वाले हैं । ऋत्विगण अपने स्वामी अग्नि की सेवा में पहुँच कर देवताओं के निमित्त पुरोडाश आदि देते हैं ॥ १ ॥ हे विद्वानो ! इन अद्भुत तेज वाले, दानी, यज्ञ के नियंता, सोम साध्य, प्राचीन अग्नि की यज्ञ के लिए स्तुति करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम याज्ञिकों में श्रेष्ठ, देवताओं में अत्यन्त दानादि गुण से युक्त, अविनाशी, होता एवं यज्ञकर्त्ता हो । हम तुम्हारा स्तव करते हैं ॥३॥ मैं अन्न दाता, सुन्दर धनदाता, अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रकाशप्रद अग्नि का स्तवन करता हूँ । वे हमारे देवताओं के निमित्त किये जाने वाले, यज्ञ में मित्र और वरुण के लिए यज्ञ करें ॥ ४ ॥ जो साधक समिधादि से अग्नि सेवा करता है- जो आहुतियों से अग्नि की सेवा करता है, जो वेदाध्ययन से अथवा सुन्दर यज्ञादि अनुष्ठानों से नमस्कार युक्त होकर अग्नि की सेवा करता है ·····॥५॥ [२६]

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥६
स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते ।
सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥७
प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥८
सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः ।
स धीभिरस्तु सनिता ॥९

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् ॥१० । ३०

उसके ही अश्व द्रुतगति वाले होते हैं। वह सब से अधिक यशस्वी होता है और उसे दैविक तथा दैहिक पाप नहीं व्यापते ॥ ६ ॥ हे वल के पुत्र और अन्नादि के स्वामी, हम तुम्हारे गार्हपत्यादि अग्नि-पुंजों द्वारा सुन्दर अग्नि वाले होंगे। तुम सुन्दर वीरों वाले होकर हमारे रक्षक बनो ॥ ७ ॥ अतिथि के समान प्रशंसक अग्निदेव स्तुति करने वालों के हित साधक और रथ के समान फल के देने वाले हैं। हे अग्निदेव! तुम रक्षाओं से युक्त हो। तुम धनों के स्वामी हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! जो मनुष्य यज्ञ कर्म से युक्त है, वह सत्य फल से भी युक्त हो। वह स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा संभजन करने वाला हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! जिस यजमान का यज्ञ कर्म करने को तुम उच्च स्थान में रहते हो, वह यजमान गृह से युक्त होकर तथा वीर संतान वाला होकर अपने सभी कार्यों को साध लेता है। वह अश्वों द्वारा विजय प्राप्त करता और विद्वानों तथा वीरों से युक्त हुआ न्याययुक्त विवरणकर्ता होता है ॥१०॥ [३०]

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।
हव्या वा वेविपद्विषः ॥११

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥१२

यो अग्नि हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति ।
गिरा वाजिरशोचिषम् ॥१३

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनां अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् ॥१४

तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासहत्सदने कं चिदत्रिणम् ।
मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥१५ ।३१

वे अग्नि जिस यजमान के घर में स्तोत्र और अन्न ग्रहण करते हैं, उस यजमान की हवियाँ देवताओं को प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने! तुम

बल के पुत्र तथा निवासप्रद हो। विद्वान् स्तोता के दान में शीघ्रकारी के वचनों को देवगण से नीचे रखते हुए भी मनुष्यों से ऊपर उठाओ ॥ १२ ॥ जो यजमान हविर्दान और नमस्कारों से सुन्दर तेज वाले अग्नि की पूजा करता है वह समृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य इन अग्नि की समिधादि के द्वारा सेवा करता है, वह अपने कर्मों से ही भाग्यशाली होकर सुन्दर यश के द्वारा सब मनुष्यों को जल के समान लाँघता है ॥ १४ ॥ हे अग्ने! जो धन घर में आसुरी वृत्ति को दबाता तथा पापी मनुष्य के क्रोध को भी दबाता है, वही धन लेकर आओ ॥ १५ ॥ [३१]

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः।
वयं तत् ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥१६
ते घेदग्ने स्वाध्यो ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम्।
विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥१७
त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥१८
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१९
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥२० ।३२

अग्नि के जिस तेज से वरुण, मित्र और अर्यमा ज्योति देते हैं तथा जिस तेज से अश्विद्वय और भग देवता प्रकाश देते हैं, हे अग्ने! हम इन्द्र के द्वारा रक्षा प्राप्त करते हुए तथा बल के द्वारा अधिक स्तोत्र वाले होकर तुम्हारे उस तेज की सेवा करते हैं ॥ १६ ॥ हे विद्वान् एवं तेजस्वी अग्निदेव! जो मेधावी जन मनुष्यों के साक्षि रूप तुम श्रेष्ठ कर्म वाले को धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ ध्यानी होते हैं ॥ १७ ॥ हे अग्ने! यह यजमान तुम्हारे निमित्त वेदी बनाते हैं, आहुतियाँ देते हैं, सोम का अभिषव करते हैं, वे अपने ही बल से अभीष्ट धन पाते हैं ॥ १८ ॥ यह आहुति अग्नि के लिए सुखकर हो। हे

अग्ने ! तुम्हारा दान हमारे लिए मङ्गलकारी हो। यह यज्ञ एवं स्तुतियाँ सभी कल्याण करने वाले हों ॥ १९ ॥ रणक्षेत्र में मन कल्याण वाहक हो। मन के द्वारा ही हे अग्ने ! तुम युद्ध में शत्रुओं को हराओ। शत्रुओं के वल को भी जीत लो। स्तोत्रों द्वारा हम तुम्हारी उपासना करेंगे ॥ २० ॥ (३२)

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे। यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥२१
तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥२२
यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च असुर इव निर्णिजम् ।२३
यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगंधिना।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥२४
यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः। सहसः सूनवाहुत ॥२५।३३

मैं प्रजापति के द्वारा स्थापित अग्नि का पूजन करता हूँ। वे सबसे अधिक यज्ञ करने वाले, हवि-वाहक एवं ईश्वर रूप हैं और देवताओं ने उन्हें दूत रूप से भेजा है ॥ २१ ॥ सतत युवा, सुशोभित तथा तीखी ज्वालाओं वाले अग्नि को लक्ष्य कर हव्य रूप अन्न का गान करो। प्रिय एवं सत्य वाणी द्वारा स्तुति किए हुए तथा घृत की आहुतियाँ ग्रहण करते हुए वे अग्नि स्तुति करने वाले को श्रेष्ठ वीर्य देते हैं ॥ २२ ॥ घृत द्वारा आहूत अग्नि जब ऊपर और नीचे शब्द करते हैं, तब महा-पराक्रमी सूर्य के समान अपने तेज को प्रकट करते है ॥ २३ ॥ प्रजापति द्वारा स्थापित जो अग्नि अग्नि अपने मुख में ग्रहण कर देवों के निकट हव्य पहुँचाते हैं, वे सुन्दर यज्ञवान्, देवाह्वाक, तेजस्वी और अविनाशी अग्नि, धन प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम वल के पुत्र, घृत द्वारा आहूत एवं सुन्दर तेज वाले हो। मैं मरणधर्मा मनुष्य तुम्हारी उपासना करता हुआ तुम्हारे समान ही अमरत्व प्राप्त करूँ ।२५। [३७

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥२६
पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥२७

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो ।
सदा देवस्य मर्त्य ॥२८

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभि ।
त्वामिदाहु॰ प्रमति वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥२९
प्र सो अग्ने तवोतिभि॰ सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥३० ।३४

हे अग्ने ! मैं तुम्हें मिथ्या अपवाद के लिए तिरस्कृत नहीं करूँगा मैं पाप के लिए तुम्हारा तिरस्कार नहीं करूँगा । मेरा स्तोता अनुचित शब्द द्वारा तुम्हारा तिरस्कार न करेगा । मेरा शत्रु कुबुद्धिवाला न हो, वह पाप बुद्धि से मेरे लिए विघ्नकारक न बने ॥ २६ ॥ पुत्र द्वारा पिता के लिए प्रेरणा करने के समान पोषक अग्नि यज्ञ-स्थान में देवताओं के निमित्त हव्य प्रेरण करते हैं ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! मैं यजमान निकटवर्ती साधनों से तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त करूँ ॥२८॥ हे अग्ने ! तुम्हारी सेवा करता हुआ ही मैं उपासना करूँगा । हव्य और स्तुति के द्वारा तुम्हारी उपासना करूँगा । तुम मेधावी हो । तुम मेरे रक्षक कहलाते हो । हे अग्ने ! दान के निमित्त हर्षित होओ ॥ २९ ॥ हे अग्ने ! तुम जिस यजमान को सखा बनाते हो । वह तुम्हारी बल और अन्न से युक्त रक्षा के द्वारा प्रवृद्ध होता है ॥३०॥ (३४)

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१
तमागन्म सोभरय. सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे। सम्राज त्रासदस्यवम् ।३२
यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ।।३३
यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम्। मघोना विश्वेषां सुदानवः ।३४
यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषां अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५
अदान्मे पौरुकुत्स्य पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् ।

मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥३७ ।३५

सोम द्वारा सिंचित, शब्द करने वाले, तेजस्वी अग्ने ! तुम्हारे निमित्त सोम ग्रहण किया जाता है । तुम विशाल रूप वाली उषाओं के सखा हो । तुम रात्रि में चीजों को दिखाते हो ॥ ३१ ॥ रक्षा के निमित्त हम अग्नि को प्राप्त हुए हैं । हे अग्ने ! तुम अत्यन्त तेजस्वी, सुन्दर रूप वाले तथा "त्रसदस्यु" के द्वारा पूजित हो ॥ ३२ ॥ हे अग्ने ! अन्य अग्नियाँ, वृक्ष की शाखा के समान तुम्हारी, शाखा रूप हैं । हे मनुष्यो ! मैं तुम्हारे पराक्रम को बढ़ाते हुए समान यश-लाभ करूँगा ॥ ३३ ॥ हे श्रेष्ठ दान वाले, द्रोह रहित आदित्यो ! हवि वाले यजमानों में भी जिस किसी को तुम पार लगाना चाहते हो, वही उत्तम फल प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥ हे आदित्यो ! तुम शोभा सम्पन्न एवं शत्रुओं के पराजित करने वाले हो । अतः मनुष्य के हिंसक शत्रुओं को हराओ । वरुण, मित्र और अर्यमा यह यज्ञ में मुख्य होंगे ॥ ३५ ॥ "पुरुकुत्स" के पुत्र "त्रसदस्यु" ने मुझे पचास वन्धु दिये, जो अत्यन्त दानी और स्तुति करने वालों के रक्षक हैं ॥ ३६ ॥ सुन्दर वास वाली नदी के किनारे श्याम वर्ण वाले बैलों के स्वामी और श्रेष्ठ धन देने के योग्य २१० गायों के अधिपति "त्रसदस्यु" ने धन और वस्त्रादि प्रदान किये थे ॥ ३७ ॥ [३५]

२० सूक्त

(ऋषि—सोभरिः काण्वः । देवता—मरुतः । उष्णिक्, पंक्तिः)

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः ।
स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥१

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥२

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।

विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥३
वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥४
अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥५ ।३६

हे मरुतो ! तुम गमनशील हो, हमको हिंसित न करना । हमें त्याग कर अन्यत्र वास न करना । तुम समान तेज वाले होकर भीषण पर्वतों को भी कम्पायमान करते हो ॥ १ ॥ हे रुद्रपुत्रो ! तुम शोभन आवास वाले, तेजस्वी हो । पहिये में लगे डंडों वाले रथ से आओ । तुम सभी के द्वारा कामना करने योग्य हो । मुझ सौभरि की ओर आने की इच्छा करते हुए तुम हमारे यज्ञस्थान में अन्न के सहित आगमन करो ॥ २ ॥ कर्म में रत रहने वाले विष्णु और काम्य जलों को सींचने वाले इन्द्रपुत्र मरुतों के विकराल पराक्रम के हम ज्ञाता हैं ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम तेज से युक्त और श्रेष्ठ आयुधों से सम्पन्न हो । जब तुम कम्पन-कर्म करते हो तब सभी द्वीप च्युत हो जाते हैं । गमनशील जल प्रवाहमान होता है, आकाश-पृथिवी कम्पित होते हैं और स्थावर पदार्थ विपत्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम रण के लिए प्रस्थान करते हो तब पतनशील मेघ तथा वनस्पति आदि बारम्बार घोर शब्द करते हैं । भू मंडल भी कम्पायमान हो जाता है ॥ ५ ॥ [३६]

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत् ।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥६
स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।
वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥७
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८
प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।
हव्या वृषप्रयाव्णे ॥९

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥१० ।२७

हे मरुद्गण ! विस्तृत आकाश तुम्हारे बल के परिभ्रमण के निमित्त अन्तरिक्ष से पृथक् होकर ऊर्ध्वगामी हुआ । नेता एवं विकराल बल सम्पन्न मरुद्गण अपने देह को उज्वल बनाते हैं ॥ ६ ॥ यह नेता मरुद्गण शक्तिशाली, कुटिलता-रहित, तेजस्वी और सेंचन-समर्थ हैं ॥ ७ ॥ मरुद्गण की वीणा सौभरि आदि महर्षियों के शब्दों से स्वर्णिम रथ के मध्य में आविर्भूत हो रही है । वे मरुद्गण सुन्दर जन्म वाले तथा गोमातृक हैं । वे हमारी प्रीति, अन्न और भोगों को प्राप्त कराने में प्रयत्नशील हों ॥८॥ हे अध्वर्युओ ! तुम सोम की वर्षा करने वाले हो, अतः तुम वर्षा प्रदान करने वाले मरुतों के बल के निमित्त हविरन्न लेकर आओ । तुम्हारे द्वारा प्राप्त बल से वे शीघ्र गमनशील और सेंचन समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥ वे मरुद्गण अभीष्ट वर्षक, वृष्टिकारक के रूप में, अश्वों के समान हमारी हवि के समीप आवें ॥ १० ॥ [२७]

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु ।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥११

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२
येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे ।
वयो न पित्र्यं सहः ॥१३
तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषाँ हि धुनीनाम् ।
अराणाँ न चरमस्तदेषाँ दाना मह्ना तदेषाम् ॥१४
सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु ।
यो वा नूनमुतासति ॥१५ ।२८

उन मरुद्गण की वेशभूषा एक सी ही है । उनके हृदय-प्रदेश में दमकता हुआ सुवर्ण हार सुशोभित है । उनकी भुजाओं में आयुध दमक

रह हैं ॥ ११ ॥ वे मरुद्गण पराक्रमी हैं, उग्रकर्मा और वर्षक हैं। उन्हें अपने देहों की रक्षा का यत्न नहीं करना पड़ता। हे मरुद्गण! तुम्हारा रथ धनुष और आयुधों से सम्पन्न हैं और रणक्षेत्र में सभी सेनाओं में मुख पर तुम्हारी जीत के भाव ही लक्षित होते हैं ॥१२॥ इन बहुसंख्यक मरुद्गण का नाम एक होकर भी, जैसे भोग के लिए पैतृक सम्पत्ति यथेष्ट होती है, वैसे ही यथेष्ट है। यह तेजस्वी, सर्वत्र ही जल के समान विस्तार युक्त है ।१३॥ स्वामी के तुच्छ सेवक के समान, दम कम्पन को उत्पन्न करने वाले मरुद्गण के तुच्छ सेवक हैं, उनका दान महिमावान् है। इसलिए उनकी स्तुति करते हुए नमस्कार करो ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण! तुम्हारा स्तोता पूर्वकाल में तुम्हारे द्वारा रक्षित हुआ था। तुम्हारी स्तुति करने पर तुम्हारा ही होता है ॥ १५॥ [२८]

यस्य वा यूय प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभि सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥१६
यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधस । युवानस्तथेदसत् ।१७
ये चार्हन्ति मरुत सुदानव स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥१८
यून ऊ षु नविष्ठया वृष्ण पावकाँ अभि सोभरे गिरा ।
गाय गा इव चर्कृषत् ॥१९
साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२० ।२९

हे मरुद्गण! तुम जिस हवि सम्पन्न यजमान के पास हवि सेवनार्थ प्रस्थान करते हो, वह तुम्हारे तेजस्वी अन्न और उसके उपभोग से प्राप्त सुख को सब ओर फैलाता है ॥१६॥ वह रुद्रपुत्र, बलकारक, सदा तरुण रहते हैं। वे मरुद्गण जिस प्रकार अन्तरिक्ष से आकर हमको चाहने लगें, हमारा यह स्तोत्र उसी प्रकार का हो ॥१७॥ जो हविदाता यजमान इन्हें हवि देते हुए पूजते हैं अथवा जो दानशील यजमान इनकी उपासना करते हैं, इन दोनों प्रकार के यजमानों के समान ही हम भी हैं। हे मरुतो! महान् धन देने वाले

मन से आते हुए हमको प्राप्त होओ ॥ १८ ॥ अत्यन्त वर्षाकारक, सदा युवा, पवित्र करने वाले मरुतों की हे सौभरि ! अत्यन्त नवीन शोभन स्तोत्रों द्वारा, कृषक द्वारा वृषभों का स्तव करने के समान ही, स्तुति करो ॥ १९ ॥ वीरों द्वारा आहूत किये जाने पर मरुद्गण विजय करने वाले होते हैं। वे आह्वान योग्य पहलवान के समान आनन्द देने वाले हैं। उन अत्यन्त सेचन समर्थ और तेजस्वी मरुद्गण की सुन्दर स्तोत्र द्वारा पूजा करो ॥२०॥　　　[३९]

गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
　　　　　　　　　　　रिहते ककुभो मिथः ॥२१

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।
　　　　　　　　　　　यूयं सखायः सप्तयः ॥२३

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुव शिवाभिरसचद्विषः ॥२४

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
　　　　　　　　　　　यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥२५

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६ ॥४०

हे मरुद्गण ! तुम समान तेज वाले हो। समान जाति के कारण गौऐं समान वन्धुत्व को प्राप्त सब ओर से चाटती हैं ॥ २१ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हृदय-प्रदेश में दमकते हुए आभूषण धारण करते हो। हे मरुतो ! तुम नर्तनशील हो। मनुष्य भी तुम्हारे सख्यभाव की कामना करते हैं। इसलिए तुम हमारे प्रति आत्मीयता से कहने वाले होओ। सभी धारक यज्ञों में तुम्हारा बन्धु-भाव सदा ही बना रहता है ॥ २२ ॥ हे मरुद्गण ! तुम मित्र रूप हो। तुम सुन्दर दानशील एवं गमनशील हो। तुम हमें अपनी सम्बन्धित औषधियाँ प्राप्त कराओ ॥ २३ ॥ हे मरुद्गण ! तुमने अपने जिस रक्षण सामर्थ्य

द्वारा गौतम को कूप प्रदान किया, जिस सामर्थ्य से तुम यजमान के शत्रुओं को मारते हो तथा जिस सामर्थ्य से तुमने समुद्र की रक्षा की है, उसी सामर्थ्य से हे शत्रु रहित, सुख उत्पन्न करने वाले मरुद्गण ! हमारे निमित्त सुखोत्पादक होओ ॥ २४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम शोभन यज्ञ वाले हो । समुद्र, नदी, पर्वत आदि में तुम्हारी ही औषधि है ॥ २५ ॥ हे मरुद्गण ! हमारे शरीर की चिकित्सा के लिए उपयुक्त औषधि को लाओ और व्याधिग्रस्त अङ्ग को, जैसे भी रोग का शमन होसके, वैसे ही पूर्ण करो ॥२६॥ [४०]

२१ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-सोभरि काण्व । देवता-इन्द्र', चित्रस्य दानस्तुति' । छन्द-उष्णिक्, पंक्ति)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यव ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥१
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २
आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥३
वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभि सोमपीतये ॥४
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुम ॥५ ॥१

हे इन्द्र ! तुम अद्भुत हो । तुम विविध रूपों के धारण करने वाले हो । विद्वान् पुरुषों के समान हम भी तुम्हें रक्षा की कामना करते हुए सोम द्वारा पुष्ट करने के लिए आहूत करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के विजेता और विकराल तथा उग्र हो । तुम हमारे सामने होओ । हम अपने यज्ञों की रक्षा के लिए तुम्हारे आश्रय में आते हैं । हे इन्द्र ! तुम उपासनीय और हमारे मित्र हो । हम तुम्हारा वरण करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम सोम के

अधिपति हो, यहाँ आकर सोमपान करो। तुम गौओं के पालनकर्त्ता, उर्वर भूमि तथा अश्वों के भी स्वामी हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम अपनी शारीरिक शक्ति सहित आकर सोमपान करो। हम वन्धु रहित तुम वन्धुवान से वन्धुत्व स्थापन करने के इच्छुक हैं ॥४॥ हे इन्द्र। स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त रूप गव्य मिश्रित सोम में रहते हुए तुम्हारे सामने हम पक्षियों के समान मधुर शब्द से तुम्हारा ही स्तव करते हैं ॥ ५ ॥ [१]

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि कि मुहुश्चिद्वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥६
नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः ।
विद्मा पुरा परीणसः ॥७
विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यमा ते, ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥८
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥९
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१० ॥२

हे इन्द्र ! तुम चिन्तित न होओ, हम इस स्तोत्र द्वारा तुम्हारी ही स्तुति करेंगे। हम पुत्र, पशु आदि की कामना करते हैं और तुम धनादि के देने वाले हो। अतः हे हर्यश्ववान इन्द्र ! हमारे सब श्रेष्ठ कर्म तुम्हारे लिए ही प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा को पाकर हम सदा नवीन रहेंगे। हे वज्रिन् ! तुम सर्व व्याप्त हो, यह अभी हमने जाना है। पहिले हम इस बात को नहीं जानते थे ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हे वज्रिन् ! हम तुम्हारे सख्य भाव जानते हुए उसकी कामना करते हैं। हम तुम्हारे धन को जानते हैं, इसलिए तुमसे धन माँगते हैं। तुम सुन्दर मुकुट धारण करने वाले और निवास-दाता हो, अतः गवादि से सम्पन्न धनों को हमारे लिए उज्ज्वल करो ॥ ८ ॥ हे सखा रूप ऋत्विजो और यजमानो ! प्राचीन काल में जो इन्द्र हमारे लिए

सम्पूर्ण ऐश्वर्य को ले आये थे, रक्षा के निमित्त मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ जो मनुष्य हर्यश्वयुक्त, देवताओं के स्वामी, शत्रु को वश करने वाले इन्द्र का स्तव करता है, वह तृप्त होता है। वे इन्द्र हम स्तोताओं के लिए सौ-सौ गौएं और अश्व लेकर आये थे ॥१० ॥ [२]

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
सस्थे जनस्य गोमतः ॥११

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्य. ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥१२
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे॥१३
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ १४
मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावत ।
नि षदाम सचा सुते ॥१५ ॥३

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट फल देने वाले हो। गौओं से सम्पन्न शत्रुओं के साथ युद्ध में लगे हुये हम तुम्हारी सहायता पाकर अत्यन्त कुपित शत्रु को भी शांत कर देंगे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा आहूत किये जाते हो। हम पाप बुद्धि वाले हिंसक शत्रुओं को रणक्षेत्र में पराजित करेंगे। मरुद्गण की सहायता पाकर हम वृत्र रूप शत्रुओं को मारते हुए वीर कर्म की वृद्धि करेंगे। हे इन्द्र ! हमारे सब कर्मों के रक्षक होओ ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम उत्पन्न होते ही शत्रुओं से शून्य होगए थे। तुम बहुत समय से बन्धु रहित हो। हे इन्द्र ! तुम जिस सख्य भाव की कामना करते हो, उसे संग्राम में ही पाते हो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! अयाज्ञिक मनुष्य सुरा पीकर उन्मत्त हो जाते हैं और वे तुम्हारी हिंसा करने में प्रवृत्त होते हैं, इसीलिए तुम उन अयाज्ञिकों को धन होने पर भी अपना आश्रय नहीं देते। जब तुम्हें स्तुति करने वाला अपने पिता के समान मानता हुआ आहूत करता है, तब तुम उसे अपना मान कर धन प्रदान करते हो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! हम सोम का अभिषव करने से-

वंचित न हों। हम तुम्हारे जैसे देवता के बन्धुत्व से हीन न हो सकें। सोम का संस्कार होने पर हम एक साथ ही उपवेशन करेंगे ॥ १५ ॥ [३]

मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥ १६
इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥१७
चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्यइव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥४.

हे इन्द्र ! तुम गौ प्रदान करने वाले हो। हम धन से हीन न हों। हम तुम्हारे हैं अतः अन्य किसी से धन न लें। हे स्वामिन् तुम्हारे दान को कोई बाधा नहीं दे सकता अतः हमारे पास अपना स्थायी धन प्रेरित करो ॥१६॥ हे चित्र नामक यजमान ! मुझ हवि देने वाले को यह दान क्या इन्द्र ने दिया है? या सुन्दर धन की स्वामिनी सरस्वती ने दिया है? अथवा क्या तुमने ही प्रदान किया है? ॥१७॥ वर्षा के द्वारा मेघ जैसे पृथिवी को पुष्ट करता है, वैसे ही राजा चित्र सरस्वती नदी के तट पर वास करने वालों को धन प्रदान करते हुए उन्हें सुखी करते हैं ॥१८॥ (४)

२२ सूक्त

(ऋषि-सोभरिः काण्व । देवता-अश्विनौ । छन्द-बृहती, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १
पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥२
इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥३

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४
रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५ ॥५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम स्तूयमान मार्ग वाले और शोभन आह्वान वाले हो। तुम जिस रथ पर सूर्या का वरण करने को आरूढ़ हुए थे, उसी रथ की रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ हे सौभरि ! यह प्राचीन रथ स्तुति करने वालों को पुष्ट करने वाला है, अत अपनी मंगलमयी स्तुतियों से इस रथ की स्तुति करो। यह रथ पाप रहित, युद्ध क्षेत्र में आगे चलने वाला, सब की रक्षा करने वाला, बहुतों के द्वारा कामना किया गया और सुन्दर आह्वान से सम्पन्न है ॥ २ ॥ हे शत्रु विजेता अश्विनीकुमारो ! तुम इस हवि-दाता यजमान के स्वामी हो। हम इस यज्ञ-कर्म में रक्षा प्राप्त करने के निमित्त नमस्कार करते हुए तुम्हें अपने सामने बुलावेंगे ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे रथ का एक पहिया तुम्हारे साथ रहता है और एक पहिया स्वर्गलोक तक पहुँचता है। तुम जलों के स्वामी तथा सभी कार्यों के प्रेरणा करने वाले हो। तुम्हारी कल्याणमयी सुबुद्धि हमको गौओं के समान प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ सुवर्ण की लगामों वाला और तीन प्रकार की गद्दी वाला है। तुम्हारा वह रथ आकाश-पृथिवी को अपने प्रकाश से सुशोभित करता है ॥ ५ ॥ (५)

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभि. शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६
उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७
अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८
आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥९

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१० ॥६

हे अश्विनीकुमारो ! तुमने आकाश स्थित प्राचीन जल को मनु को दिया और हल से जौ की खेती की । तुम जल के पालन करने वालों की हम अपने सुन्दर स्तोत्र द्वारा पूजा करते हैं ॥६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अन्नवान एवं धनवान हो, तुम धन को प्रदान करने वाले हो । तुमने जिस मार्ग से आकर त्रसदस्यु के पुत्र तृक्षि को अपरमित धन प्रदान कर संतुष्ट किया था, उसी यज्ञ मार्ग से आगमन करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! यह सोम पाषाणों द्वारा तुम्हारे निमित्त ही संस्कारित किया गया है । हे धन-सम्पन्न एवं वर्षणशील अश्विनी-कुमारो ! इस हविदाता के गृह आकर सुमधुर सोम का पान करो ॥ ८ ॥ हे वर्षणशील अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ सुवर्ण की लगामों से युक्त तथा आयुधों का कोश रूप है । तुम अपने उस रमण योग्य रथ पर आरूढ़ होओ ॥६ हे अश्विद्वय ! तुमने जिन रक्षा साधनों से अध्रिगु नामक राजा की तथा पक्थ नामक राजा की रक्षा की थी और जिन रक्षा-साधनों द्वारा तुमने बभ्रु नामक राजा की सोम पीकर रक्षा की थी, तुम अपने उसी रक्षा-साधन द्वारा इस रोगी की चिकित्सा के लिए शीघ्र ही हमारे पास आगमन करो ॥१०॥ (६)

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥१२
ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे ।
ता ऊ नमोभिरीमहे ॥१३

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४
आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥१५ ॥७

हे अश्विद्वय ! जैसे तुम रणक्षेत्र में शत्रु-वध वाले कर्म में शीघ्रकारी हो, वैसे ही हम अपने कर्म में कुशल एवं शीघ्रकारी हैं । इस प्रातः सवन में हम तुम्हें स्तोत्र द्वारा आहूत करते हैं ॥ ११ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम त्रिविध रूप वाले, वर्षणशील और सब देवताओं द्वारा वरण करने योग्य हो तथा हवि की कामना करने वाले, रणक्षेत्र में धनों को जीतने वाले, अत्यन्त धन देने वाले हो । तुमने अपने जिन रक्षा-साधनों से कुत्स को बढ़ाया है, उन सब रक्षा-साधनों सहित हमारे द्वारा आह्वान करने पर आगमन करो ॥ १२ ॥ मैं उन अश्विनीकुमारों से स्तुति द्वारा धन आदि माँगता हूँ । मैं इस प्रातः सवन में उनकी नमस्कार पूर्वक स्तुति करता हूँ ॥ १३ ॥ हम अश्विनीकुमारों को वर्षा काल, दिन और रात्रि तीनों समय आहूत करते हैं । वे रथ में स्तूयमान मार्ग वाले हैं तथा जलों को पुष्ट करते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न और धन वाले हो । हमको शत्रुओं के आधीन मत कर देना ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मैं सोभरि ऋषि सुख पाने का अधिकारी हूँ । अपने पिता के समान मैं भी तुम्हें आहूत करता हूँ । तुम दोनों सेचन-समर्थ हो । तुम अपने रथ पर आरूढ़ होकर प्रातःकाल ही सुख को लेकर यहाँ आगमन करो ॥ १५ ॥ [७]

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभि ।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभि. पुरुभोजसा ॥१६
आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७
सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥१८ ॥८

हे अश्विद्वय ! तुम धन की वर्षा करने वाले, शीघ्रगमन वाले, अनेकों के रक्षक और शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो । इसलिए अपने द्रुतगामी रक्षा साधनों सहित हमारी रक्षा के लिए आगमन करो ॥ १६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम नेता, अत्यन्त सोम पीने वाले तथा दर्शन के योग्य हो । तुम हमारे यज्ञ मार्ग को गौ, अश्व, सुवर्ण आदि धनों से सम्पन्न करते हुए

आगमन करो ॥ १७ ॥ जिस धन का सुन्दर रूप सब के वरण करने योग्य है, जिसका बल और दान भी सुन्दर हैं तथा जिसे पराक्रमी पुरुष भी नहीं हरा सकते, हम ऐसे धन को धारण करते हैं। हे अश्विद्वय! तुम अन्न और धन वाले हो, तुम्हारे आने पर हम समस्त धनों को पा लेंगे ॥१८॥ [८]

२३ सूक्त

(ऋषि–विश्वमना वैयश्वः। देवता–अग्निः। छन्द—उष्णिक्)

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥१

दामानं विश्वचर्षणेऽग्नि विश्वमनो गिरा ।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥२

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे ।
उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥३

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्यजरम् ।
तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥४

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा ।
अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥५ ॥६

जिन अग्नि का धूम सब ओर फैलता है, जिनकी ज्वाला को पकड़ने में कोई समर्थ नहीं है, वे अग्नि शत्रुओं के विरुद्ध जाने वाले हैं। उन्हीं जात वेदा की स्तुति और पूजा करो ॥ १ ॥ हे विश्वमना ऋषि! तुम सर्वार्थ दर्शक हो। तुम इस यजमान के लिए, रथादि प्रदान करने वाले अग्निदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करो ॥ २ ॥ जिनके अन्न और मधुर सोमरस को शत्रुओं को बाधा देने वाली ऋचाओं के द्वारा ग्रहण करते हैं, वे यजमान धन पाते हैं ॥३ वे अग्नि अत्यन्त तापप्रद, तेजस्वी, सुन्दर दीप्ति वाले तथा दण्ड से युक्त हैं। वे अग्नि यजमानों के आश्रय में रहते हैं उनकी नवीन दीप्ति प्रकट हो रही है ॥४॥ हे सुन्दर यज्ञरूप अग्ने! तुम सुन्दर दीप्ति द्वारा देदीप्यमान हो, तुम अपनी दमकती हुई ज्वाला सहित उठो ॥ ५ ॥ [९]

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक् ।
यथा दूतो बभूथ: हव्यवाहन ॥६
अग्निं व: पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् ।
तमया वाचा गृणे तमु व: स्तुषे ॥७
यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् ।
मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥८
ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥९
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयत: ।
होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तम. ॥१० ॥१०

हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले दूत हो अतः देवताओं को हव्य पहुँचाने के निमित्त सुन्दर स्तोत्र सहित गमन करो ॥ ६ ॥ मैं यज्ञ सम्पादक प्राचीन अग्नि को आहूत करता हूँ । मैं सूक्त वचनों के द्वारा तुम्हारे निमित्त उन्हीं अग्नि की स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥ अग्नि देवता अत्यन्त मेधावी और मित्र रूप हैं । उनके तृप्त होने पर यज्ञ के बल और उनकी कृपा से यजमान का अभीष्ट पूर्ण होता है ॥८॥ हे यज्ञ की कामना वालो ! तुम इस हवियों वाले यज्ञ में यज्ञ के साधन रूप अग्नि की स्तोत्रों द्वारा पूजा करो ॥९॥ यह अग्नि यज्ञ सम्पादक और अत्यन्त तेजस्वी हैं । हमारे यज्ञ उन्हीं आंगिरस अग्नि के सामने पहुँचें ॥ १०॥ [१०]

अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद्भा: अश्वा । इव वृषणस्तविषीयव: ॥११
स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् ।
प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥१२
यद्वा उ विश्पति. शित: सुप्रीतो मनुषो विशि ।
विश्वेदग्नि. प्रति रक्षांसि सेधति ॥१३
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥१४

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥१५ ॥११

हे अग्ने ! तुम जरा रहित हो । तुम्हारी रश्मियाँ अत्यन्त तेजवाली तथा कामनाओं की वर्षा करने वाली हैं । वे अश्व के समान बल को उत्पन्न करती हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम अन्नों के स्वामी हो । तुम हमको सुन्दर बल से सम्पन्न धन प्रदान करो । रण के अवसर पर हमारे पुत्र-पौत्रादि के पास स्थित धन की रक्षा करो ॥१२॥ जब वे तीक्ष्ण एवं मनुष्यों के रक्षक अग्नि अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक घर में निवास करते हैं, तब वे सब दैत्यों का नाश कर देते हैं ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के रक्षक हो । तुम हमारे स्तोत्र को श्रवण कर मायावी दैत्यों को अपने संतापक तेज से भस्म करो ॥१४ जो हविदाता यजमान अग्नि के लिए हवि देता है, उसे मनुष्यों के शत्रु दैत्य अपनी माया से भी अपने आधीन नहीं कर सकते ॥१५॥ [११]

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि॥१६
उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।
आयजि त्वा मनवे जातवेदसम् ॥१७
विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥१८
इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः ।
पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥१९
तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् ।
विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥२० ॥१२

हे अग्ने ! व्यश्व ऋषि ने अपने को धन की वर्षा करने वाला बनाने की कामना से तुम्हें प्रसन्न किया था । हे अग्ने ! तुम धन-प्रदान करने वाले को हम भी महान् धन के निमित्त प्रदीप्त करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! उत्पन्न हुओं के ज्ञाता, कवि और यज्ञशील उशना ने तुम्हें होता रूप से मनु के गृह में स्थापित किया था ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं में प्रमुख हो । जब तुम्हें

सब देवताओं ने अपना दूत बनाया था, तभी से तुम यज्ञ के योग्य होगये थे ॥१८॥ यह अग्नि धूम्र मार्ग वाले, अविनाशी, तेजस्वी और पवित्र हैं, इन्हें वीर मनुष्यों ने दूत नियुक्त किया था ॥ १९ ॥ वे अग्नि मनुष्यों द्वारा स्तुति करने के योग्य, तेजस्वी, उज्ज्वल वर्ण वाले और सुन्दर दीप्ति वाले हैं। उन्हीं जरा रहित अग्नि को हम आहूत करते हैं ॥ २० ॥ [१२]

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत् ।

भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥२१

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।

प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥२२

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् ।

मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥२३

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् ।

ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥२४

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।

विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥२५ ॥१३

जो यजमान अग्नि को हवि प्रदान करता है वह अत्यन्त पुष्टि, वीर संतान और अन्न आदि पाता है ॥ २१ ॥ अग्नि उत्पन्न हुओं के ज्ञाता, देवताओं में मुख्य और प्राचीन हैं हवि युक्त स्रुक नमस्कार के सहित उनके पास पहुँचता है ॥ २२ ॥ हम उन पूज्य, उज्ज्वल, तेजस्वी और स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध अग्नि की सेवा करते हैं ॥ २३ ॥ हे ऋषि विश्वमना ! तुम स्थूलयूप ऋषि के समान ही यजमान के घर में प्रकट हुए अग्निदेव को स्तोत्रों द्वारा पूजो ॥२४॥ विद्वान् यजमान वनस्पतियों द्वारा उत्पन्न, प्राचीन एवं मनुष्यों के अतिथि रूप अग्नि की रक्षा की कामना करते हुए स्तुति करते हैं ॥२५॥ [१३]

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा ।

अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥२६

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः ।

सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥२७

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय ।

सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः ।

महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥२९

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।

ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥ ३० ॥१४

हे अग्ने ! तुम सब स्तुति करने वालों के समक्ष कुशा के ऊपर प्रतिष्ठित होओ । हे स्तुति के पात्र ! तुम मनुष्यों द्वारा दी जाती हुई हवियों को ग्रहण करो ॥ २६ ॥ हे अग्ने ! वरण करने योग्य, बहुतों द्वारा कामना किया गया, सुन्दर पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न और यश से सम्पन्न धन हमको प्रदान करो ॥२७॥ हे अग्ने ! तुम तरुण, वरणीय एवं निवास-प्रद हो । इन सुन्दर साम गायकों के लिए धन आदि का प्रेरण करो ॥ २८॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त दानी हो । पशुओं से सम्पन्न धन हमको प्रदान करो ॥ २९ ॥ हे अग्ने ! देवताओं में तुम अत्यन्त यशस्वी हो । जो मित्रावरुण अत्यन्त बली, सत्यनिष्ठ एवं प्रतिष्ठित हैं, उन्हें हमारे इस यज्ञ-कर्म में ले आओ ॥ ३० ॥ [१४]

२४ सूक्त

(ऋषि—विश्वमना वैयश्वः । देवता—इन्द्रः वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥२

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् ।

निरेव चिद्धो हरिवो वसुर्ददि ॥३

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्पि जनानाम् ।

धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥४

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्त वरन्त आमुरः ।

न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥५ ॥१५

हे सखा रूप ऋत्विजो ! हम इस स्तोत्र को इन्द्र के निमित्त करेंगे। वे इन्द्र शत्रुओं के घसीटने वाले एवं आयुधों के स्वामी हैं। युद्ध में आने के लिये मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करूँगा ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र हनन के कारण ही वृत्रहन्ता कहलाते हो। तुम अपने पराक्रम के द्वारा ही विख्यात हुए हो। हे वीर ! तुम धनवान् पुरुषों को अपने ही धन से अधिक धन प्रदान करते हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो। हमारे द्वारा स्तुत होने पर तुम विभिन्न अन्नों से सम्पन्न धन हमें दो। तुम आने के समय ही शत्रुओं के धन को हरने वाले होते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त धन को प्रकट करो। तुम शत्रुओं के नाश करने वाले होकर, उनका धन हमको प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अश्ववान् इन्द्र ! जब तुम गौओं को ढूँढते हो तब वीर पुरुष भी तुम्हारे दाँये या बाँए हाथ को नहीं रोक सकते। तुम बाधा रहित हो, इसलिए वृत्र आदि भी तुम्हारे हाथ रोकने में समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥ [१५]

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः ।

आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥६

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम ।

उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥७

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः ।

वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥८

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः ।

अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥९

आ वृषस्व महामह महे नृनम राधसे ।
दृळ्हाश्चिद् दृह्य मघवन्मघत्तये ॥१० ।१६

हे वज्रिन् ! जैसे गौएं गोष्ठ को प्राप्त होती हैं, वैसे ही मैं तुम्हें स्तुतियों के द्वारा प्राप्त होता हूँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम उत्तम वास देने वाले, नेता, उग्र एवं वृत्रादि का नाश करने वाले हो । विश्वमना ऋषि जिन स्तोत्रों को करते हैं, उनके उन सब स्तोत्रों में तुम अभिमुख रहना ॥ ७ ॥ हे बहुतों द्वारा आहूत, वृत्रहन इन्द्र ! तुम से हम सुख का साधन रूप, स्पृहणीय एवं नवीन धन प्राप्त करेंगे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! शत्रु तुम्हारे बल को दबाने में समर्थ नहीं हैं । तुम बहुतों द्वारा आहूत और सबको नचाने वाले हो । तुम जिस हविदाता को धन प्रदान करते हो, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम नेताओं में उत्कृष्ट और अत्यन्त पूज्य हो । तुम धन की प्राप्ति के लिए शत्रुओं के दृढ पुरों को ध्वस्त करो । अपने बृहद् उदर को महान् धन के निमित्त तृप्त करो ॥ १० ॥ (१६)

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशस. ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११

नह्य१ङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।
राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४

नह्य१ङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
नकी राया नैवथा न भन्दना ॥१५ ।१७

हे वज्रिन् ! तुमसे पूर्व हमने अन्य देवताओं से याचनाएं की थीं, अब तुम हमको धन प्रदान करते हुए रक्षक बनो ॥ ११ ॥ हे स्तवनीय इन्द्र ! तुम सबको नचाने वाले हो । अन्न को प्रकट करने वाले बल तथा यश के निमित्त मैं केवल तुमको ही जानता हूँ, अन्य किसी को नहीं ॥ १२ ॥ इन्द्र

तुम्हारे मधुर सोम का पान करें, इसलिए उन्हीं के निमित्त तुम सोम को सींचो। वह इन्द्र अपनी महिमा के द्वारा अन्नयुक्त धन आदि को प्रेरित करते हैं ॥ १३॥ वे इन्द्र अपना वृद्धि करने वाला बल दूसरे को प्रदान करते हैं, अत मैं उन्हीं अश्व स्वामी इन्द्र की स्तुति करूँ। हे इन्द्र ! मुझ व्यश्व के पुत्र की स्तुति सुनो ॥१४॥ हे इन्द्र ! प्राचीन काल में तुम से अधिक बलशाली धनवान् आश्रयदाता और स्तुतियों से सम्पन्न अन्य कोई प्रकट नहीं हुआ ॥ १५ ॥ (१७)

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धस ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृध ॥१६

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥१७

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यव । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥१८

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वच ।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२० ॥१८

हे ऋत्विजो ! सोम रूप अन्न के हर्षकारी रस को इन्द्र के लिए ही सींचो। क्योंकि यह इन्द्र सदा बढ़ने वाले और वीर हैं। सभी स्तोता इनकी ही स्तुति करते हैं ॥ १६॥ हे इन्द्र ! तुम हर्यश्वों के स्वामी हो। प्रथम तुम्हारे निमित्त की गई स्तुति को कोई भी धनी या बली उल्लंघन नहीं कर सकता है ॥१७॥ हम अन्न की कामना करते हुए, जिन यज्ञों में ऋत्विग्गण आलस्य नहीं करते उन्हीं यज्ञों मे, अन्नों के स्वामी इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥१८ हे सखारूप ऋत्विजो ! तुम शीघ्र ही यहाँ आओ। हम स्तुति के योग्य इन्द्र का ही स्तव करेंगे क्योंकि यह अकेले ही शत्रु की सेना को हरा देते हैं ॥१९॥ हे ऋत्विजो ! जो इन्द्र स्तुतियों की कामना करते हैं, जो स्तुतियों को रोकते नहीं, उन इन्द्र के प्रति घृत, मधु से ही सुस्वादु मधुर वाणी का उच्चारण करो ॥ २० ॥ (१८)

यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥२१

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मि वाजिनं यमम् ।

अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।

सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२३

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥२४

तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने ।

द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५ ॥१६

जो इन्द्र असीमकर्मा हैं, जिनके धन को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकते, जिनका दान ज्योति के समान सब स्तुति करने वालों में व्याप्त होता है । हे स्तोताओ ! उन्हीं अहिंस्य, बलवान् इन्द्र की व्यश्व ऋषि के समान स्तुति करो । वे इन्द्र हवि देने वाले को विशाल गृह प्रदान करते हैं ॥ २१-२२ ॥ हे विश्वमना ऋषि ! इन्द्र मनुष्य के दसवें प्राण हैं और नमस्कारों के योग्य, मेधावी तथा अभिनव हैं, तुम उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो ॥२३ ॥ हे वज्रिन् ! जैसे सूर्य पक्षियों के उड़ने को नित्य ही जानते हैं, वैसे ही तुम निर्ऋतियों के गमन को जानते हो ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अतीव दर्शनीय हो । कुत्स ऋषि के लिए तुमने दो रक्षाओं से शत्रुओं को मारा था, उन्हीं रक्षाओं को हमें प्रदान करो । इस कर्म के करने वाले यजमान को अपनी शरण प्रदान करो ॥ २५ ॥ [१६]

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे ।

स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु ।

वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् ।

व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः ।

स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥२९

यत्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते ।

एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३० ॥२०

हे स्तुतियों के पात्र इन्द्र ! तुम दर्शन के योग्य हो । हम तुमसे धन माँगते हैं । तुम हमारे शत्रुओं की सेनाओं को हराने वाले हो ॥ २६ ॥ जो इन्द्र मात नदियों के किनारे निवास करने वाले यजमानों के पास धन प्रेरित करते हैं और जो निर्ऋति के बन्धन से छुड़ाते हैं, ऐसे हे इन्द्र ! तुम राक्षसों का संहार करने के लिए शस्त्र को फेंकाओ ॥२७॥ हे वरु ! प्राचीन काल में जैसे तुमने सुषामा राजा के लिए याचकों को धन प्रदान किया था, वैसे ही हम व्यश्वों को प्रदान करो । हे उषे ! तुम शोभन अन्न धन से सम्पन्न हो, अतः तुम भी धन प्रदान करो ॥ २८ ॥ इन राजा वरु की दक्षिणा हम व्यश्व पुत्रों को प्राप्त हो । सौ और सहस्र संख्यक धन हमारे पास आवे ॥ २९ ॥ हे उषे ! यज्ञ जिज्ञासु 'वरु कहाँ रहते हैं' ऐसा पूछते हैं । यदि तुमसे इन आश्रय-स्थान और शत्रु नाशक वरु राजा के सम्बन्ध में पूछें तो बताना कि वे गोमती-तट पर वास करते हैं ॥३ ॥ [२०]

२५ सूक्त

(ऋषि-विश्वमना वैयश्व । देवता-मित्रावरुणौ, विश्वेदेवा । छन्द-उष्णिक्)

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया ।

ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥१

मित्रा तना न रथ्या वरुणो यश्च सुक्रतुः ।

सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥२

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥३

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा ।

ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥४

नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू ।
सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥५ २१

हे मित्रावरुण ! तुम सब विश्व के पालक हो। तुम देवताओं में उपासना के योग्य हो। तुम हवि के लिए यजमान का आश्रय बनाओ। हे व्यश्व ! तुम बलवान् एवं यज्ञवान् मित्रावरुण के लिए यजन करो ॥ १ ॥ मित्रावरुण अदिति के पुत्र हैं। वे वृत धारण करने वाले, सुन्दर कर्म वाले, शोभन उत्पत्ति तथा धन और रथ वाले हैं ॥ २ ॥ सत्यनिष्ठा एवं महिमामयी अदिति ने उन तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली मित्रावरुण को राक्षसों का बल मिटाने के लिए ही प्रकट किया है ॥ ३॥ वे मित्रावरुण सत्य-सम्पन्न, बली, सम्राट एवं महान् हैं। वे शोभन यज्ञ को प्रकट करने वाले हैं ॥ ४॥ मित्रावरुण वेग से उत्पन्न, सुन्दर कर्म वाले, प्रचुर धनदाता और बल के पौत्र रूप हैं। वे अन्न के स्थान में वास करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः ।
नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः । ६

अधि या बृहतो दिवोभि यूथेव पश्यतः ।
ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥७

ऋतावाना नि पेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।
धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥८

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा ।
नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥९

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या ।
उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥१० ॥२२

हे मित्रावरुण ! तुम द्यावा पृथिवी पर धन और अन्न प्रदान करते हो। जल से सम्पन्न वृष्टि तुम्हारी आश्रित है ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम वृषभ द्वारा गौओं को देखने के समान ही प्रसन्न करने वाले, देवताओं को देखने वाले, सत्यनिष्ट, सम्राट और हवियों के प्रति प्रेम करने वाले हो ॥ ७ ॥ वे

सुन्दर कर्मवाले मित्रावरुण साम्राज्य के निमित्त प्रतिष्ठित हों। वे व्रतधारी, बल को व्याप्त करने वाले हों ॥ ८ ॥ नेत्र की सृष्टि होने से पूर्व ही प्राणियों के ज्ञाता, सबकी प्रेरणा देने वाले मित्रावरुण तेज और बल से सुशोभित हुए ॥ ९ अदिति, अश्विनीकुमार और वेगवान् मरुद्गण हमारी रक्षा करने वाले हों ॥ १० ॥ [२२]

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवे ।
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥११
अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।
श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥१२
तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।
मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥१३
उत न सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषस. ॥१४
ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमाति कयस्य चित् ।
तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥१५ ॥२३

हे मरुद्गण ! तुम सुन्दर दान वाले हो, तुम्हारी कोई हिंसा नहीं कर सकता, तुम रात्-दिन हमारी नाव की रक्षा करने वाले बनो। हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके ही एकत्र होंगे ॥ ११ ॥ हम सुन्दर दान वाले विष्णु की अहिंसित रहते हुए स्तुति करेंगे। वे विष्णु युद्ध कर्म में कुशल हैं। हे विष्णो ! तुम स्तुति करने वालों को धन देते हो। जिस यजमान ने यज्ञ प्रारम्भ किया है उसकी स्तुति को श्रवण करो ॥ १२ ॥ हम अपने को सबके रक्षक, श्रेष्ठ और वरणीय धन के आश्रित करते हैं। इस धन के रक्षक मित्रावरुण और अर्यमा हैं ॥ १३ ॥ मरुद्गण हमारे धन की रक्षा करें, पर्जन्य हमारे धन की रक्षा करें। अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु और कामनाओं की वर्षा करने वाले मरुत्, देवता हमारे धन के रक्षक हों ॥१४॥ वे देवता पराक्रमी, नेता और

वेगवान् जल द्वारा वृक्ष को उखाड़ फेंकने के समान ही शत्रु को समूल उखाड़ फेंकने वाले हैं ॥ १५ ॥ [२३]

अयमेक इत्था पुरुरु चष्टे वि विश्पतिः

तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥१६

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम ।

मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् १७

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः ।

उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥१८

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः ।

अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥१९

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः ।

ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥२० ॥२४

मित्र और वरुण में से मैं तुम्हारे निमित्त मित्र के व्रत को करता हूँ । वे मित्र देवता लोकों के अधिपति हैं और अपने तेज से सभी प्रधान द्रव्यों को देखते हैं ॥ १६ ॥ हम सम्राट वरुण से गृह प्राप्त करेंगे । हम अत्यन्त विख्यात मित्र देवता के व्रत को भी करेंगे ॥ १७॥ जो मित्र देवता अपने तेज से स्वर्ग तथा विश्व के अन्त को प्रकट करते हैं वे इन दोनों को अपनी ही महिमा से पूर्ण करते हैं ॥ १८ ॥ वे मित्रावरुण सूर्य के स्थान में अपनी ज्योति को प्रकट करते हैं, फिर सब के द्वारा बुलाए जाकर अग्नि के समान दमकते हुए चलते हैं ॥ १९ ॥ हे स्तुति करने वालो ! मित्रावरुण विशाल गृह के स्वामी हैं, तुम उन्हीं की स्तुति करो । पशुओं से सम्पन्न अन्न के स्वामी वरुण हैं, वे अत्यन्त पुष्टि-देने वाले अन्न को प्रदान करने वाले हैं ॥ २० ॥ (२४)

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे ।

भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥२१

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥२२

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥२३

स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती ।
महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥२४ ॥२५

मैं मित्रावरुण के तेज की स्तुति करता हूँ । द्यावापृथिवी की भी दिन रात स्तुति करता हूँ । हे वरुण ! हमको अपने दान के समक्ष करो ॥ २१ ॥ उस गोत्रीय सुषमा के पुत्र वरु राजा के द्वारा चाँदी के समान शुभ्र वर्ण वाले अश्वों से युक्त, सरलगामी रथ हमको प्राप्त हुआ था । वह रथ शत्रुओं की आयु और धनों का हरण करने में समर्थ है ॥ २२ ॥ शत्रुओं को बाधा देने वाले, हरे रंग के अश्वों में से दो अश्व हमको वरु राजा के द्वारा शीघ्र दिये जाँय ॥ २३ ॥ सुन्दर लगाम वाले, कशा से युक्त, सतोषी, अभिनव स्तोत्र द्वारा स्तुति करते हुए शीघ्र गमनकारी दो अश्वों को मैं पाऊँ ॥२४॥ [२५]